नर्सों के लिये

शरीर सम्बन्धी ज्ञान

ANATOMY AND PHYSIOLOGY FOR NURSES

(केथॅरिन आर्मस्ट्रांग द्वारा रचित)

(सप्रेम ...)
डा0रवि प्रकाश अग्निहोत्री
अधि-स्नातक(...)-आयुर्वेद रत्न
...
राजकीय आयुर्वेदिक एवं ... परिषद
बिहार (पटना) द्वारा अधिकृत चिकित्सक
चिकित्सा अधिकार पत्र सं. 70721

शीला एम. [illegible]
SR [illegible] BSc, BEd, RN [illegible]

अनुवादक
ओमप्रकाश यादव
M B, B S

प्रकाशक
एन आर ब्रदर्स
(मेडिकल डिविज़न)
सयोगितागज, इन्दौर (म. प्र)

This Hindi edition of 'Anatomy and Physiology for Nurses' is published by arrangement with Bailliere Tindall
1, St Anne's road, Eastbourne East Sussex

© English edition · Bailliere Tindall, London.
© Hindi edition : N R Brothers, Indore, India

All rights reserved No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieyel system, or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise without the prior permission of the Publishers.

First Hindi edition : 1978
Second Hindi edition : 1984

This book is also available in English, Sinhalease, Turkish and Spanish languages

Published and Printed by N. R Brothers (Medical division)
Sanyogitaganj, Indore, India.

Printed at Nai Dunia Printery, Indore

Price : Rs. Thirty only.

हिन्दी संस्करण की भूमिका

मिस कैथेरिन आर्मस्ट्रॉन्ग द्वारा अग्रेजी मे लिखित प्रसिद्ध पुस्तक 'एनाटॅमि एण्ड फिजिऑलॅजि फॉर नर्सेस' के पूर्व हिन्दी सस्करण को न सिर्फ नर्सिग क्षेत्र के पाठकों ने सराहा, बल्कि चिकित्सा-विज्ञान से सम्बन्धित अन्य क्षेत्र के पाठको ने भी काफी पसद किया। इसी बात से प्रेरित होकर इस पुस्तक के नये नवे सस्करण का हिन्दी अनुवाद और भी रोचक एव आधुनिक रूप से प्रस्तुत करने की इच्छा जागृत हुई।

चूंकि एनाटॅमि एन्ड फिजिऑलॅजि का विस्तृत ज्ञान चिकित्साशास्त्र का आधार-स्तम्भ है, इसलिये सम्पूर्ण शरीर की मूलभूत रचना, शरीर की यान्त्रिक क्रियाविधियों और विभिन्न रासायनिक क्रियाओं को वैज्ञानिक सिद्धातो के आधार पर समझने के लिये इस पुस्तक की रचना की गई है। आनुवशिकी, लिग निर्धारण, रक्त समूहन, असक्राम्यता और श्वसन क्रिया-विज्ञान पर नई जानकारी एव रुचिकर विषय-वस्तु प्रस्तुत की गई है, जो इसी प्रकार की अन्य पाठ्य-पुस्तक मे उपलब्ध नहीं है। इस नये सस्करण मे फुफ्फुसीय, पोरटल एव गर्भस्थ रक्तपरिसचरण, पित्तीय तत्र के भाग एव कार्य और अग्न्याशय तथा पोषण एव चयापचय से सम्बन्धित अध्यायों को फिर से नये रूप मे विस्तृत एव आधुनिक जानकारियों के साथ लिखा गया है। स्नायविक तत्र जैसे जटिल अध्याय को आसानी से समझने के लिये इसे फिरसे रोचक एव सरल रूप मे लिखा गया है तथा मीनिन्जीज, सेरिब्रोस्पाइनल द्रव, सवेदक प्रणाली, विशिष्ट सवेदन और त्वचा एव पेशी से आने वाले सवेदनों से सम्बन्धित अतिरिक्त जानकारियां भी दी गई हैं। इस पुस्तक मे करीब 207 स्पष्ट रेखाचित्रों का समावेश किया गया है।

दरअसल, इतनी छोटी पुस्तक मे सम्पूर्ण शरीर-रचना एव शरीर-क्रिया पर इतने स्पष्ट रूप से सभी बाते प्रस्तुत करना सराहनीय है, इस हेतु लेखिका मिस आर्मस्ट्रान्ग बधाई की पात्र है इस पुस्तक की सशोधक मिस शीला जॅक्सॅन ने इस पुस्तक मे एनाटॅमि की अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रयोग की जाने वाली आधुनिक शब्दावली का समावेश किया है जिसका आधार प्रसिद्ध पुस्तक ग्रे की एनाटॅमि का 34 वॉ सस्करण है।

हाल ही में एनाटॅमि और फिज़िऑलॅजि के शिक्षण में नये दृष्टिकोण के समावेश से इस पुस्तक की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ गई है। विषय-वस्तु को आसान बनाने के लिये हिन्दी और अंग्रेजी दोनों शब्दों का प्रयोग किया गया है। कठिन और आसानी से समझने में नहीं आने वाले हिन्दी शब्दों को नहीं लिया गया है, उनके स्थान पर मूल अंग्रेजी शब्दों को ही हिन्दी में लिखा गया है ताकि विषय-वस्तु शीघ्र समझ में आ सके। पुस्तक में प्रयुक्त हिन्दी शब्दों के लिये भारत सरकार द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी-हिन्दी शब्दावली की सहायता भी ली गई है।

अंत में, एन आर ब्रदर्स के प्रबंध संचालक श्री प्रहलादरायजी माहेश्वरी का हार्दिक आभारी हूँ जिन्होंने अपने इस क्षेत्र के दीर्घ अनुभव से हिन्दी शब्दों के चयन और अनुवाद को सरल, सरस एवं रोचक बनाने में उपयुक्त मार्गदर्शन दिया।

इन्दौर–1

ओमप्रकाश यादव

विषय-सूची

1. प्रारम्भिक भौतिकी एवं रसायन विज्ञान
Elementary Physics and Chemistry

नर्स मानव की बीमारी और सवेदनशील अवधियो के दौरान उसकी सेवा करती है। इस सेवा को उचित रूप से करने के लिये उसे शरीर की रचना एव क्रिया को समझना आवश्यक होता है, उसमे इस ज्ञान का उपयोग रोगी की देखभाल मे करने की योग्यता होनी चाहिये। शरीर का स्वास्थ्य बनाये रखने के लिये प्रत्येक अग अपना-अपना कार्य करता है, और यदि किसी भी अग मे गडबडी हो जाती है तो सम्पूर्ण शरीर प्रभावित हो जाता है। प्रत्येक अग की रचना से जहाँ उसका कार्य समझ मे आता है वही उसके कार्य से अग की रचना समझ मे आती है। इसलिये मानव शरीर का अध्ययन सोचने एव विचारने की तार्किक प्रक्रिया है, न कि सिर्फ रटने की।

पारिभाषिक शब्द (Terms) · *एनाटॅमि* (शरीर-रचना विज्ञान) शरीर की रचना और *फिजिऑलॅजि* (शरीर क्रिया विज्ञान) शरीर की क्रिया का अध्ययन है। प्रारम्भिक भौतिकी और रसायन विज्ञान का कुछ ज्ञान एनाटॅमि एव फिजिओलॅजि के अध्ययन मे सहायक होगा, तथा रोगी की देखभाल एव नर्सिग विधियो को करने के लिये नर्स हेतु उपयोगी होगा। *केमिस्ट्री* (रसायन विज्ञान) के अन्तर्गत पदार्थ की सरचना और विभिन्न प्रकार के पदार्थो के बीच होने वाली रासायनिक क्रियाओ का अध्ययन किया जाता है। *फिजिक्स* (भौतिकी) के अन्तर्गत पदार्थ के व्यवहार एव विशेषताओ का अध्ययन किया जाता है, उदाहरणार्थ क्या पदार्थ ऊष्मा या प्रकाश देता है, या विद्युत सवहन करता है।

पदार्थ (Matter)

पदार्थ वह वस्तु है जो स्थान घेरती है। जब 'स्थान' शब्द का प्रयोग किया जाता है तब उसका अर्थ यह होता है कि वहाँ वायु है, जो पदार्थ के अन्य प्रकारो द्वारा विस्थापित हो सकती है। उदाहरण के लिये, एक 'खाली' बोतल वास्तविक रूप से खाली नही रहती है क्योंकि उसमे हवा होती है। जिस पात्र से हवा निकाली जा चुकी है उसे 'वैक्युअम' कहते है।

पदार्थ की भौतिकीय अवस्थाएँ (Physical States of Matter).

पदार्थ की तीन भौतिक अवस्थाएँ होती है · (i) ठोस, (ii) द्रव एव (iii) गैस

ठोस (Solid)—ठोस, आकृति या आकार मे आसानी से परिवर्तित नही होता है, उदाहरणार्थ पत्थर, ईंट।

द्रव (*Liquid*) जिस वर्तन मे द्रव रखा जाता है द्रव उसी की आकृति ग्रहण कर लेता है लेकिन उसके आकार मे परिवर्तन नही होता है, उदाहरणार्थ 500 मि. ली पानी की कोई आकृति नही होती है परन्तु जिस वर्तन मे इसे रखा जाता है उसकी आकृति वह ग्रहण कर लेता है, जैसे 500 ml पानी एक लिटर वाले जग मे रखा जाय तो जग पूरा नही भरेगा।

गैस (*Gas*)—गैस जिस वर्तन मे रखी जाती है उसी की आकृति एव आकार ग्रहण कर लेती है। यदि किसी पात्र मे से हवा को निकाल लिया है और कुछ गैस उसमे प्रविष्ट कर दी है तो गैस फैलकर पूरे वर्तन को भर देगी। यदि और अधिक गैस प्रविष्ट की गई तो पात्र मे गैस दवेगी तथा छोटे-छोटे कण जो गैस बनाते हैं, अधिक पास-पास आ जायेंगे। जब तक पात्र फटता नही है तब तक उसमे और अधिक गैस प्रविष्ट की जा सकती है, जैसे कि साइकल के ट्यूब मे कुछ पम्प हवा भरने के बाद टायर फूल जाता है, लेकिन जब कोई साइकल पर बैठता है तब टायर चपटा हो जाता है क्योंकि उसमे हवा बहुत कम है अत टायर मे तब तक हवा भरी जाती है जब तक कि उसमे इतनी हवा भर जाय कि बैठने वाले के वजन से टायर चपटा न हो। सिलिण्डर मे गैस की नापी हुई मात्रा ज्ञात दवाव पैदा करेगी। जैसे ही गैस का उपयोग कर लिया जाता है, सिलिण्डर मे दवाव कम हो जाता है और इस प्रकार सिलिन्डर मे बची हुई गैस की मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है। गैसो के सामान्य उदाहरण हैं ऑक्सीजन, हाइड्रोजन एव नाइट्रोजन।
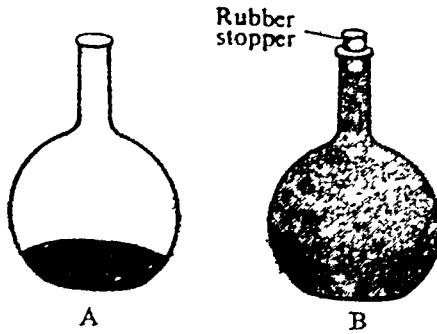
चित्र 1 – काच के फ्लास्क (A) मे 100 मि लि द्रव, एव (B) मे 100 मि लि गैस है। ध्यान दीजिये फ्लास्क B को भरने के लिये गैस कैसे फैलती है।

अवस्था का परिवर्तन (Change of state) :

सामान्य तापक्रमो पर लोहा ठोस तथा तरल रहता है लेकिन पदार्थ की अवस्था परिवर्तित हो सकती है। ये परिवर्तन गरम करने या उष्मा के निकल जाने से होते है उदाहरणार्थ, जब उष्मा निकल जाती है तो तरल पानी ठोस बर्फ बन जाता है, तथा जब मक्खन को गरम किया जाता है तो यह तरल (घी) बन जाता है। इन परिवर्तनो का अग्रलिखित रूप मे वर्णन किया जा सकता है

पिघलना (*Melting*)—गरम करने पर ठोस के तरल रूप में परिवर्तित होने को 'पिघलना' कहते हैं। उदाहरणार्थ, बर्फ का पानी में परिवर्तन।

वाष्पीकरण (*Evaporation*)—गरम करने पर तरल के गैस के रूप में परिवर्तित होने को 'वाष्पीकरण' कहते हैं। उदाहरणार्थ, पानी का भाप में परिवर्तन। वाष्पीकरण द्वारा निर्मित गैसों को वाष्प (Vapours) कहते हैं।

सघनन (*सद्रवण*) (*Condensation*)—ठंडा करने पर गैस के तरल रूप में परिवर्तन को सघनन या 'सद्रवण' कहते हैं। उदाहरणार्थ, पानी की भाप का पानी बनना।

ठोसकरण (*Consolidation*)—ठंडा होने के परिणामस्वरूप द्रव के ठोस रूप में परिवर्तित होने को 'ठोसकरण' कहते हैं। उदाहरणार्थ पानी का बर्फ में परिवर्तन।

इन परिवर्तनों में से पहले दो, पिघलना और वाष्पीकरण, गरम करने के फलस्वरूप होते हैं लेकिन ऊष्मा जब अवस्था का परिवर्तन करती है तब पदार्थ के तापक्रम में कोई वृद्धि नहीं करती। ऊष्मा ऊर्जा का एक प्रकार है और इस मामले में ऊर्जा अवस्था में परिवर्तन में खर्च होती है इसलिये यह पदार्थ को गरम नहीं करती। उदाहरणार्थ पिघलते हुए बर्फ का तापक्रम 0°C (32°F) है। जब बर्फ पिघलकर पानी बनता है तब भी तापक्रम 0°C ही रहता है। पानी 100°C (212°F) पर उबलता है। यदि केतली को और गरम किया जाय तो पानी और अधिक गरम नहीं होगा क्योंकि अतिरिक्त ऊष्मा का उपयोग पानी से भाप बनने में हो जाता है। इसी प्रकार शरीर की ऊष्मा पसीने को वाष्पीकृत करती है, अतः शरीर की अधिक ऊष्मा का उपयोग हो जाता है और शरीर ठंडा रहता है। इस प्रकार उपयोग में आने वाली ऊष्मा को 'गुप्त ताप' (Latent heat) कहते हैं। सद्रवण या ठोसकरण में गुप्त ताप है।

विश्लेषण और संश्लेषण (Analysis and Synthesis)

आरम्भ में यह बताया गया था कि केमिस्ट्री (रसायन विज्ञान) पदार्थ की संरचना का अध्ययन है। यह देखने के लिये कि पदार्थ किस वस्तु का बना है, केमिस्ट (रसायन विशेषज्ञ) उसको विभिन्न घटकों में विभाजित करने का प्रयत्न करता है। इस प्रक्रिया को *विश्लेषण* कहते हैं। वह किसी पदार्थ को उसके विभिन्न घटकों से बनाने का प्रयत्न भी कर सकता है। इस प्रक्रिया को *संश्लेषण* कहते हैं। संश्लेषित पदार्थ वे हैं जो मनुष्य द्वारा बनाये जाते हैं, उदाहरणार्थ, प्लास्टिक एवं नाइलॉन।

तत्व, यौगिक एवं मिश्रण Elements, Compounds and Mixtures)

कुछ पदार्थों को विभाजित नहीं किया जा सकता, ऐसे पदार्थों को *तत्व* कहते हैं। नब्बे से अधिक तत्व ज्ञात हैं, जिनमें कुछ हैं ऑक्सीजन, कार्बन, नाइट्रोजन,

आयरन (लोहा), सिल्वर (चाँदी) एवं गोल्ड (सोना)। जिन वस्तुओं को विभिन्न तत्वों में विभाजित किया जा सकता है वे दो प्रकार के हैं (i) यौगिक एवं (ii) मिश्रण।

यौगिक (Compound)—यह दो या दो से अधिक तत्वों का बना होता है। ये तत्व रासायनिक रूप में जुड़कर नये गुणों वाला पदार्थ बनाते हैं। उदाहरणार्थ हाइड्रोजन बहुत हल्की गैस है, जिसका उपयोग गुब्बारों को भरने के लिये किया जाता है। यह अत्यधिक ज्वलनशील तथा विस्फोटक है। आक्सीजन एक ऐसी गैस है जो दहन (जलने) में सहायता करती है लेकिन स्वयं नहीं जलती है। ये दोनों गैसें मिलकर एक यौगिक—पानी बनाती हैं, जो द्रव है, लेकिन यह न तो ज्वलनशील है और न ही विस्फोटक, न जलने में सहायता करता है और न ही स्वयं जलता है बल्कि यह आग बुझाने के लिये बहुत उपयोगी है। जो तत्व यौगिक बनाते हैं वे यौगिक में हमेशा निश्चित अनुपात में ही उपस्थित रहते हैं। उदाहरणार्थ, पानी ऑक्सीजन के एक भाग और हाइड्रोजन के दो भागों से मिलकर बनता है। यदि इन अनुपातों को बदल दिया जाये तो एक यौगिक बन सकता है, लेकिन वह पानी नहीं होगा। दो भाग हाइड्रोजन और दो भाग ऑक्सीजन मिलकर एक यौगिक बनाते हैं जिसे हाइड्रोजन परॉक्साइड कहते हैं, जो पानी के समान तो दिखता है परन्तु इसके गुण बिलकुल भिन्न होते हैं। यौगिक की दूसरी विशेषता यह है कि इसके तत्वों को आसानी से अलग नहीं किया जा सकता। इनको अलग करने के लिये कोई रासायनिक परिवर्तन होना जरूरी है।

मिश्रण (Mixture)—यह एक पदार्थ है जो दो या दो से अधिक तत्वों के एक साथ मिलने से बनता है परन्तु ये रासायनिक रूप से नहीं मिलते हैं। वायु या हवा, गैसों का मिश्रण है, जिसमें मुख्य रूप से नाइट्रोजन एवं ऑक्सीजन/तथा बहुत कम मात्रा में कार्बन डाइऑक्साइड एवं अन्य गैसें रहती हैं। मिश्रण में कोई नये गुण नहीं रहते हैं, बल्कि सामान्य रूप से वही गुण रहते हैं जो मिश्रण बनाने वाले तत्वों में मौजूद रहते हैं। वायु जलने में सहायता करती है क्योंकि इसमें मुक्त ऑक्सीजन रहती है, लेकिन यह शुद्ध ऑक्सीजन के समान जलने में सहायता नहीं करती है क्योंकि वायु में नाइट्रोजन का प्रतिशत अधिक रहता है जो जलने में सहायता नहीं करता है। मिश्रण में मौजूद तत्वों को अधिक आसानी से अलग किया जा सकता है क्योंकि ये रासायनिक रूप में मिले हुए नहीं रहते हैं। वायु में मौजूद ऑक्सीजन जलने में सहायता करेगी क्योंकि यह 'मुक्त' ऑक्सीजन है। पानी में उपस्थित ऑक्सीजन मुक्त नहीं रहती है, इसलिये यह जलने में सहायता नहीं करेगी। मिश्रण में तत्वों का अनुपात निश्चित नहीं रहता है। वायु के तीन विभिन्न नमूनों में ऑक्सीजन के तीन विभिन्न अनुपात हो सकते हैं, हालांकि प्रत्येक नमूना वायु का ही है।

सामान्य तत्व (Common elements)

इन तत्वों में से अधिक तत्वों में कुछ बहुत विरले हैं लेकिन इनमें से कुछ बहुत सामान्य हैं, जिनको इनके चिन्हों सहित जानना आवश्यक है

बेरियम	(Ba)	लचीला ठोस (धातु)
कैल्सियम	(Ca)	ठोस (धातु)
कार्बन	(C)	ठोस (अ-धातु)
हाइड्रोजन	(H)	गैस
आयोडिन	(I)	ठोस (अ-धातु)
आयर्न	(Fe)	ठोस (धातु)
मैग्नेशिअम	(Mg)	ठोस (धातु)
मरक्यूरी (पारा)	(Hg)	तरल (धातु)
नाइट्रोजन	(N)	गैस
ऑक्सीजन	(O)	गैस
पोटैशियम	(K)	ठोस (धातु)
सोडियम	(Na)	ठोस (धातु)

इनमें से कई तत्वों को जानना नर्स के लिए आवश्यक है *बेरियम*—यह एक धातु है। इसके लवण एक्स-रे के लिये अपारदर्शक है और इनके द्वारा आंत्रिक मार्ग की स्थिति ज्ञान करके रोग के निदान में मदद मिलती है। *कैल्सियम*—यह एक खनिज है जो दांतों एवं अस्थियों को मजबूत बनाता है। *कार्बन*—तत्व के रूप में यह विरले ही रहता है परन्तु कई यौगिकों और भोजन सहित सभी जीवित पदार्थों में उपस्थित रहता है। *हाइड्रोजन*—यह हल्की, अत्यधिक ज्वलनशील गैस है और जब इसे ऑक्सीजन के साथ मिलाया जाता है तब यह एक विस्फोटक मिश्रण बना देती है। *आयोडिन*—यह हरी सब्जियों में प्राप्त होती है तथा समुद्री-घास में अत्यधिक मात्रा में रहती है। थाइरॉइड ग्रन्थि के स्राव के लिये शरीर को इसकी आवश्यकता होती है। *आयर्न (लोह)*—यह एक धातु है और शरीर में थोडी मात्रा में रहता है। रक्त में लाल रक्ताणुओं के निर्माण हेतु यह आवश्यक होता है तथा स्वास्थ्य के लिये महत्वपूर्ण है। आयर्न की कमी एनीमिआ का मुख्य कारण है। *मैग्नेशिअम*—यह कैल्सिअम के साथ अस्थियों और दांतों में थोडी मात्रा में पाया जाता है। *मरक्यूरी (पारा)*—यह शरीर के लिये विषाक्त है, लेकिन थर्मामीटर के लिये उपयोगी है क्योंकि गरम होने पर यह फैलता है। *नाइट्रोजन*—यह एक गैस है जो न तो जलती है और न ही जलने में सहायता करती है, यह सभी जीवित पदार्थों में रहती है तथा भोजन में इसकी उपस्थिति अनिवार्य है। *ऑक्सीजन*-यह एक ऐसी गैस है जो स्वयं तो नहीं जलती लेकिन जलने में सहायता करती है, जलने को 'ऑक्सिडेशन" (ऑक्सीकरण) भी कहते है। *पोटैशियम*—यह सभी जीवित पदार्थों में मौजूद रहता है, विशेष रूप में पौधों में। मानव शरीर में यह इनके कोशिकाओ

मे रहता है । *सोडियम*—यह भी सभी जीवित वस्तुओ मे होता है, विशेष रूप से प्राणी जगत मे, शरीर मे सोडियम मुख्य रूप से सोडियम क्लोराइड के रूप मे रहता है । 0 5 लिटर शरीर-द्रव मे करीबन 4 5 ग्राम (1 चाय का चम्मच) सोडियम क्लोराइड रहता है (1 लिटर मे 9 ग्राम = 0 9 प्रतिशत घोल) ।

सभी यौगिक एव मिश्रण उपरोक्त तत्वो से बने होते है । कुछ तत्वो से निर्मित बहुत ही जटिल रासायनिक यौगिको से शरीर बनता है, इसलिये एनाटॉमि एवं फिज़िऑलॅजि के विद्यार्थियो के लिये जरूरी है कि वे तत्वो और यौगिको के बारे मे कुछ जानें ।

पदार्थ की रचना (The structure of matter) ·

सभी पदार्थ छोटे-छोटे कणो के बने होते है जिन्हें *अणु* (*Molecules*) कहते हैं । ये अणु इतने छोटे होते है कि उन्हे साधारण माइक्रोस्कोप से नही देखा जा सकता है । अणु आपस मे एक दूसरे के प्रति आकर्षण (खिचाव) द्वारा ही जुडे रहते है, उसी प्रकार जैसे कि किसी चुम्बक से सुई जुडी रहती है । यह तथ्य स्वीकार करना कठिन है कि लोहे की एक छड अणुओ की बनी होती है जो आपस मे जुडे हुए नही रहते हैं बल्कि सिर्फ आपसी आकर्षण द्वारा ही एक साथ रहते हैं । किन्तु इस महत्वपूर्ण तथ्य को याद रखना जरूरी है । आकर्षण या खिचाव की इस शक्ति को *अन्तराकर्षण या सम्बद्धता* (*Cohesion*) कहते है तथा चिपकाव (Adhesion) और इसके बीच अतर समझना आवश्यक है । अणु सब से छोटा कण है जो अकेला रह सकता है लेकिन फिर भी उसमे पदार्थ के सभी गुण मौजद रहते हैं । उदाहरणार्थ, पानी के अणु मे पानी के वे सभी गुण होते है जिन्हें आरम्भ मे बताया जा चुका है ।

अणु को छोटे-छोटे कणो मे विभाजित किया जा सकता है जिन्हें *परमाणु* (*Atoms*) कहते हैं, परन्तु परमाणु अकेला नही रह सकता । किसी तत्व का अणु उस तत्व के परमाणुओ का बना होता है, उदाहरणार्थ ऑक्सीजन का अणु ऑक्सीजन के दो परमाणुओ का बना होता है (इसे O_2 लिखा जाता है) । किसी यौगिक का अणु उस यौगिक मे उपस्थित विभिन्न तत्वो के परमाणुओ का बना होता है, उदाहरणार्थ पानी का अणु हाइड्रोजन के दो परमाणुओ और ऑक्सीजन के एक परमाणु का बना होता है (इसे H_2O लिखा जाता है) । कार्बन डाइऑक्साइड का अणु कार्बन के एक परमाणु और ऑक्सीजन के दो परमाणुओ (CO_2) का बना होता है । ग्लूकोज़ का अणु, जो शक्कर का साधारण प्रकार है, कार्बन के छ परमाणुओ, हाइड्रोजन के बारह परमाणुओ एव ऑक्सीजन के छ परमाणुओ का बना होता है ($C_6H_{12}O_6$) । ये बहुत ही सरल रासायनिक यौगिको के उदाहरण हैं । अधिक जटिल यौगिको मे, जो मानव शरीर की रचना करते है, कई तत्व उपस्थित हो सकते है और ऐसे किसी भी एक तत्व के परमाणुओ की सख्या

सैकड़ो मे हो सकती है । हालाकि सभी अणु बहुत छोटे होते हैं लेकिन आकार एव जटिलता मे स्पष्टत भिन्न होते हैं।
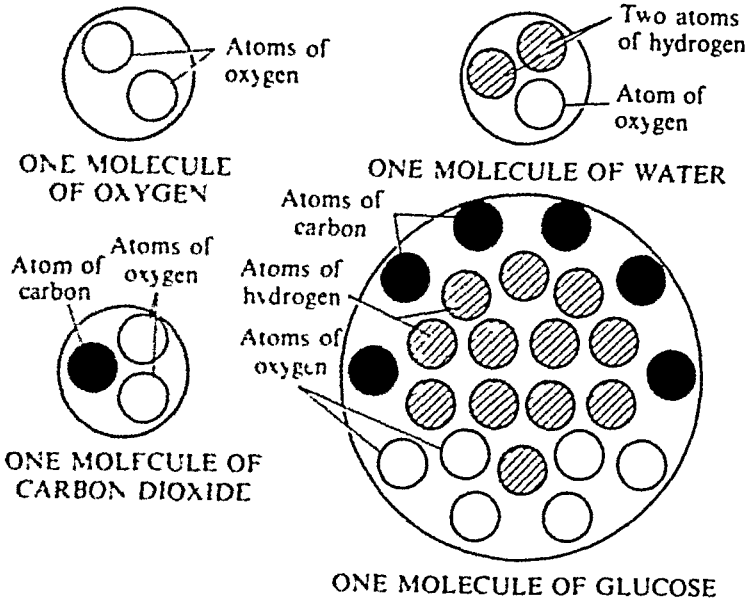
चित्र 2–ऑक्सीजन, पानी, कार्बन डाइऑक्साइड और ग्लूकोज के अणुओं को दर्शाने वाला रेखाचित्र।

परमाणु संख्या और परमाणु भार (Atomic number and Atomic weight) :

परमाणु शब्द का अर्थ है वह कण जो तोडा न जा सके और यह नाम तब दिया गया जब वैज्ञानिको का मत था कि परमाणु को विभाजित नही किया जा सकता । किन्तु अब परमाणु की रचना के बारे मे बहुत कुछ ज्ञात है और अधिकाश व्यक्ति 'परमाणु विस्फोट' और उससे प्राप्त ऊर्जा के बारे मे सुन चुके है । परमाणु बहुत ही छोटे-छोटे तीन प्रकार के कणो का बना होता है, (i) प्रोटॉन (*Proton*) जो धन (+) विद्युत आवेग युक्त होता है, (ii) इलेक्ट्रॉन (*Electron*) जो ऋण–विद्युत आवेग युक्त होता है तथा (iii) न्यूट्रॉन (*Neutron*) जिसमे विद्युत आवेग नही होता। प्रोटॉन्स और न्यूट्रॉन्स एक साथ मिलकर परमाणु का न्यूक्लिअस बनाते हैं, जबकि इलेक्ट्रॉन्स न्यूक्लिअस के आसपास एक या एक से अधिक परिधियो मे घूमते है । इन परिधियो को 'शेल्स' (Shells) कहते हैं। विभिन्न तत्वो के परमाणुओ मे प्रोटॉन्स और इलेक्ट्रॉन्स की सख्या भिन्न-भिन्न होती है तथा प्रोटॉन्स की सख्या इलेक्ट्रॉन्स के बराबर होती है । इस सख्या को परमाणु सख्या (*Atomic number*) कहते हैं । हाइड्रोजन के न्यूक्लिअस मे एक प्रोटॉन रहता है और एक इलेक्ट्रॉन इसके चारो ओर घूमता रहता है, अत इसकी परमाणु सख्या एक है । इसमे न्यूट्रॉन नही होता । कार्बन के न्यूक्लिअस मे छ प्रोटॉन्स और छ न्यूट्रॉन्स होते है और छ इलेक्ट्रॉन्स दो परिधियो मे इसके चारो ओर घूमते रहते है, इसलिये इसकी परमाणु सख्या भी छ होगी। सोडियम के न्यूक्लिअस

मे ग्यारह प्रोटॉन्स और बारह न्यूट्रॉन्स रहते है और तीन परिधियों मे ग्यारह इलेक्ट्रॉन्स आसपास घूमते है, अत इसकी परमाणु सख्या ग्यारह है। इन सख्याओं को याद रखना जरूरी नही है क्योंकि इनको तालिकाओं मे देखा जा सकता है। न्यूक्लिअस मे न्यूट्रॉन की उपस्थिति परमाणु सख्या को प्रभावित नही करती है।
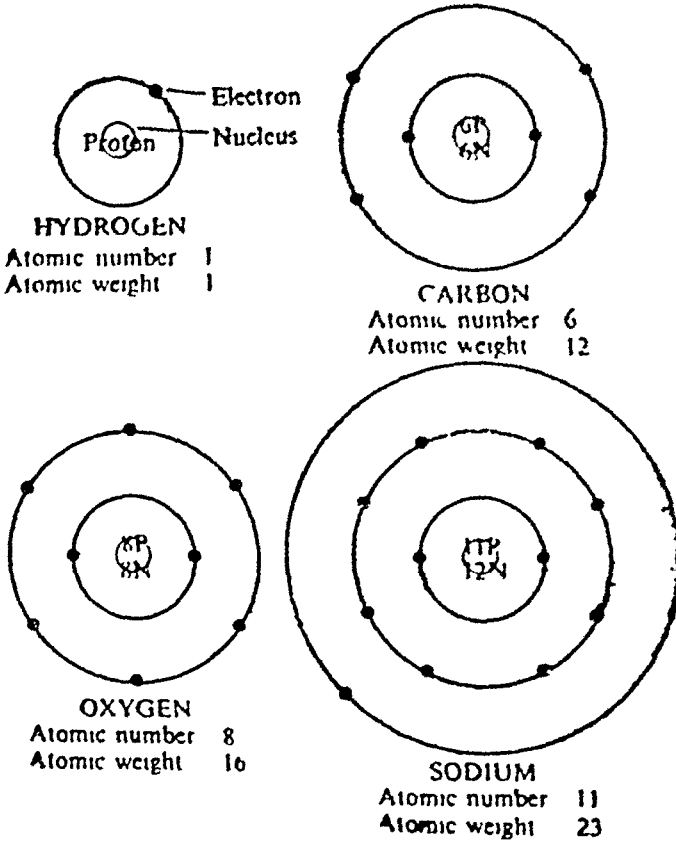
चित्र 3–हाइड्रोजन, कार्बन, ऑक्सीजन व सोडियम के परमाणुओं की रचनाओं के रेखाचित्र। P=प्रोटॉन, N=न्यूट्रॉन।

मोटे रूप से न्यूट्रॉन का भार प्रोटॉन के भार के बराबर होता है और न्यूट्रॉन्स की सख्या को प्रोटॉन्स की सख्या मे जोड़ने से *परमाणु भार* (*Atomic weight*) ज्ञात होता है। इलेक्ट्रॉन का भार इतना कम है कि इसका कोई महत्व नहीं है। हाइड्रोजन का परमाणु भार 1 है क्योंकि इसमे एक प्रोटॉन और एक इलेक्ट्रॉन रहता है लेकिन न्यूट्रॉन नही। कार्बन का परमाणु भार 12 है क्योंकि इसके न्यूक्लिअस मे छ प्रोटॉन्स और छ न्यूट्रॉन्स रहते हैं। सोडियम का परमाणु भार 23 है क्योंकि इसके न्यूक्लिअस मे 11 प्रोटॉन्स और 12 न्यूट्रॉन्स रहते हैं।

ऑयन्स एवं इलेक्ट्रोलाइट्स (Ions and Electrolytes).

परमाणु स्थिर नहीं रहते है क्योंकि एक परमाणु से इलेक्ट्रॉन्स अलग होकर दूसरे परमाणु मे चले जाते हैं। परमाणु निरतर रूप से इलेक्ट्रॉन्स को खोते एव पाते

रहते हैं। जब पदार्थ द्रव में घोल के रूप मे रहता है और पदार्थ के एक परमाणु ने इलेक्ट्रॉन अलग होता है, तब ऑयन बनता है। जो पदार्थ इस प्रकार विघटित होते हैं उन्हें इलेक्ट्रोलाइट्स कहते हैं क्योंकि ये मामूली विद्युतीय आवेग वहन करते हैं। इलेक्ट्रोलाइट्स शरीर-द्रवों मे मौजूद रहते हैं तथा जीवन के लिये आवश्यक होते हैं।

गैस दबाव (Gas pressure) :

पहले यह बताया गया था कि एक अणु दूसरे अणु से आपसी आकर्षण द्वारा जुड़ा रहता है। ठोस के अणु एक दूसरे से मजबूती से आकर्षित रहते हैं इसलिए ठोस का आकार या आकृति आसानी से परिवर्तित नहीं होती। द्रव (तरल) के अणु एक दूसरे से कम मजबूती से आकर्षित रहते हैं। इसलिये इनकी आकृति अधिक आसानी से परिवर्तित हो सकती है और द्रव या तरल पात्र की आकृति ग्रहण कर लेता है। गैस के अणु आपस मे बहुत ही कम रूप से आकर्षित रहते हैं अतः जब गैस खाली (शून्य Vacum) पात्र मे भरी जाती है तब अणु एक दूसरे से अलग होकर पूरे पात्र को भर देते हैं। यदि अधिक गैस प्रविष्ट की जाय तो अणु आपस मे घने रूप मे सट जाते हैं और ऐसा कहा जाता है कि गैस पर दबाव है। शरीर मे गैसों के उपयोग के लिये गैस दबाव महत्वपूर्ण है। जब तक फुफ्फुसों मे ऑक्सीजन पर्याप्त दबाव मे नहीं होती तब तक सम्पूर्ण शरीर मे संवहित होने के लिये यह स्थानान्तरित (आदान-प्रदान) नहीं हो सकेगी तथा शरीर के ऊतकों मे भी ऑक्सीजन कम मात्रा मे पहुँचेगी। ऊँचे पहाड़ों पर वायु का दबाव इतना कम होता है कि मनुष्य ऑक्सीजन की अतिरिक्त पूर्ति के बिना जिन्दा नहीं रह सकता, हालांकि वहाँ मोमबत्ती जरूर जलेगी, क्योंकि दबाव कम होने के बावजूद भी वायु पर्याप्त मात्रा मे रहती है। ऐसे कक्ष मे, जहाँ ऑक्सीजन की मात्रा कम है, मोमबत्ती नहीं जलेगी, हालांकि मनुष्य जीवित रह सकता है क्योंकि जो ऑक्सीजन मौजूद है उसका दबाव काफी है।

घोल एवं इमल्शॉन (Solutions and Emulsions)

जब शक्कर के ढेले को गरम पानी के कप मे रखा जाता है तो शक्कर घुल जाती है और कप मे शक्कर का घोल बन जाता है। जब शक्कर समान रूप से सम्पूर्ण द्रव मे घुल जाती है तब शक्कर के अणु पानी के अणु के साथ मिल जाते हैं। इस प्रक्रिया को विचालन (हिलाना) द्वारा बढ़ाया जा सकता है, लेकिन शक्कर का समान वितरण बिना किसी विचालन के भी होगा। द्रव की नापी हुई मात्रा मे अन्य पदार्थ की नापी हुई मात्रा ही घुलेगी और जब द्रव मे अधिकाधिक पदार्थ घुल जाता है तब इसे संतृप्त घोल (*Saturated Solution*) कहते हैं। द्रव मे ठोस, तरल एवं गैसें घुल सकती हैं। ऑक्सीजन पानी मे घुल जाती है, जो मछलियों को जिन्दा रखने मे सहायक होती है। द्रव को गरम करने से घुली हुई गैस निकल जाती है। जैसे ही द्रव गरम होता है,

घुली हुई गैस बुलबुलों के रूप में ऊपर उठती है। पानी बहुत ही सामान्य घोलक है और इसमें कई प्रकार के पदार्थ घुल सकते हैं, परन्तु कुछ पदार्थ जो पानी में नहीं घुल सकते, वे अन्य द्रवों में घुल जाते हैं। उदाहरण के लिये, पानी में तेल नहीं घुलेगा, लेकिन स्पिरिट में तेल घुल जायेगा। चूंकि पानी सामान्य घोलक है इसलिये शरीर में इसका महत्व बढ़ जाता है क्योंकि शरीर में दो-तिहाई मात्रा पानी की रहती है। इसमें से अधिकांश पानी कोशिकाओं में रहता है जो शरीर की रचना करती हैं; इसमें से कुछ पानी कोशिकाओं के आसपास रहता है, जो केवल लवण-घोल के रूप में रहता है जिसे सैलाइन कहते हैं। कुछ पानी परिसचरित रक्त एवं लिम्फ में रहता है।

तेल का इमल्शन घोल से भिन्न होता है। जब तेल को पानी के साथ मिलाया जाता है और विचालन बन्द किया जाता है तब तेल सतह पर आ जायेगा और पानी की ऊपरी सतह पर शुद्ध तेल की एक तह बन जायेगी। यदि तेल को सोडियम कार्बोनेट (धोने का सोडा) के घोल के साथ मिलाया जाता है तो इमल्शन बन जाता है। तेल छोटे-छोटे कणों में टूट जायेगा जो द्रव में बिखरे रहेंगे और पुन एक साथ नहीं मिलेंगे। जब इसे स्थिर रखा जाता है तब तेल ऊपरी सतह पर आ जायेगा, लेकिन वसा के कण अलग-अलग ही रहेंगे। दूध एक प्राकृतिक इमल्शन है और वसा के कण जो मलाई बनाते हैं, माइक्रोस्कोप द्वारा आसानी से देखे जा सकते हैं।

अम्ल एवं क्षार (Acids and Alkalis) :

रासायनिक क्रिया में पदार्थ अम्लीय क्षारीय या उदासीन (न तो अम्लीय और न ही क्षारीय) हो सकते हैं। पदार्थ की प्रक्रिया ज्ञात करने के लिये उपयोग किये जाने वाला साधारण पदार्थ *लिटमस* है जिसे द्रव के रूप में प्राप्त किया जा सकता है, परन्तु इसे *लिटमस पेपर* के रूप में उपयोग करना सुविधाजनक होता है। जब नीले लिटमस पेपर को अम्ल में डुबोया जाता है तो यह गुलाबी हो जायेगा। गुलाबी लिटमस पेपर को जब क्षार में डुबोया जाता है तो यह नीला हो जायेगा। उदासीन पदार्थ गुलाबी एवं नीले दोनों ही प्रकार के लिटमस पेपर को बैंगनी रंग में बदल देते हैं। प्रत्येक जीवित कोशिका को यदि जीवित रहना है तो उनमें सही अवस्था होना जरूरी है। रक्त एवं शरीर के ऊतक मामूली क्षारीय होते हैं और उनकी यह स्थिति जीवन भर करीब-करीब नहीं बदलती। यदि शरीर में बहुत अधिक अम्ल या बहुत अधिक क्षार उपस्थित है तो बीमारी पैदा हो जायेगी और यदि रक्त या शरीर के ऊतकों की प्रतिक्रिया में परिवर्तन हो जाता है तो मृत्यु हो जायेगी। कुछ पदार्थों की अम्लता या क्षारता की श्रेणी ज्ञात करना जरूरी होता है और इसकी जांच के लिये सामान्य सूचक उपयोग किया जाता है। यह चमकीले लाल रंग द्वारा तेज अम्ल सूचित करता है और बैंगनी रंग से तेज क्षार सूचित करता है। इन परिवर्तनों को परीक्षण किये जाने वाले पदार्थ का pH कहते हैं और pH का मापदण्ड तेज अम्ल के लिये pH 1 से लेकर तेज क्षार के लिये pH 14 तक होता है। उदासीन पदार्थ का pH 7 होता है और रक्त का pH 7·4 है।

शुद्ध पानी प्रतिक्रिया मे उदासीन होता है और जैसा कि पहले बताया जा चुका है यह हाइड्रोजन के दो परमाणुओ और ऑक्सीजन के एक परमाणु का बना होता है। कुछ अणु छोटे-छोटे कणो मे विभाजित हो जाते हैं, उदाहरणार्थ हाइड्रोजन आयन्स (H आयन्स) या हाइड्रॉक्सिल आयन्स (OH आयन्स)। H आयन्स में धन विद्युत आवेग रहता है क्योकि H परमाणु से इलेक्ट्रॉन चला जाता है तथा OH आयन्स मे ऋण विद्युत आवेग रहता है क्योकि यहाँ इलेक्ट्रॉन आ जाता है। शुद्ध पानी से H आयन्स और OH आयन्स समान सख्या मे रहते हैं और पानी की प्रतिक्रिया उदासीन रहती है। कुछ घोलो मे H आयन्म OH आयन्स से अधिक हो सकते हैं और घोल की प्रनिक्रिया अम्लीय होगी। यदि OH आयन्स H आयन्स से अधिक हैं तो प्रतिक्रिया क्षारीय होगी। pH हाइड्रोजन आयन्स की सान्द्रता दर्शाता है (ऑयन कन्सन्ट्रेशॅन) तेज अम्ल उदाहरणार्थ हाईड्रोक्लोरिक अम्ल मे H आयन कन्सन्ट्रेशॅन अधिक रहता है और तेज क्षार, उदाहरणार्थ कॉस्टिक सोडा मे हाइड्रॉक्सिल आयन्स (OH आयन्स) की सान्द्रता अधिक रहती है। उन पदार्थों को, जो इन रासायनिक परिवर्तनो को धीमा कर देते है, *प्रनिरोधक पदार्थ (Buffer Substances)* कहते है। शरीर-द्रव जैसे क्षारीय घोल मे विद्यमान प्रतिरोधक पदार्थ अम्लो या क्षारो की अधिकता जो वाहरी पदार्थ के अन्दर आने मे बढ जाती है या अन्दर निर्मित हो जाती है को समाप्त कर देते हैं। प्रतिरोधक पदार्थो के उदाहरण सोडियम पोटेशियम एव प्रोटीन हैं जो शरीर मे अम्लीय पदार्थो के प्रनिरोधक का कार्य करते है। कार्वोनिक एसिड, लैक्टिक एसिड एवं फैटीएमिड्स दूसरे प्रकार के प्रतिरोधक हैं जो किसी भी क्षारीय अधिकता के लिए प्रतिरोधक का कार्य करते है।

खनिज लवण (Mineral salts):

खनिज लवण वह पदार्थ है जो खनिज पर अम्ल की क्रिया द्वारा वनता है। खनिज को लवण का क्षारक (Base) कहते है और वैज्ञानिक नाम यह दर्शाता है कि क्षारक एव अम्ल एक साथ मिलकर लवण वनाते हैं, उदाहरणार्थ सोडियम क्लोराइड, सोडियम पर हाइड्रोक्लोरिक एसिड की क्रिया द्वारा वनता है। लवण प्रतिक्रिया मे अम्लीय, क्षारीय या उदासीन हो सकता है। तेज अम्ल तेज क्षार पर प्रतिक्रिया करके उदासीन लवण वनाता है, हलका अम्ल तेज क्षार पर प्रतिक्रिया करके क्षारीय लवण वनाता है। तेज अम्ल हलके क्षार के साथ अम्लीय लवण बनाता है। शरीर मे उपस्थित विभिन्न लवणो की प्रनिक्रिया मे सिर्फ मामूली अतर ही होता है।

मिलि-इक्विवॅलॅन्ट्स (Milli-Equivalents):

प्रत्येक लवण की मात्रा, जैसे कि सोडियम, पोटैशियम एव मेग्नेशियम लवण, मिलिग्राम्स प्रति लिटर मे नापी जा सकती हे, लेकिन सामान्यतया इसे *मिलि-इक्विवॅलॅन्ट्स* प्रति लिटर मे नापा जाता है। इस शब्द का प्रयोग हाइड्रोजन के एक परमाणु की सयोजक शक्ति (जो कि 1 है) की तुलना मे किसी पदार्थ के एक

परमाणु की संयोजक शक्ति को दर्शाने के लिये किया जाता है। किसी भी एक तत्व का परमाणु अन्य तत्वों के परमाणुओं से सिर्फ एक निश्चित अनुपात में ही जुड़ेगा। कल्पना कीजिये कि हर परमाणु में कुछ तन्तु हैं। सोडियम, पोटैशियम, हाइड्रोजन एवं क्लोरीन प्रत्येक में एक तन्तु होता है, ऑक्सीजन में दो और कार्बन में चार तन्तु होते हैं। जब कोई यौगिक बनने के लिये तत्व जुड़ते हैं तब प्रत्येक तन्तु का दूसरे तन्तु से बंधना आवश्यक होता है। यदि हाइड्रोजन ऑक्सीजन के साथ मिलती है तो ऑक्सीजन के एक परमाणु के लिये हाइड्रोजन के दो परमाणुओं की आवश्यकता होगी—यह H_2O बना देगी, जो कि पानी है। कार्बन का एक परमाणु ऑक्सीजन के दो परमाणुओं के साथ मिलकर कार्बन डाइऑक्साइड (CO_2) बनाता है। परमाणु की इस संयोजक शक्ति को संयोजकता (*Valency*) कहते हैं। परमाणु की तुलना टीमों के रूप में भी की जा सकती है, जहाँ दो टीमों में मनुष्यों की संख्या बराबर होना जरूरी है, चाहे प्रत्येक मनुष्य का वजन अलग-अलग क्यों न हो।

पदार्थ की मिलि-इक्विवेलेन्ट संख्या ज्ञात करने के लिये मिलिग्राम प्रति लिटर की संख्या को तत्व के परमाणु भार से विभाजित किया जाता है और संयोजकता से गुणा किया जाता है। इसे निम्न सूत्र के रूप में लिखा जाता है—

$$\frac{\text{मि ग्रा / लिटर}}{\text{परमाणु भार}} \times \text{संयोजकता}$$

100 मि लि रक्त में 330 मि ग्रा सोडियम उपस्थित हो सकते हैं।

मिलिग्राम की संख्या	330
1 लिटर में मिलिलिटर्स	1000
सोडियम का परमाणु भार	23
सोडियम की संयोजकता	1

$$\frac{330 \times 10}{23} \times \text{संयोजकता} = \frac{3300}{23} = 143 \text{ mEq/Litre}$$

विसरण (प्रसार) (Diffusion)

यदि विभिन्न संरचना की दो गैसें सम्पर्क में आती हैं तो जब तक दोनों की संरचना समान नहीं हो जाती तब तक गैसों का मिलान होता है। उदाहरणार्थ, जो वायु हम श्वास के साथ अन्दर लेते हैं उसकी अपेक्षा जो वायु हम श्वास के साथ बाहर निकालते हैं उसमें कार्बन डाइऑक्साइड अधिक व ऑक्सीजन कम रहती है, लेकिन श्वास के साथ बाहर निकली हुई वायु कमरे में हवा के अलग भाग के रूप में नहीं रहती है। थोड़ी देर में पूरे कमरे की वायु में ऑक्सीजन कम और कार्बन डाइऑक्साइड अधिक होगी। इस प्रक्रिया को *विसरण या प्रसार* कहते हैं। विसरण शब्द का प्रयोग अर्द्धपारगम्य झिल्ली (Semi-permeable membrane) से अम्लों और लवणों के छोटे-छोटे अणुओं के निकलने का वर्णन करने के लिये भी किया जाता है।

झिल्ली को पारगम्य तब ही कह सकते हैं जब यह घोल मे उपस्थित पदार्थों को निकलने दे, झिल्ली को अपारगम्य (Impermeable) तब कहते है जब इसमे से द्रव नही निकल सकता और अर्द्ध-पारगम्य झिल्ली तब कहते हैं जब घोल के छोटे-छोटे अणु और पानी निकल सकें लेकिन बडे-बडे अणु नही। यदि अर्द्ध-पारगम्य झिल्ली द्वारा लवण के गाढे घोल को पतले घोल से अलग किया जाता है तो लवण के अणु झिल्ली द्वारा गाढे घोल से पतले घोल मे तब तक जायेंगे जब तक दोनो घोलो की शक्ति समान नही होती।
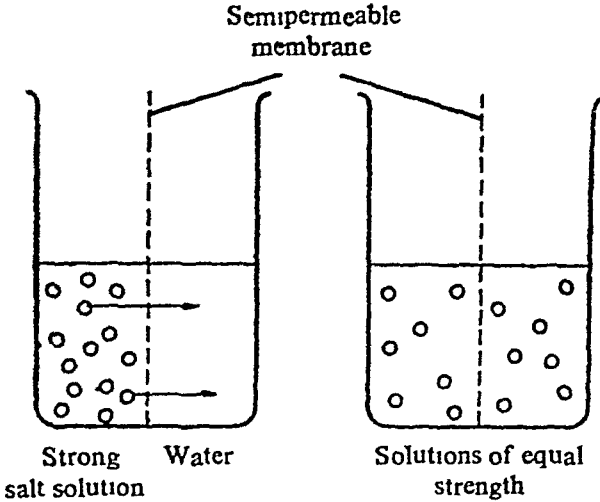
चित्र 4—तरलों का विसरण दर्शाते हुए रेखाचित्र।

परिसरण (रसाकर्षण) (Osmosis)

यदि बडे अणुओं वाले पदार्थ, उदाहरणार्थ शक्कर का गाढा घोल बनाकर अर्द्ध-पारगम्य झिल्ली द्वारा पतले घोल से पृथक् किया जाता है तो झिल्ली के द्वारा पतले
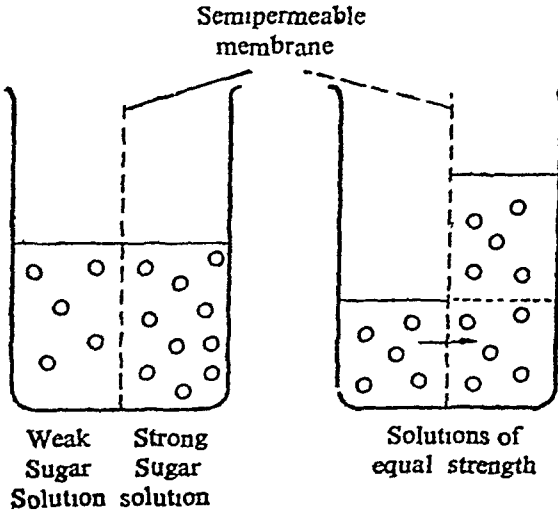
चित्र 5—परिसरण दर्शाते हुए रेखाचित्र।

घोल से गाढे घोल की तरफ सिर्फ पानी ही जायेगा, क्योंकि अणु इतने अधिक बडे होते है कि ये निकल नही सकते। अर्द्ध-पारगम्य झिल्ली द्वारा पानी के इस निकास को परिकरण या रसाकर्षण (*Osmosis*) कहते है।

विशिष्ट गुरुत्व (आपेक्षिक घनत्व) (Specific gravity) :

तरल के ज्ञात आयतन के भार को शुद्ध पानी के समान आयतन के भार से विभाजित करने पर विशिष्ट गुरुत्व ज्ञात होता है।

$$\text{विशिष्ट गुरुत्व} = \frac{\text{पदार्थ का भार}}{\text{पानी के समान आयतन का भार}}$$

शुद्ध पानी का विशिष्ट गुरुत्व 1 000 है। मूत्र का विशिष्ट गुरुत्व 1 010 और 1 020 के बीच तथा रक्त का करीब 1 055 रहता है।

कार्बनिक एव अकार्बनिक पदार्थ (Organic and Inorganic matter) :

कार्बनिक पदार्थ उसे कहते है जो जीवित है या जीवित रह चुका है, जैसे लकडी या कोयला। अकार्बनिक पदार्थ उसे कहते है जो न तो जीवित है और न ही कभी जीवित रहा है, जैसे पानी या लोहा। जीवो द्वारा अकार्बनिक पदार्थो को कार्बनिक यौगिको के रूप मे बनाया जा सकता है।

2. जीवित पदार्थ की विशेषताएं
Characteristics of Living Matter

पिछले कुछ वर्षों मे वैज्ञानिक जीवन को क्रिया-कलापो को समझने मे बहुत कुछ सफल हुए हैं। इस नये ज्ञान से सभी जीवित पदार्थों की आधारभूत एकता ज्ञात हुई है। उदाहरणार्थ पत्तागोभी के मूलभूत अणु और क्रियाएँ मनुष्य के समान ही होती हैं। अत अव 'जीवन क्या है' जैसे प्रश्नो का जवाब देना सभव हो गया है। दर्जनो रसायनो के एक साथ मिलने से सब तरह का जीवन बना है। रसायनो का कार्य सभी जीवो मे समान ही होता है। सभी जीवो मे एक दूसरी एकता भी होती है। सभी जीव छोटी-छोटी इकाइयो के बने होते हैं जिन्हें 'कोशिकाएँ' कहा जाता है। कुछ जीवाणु जैसे बेक्टीरिआ, एक कोशिका के बने होते हैं। अन्य, जैसे मनुष्य, करोडो कोशिकाओ का बना होता है। ये कोशिकाएँ एक साथ काम कर पूर्ण मानव बनाती है।

जीवित पदार्थ की विशेषताएँ (Characteristics of Living Matter)

सभी जीवित कोशिकाओ मे, चाहे वे कितनी ही सरल क्यो न हो, कुछ विशेषताएँ हमेशा ही उपस्थित रहती है। ये विशेषताएँ हैं

1. सक्रियता।
2. श्वसन।
3. आहार का पाचन एव शोषण।
4. उत्सर्जन।
5. वृद्धि एव मरम्मत।
6. प्रजनन।
7. उत्तेजनशीलता।

सक्रियता (Activity) :

जीवित पदार्थ की यह अत्यधिक महत्वपूर्ण विशेषता है। वनस्पति जगत् की अपेक्षा प्राणी जगत् मे यह अधिक स्पष्ट रहती है, क्योकि आहार प्राप्त करने के लिये प्राणियो को चलना-फिरना जरूरी होता है, लेकिन बसन्त ऋतु के दौरान पौधो मे भी कलिया खिलती हुई दीख सकती हैं तथा माइक्रोस्कोप की सहायता से यह क्रियाशीलता पौधो मे भी प्राणियो के समान स्पष्ट दिखाई देती है । विना उर्जा के कोई भी क्रिया कभी नही हो सकती। कारें पेट्रोल से उत्पन्न उर्जा द्वारा चलती है, रेलें सामान्यतया बिद्युत-उर्जा द्वारा चलती हैं तथा जीवित पदार्थ मे भी ईंधन के दहन द्वारा उर्जा प्राप्त होती है। मानव शरीर के लिये ईंधन खाया हुआ आहार है, विशेष रूप से कार्बोहाइड्रेट्स एव वसा। ईंधन के दहन के लिये ऑक्सीजन भी आवश्यक होती है तथा जीवित पदार्थ यह ऑक्सीजन वायु या पानी (जिसमे वे रहते हैं) से

प्राप्त करते है। ईंधन के दहन से व्यर्थ पदार्थ भी बनते है। जैसे कार्बन डाइ-ऑक्साइड एव पानी, जिन्हे बाहर निकालना जरूरी है।

जीवित पदार्थ मे ईंधन के दहन से कुछ उर्जा कार्य के लिये और कुछ उर्जा उष्मा के रूप मे निर्मित होती है। शरीर मितव्ययी है, क्योंकि वह लिये गये आहार की प्रत्येक यूनिट से कार्य के लिये उर्जा ज्यादा और उष्मा कम पैदा करता है। दहन द्वारा निर्मित उष्मा भी व्यर्थ नही जाती क्योंकि कुछ उष्मा की आवश्यकता रहती ही है। शरीर सिर्फ तापक्रम की निश्चित रेंज 36° से 37.5° C (97° से 99.5° F) मे ही स्वस्थ रह सकता है, इसलिये यदि जीवित रहना है तो उसमे अधिक पैदा हुई उष्मा से छुटकारा पाना जरूरी है।

श्वसन (Respiration) .

सभी जीवित पदार्थों को ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है तथा वे कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकालते है। आहार के दहन या ऑक्सीकरण के लिये ऑक्सीजन की जरूरत रहती है और कार्बन डाइऑक्साइड दहन का व्यर्थ पदार्थ है। ऑक्सीजन ग्रहण करने और कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकालने की प्रक्रिया को 'श्वसन' कहते है और यह जीवन भर चलती है। ऑक्सीजन ग्रहण करने और कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकालने की मात्रा किये हुए कार्य पर निर्भर करती है। नीद के दौरान मानव शरीर को कम ऑक्सीजन की आवश्यकता रहती है लेकिन फुटबॉल खेलने या पहाड पर चढने जैसे परिश्रम युक्त कार्य के दौरान अधिक आवश्यकता होगी।

आहार का पाचन एव शोषण (Digestion and absorption of food) .

सभी जीवो को आहार की आवश्यकता होती है। कुछ आहार सीधे ही शोषित हो जाता है, लेकिन अधिकाश आहार के शोपण के लिए उसे छोटे-छोटे एव सरल अणुओ मे विभाजित करना जरूरी रहता है। जटिल भोज्य-पदार्थो को सरल पदार्थो मे विभाजित करने की प्रक्रिया को 'पाचन' कहते है। यह एन्जाइम्स द्वारा होती है, जो स्वय प्रोटीन पदार्थ है और भोज्य-पदार्थों को शोषण ग्राह्य बनाने के लिये उन पर क्रिया करते है।

उत्सर्जन (Excretion) .

सभी जीवित पदार्थ व्यर्थ पदार्थों का निर्माण करते है जिनका आगे और उपयोग नही होता है तथा इनसे छुटकारा पाना जरूरी है। यदि इन्हे जमा होने दिया जाय तो ये व्यर्थ पदार्थ जीवन की प्रक्रियाओ मे बाधा पैदा कर देगे। मानव शरीर से ये व्यर्थ पदार्थ फुफ्फुसो से कार्बन डाइऑक्साइड के रूप मे, त्वचा से पसीने के रूप मे एव गुर्दा से मूत्र के रूप मे निकलते हैं।

वृद्धि एवं सुधार (Growth and repair) :

ग्रहण किये गये आहार के द्वारा जीवित पदार्थ स्वय के समान नया जीवित पदार्थ बना सकता है। प्रोटीन भोज्य-पदार्थ है—माँस, पनीर, एव दूध। ये शरीर के निर्माण के लिए कच्चा माल देते हैं। चूंकि शरीर निरन्तर क्रियाशील रहता है इसलिये इसके भागो की निरन्तर टूट फूट होती रहती है और नये जीवित पदार्थ बनाकर इसका

सुधार किया जाता है। बाल्यावस्था मे वृद्धि एव सुधार साथ-साथ होते रहते हैं। वृद्धावस्था मे टूट-फूट की अपेक्षा निर्माण कम होता है इसलिये कमजोरी होने लगती है और अतत मृत्यु भी हो जाती है, हालाकि कोई वीमारी यह कार्य पहले ही कर देती है। जीवित पदार्थो के इन गुणो के कारण कि वे वृद्धि करते हैं, वे टूट-फूट मे सुधार करते हैं और वे प्रजनन करते है, उनको मनुष्य निर्मित निर्जीव पदार्थों से अलग श्रेणी मे रखा जाता है।

प्रजनन (Reproduction) :

सभी जीवित पदार्थ स्वय जैसा दूसरा पदार्थ पैदा कर सकते है। साधारण जीवो मे प्रजनन वहुत ही सरल प्रक्रिया है, जिसमे पैतृक (मुख्य) कोशिका का दो भागो मे विभाजन होता है। प्राणियो मे, मादा कोशिकाओ को अण्डाणु कहते है जो डिम्बग्रन्थियो (Ovaries) मे वनते हैं, नर कोशिकाएँ जिन्हे शुक्राणु कहते हैं वृषण (Testes) मे वनते हैं। प्रजनन होने के पूर्व शुक्राणु द्वारा अण्डाणु का निषेचन होना जरूरी है।

उत्तेजनशीलता (Irritability) :

सभी जीवित पदार्थ किसी उत्तेजन से प्रभावित होते है और प्रतिक्रिया दर्शाते हैं। उच्च प्राणियो मे इसका अर्थ वातावरण को समझने की और उसके अनुसार परिवर्तन करने की शक्ति है। उत्तेजनशीलता प्राणियो मे अधिक स्पष्ट रहती है। लेकिन यह पौधो मे भी देखी जा सकती है। यदि प्याज को जमीन मे उलटा लगा दिया जाय तो भी उसकी जडें जमीन मे गहराई तक तथा पत्तियाँ जमीन के ऊपर वढेंगी या यदि पौधे को किसी अधेरे कोने मे रख दिया जाय तो वह लम्वा एव पतला होगा क्योकि उसे सूर्य के प्रकाश की तलाश है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पौधे भी वातावरण से प्रभावित होते हैं। प्राणियो मे उत्तेजनशीलता को खतरे को समझने के रूप मे, भोजन एव पानी जैसी उपयोगी वस्तुओ को पहचानने मे तथा मुक्त इच्छानुसार काम करने के रूप मे देखा जा सकता है।

जव फिजिऑलॉजिस्ट जीवन की क्रियाविधियो के वारे मे चर्चा करते हैं तव उनका मतलब इन्ही सव क्रियाओ से होता है। जीवित पदार्थ वह है जिसमे उपरोक्त सभी विशेषताएँ होती हैं और ये सभी विशेषताएँ रासायनिक परिवर्तनो के फलस्वरूप होती हैं। सभी जीवित पदार्थों मे प्रोटीन पदार्थ पैदा करने की क्षमता रहती है जिन्हें एन्जाइम्स कहते हैं। ये एन्जाइम्स कोशिका मे रासायनिक परिवर्तन करते हैं। एन्जाइम्स पदार्थों को एक दूसरे से जोड देते हैं या उन्हें विभाजित कर देते हैं, हालाकि वे स्वय प्रतिक्रिया मे भाग नही लेते हैं। उदाहरणार्थ, पाचन के दौरान जटिल स्टार्च पानी के साथ मिलकर सरल शक्कर मे विभाजित हो जाता है, दहन के दौरान शक्कर कार्वन डाइऑक्साइड और पानी मे विभाजित हो जाती है। ये सभी परिवर्तन एन्जाइम्स द्वारा होते हैं।

3. जीवित पदार्थ की संरचना
The Structure of Living Matter

कोशिका जीवित पदार्थ की इकाई और जीवों के निर्माण का मूलभूत आधार है, सभी कोशिकाएँ उनकी अलग-अलग उत्पत्ति के बावजूद बहुत कुछ समान होती हैं।

कोशिका की रचना (Structure of a Cell)

सभी कोशिकाएँ एक पदार्थ की बनी होती हैं जिसे *प्रोटोप्लाज्म (Protoplasm)* कहते हैं। प्रोटोप्लाज्म जेली के समान गाढ़ा अपारदर्शक एवं रंगहीन होता है, तथा इसमें अनेक पदार्थ पानी में घुले हुए मौजूद होते हैं। ये अनेक पदार्थ हैं—(*i*) कार्बनिक एवं अकार्बनिक लवण, (*ii*) ग्लूकोज एवं (*iii*) नाइट्रोजन युक्त पदार्थ।
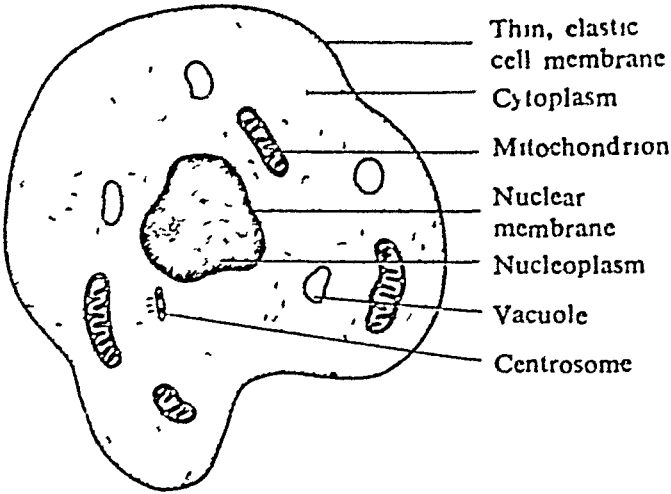
चित्र 6—कोशिका का रेखाचित्र।

साइटोप्लाज्म (Cytoplasm) शब्द सामान्यतया प्रोटोप्लाज्म के लिये प्रयोग किया जाता है जो कोशिका का मुख्य भाग है। 'साइटो' (Cyto) उपसर्ग का अर्थ कोशिका है। यह ग्रीक शब्द है। साइटोप्लाज्म निरंतर नष्ट होता है, विखंडित होता है तथा ताजा प्रोटोप्लाज्म उसका स्थान लेता है। प्रोटोप्लाज्म कोशिका द्वारा लिये गये आहार से बनता है। साइटोप्लाज्म में प्रोटीन्स के अणु रहते हैं जिन्हें राइबो-न्यूक्लिअक एसिड्स (RNA) कहते हैं जो संदेशवाहक का कार्य करते हैं, अर्थात् न्यूक्लिअस से साइटोप्लाज्म तक संदेश ले जाते हैं।

कोशिका की झिल्ली (Cell membrane) साइटोप्लाज्म को घेरे रहती है तथा यह अर्द्ध-पारगम्य होती है। इस झिल्ली में छोटे-छोटे 'छिद्र' होते हैं जो छोटे-छोटे अणुओं को

कोशिका के अन्दर तथा कोशिका से वाहर जाने देते हैं। यह झिल्ली पतली एवं लचीली होती है, और दाब से प्रभावित होती है अत कोशिका की आकृति बदल सकती है।

न्यूक्लिअस कोशिका मे स्थित घना भाग है जो *न्यूक्लिअर झिल्ली* के अन्दर रहता है। न्यूक्लिअर झिल्ली के अन्दर के प्रोटोप्लाज्म को *न्यूक्लिओप्लाज्म (Nucleoplasm)* कहते हैं। न्यूक्लिअस के विशिष्ट यौगिक डिऑक्सिराइवोन्यूक्लिअक एसिड्स (DNA) हैं जिनमे कोशिका के जीवन के लिये आवश्यक आनुवंशिक सूचनाए होती हैं। न्यूक्लिओप्लाज्म कोशिका की वृद्धि और कोशिका को दो सन्तति कोशिकाओ (Daughter cells) मे विभाजित होने के लिये आवश्यक सूचनाए जमा रखता है। यह सूचनाए *जीन्स* मे होती हैं जो आपस मे मिलकर *क्रोमोसोमृस* बनाती हैं। सामान्यतया क्रोमोसोमृस सिर्फ माइक्रोस्कोप द्वारा ही दिखाई देते है, वे भी उस समय जब कोशिका विभाजित होने के लिये तैयार रहती है। जीन्स DNA के बने होते हैं।

माइटोकॉन्ड्रिआ (Mitochondria) कोशिका के उर्जा सस्थान (पॉवर स्टेशन) हैं। ये कोशिका द्वारा लिए हुए आहार को उर्जा मे बदलने के लिये जिम्मेदार रहते हैं।

वैक्योल्स (Vacuoles) साइटोप्लाज्म मे रिक्त दिखाई देने वाले स्थान हैं। इनमे साइटोप्लाज्म द्वारा निर्मित व्यर्थ पदार्थ, या स्रावण रहते हैं।

सेन्ट्रोसोम् (Centrosome) न्यूक्लिअस के नज़दीक छोटी छड की आकृति की रचना है जो कोशिका के विभाजन मे महत्त्वपूर्ण हैं। यह धागो के समान चारो ओर निकली हुई रचना मे घिरी रहती है तथा इसमे दो सेन्ट्रिओल्स (Centroles) रहते हैं।

कोशिका प्रजनन (Cell Reproduction)

साधारण विभाजन या विखण्डन (Simple fission) :

न्यूक्लिअस प्रजन मे मुख्य रोल अदा करता है। *साधारण विभाजन* मे कोशिका का न्यूक्लिअस लम्वा हो जाता है और इसके वाद विभाजित होकर एक ही कोशिका
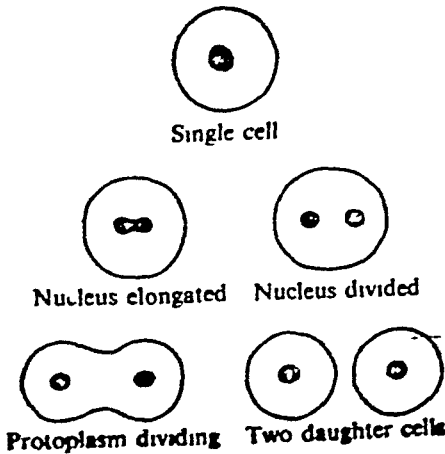
चित्र 7—साधारण विभाजन को दर्शाते हुए रेखाचित्र।

मे दो न्यूक्लिआइ बना देता है। तदुपरान्त न्यूक्लिआइ के बीच साइटोप्लाज्म विभाजित होकर दो सन्तति कोशिकाएँ बन जाती है जिनमे स्वय का न्यूक्लियस रहता है (चित्र 7)। ये छोटी कोशिकाएँ आहार लेकर बढती रहती है, और जब ये पूर्ण आकार की हो जाती हैं तब विभाजित होकर कुल चार कोशिकाएँ बना देती हैं।

समविभाजन या मिटोसिस (*Mitosis*).

जीवन के अधिक जटिल रूप मे (मानव शरीर की कोशिकाएँ इसके अन्तर्गत आती है) कोशिका का विभाजन अधिक जटिल प्रक्रिया है जिसे *समविभाजन या मिटोसिस* कहते हैं। इसमे सात अवस्थाएँ होती है (देखिये चित्र 8)।

1 सेन्ट्रोसोम दो भागो मे विभाजित होकर एक दूसरे मे दूर चले जाते है, हालाकि फिर भी ये धागे-जैसी रचनाओ मे जुडे रहते है। इस अवस्था को प्रोफेज (*पूर्वावस्था*) (*Prophase*) कहते है।

2 न्यूक्लिअर पदार्थ से गहरे रंग के धागे जैसी रचनाएँ बनती हैं जो क्रोमोसोम्स है। मानव कोशिका मे ये क्रोमोसोम्स 46 रहते है। यद्यपि अन्य जीवो मे इनकी सख्या भिन्न होती है।
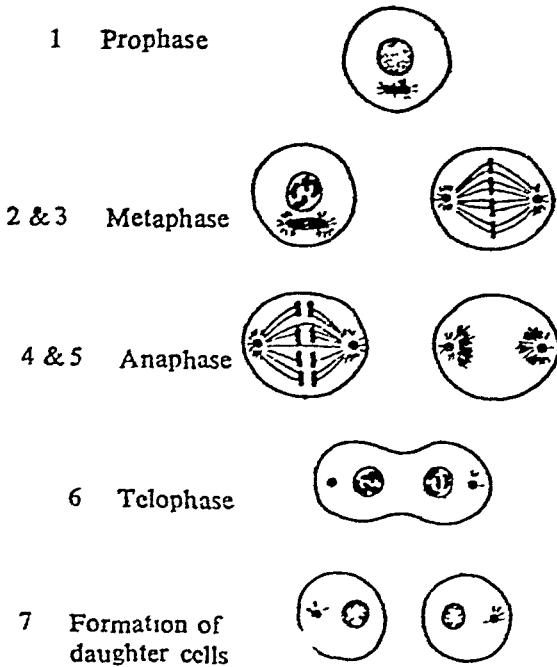
चित्र 8–मिटोसिस दर्शाते हुए रेखाचित्र।

3 न्यूक्लिअर झिल्ली नष्ट हो जाती है और क्रोमोसोम्स कोशिका के मध्य भाग के आस-पास जम जाते हैं। ये सेन्ट्रोसोम से धागे जैसी रचना से जुड़े हुए दिखते हैं। सेन्ट्रोसोम अब कोशिका के दोनो सिरो पर रहते हैं। इन दो परिवर्तनो को मेटाफेज (*मध्यावस्था*) (*Metaphase*) कहते है।

4 क्रोमोसोम्स पूरी लबाई मे दो बराबर भागो मे विभाजित हो जाते हैं।

5. क्रोमोसोम्स के ये दो समूह कोशिका के दोनो सिरो पर चले जाते है और सेन्ट्रोसोम के आसपास जम जाते हैं। सेन्ट्रोसोम से जुडी हुई धागे जैसी रचनाएँ अब विभाजित हो जाती है। इन दो परिवर्तनो को *एनाफेज (पश्चावस्था) (Anaphase)* कहते है।

6 कोशिका का मुख्य भाग मध्य मे सँकरा होता जाता है। धागे जैसी रचनाएँ समाप्त हो जाती है और दो न्यूक्लिअर झिल्लियाँ पुन बन जाती हैं। इस अवस्था को टेलोफेज (*अन्त्यावस्था*) (*Telophase*) कहते है।

7 कोशिका विभाजित हो जाती है और न्यूक्लिअस मे क्रोमोसोम्स समाप्त हो जाते हैं। इसके बाद दोनो सन्तति कोशिकाए बढेगी और मिटोसिस द्वारा पुन प्रजनन होगा।

अर्द्ध-सूत्रण या माइओसिस (Meiosis)

मानव सहित सभी उच्च प्राणियो मे प्रजनन पुरुष के शुक्राणुओ और महिला के अण्डाणु के जुडने पर निर्भर रहता है। इन प्रजनन कोशिकाओ को गैमीट्स (Gametes) भी कहते हैं। प्रत्येक गैमीट मे सामान्य कोशिकाओ के मान से आधे क्रोमोसोम्स प्राप्त होना आवश्यक है ताकि निषेचन के समय जब ये एक दूसरे से मिलते है तब क्रोमोसोम्स की सख्या सामान्य हो जाये। जैसे ही लिंग कोशिकाएँ परिपक्व होती है, कोशिका विभाजन की दो प्रक्रियाएँ आरम्भ होने लगती है, पहली प्रक्रिया मिटोसिस है जिसमे प्रत्येक सतति कोशिका को क्रोमोसोम्स का पूर्ण जोडा प्राप्त होता है। इसके बाद दो अवस्था वाला कोशिका विभाजन होता है जो प्रजनन ऊतक के अनुरूप होता है, इसे माइओसिस कहते है। पहला विभाजन मिटोसिस के समान होता है
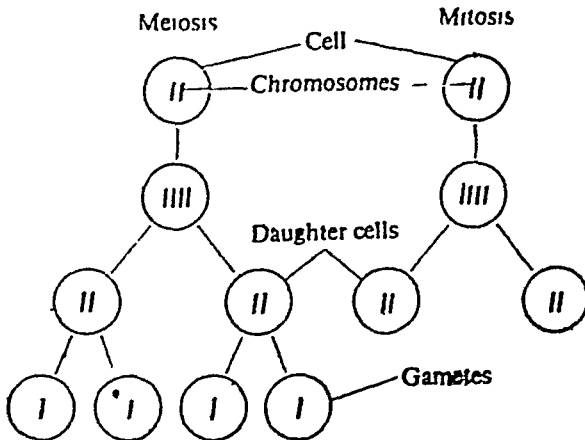
चित्र 9–माइओसिस एव मिटोसिस की तुलना दर्शाते हुए रेखाचित्र।

और इससे दो सतति कोशिकाएँ वनती हैं; प्रत्येक मे क्रोमोसोम्स की पूर्ण सख्या रहती है, दूसरा विभाजन पहले के शीघ्र वाद होता है और इसके फलस्वरूप चार गैमीट्स वनते हैं जिनमे प्रत्येक मे क्रोमोसोम्स की आधी सख्या रहती है। मानव की सामान्य कोशिका मे 46 क्रोमोसोम्स (23 के दो जोडे) रहते हैं जबकि प्रत्येक गैमीट मे 23 क्रोमोसोम्स का एक जोडा ही रहता है। गैमीट्स के जुटने के फलस्वरूप जो कोशिका वनती है उसे जाइगोट (Zygote) कहते हैं और इसमे 46 क्रोमोसोम्स होते हैं (23 के दो जोडे)। इस जाइगोट का कोशिका विभाजन मिटोसिस द्वारा होता है, परिणामस्वरूप वहुकोशिकीय जीव वनता है। इस वहुकोशिकीय जीव को भ्रूण (Embryo) कहते है।

क्रोमोसोम्स जीन्स की लडी या चैन के वने होते है और जीन्स मे ही पैतृक कोशिका की विशेषताएँ सचारित होने के कारण सतति कोशिकाएँ सदैव पैतृक कोशिकाओ के समान रहती हैं। इसलिए वालक की शारीरिक एव वौद्धिक विशेषताएँ माता-पिता से प्राप्त होती हैं, इन विशेषताओ मे वालो का रग, ऊँचाई, वुद्धिमता की मात्रा तथा और भी कई विशेषताएँ सम्मिलित हैं। जीन्स के किसी भी जोडे मे एक की अपेक्षा दूसरे का प्रभाव अधिक रहता है। अधिक प्रभाव वाले जीन को *प्रभावी (Dominant)* और कमजोर जीन को *अप्रभावी (Recessive)* कहते हैं। वशागत विशेषताएँ जीन्स की प्रभावकारिता पर निर्भर रहती हैं।

लिग निर्धारण (Sex determination)

माता एव पिता के क्रोमोसोम्स का एक-एक जोडा सेक्स क्रोमोसोम्स कहलाता है। वही शिशु का लिंग निर्धारित करता है। स्त्रियो मे सेक्स क्रोमोसोम्स समान रहते है तथा इन्हें XX कहा जाता है। पुरुषो मे ये भिन्न होते हैं तथा इन्हें XY कहा जाता है। प्रत्येक जोडे का एक क्रोमोसोम वालक के लिंग का निर्धारण करेगा। यदि शिशु को माता से X क्रोमोसोम और पिता से भी X क्रोमोसोम प्राप्त होता है तो लडकी (XX) पैदा होगी और यदि शिशु को माता से X क्रोमोसोम और पिता से Y क्रोमोसोम प्राप्त होता है तो लडका (XY) पैदा होगा।
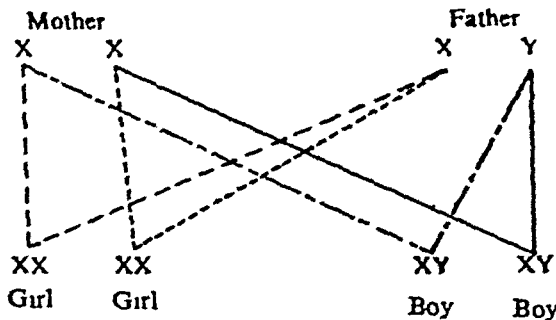
चित्र 10–लिंग निर्धारण दर्शाते हुए रेखाचित्र।

एककोशिकीय जीव (Unicellular Organisms)

ये ऐसे जीव हैं जिनमे एक ही कोशिका सम्पूर्ण जीव बनाती है, इसके उदाहरण बेक्टीरिआ एव अमीबा हैं। एक कोशिका ही जीवित पदार्थ के सभी कार्यो को करती है। अमीबा की हलचल कोशिका मे प्रोटोप्लाज्म के बहाव द्वारा होती है। जिस दिशा मे बढना है उस तरफ एक उभार निकलता है और इस उभार मे प्रोटाप्लाज्म धीरे-धीरे तब तक बहता रहता है जब तक कि सम्पूर्ण कोशिका नयी स्थिति मे नही आ जाती। इस उभार को *स्यूडोपोडिअम* (*Pseudopodium*) या 'अवास्तविक पाँव' कहते हैं, तथा इस प्रकार की गति को *अमीबॉइड गति* कहते है। मानव शरीर मे इस प्रकार की गति सफेद रक्ताणुओ द्वारा होती है।

चित्र 11–अमीबॉइड गति दर्शाते हुए रेखाचित्र।

एककोशिकीय जीवाणु भोजन ग्रहण करते हैं। दो स्यूडोपोडिआ उभरते हैं और भोज्य-पदार्थ को घेर लेते हैं। इसके बाद एन्जाइम्स निकलते हैं और धीरे-धीरे भोजन पचकर शोषित हो जाता है तथा बाद मे व्यर्थ पदार्थ की सिर्फ थोडी मात्रा वक्यूल
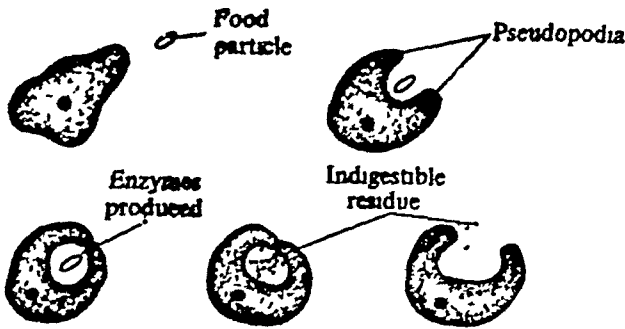
चित्र 12–भोजन के कणो का अन्तर्ग्रहण एव पाचन।

मे बच जाती है। इसके बाद साइटोप्लाज्म पीछे की ओर बहता है ताकि व्यर्थ पदार्थ पीछे ही रह जाये।

बहुकोशिकीय जीवाणु (Multicellular Organisms)

बहुकोशिकीय जीवाणु कई कोशिकाओ के बने होते हैं। प्रत्येक कोशिका जीवित

रहती है और उसे भोजन, ऑक्सीजन, पानी, उचित तापक्रम एव सही pH की आवश्यकता होती है, लेकिन जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति वह अन्य कोशिकाओं से करती हैं और वदले मे अपना विशिष्ट कार्य करती है। उदाहरणार्थ, फुप्फुसो की कोशिकाए ऑक्सीजन सोखती है और पाचन तत्र की कोशिकाए भोजन का शोषण करती है। प्रत्येक कोशिका एक विशिष्ट तरीके से विकसित होती है ताकि वह अपना कार्य सतोषजनक रूप से कर सके। इस विशिष्ट विकास को कोशिकाओ का *विभेदीकरण या विभिन्नता* कहते हैं। विशिष्ट कोशिकाओ के समूह किसी विशेष उद्देश्य के लिये विकसित होते हैं, और शरीर के *ऊतक* वनाते हैं, उदाहरणार्थ पेशीय ऊतक हलचल के लिये और अस्थियाँ सहारे के लिये होती है।

वह वहुकोशिकीय जीव जिसमे हमारी विशेषरूप मे रुचि है, मानव शरीर है जो लाखो कोशिकाओ की जटिल जमावट है, लेकिन फिर भी उसमे सभी जीवित पदार्थों की मलभूत विशेषताए पाई जाती है।

4. ऊतक
The Tissues

शरीर अनगिनत कोशिकाओ का वना होता है जो विकसित होकर विभिन्न प्रकार के ऊतक वनाती है। शरीर एक विशिष्ट कोशिका अण्डाणु (Ovum) से उत्पन्न होता है। यह कोशिका प्रोटोप्लाज्म की वनी होती है और इसमे न्यूक्लिअस रहता है। निषेचन के वाद यह कोशिका विभाजित होती है और कोशिकाओ की एक गेंद के समान रचना वना देती है, कोशिकाए विभिन्न अगो और भागो को वनाने के लिये आवश्यक सभी प्रकार के ऊतको मे विकसित होती है।

वहुत आरम्भिक अवस्थाओ मे कोशिकाओं की गेंद के समान रचना तीन परतो मे विभाजित होती हैं । वाह्य परत को *एक्टोडर्म (Ectoderm)* कहते है। यह त्वचा का वाह्य भाग वनाती है, इससे नाखून, वालो की जड़ें, पसीने की ग्रन्थिया तथा अन्य एपिथीलिअल ऊतक, जैसे नाक व मुँह का अस्तर वनाने वाली श्लेष्मिक झिल्ली और दाँतो को ढँकने वाला इनेमल भी विकसित होते हैं । स्नायविक तत्र भी एक्टोडर्म से ही उत्पन्न होता है। मध्य परत को *मेसोडर्म (Mesoderm)* कहते हैं, इससे पेशी, अस्थि एवं वसा तथा कुछ आतरिक अग, जैसे हृदीय-सवहनी तत्र विकसित होते हैं। आतरिक परत को *एन्टोडर्म (Entoderm)* कहते हैं, इससे आहार एव श्वसनी मार्ग के अधिकांश अस्तर (Lining) विकसित होते हैं ।

ऊतक कोशिकाओ और कोशिकाओ मे वने उन पदार्थो का वना होता है जो विशेष कार्य करने के लिये विकसित होते हैं। शरीर मे चार मुख्य प्रकार के ऊतक होते हैं।

एपिथीलिअॅल ऊतक या एपिथीलिअम
संयोजी ऊतक
पेशीय ऊतक
स्नायविक ऊतक

एपिथीलिअल ऊतक (Epithelial tissue)

एपिथीलिअल ऊतक शरीर की वाहरी और अन्दरूनी मुक्त सतहो को ढँकने के लिए अस्तर की झिल्लियाँ वनाता है, और इसी ऊतक मे शरीर की ग्रन्थियाँ विकसित होती हैं। एपिथीलिआ शरीर के अन्दरूनी ऊतको की टूट-फूट से सुरक्षा करते है, परन्तु आवश्यकतानुसार इनका नव-निर्माण जरूरी है। पदार्थो के शोषण के लिये कुछ कोशिकाएँ विशेष रूप मे विकसित होती है, अस्तर मोटाई मे सिर्फ एक कोशिका के

होते हैं और प्राय इन पर एक विशिष्ट सतह होती है जिसे 'ब्रश बॉर्डर' कहते हैं। कुछ एपिथीलिअल ऊतक, विशेष रूप से ग्रन्थीय ऊतक उनके अन्दर बनने वाले पदार्थों को स्रावित करते हैं। एपिथीलिआ मे रक्तवाहिकाएँ नही होती लेकिन ये सयोजी ऊतक मे रहती हैं, जो कुछ दूरी पर होते हैं। कोशिकाएँ 'आधारीय झिल्ली' (Basement membrane) पर स्थित होती हैं जो इनको आपस मे जोडने का काम करती है।

तालिका 1 : ऊतको का वर्गीकरण (CLASSIFICATION OF TISSUES)

- एपिथीलिअल ऊतक
  - ढँकने और अस्तर बनाने वाले
    - साधारण
      - पेवमेन्ट
      - क्यूबॉइडल
      - कॉलम्नर
    - स्ट्रेटिफाइड
    - ट्रान्ज़िशनल
  - ग्रन्थियाँ
    - बाह्यस्रावी
      - साधारण
        - नली-आकार
        - कुण्डली-आकार
        - थैलीनुमा
      - मिश्रित
        - नली-आकार
        - थैलीनुमा
    - अत स्रावी
- सयोजी ऊतक
  - विरल सयोजी ऊतक (एरिओलर)
  - वसीय (एडिपोज़)
  - घना सयोजी ऊतक (फाइब्रॅस)
  - कार्टिलेज (उपास्थि)
    - हाएलिन
    - फाइब्रो-कार्टिलेज
    - इलास्टिक कार्टिलेज
  - अस्थि
- पेशीय ऊतक
  - ऐच्छिक (स्ट्राइप्ड)
  - अनैच्छिक (प्लेन)
  - हृदीय (स्ट्रिएटेड, अनैच्छिक)
- स्नायविक ऊतक

ढँकने और अस्तर बनाने वाले एपियीलिआ (Covering and lining epithelia)

ढँकने वाले एपियीलिआ को कोशिकाओं की जमावट एव आकृति के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है।

साधारण एपिथीलिअम (Simple epithelium) कोशिकाओ की एक तह की बनी होती है। ये कोशिकाएँ आधारीय झिल्ली पर स्थित रहती हैं। यह एपिथीलिअम बहुत नाजुक होती है तथा ऐसे स्थानो पर पायी जाती है जहाँ बहुत कम टूट-फूट होती है।

1 *साधारण पेवमेन्ट एपिथीलिअम (Simple pavement epithelium)* चपटी कोशिकाओ की बनी होती है और एक चिकना अस्तर बनाती है। यह रक्त-वाहिकाओ के अन्तर मे पायी जा सकती है और पेरिटोनिअम भी बनाती है।

2. *माधारण क्यूबॉइडल एपिथीलिअम (Simple cuboidal epithelium)* मे घन के ममान कोशिकाएँ रहती-हैं और यह डिम्ब-ग्रन्थि की सतह मे पायी जाती है।

3 *माधारण कॉलमनर एपिथीलिअम (Simple columnar epithelium)* लम्बी कोशिकाओ की वनी होती है जो आधारीय झिल्ली पर जमी रहती है। यह एसे स्थानो पर पायी जाती है जहाँ टूट-फूट कुछ अधिक होती है, जैसे आमाशय एव आँतो के अस्तर। कार्यानुरूप परिवर्तन भी इसमे हो सकते है।

रोमयुक्त कॉलमनर एपिथीलिअम (Ciliated columnar epithelium) मे वहुत ही सूक्ष्म रोम (वाल) जैसे उभार रहते है जो कोशिका की मुक्त सतह से निकले रहते हैं। ये रोम जैसी रचनाएँ एक साथ मिलकर तरगो जैसी गति करती है जिसके कारण श्लेष्मा और अन्य कण आगे वढते रहते हैं। इस प्रकार का ऊतक श्वसन मार्ग मे पाया जाता है।

गॉब्लेट कोशिकाएँ (Goblet cells) श्लेष्मा का स्रावण करती हैं और साइटोप्लाज्म के फूलने तक श्लेष्मा कोशिका मे एकत्रित होता रहता है।
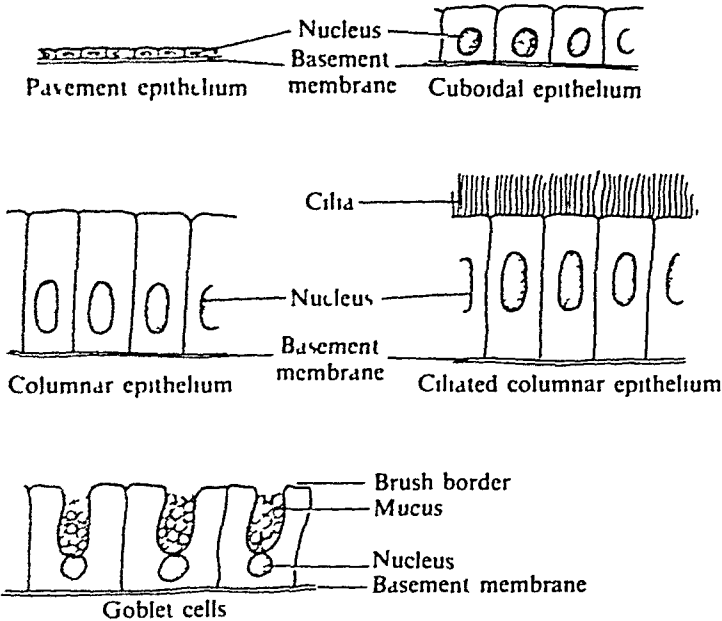
चित्र 13–माधारण एपिथीलिअम के प्रकारो को दर्शाने वाले रेखाचित्र।

व्रश के समान सतह (Brush border) विशेष रूप से शोषण करने वाली कोशिकाओ मे पायी जाती है। इसमे छोटे-छोटे ऊँगली के समान उभार रहते हैं जो शोषण के क्षेत्र को वढा देते हैं। ये छोटी आँतो मे पाये जाते हैं।

स्ट्रटिफाइड एपिथीलिअम (Stratified epithelium) कोशिकाओ की कई तहों की बनी होती है। सबसे नीचे वाली कोशिकाओ को *जर्मिनल परत (Germinal layer)* कहते हैं, जो आधारीय झिल्ली पर स्थित रहती है और कॉलमनर होती है। जैसे ही ये विभाजित होती है (और ऐसा वहुधा होता है), पैतृक कोशिकाएँ सतह के नजदीक ढकेली जाती हैं और चपटी हो जाती हैं। सतह की कोशिकाएँ घिसती रहती हैं और इनका स्थान नीचे की दूसरी कोशिकाएँ लेती रहती है। यदि एपिथीलिअम की सतह शुष्क है, जैसे कि त्वचा पर, तो सतह की कोशिकाएँ मृत हो जाती हैं क्योकि रक्त-पूर्ति आधारीय झिल्ली के नीचे रहती है। अव केरेटिन नामक स्केली (Scaly) सतह विकसित होती है, यह जलरोधक तह बना देती है। यदि सतह गीली है, जैसा कि मुंह मे, तो यह सतह जव तक घिसती नही है तव तक जीवित रहती है, इसलिये केरेटिन भी नही बनता है।
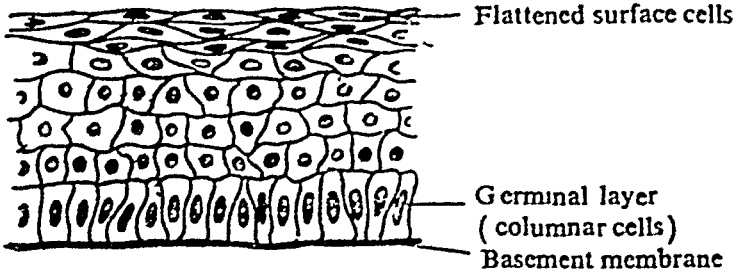
चित्र 14—स्ट्रेटिफाइड एपिथीलिअम को दर्शाता हुआ रेखाचित्र।

ट्रान्जिशनल एपिथीलिअम (Transitional epithelium) स्ट्रेटिफाइड एपिथीलिअम के समान होती है लेकिन सतह की कोशिकाएँ चपटी के वजाय गोल होती है और जव अग फैलता है तव ये फैल सकती हैं। यह ऐसे अगो मे पायी जाती है जो फैलते हैं और उनका जलरोधक होना जरूरी है, उदाहरणार्थ, मूत्राशय।

ग्रन्थियाँ (Glands) :

ग्रन्थियाँ एपिथीलिअल ऊतको से विकसित होती हैं और वे रक्त द्वारा लाये गये पदार्थो से कुछ विशिष्ट पदार्थों का निर्माण कर सकती हैं। इन विशिष्ट पदार्थों को ग्रन्थियो के स्रावण (Secretions) कहते हैं। उदाहरण के लिये, रक्त मे सोडियम क्लोराइड रहता है और आमाशयिक ग्रन्थियाँ इसमे हाइड्रोक्लोरिक अम्ल वना सकती हैं जो कि आमाशयिक रस मे पाया जाता है, हालाकि प्रयोगशाला मे सोडियम क्लोराइड मे हाइड्रोक्लोरिक अम्ल प्राप्त करना एक कठिन प्रक्रिया है। रक्त-वाहिकाएँ ग्रंथियो तक पहुँचकर कोशिकाओ को उनका स्रावण वनाने के लिये आवश्यक पदार्थ देती हैं। ग्रन्थियाँ दो प्रकार की होती ह वाह्यस्रावी एव अन्त स्रावी।

वाह्यस्रावी ग्रन्थियाँ (Exocrine glands) अपने स्रावण को वाहिका द्वारा पहुँचाती हैं। इनमे मे कई ग्रन्थियो के स्रावण मे *एन्जाइम* रहते है, जो ग्रन्थि की

कोशिकाओं द्वारा निर्मित रासायनिक पदार्थ हैं। जब ये एन्जाइम्स विशिष्ट पदार्थों के सम्पर्क मे आते है तब उनमे रासायनिक परिवर्तन पैदा करते हैं, लेकिन ये प्रतिक्रिया मे भाग नही लेते हैं।

(i) *साधारण ग्रन्थियों* मे एक वाहिका रहती है जो एक स्रावी इकाई (*Secretory unit*) से निकली रहती है।

साधारण नलीय ग्रन्थियां (Simple tubular glands) छोटी आँत की दीवारो और आमाशय मे पायी जाती हैं।

साधारण कुण्डलाकार ग्रन्थियां (Simple coiled glands) त्वचा की सतह पर पसीना पहुँचाती है।

साधारण थैलीनुमा ग्रन्थियां (Simple saccular glands) इन्हे सिबेशस ग्रन्थियां (तैल-ग्रन्थियां) भी कहते हैं, ये एक प्रकार का पदार्थ स्रावित करती हैं जिसे सीबम कहते है जो बालो व त्वचा को चिकना रखता है।
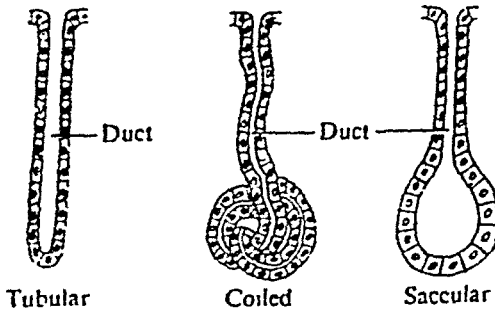
SIMPLE GLANDS
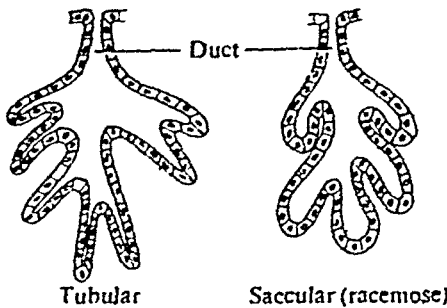
COMPOUND GLANDS

चित्र 15—बाह्यस्रावी ग्रन्थियों के प्रकार।

(ii) *मिश्रित ग्रन्थियों (Compound glands)* मे कई स्रावी इकाइयाँ रहती हैं जो अपना स्रावण कई छोटी-छोटी वाहिकाओ मे पहुँचाती हैं। ये छोटी वाहिकाएँ मिलकर एक बडी वाहिका बनाती हैं।

मिश्रित नलीय ग्रन्थिया (Compound tubular glands), ड्यूडीनम मे पायी जाती है।

मिश्रित थैलीनुमा ग्रन्थियाँ (Compound saccular glands) इन्हें रेसीमोज (*Racemose*) ग्रन्थियाँ भी कहते हैं और इसके उदाहरण हैं—मुँह मे लार ग्रन्थियाँ।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ (Endocrine glands) ये अपने आन्तरिक स्रावण सीधे रक्त प्रवाह मे पहुँचाती हैं। इन स्रावणों को हॉर्मोन्स कहते हैं। अन्तःस्रावी ग्रन्थियों के उदाहरण हैं—खोपडी मे स्थित पिट्यूटरी ग्रन्थि और गर्दन मे स्थित थाइरॉइड ग्रन्थि।

संयोजी ऊतक (Connective tissue)

संयोजी ऊतक वह ऊतक है जो अन्य सभी ऊतकों को सहारा देता है और एक साथ जोडता है। संयोजी ऊतक कई प्रकार और कई स्वरूप के होते हैं, यद्यपि सबके संयोजी कार्य मे समानता होती है। वास्तव मे ये सभी प्रिमिटिव कोशिकाओं से उत्पन्न होते हैं जिन्हें *मीजेनकाइम कोशिकाएँ* (*Mesenchyme cells*) कहते हैं। संयोजी ऊतक कोशिकाओं का, अन्तर्कोशिकीय पदार्थ का (जिसे *मेट्रिक्स* कहते हैं) और तन्तुओं का बना होता है। मेट्रिक्स और तन्तु, कोशिकाओं द्वारा निर्मित अजीवित पदार्थ हैं जो शरीर को आधार देने वाले पदार्थ बनाते हैं। ये तन्तु दो मुख्य प्रकार के होते हैं, कॉलॅजिनॅस एवं लचीले।

कॉलॅजिनस तन्तु (Collagenous fibres)—*फाइब्रोब्लास्ट्स* नामक कोशिकाओं से उत्पन्न होते हैं। ये एक प्रकार का पदार्थ स्रावित करते हैं। जो बाद में कालॅजेन बन जाता है। ये मोटे तन्तु समूहों मे और लहरदार आकृति मे होते हैं और बिना फटे थोडे मे ही तन सकते हैं।
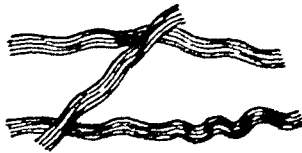
चित्र 16—कालॅजिनस तन्तु

लचीले तन्तु (Elastic fibres) पतले शाखायुक्त तन्तु है जो अत्यधिक लचीले होते हैं।

शरीर मे कभी-कभी मजबूत और बिना फैलने वाले संयोजन की आवश्यकता होती है और कभी-कभी लचीले संयोजन की। उदाहरण के लिये, अंगों के आसपास की तन्तुमय सतहों का कुछ लचीला होना जरूरी है ताकि जब अंग रक्त से अतिपूरित हो जाय तो तन सके, लेकिन पेशी को अस्थि से जोडने वाले तन्तुमय टेन्डन्स का लचीला न होना आवश्यक है, क्योंकि यदि टेन्डॅन लचीले होगे तो जब पेशी

सकुचित होगी तव टेन्डॅन फैल जायेगा और अस्थि नही हिलेगी। मयोजी ऊतक के पांच मुख्य प्रकार है.

चित्र 17–लचीले तन्तु।

विरल संयोजी ऊतक (Loose connective tissue)

इस प्रकार के ऊतक को *एरिओलर ऊतक* भी कहते है। यह ऊतक कॉलॅजिनस एव लचीले तन्तुओ के विरल जाल के अलावा वसीय कोशिकाओ के विखरे हुए समूहो और कुछ फाइब्रोब्लास्ट्स का वना होता है। ऊतक मे कुछ रक्तवाहिकाएँ और स्नायु पाये जाते हैं लेकिन इनकी सख्या वहुत अधिक नही होती। एरिओलर ऊतक टिशू पेपर के समान पतली पारदर्शक झिल्ली वनाते है, लेकिन यह वहुत मजवूत होती है और शरीर के अगो के वीच तथा आसपास पायी जाती है।
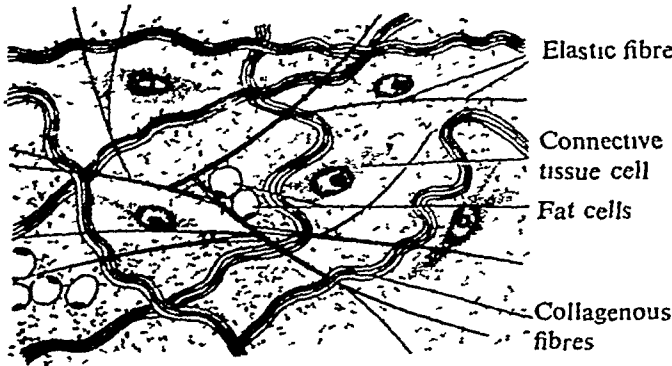
चित्र 18–विरल मयोजी ऊतक।

वसीय ऊतक (Fatty tissue) :

इसे *एडिपोज* ऊतक भी कहते हैं। यह एरिओलर ऊतक के समान होता है लेकिन तन्तु जाल के वीच के स्थान वसीय कोशिकाओ द्वारा भरे रहते है। वसीय कोशिकाओ मे वसा के ग्लॉब्यूल्स रहते हैं जो साइटोप्लाज्म और न्यूक्लिअस को कोशिका के किनारे की तरफ ढकेल देते हैं। एडिपोज ऊतक वहुत उपयोगी होता है क्योकि इसमे आहार जमा रहता है जिसे शरीर आवश्यकता के वक्त प्राप्त कर सकता है। यह ऊतक शरीर की उष्मा को रोक रखने मे सहायता करता है क्योकि यह उष्मा

-का अच्छा सचालक नही है। यह नाजुक अगों की सुरक्षा भी करता है, जैसे आँख एव गुर्दे की।
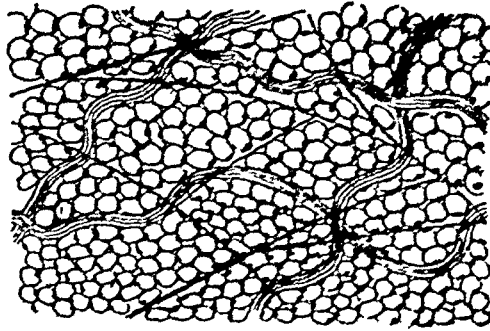
चित्र 19–वसीय या एडिपोज ऊतक।

घना संयोजी ऊतक (Dense connective tissue) :

इस ऊतक को तन्तुमय ऊतक (*fibrous tissue*) भी कहते है और यह मुख्य रूप से कॉलॅजिनस तन्तुओ के समूहों का बना होता है जिनके बीच फाइब्रोब्लास्ट्स होते हैं। विरल सयोजी ऊतक की अपेक्षा यह बहुत मजबूत होता है। इसके तन्तु समानान्तर समूहो मे जमे हुए हो सकते हैं, जैसे कि टेन्डॅस या लिगॅमेन्ट्स मे, या इसके तन्तु असमान रूप से स्थित अर्थात् विभिन्न दिशाओ मे फैले हुए भी हो सकते हैं, जैसे कि पेशियो को ढँकने वाले आवरण मे, जिसे फेशिया (*Fascia*) कहते हैं।
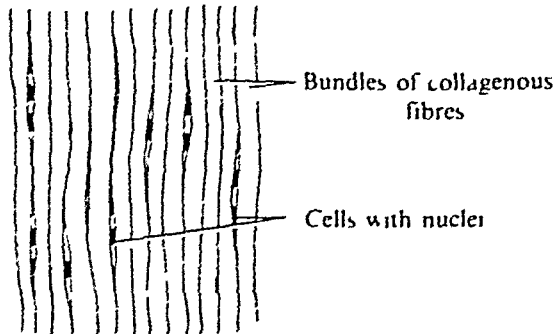
चित्र 20–घने सयोजी (तन्तुमय) ऊतक का रेखाचित्र।

उपास्थि (Certilage) :

उपास्थि या कार्टिलेज कॉन्ड्रोसाइट्स (*Chondrocytes*) नामक कोशिकाओं की बनी होती है। ये कोशिकाएँ तन्तुओं के द्वारा पृथक रहती हैं। उपास्थि मे रक्त-वाहिकाएँ नही होती, इसलिये कोशिकाएँ अपना पोषण अन्तर्कोशिकीय पदार्थ से विसरण द्वारा प्राप्त करती हैं। उपास्थि बहुत मजबूत रहती है लेकिन साथ ही बहुत लचीली भी। उपास्थि तीन प्रकार की होती है।

(*i*) *हाएलिन उपास्थि* (*Hyaline cartilage*) कॉन्ड्रोसाइट्स की बनी होती है जो रचनारहित दिखाई देने वाले मेट्रिक्स मे स्थित होते है। यह देखने मे काच जैसी होती है और इसमे बहुत ही पतले कॉलॅजेन तन्तु फैले रहते है। यह श्वास नाल में पायी जाती है तथा जोड के स्थान पर अस्थियो के सिरो को ढके रखती है।

(*ii*) *तन्तुमय उपास्थि* (*Fibro-cartilage*) मे हाइलिन उपास्थि की अपेक्षा कॉलॅजेन तन्तु अधिक रहते हैं, इसलिये यह उससे अधिक मजबूत रहती है। यह कम गतिशील जोड बनाने वाली अस्थियो के बीच पायी जाती है, उदाहरणार्थ वर्टिब्री के बीच।

(*iii*) *लचीली उपास्थि* (*Elastic cartilage*) मे कई लचीले तन्तु रहते है जो मेट्रिक्स मे स्थित होते है। यह उपास्थि कान के ऑरिकल और एपिग्लॉटिस मे पायी जाती है।
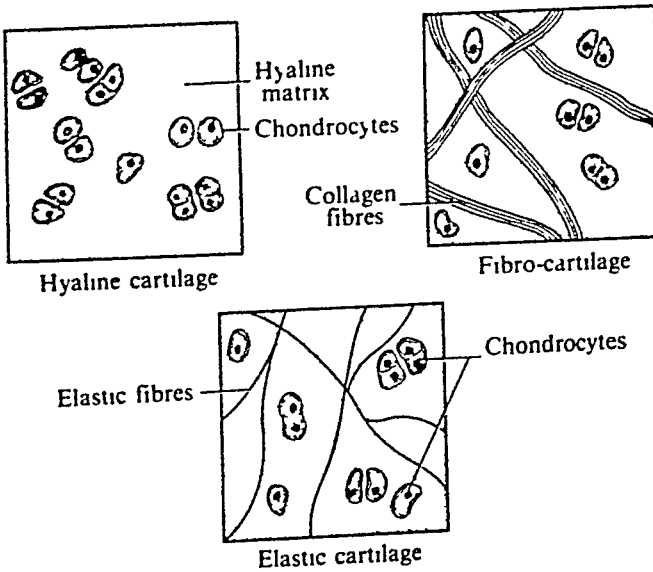
चित्र 21–उपास्थि के प्रकार।

अस्थि (Bone) :

अस्थि उपास्थि का वह विशिष्ट प्रकार है जिसमे कॉलॅजेन खनिज लवणो, मुख्यत· कैल्सियम से, व्याप्त रहता है। कॉलॅजेन तन्तु अस्थि को मजबूत बनाते हैं, और खनिज लवण इसको सख्त बनाते है। इसलिये अस्थि नरम-ऊतको को उचित सहारा देती है। तन्तुओ के बीच की कोशिकाओ को *ऑस्टिओसाइट्स* कहते हैं। अस्थि मे काफी रक्तवाहिकाएँ होती है। अस्थि की रचना का विस्तृत वर्णन अध्याय 6 मे किया जायेगा।

रक्त-उत्पादक ऊतक (Haemopoietic tissue) रक्त कोशिकाओं के निर्माण मे सबधित होता है। यह प्रिमिटिव मीज़ेनकाइम कोशिकाओं से उत्पन्न होता है। रक्त को ऐसा संयोजी ऊतक माना जा सकता है जिसमे प्लाज्मा मैट्रिक्स बनाता है और जिसमे कोशिकाए बिखरी होती है। इसका विस्तृत वर्णन अध्याय 12 मे किया जायेगा।

पेशीय ऊतक (Muscular tissue)

पेशीय ऊतक सकुचन के लिये होता है, और इसलिये यह गति पैदा करता है। शरीर मे जहाँ कही हलचल होती है वहाँ पेशीय ऊतक का होना जरूरी है। पेशीय कोशिकाएँ लम्बी और पतली होती हैं ताकि सकुचन के दौरान काफी छोटी हो सकें। पेशीय कोशिकाओं को उनकी आकृति के कारण बहुधा पेशीय तन्तु कहते हैं। संयोजी ऊतक के लचीले तन्तु तानने के बाद छोड़ने पर अपनी पूर्व लम्बाई प्राप्त कर लेते हैं लेकिन पेशीय तन्तु इस आरम्भिक तनाव के बिना ही छोटे हो जाते है। पेशीय ऊतक तीन प्रकार के होते है, ऐच्छिक, अनैच्छिक, हृदीय।

ऐच्छिक या स्ट्राइप्ड पेशी (Voluntary or striped muscle) :

ऐच्छिक पेशियाँ हाथ-पैर और धड का मांसल बनाती है। इनके द्वारा अल्पकाल मे हलचल होती है। यह पेशी लम्बी कोशिकाओं की बनी होती है। कोशिकाओं की लम्बाई छोटी पेशियो मे कुछ मिलिमीटर्स तो लम्बी पेशियो मे 30 से मी या उससे अधिक होती है। प्रत्येक कोशिका मे धागे के समान कई तन्तु रहते हैं जिन्हें *मायोफाइब्रिल्स* कहते है। इनकी चौडाई 0 01 से 0 1 मि मी तक होती है। इन मायोफाइब्रिल्स पर हलके और गहरे रग की पट्टियाँ दिखाई देती है। इन पट्टियो का क्रम गहरी के बाद हलकी और हलकी के बाद गहरी इस प्रकार होता है। प्रत्येक फाइब्रिल (तन्तु) सयोजी ऊतक के आवरण मे ढँका रहता है जिसे *सार्कोलिमा (Sacrolemma)* कहते है। ये फाइब्रिल्स सयोजी ऊतक द्वारा गट्ठो मे बँधे रहते हैं, प्रत्येक गट्ठा एक आवरण से ढँका रहता है और यह आवरण *एन्डोमाइसिअम (Endomysium)* कहलाता है। ये गट्ठे या बण्डल्स एक साथ मिलकर और एक आवरण मे ढँके रहते है। जिसे *पेरिमाइसिअम (Perimysium)* कहते है, और ये भिन्न-भिन्न पेशियाँ बनाते है। इनके ऊपर भी तन्तुमय ऊतक का आवरण रहता है जिसे *एपिमाइसिअम (Epimysium)* कहते हैं। न्यूक्लिअस हर कोशिका के किनारे पर रहता है। स्ट्राइप्ड पेशी इच्छा के नियन्त्रण मे रहती है, इसलिये इसे ऐच्छिक पेशी कहते है। जब उसे स्नायु ततु द्वारा उत्तेजित किया जाता है तब यह जोर से सकुचित होती है, लेकिन उतनी ही शीघ्रता से थक भी जाती है। तेज सकुचन के लिये अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है, इसलिये कोशिकाओ तक ऑक्सीजन एव पोषण लाने के लिये और पदार्थों को बाहर ले जाने हेतु ऐच्छिक

पेशियो मे अधिक रक्त पहुँचाना जरूरी होता है। पर्याप्त रक्तपूर्ति वनाये रखने के लिये अलग-अलग पेशीय कोशिकाओ के वीच कोशिकाएँ फैली रहती हैं।
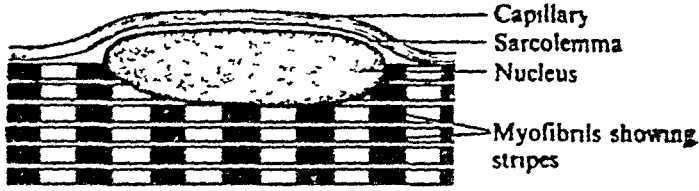
PART OF A MUSCLE CELL
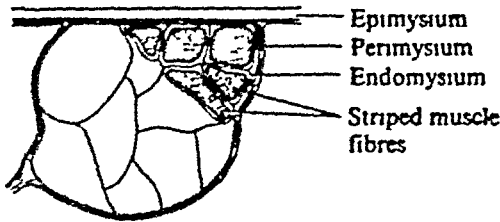
PART OF A VOLUNTARY MUSCLE

चित्र 22–ऐच्छिक (स्ट्राइप्ड) पेशी के काट का रेखाचित्र।

अनैच्छिक या अनस्ट्राइप्ड पेशी (Involuntary or unstriped muscle) :

अनैच्छिक पेशी आन्तरिक अगो की दीवारें वनाती है, जैसे आमाशय, आँते, मूत्राशय, गर्भाशय एव रक्त वाहिकाएँ। यह पेशी दोनो सिरो पर नुकीली, तली कोशिकाओ (Spindle shaped) की वनी होती है । प्रत्येक कोशिका मे न्यूक्लिअस होता है। इस पेशी को अनस्ट्राइप्ड पेशी भी कहते है। कोशिकाओ मे न तो कोई धारियाँ (स्ट्राइप्स) दिखती है और न ही वाहरी आवरण (Sheath) होता है, लेकिन विभिन्न अगो की दीवारें वनाने के लिये ये कोशिकाएँ सयोजी ऊतक द्वारा एक साथ वँधी रहती है । ये इच्छा के नियन्त्रण मे नही रहती हैं और विना किसी
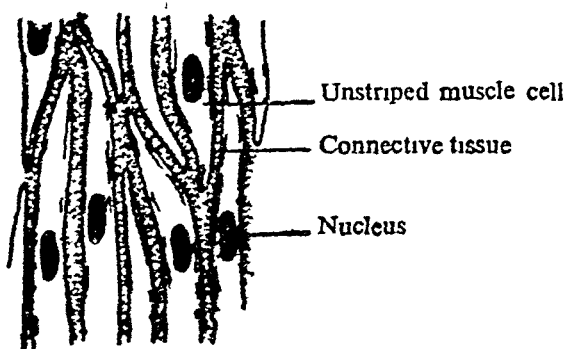
चित्र 23–अनैच्छिक (अनस्ट्राइप्ड) पेशी के काट।

सचेत प्रयत्न या ज्ञान के कार्य करती है। ये स्वत संकुचित होती है, लेकिन ऑटोनॉमिक स्नायु इन तक पहुँचते है और इनके संकुचनो को प्रभावित करते है। इस प्रकार की पेशी धीमे मगर लम्बे समय तक के संकुचन के लिये होती है और ये आसानी से नही थकती है।

हृदीय पेशी (Cardiac muscle)

हृदीय पेशी अनैच्छिक एव अनियमित रूप मे स्ट्राइप्ड रहती है। यह सिर्फ हृदय की दीवार मे पायी जाती है और अन्य पेशीय ऊतक मे यह भिन्न होती है। यह छोटे, बेलनाकार शाखामय तन्तुओ की बनी होती है जिनके मध्य मे न्यूक्लिआई रहते है। इन पर कोई आवरण नही होता है लेकिन ये संयोजी ऊतक द्वारा एक साथ बधे रहते है। हृदीय पेशी इच्छा के नियत्रण मे नही रहती है, परन्तु सम्पूर्ण जीवन के दौरान एक लय से नियमित रूप से स्वत संकुचित होती रहती है। इन एक लय सकुचनो की दर स्नायुओ द्वारा नियंत्रित रहती है और इस क्रिया को कम या ज्यादा कर सकती है। तन्तुओ की शाखाएँ दूसरे तन्तुओ मे जुडी होती हैं ताकि एक तन्तु से दूसरे तक और साथ ही तन्तु की पूरी लम्बाई मे आवेगो का प्रसार हो सके।
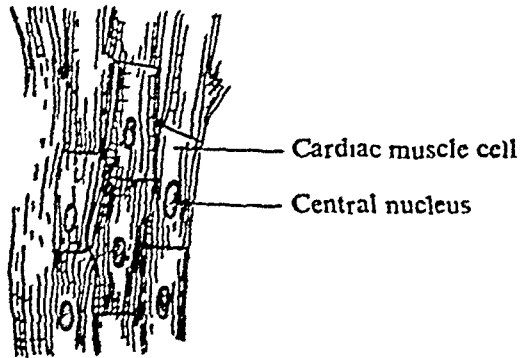
चित्र 24—हृदीय पेशी के काट का रेखाचित्र।

स्नायविक ऊतक (Nervous tissue)

स्नायविक ऊतक विशेष रूप से शरीर के बाहर और अन्दर मे संवेदनो को ग्रहण करने के लिये बना है, उत्तेजित होने पर यह ऊतक अन्य ऊतको तक आवेगो को शीघ्रता से ले जाता है। स्नायु ऊतक न्यूरॉन्स नामक स्नायु कोशिकाओ और न्यूरोग्लिया (*Neuroglia*) नामक सहारा देने वाले जाल का बना होता है। स्नायु कोशिका का एक भाग है बडा कोशिका शरीर (Cell body), जिसमे से कई छोटे-छोटे उभार निकले रहते है, जिन्हे डेन्ड्राइट्स (*Dendrites*) कहते हैं और जो अन्य कोशिकाओ और ऊतको से आवेग लाते है। कोशिका के शरीर से एक लम्बी रचना निकली रहती है जो एक्सॉन कहलाती है। यह कोशिका शरीर से आवेग ले जाती है।
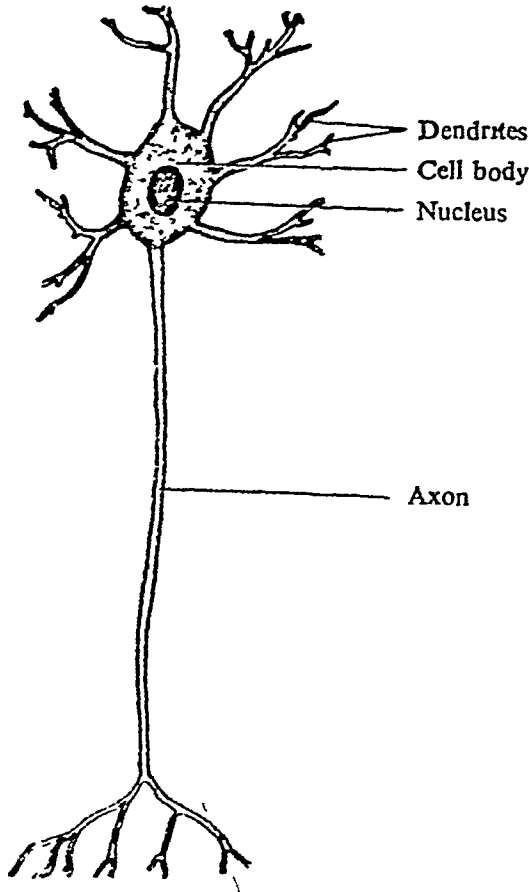
चित्र 25—न्यूरॉन का रेखाचित्र।

झिल्लियाँ (Membranes)

शरीर की गुहिकाओ और खोखले अगो मे झिल्लियो का अस्तर रहता है। ये झिल्लियाँ एपिथीलिअम की बनी होती है और अपनी चिकनी, चमकदार सतहो को गीला रखने के लिये तथा घर्षण को रोकने के लिये द्रव स्रावित करती हैं। शरीर मे तीन विभिन्न प्रकार की झिल्लियाँ पायी जाती है।

साइनोविअल झिल्ली (Synovial membrane) : एक गाढा द्रव स्रावित करती है जो सरचना मे अडे की सफेदी की समान गाढा होता है। अडे की सफेदी जैसे द्रव के कारण ही यह नाम दिया गया है। उपसर्ग 'साइन' (Syn) का अर्थ होता है 'समान' (ग्रीक मे) और 'ओवम' का अर्थ है 'अण्डा' (लेटिन मे)। एक अस्थि के ऊपर दूसरी अस्थि की गति को आसान बनाने के लिये यह मुख्यतया जोडो की गुहिकाओ के अस्तर के रूप मे पायी जाती है। यह तन्तुमय झिल्ली है जो एपिथीलिअम से ढँकी रहती है। यह अस्थि के उभारो पर और अस्थिबंधनो (लिगॅमेन्ट्स) तथा अस्थियो के बीच या टेन्डॅन्स और अस्थियो के बीच भी पायी

जाती है। इन स्थानो पर यह छोटी-छोटी थैलियाँ बनाती हैं जिन्हे बर्सी (*Bursae*) कहते हैं और जो पानी की थैली के समान कार्य करके एक भाग पर दूसरे भाग की हलचल को आसान बनाती है। उदाहरणार्थ कधे, घुटने और कोहनी के जोडो के आसपास बर्सी रहती है। साइनोविअल झिल्ली काफी लबे टेन्डन्स के आवरणो मे भी पायी जाती है। उदाहरणार्थ, अग्र-भुजा और पैरो की पेशियो के टेन्डॅन्स क्रमश हाथ और पाँवो तक जाते है तथा हाथ एव पाँव की ऊँगलियो को चलाते है।

श्लेष्मिक झिल्ली (Mucous membrane) : थोडा पतला द्रव स्रावित करती है जिसे श्लेष्मा कहते है। यह झिल्ली आहार मार्ग (मुह से लेकर मलाशय तक) और वायु मार्ग (नाक से नीचे की ओर) के अस्तर के रूप मे पायी जाती है। इस प्रकार जिन गुहिकाओ का अस्तर यह बनाती है वे बाह्य त्वचा से सबधित रहती है। जहाँ अधिक स्रावण होता है वहाँ श्लेष्मा स्रावित करने वाली नलीय ग्रन्थियाँ भी पायी जाती हैं। ये ग्रन्थियाँ एक नली की या शाखामय नली की होती है और नलियो मे स्रावी कोशिकाओ का अस्तर रहता है।

सीरस झिल्ली (Serous membrane) : चपटी कोशिकाओ की बनी होती है जिसमे पनीले द्रव की थोडी मात्रा रिसती है, जिसे सीरस द्रव कहते है। यह द्रव रक्त के थक्के मे रिसने वाले द्रव के समान होता है। सीरस झिल्ली आतरिक गुहिकाओ के अस्तर के रूप मे पायी जाती है, उदाहरणार्थ वक्ष-स्थल एव उदर तथा गुहिकाओ मे स्थित अगो के आवरण के रूप मे भी पायी जाती है जिससे इनकी सतहें चिकनी, चमकीली एव गीली रहती है। इनके कारण जब एक अग दूसरे के ऊपर फिसलता है या गुहिका मे हिलता है तब कोई कठिनाई नही होती।

5. शरीर के तंत्र एवं अंग
Systems and Parts of the Body

जैसा कि इसके पहले वाले अध्याय मे बताया जा चुका है कि मानव शरीर अत्यधिक रूप से विकसित बहुकोशिकीय जीव का एक उदाहरण है। यह करोडो कोशिकाओ का बना होता है जो विशिष्ट रूप से विकसित होकर ऊतक बनाती हैं और पूर्ण शरीर के लिये प्रत्येक ऊतक को अपना विशिष्ट कार्य करना होता है। ये ऊतक एक साथ समूहित होकर अग बनाते है। अग (Organ) कुछ निश्चित रूप एव प्रकार मे जमे हुए ऊतको का समूह है जो विशिष्ट कार्य करता है, उदाहरणार्थ आमाशय, हृदय, गुर्दे, प्लीहा आदि। विभिन्न अग एक साथ समूहित होकर तत्र बनाते हैं। तत्र (System) अगो का एक समूह है जो शरीर का एक मुख्य कार्य करता है, उदाहरणार्थ पाचन तत्र भोज्य-पदार्थ को साधारण पदार्थों मे परिवर्तित कर देता है ताकि ये शरीर द्वारा शोषित किये एव उपयोग मे लाये जा सकें, श्वमन तत्र ऑक्सीजन अन्दर ग्रहण करने और कार्बन डाइऑक्साइड रक्त से बाहर निकालने से सम्बन्धित रहता है।

शरीर के तत्र (The systems of the body)

निम्नलिखित तत्र एक साथ समूहित होकर मानव शरीर की रचना करते है।

अस्थि तत्र (The skeletal system) कोमल ऊतको को सहारा एव सुरक्षा प्रदान करने के लिये एक ढाँचा बनाता है और जोडो पर हलचल होने देता है।

पेशीय तत्र (The muscular system), सम्पूर्ण शरीर की हलचल से सम्बन्धित रहता है अस्थि एव पेशीय तत्र को एक साथ मिलाकर कभी-कभी गति तत्र (Locomotor system) भी कहते हैं।

रक्तपरिसचरण तत्र (The circulatory system), शरीर का परिवहन तत्र है, यह ऑक्सीजन और पोषण ऊतको तक ले जाता है तथा व्यर्थ-पदार्थ वहाँ से बाहर लाता है और ऊतको को एक दूसरे पर निर्भर रहने के लिये यह आवश्यक है।

श्वसन तत्र (The respiratory system), शरीर और वातावरण के बीच गैसो का आदान-प्रदान करता है।

पाचन तत्र (The digestive system), भोजन के पाचन और शोषण तथा व्यर्थ-पदार्थों के उत्सर्जन से सम्बन्धित रहता है।

अत स्रावी तत्र (The endocrine system), हॉर्मोन्स पैदा करता है जो शरीर के विभिन्न कार्यों पर नियत्रण रखते है।

मूत्रीय तंत्र (*The urinary system*), शरीर का मुख्य उत्सर्जन तंत्र है।

स्नायविक तंत्र (*The nervous system*), आसपास के वातावरण के प्रति सचेतनता पैदा करना है और किसी बाह्य परिवर्तन के प्रति शरीर को आवश्यक प्रतिक्रिया व्यक्त करने के योग्य बनाता है।

प्रजनन तंत्र (*The reproductive system*), उसी प्रकार के जीव पैदा कर प्रजाति के अस्तित्व को बनाये रखना है।

बाद के अध्यायों में इन विभिन्न तंत्रों का एक के बाद एक विस्तृत वर्णन किया जायेगा, लेकिन इन अध्यायों को उचित रूप में समझने के लिये आरंभ में ही सम्पूर्ण शरीर के तंत्रों पर एक सरसरी निगाह डालना उपयोगी होगा, ताकि शरीर के गठन की जटिलता और विभिन्न अंगों की एक दूसरे पर निर्भरता के बारे में जानकारी मिल सके।

अस्थि तंत्र, कई अस्थियों का बना होता है जो सख्त, आधार देने वाला गतिशील ढांचा बनाता है। हलचल सिर्फ जोड़ों या संधियों पर ही होती है जहां दो या दो से अधिक अस्थियाँ मिलती हैं, लेकिन अस्थिमय ढांचे में स्वयं में हलचल करने की कोई शक्ति नहीं रहती है।

पेशीय तंत्र, अनगिनत पेशियों का बना होता है जो अस्थियों से जुड़ी रहती हैं और उन्हें हिला सकती हैं। पेशियाँ शरीर का मांसल भाग बनाती हैं और सभी प्रकार की गति एवं हलचल अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलना-फिरना, वस्तुओं को जकड़ने, पकड़ने एवं उन तक पहुँचने के लिये तथा सिर, आँखों व मुँह को घुमाने के लिये या झुकने, बैठने तथा खड़े होने के लिये सहायक होता है। इसी कारण अस्थि, जोड़ एवं पेशीय तंत्र को मिलाकर गति-तंत्र भी कहते हैं।

रक्त परिसंचरण तंत्र, शरीर के प्रत्येक अंग का पोषण करता है। इसके अन्तर्गत रक्त, हृदय एवं रक्तवाहिकाएँ आती हैं। रक्त, एक अंग से दूसरे अंग तक आहार, ऑक्सीजन, व्यर्थ-पदार्थ एवं अन्य आवश्यक पदार्थ वहन करता है। हृदय, रक्त को पम्प करता है ताकि शरीर के सभी अंगों में रक्त पहुँच सके। रक्तवाहिकाओं के द्वारा रक्त परिसंचरित होता है। रक्तवाहिकाएँ दो प्रकार की होती हैं धमनियाँ (Arteries) जो हृदय से ऊतकों तक रक्त ले जाती हैं, और शिराएँ (Veins) जो ऊतकों से हृदय तक रक्त लाती है।

श्वसन तंत्र, वायुमार्गों का बना होता है। ये वायुमार्ग फुफ्फुसों तक जाते हैं। फुफ्फुसों में रक्त को शुद्ध ऑक्सीजन की पूर्ति होती है और उपस्थित अतिरिक्त कार्बन डाइऑक्साइड बाहर निकालती है।

पाचन तंत्र, मुख्य रूप से आहार-मार्ग है जिसमें अन्तर्ग्रहित भोज्य-पदार्थों पर पाचक रसों की क्रिया होती है, पचने योग्य पदार्थ साधारण पदार्थ में परिवर्तित होते हैं और शोषित हो जाते हैं। अपाच्य अवशेषी पदार्थ बाहर उत्सर्जित होते हैं।

अन्तःस्रावी ग्रंथियां विशिष्ट कोशिकाओ की बनी होती है। जो रक्त से कुछ पदार्थ ग्रहण करने मे सक्षम रहती है और इन पदार्थों से नये पदार्थ बनाती है जो शरीर के अन्य अगो के विभिन्न कार्यो पर नियत्रण रखते हैं। इन ग्रंथियो द्वारा जो पदार्थ बनते है उन्हे हॉर्मोन्स कहा जाता है और ये सीधे रक्त मे स्रावित होते हैं, जहाँ से ये सम्पूर्ण शरीर मे पहुँच जाते हे और अन्य अगो के कार्य को उत्तेजित करते हैं।

मूत्रीय तत्र, शरीर का मुख्य उत्सर्जन तत्र है। मूत्र गुर्दो मे वनता है और मूत्र-वाहिकाओ (Ureters) द्वारा मूत्राशय मे पहुँचता है, जहाँ यह तव तक सचित होता रहता है जव तक कि सुविधाजनक स्थान पर मूत्रत्याग नही कर लिया जाता है।

स्नायविक तत्र, मनुष्य को अपने आस-पास के वातावरण के प्रति सचेत वनाता है और उस वातावरण मे होने वाले परिवर्तनो के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करने मे सहायता करता है। यह मस्तिष्क स्पाइनल कॉर्ड (सुषुम्ना) और स्नायुओ (Nerves) का वना होता है, कुछ स्नायु ऊतको के सदेश मस्तिष्क तक ले जाते है और कुछ स्नायु मस्तिष्क के सदेश ऊतको तक ले जाते है। मस्तिष्क की ओर जाने वाले सदेश सवेदी (Sensory) स्नायुओ द्वारा पहुँचते है तथा मस्तिष्क अपने अनुभवो के आधार पर इन सदेशो का विश्लेषण करता है। मस्तिष्क मे वाहर की ओर जाने वाले सदेश प्रेरक (Motor) स्नायुओ द्वारा पहुँचते हैं, फलस्वरूप क्रिया एव हलचल होती है।

प्रजनन तत्र, लिंग कोशिकाएँ पैदा करना है, पुरुषो मे शुक्राणु और स्त्रियो मे अण्डाणु वनते है जो मिलकर प्रजाति का अस्तित्व वनाये रखने हैं।

एनाटॅमि मे प्रयुक्त शब्दो की परिभाषा (Definition of terms used in Anatomy) :

वर्णन मे एकरूपता लाने के लिये एक सरचनात्मक स्थिति (एनाटॅमिकल पोजिशॅन) चुनी और परिभाषित की गई हे। इसमे शरीर सीधी खडी स्थिति मे रहता है, चेहरा निरीक्षक की ओर, भुजाएँ धड के दोनो तरफ लटकी हुई तथा हथेलिया सामने की ओर रहती है।

निम्नलिखित पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग सामान्यतया किया जाता है

सुपीरिअॅर (Superior) ऊपरी या ऊपर

इन्फीरिअॅर (Inferior) निचला या नीचे

एन्टिरिअॅर (Anterior) या *वेन्ट्रल (Ventral)* सामने की ओर

पोस्टीरिअॅर (Posterior) या *डॉर्सल (Dorsal)* पीछे की ओर

डिस्टल (Distal) मुख्य स्रोत मे दूर (दूरस्थ)

प्राक्सिमल (Proximal) मुख्य स्रोत के नज़दीक (समीपस्थ)

एक्स्टर्नल (External) वाह्य या वाहरी

इन्टरनल (Internal) आन्तरिक या अन्दरूनी।

मध्य या सॅजिटल रेखा (*Median or Sagittal line*) एक काल्पनिक रेखा है जो सिर से पाँव के बीच जमीन तक जाती है। यह शरीर को दाएँ और बाएँ दो बराबर भागों में विभक्त करती है। लेटरल (पार्श्वीय) (*Lateral*) का अर्थ मध्य रेखा से दूर और मीडियॅल (*Medial*) का अर्थ मध्य रेखा के पास होता है।
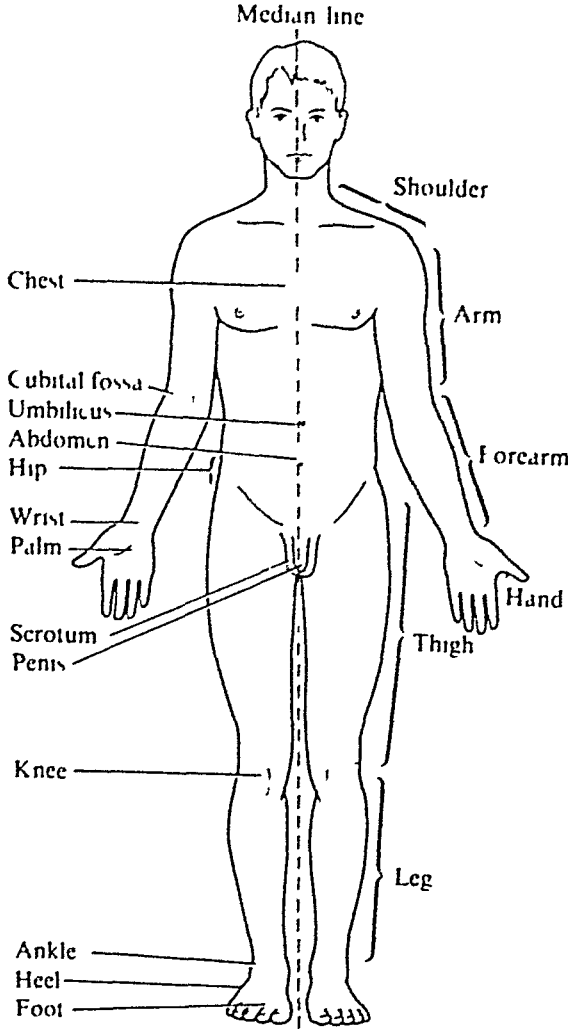
चित्र 26—शरीर के अंग, सरचनानुसार (सामने का भाग)।

अनुप्रस्थ या आड़ी काट (*Horizontal section*) शरीर को ऊपरी और निचले भागों में विभाजित करती है।

सॅजिटल काट (*Sagittal section*) शरीर को मध्य रेखा के समानान्तर दाएँ और बाएँ भागों में विभक्त करती है।

कॉरॉनल काट (*Coronal section*) शरीर को अग्रभाग और पश्चभाग में विभाजित करती है।
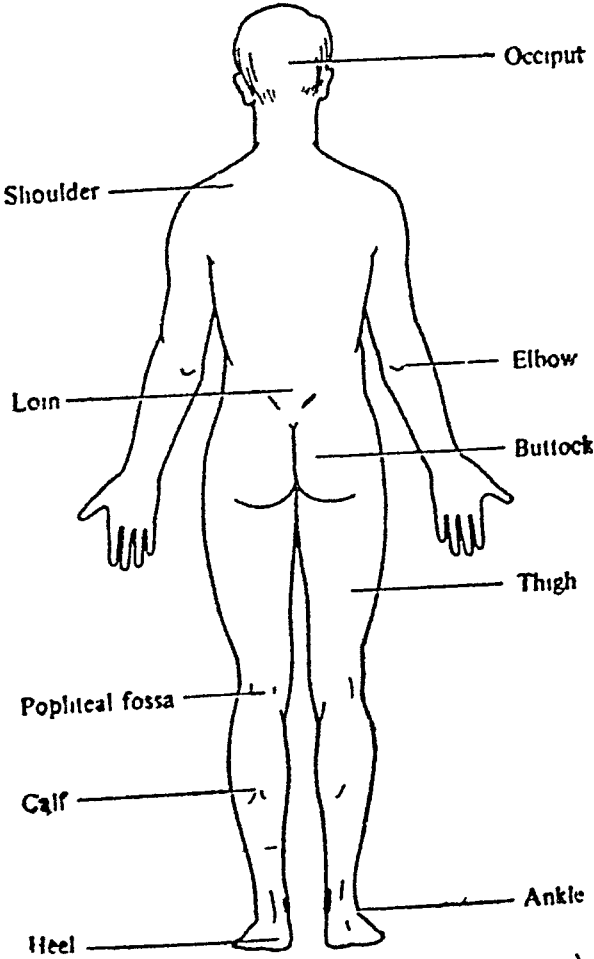
चित्र 27–शरीर के अग, सरचनानुसार (पीछे का भाग)।

शरीर की गुहिकाएँ (Cavities of the body)

शरीर मे दो मुख्य गुहिकाएँ होती है और प्रत्येक गुहिका दो छोटी गुहिकाओ मे विभाजित रहती है।

वेन्ट्रल गुहिका (*Ventral cavity*) धड मे स्थित रहती है और निम्न भागो मे विभक्त होती है

1 वक्ष-स्थल (Thorax) या वक्षीय गुहिका

2 उदर (Abdomen) या उदरीय गुहिका जो श्रोणीय गुहिका (Pelvic cavity) के साथ निरन्तर रहती है।
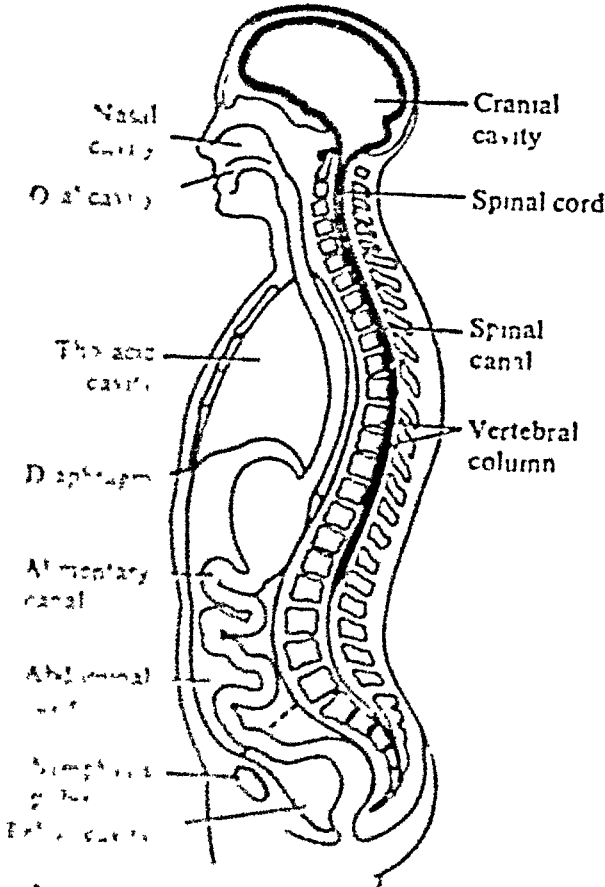
6. अस्थि का विकास एवं प्रकार
Development and Types of Bone

अस्थि तंत्र करीबन 200 अस्थियो का बना होता है जो आपस मे जुडकर शरीर के लिये मजबूत लेकिन, गतिशील, जीवित ढाँचा बनाती हैं। इसके चार मुख्य कार्य है। यह नरम, मुलायम ऊतको एव अगो को सहारा एव सुरक्षा प्रदान करता है और विभिन्न गतियो के लिए उपयोगी है, क्योंकि सख्त अस्थियाँ गतिशील जोडो पर एक दूसरे के ऊपर लीवर के समान हिलती है। यह लाल बोन मेरो मे रक्त कोशिकाएं बनाती हैं और खनिज लवणो विशेष रूप से फॉस्फोरस और केल्सिअम के भडारण की जगह उपलब्ध कराती है।

कार्टिलेज, अस्थि के विकास के लिए वातावरण उपलब्ध कराती है। अस्थि का निर्माण करने वाली इन तकुएनुमा (Spindle Shaped) कोशिकाओं को *आस्टियो-ब्लास्ट्स (Osteoblasts)* कहते है। ये कोशिकाएँ अघुलनशील कैल्सिअम फॉस्फेट को पुन घुलनशील कैल्सिअम लवणो मे परिवर्तित कर सकती है, जिनको रक्त अपने मे घोल कर इस स्थान से दूर ले जाता है। अस्थि को शोषित करने वाली इन कोशिकाओं को *आस्टिओक्लास्ट्स (Osteoclasts)* कहते है। अस्थि कोशिका के ये दोनो ही प्रकार वृद्धि के दौरान सक्रिय रहते है। अस्थि निर्माण की कोशिकाएँ या ऑस्टिओब्लास्ट्स अस्थि बनाती है और अस्थि शोषण की कोशिकाएँ या ऑस्टिओक्लास्ट्स इसको हटाती रहती है ताकि अस्थि का सही रूप एव अनुपात बना रहे। उदाहरणार्थ, ऑस्टिओब्लास्ट्स खोखली अस्थि की सतह पर अस्थि का निर्माण करती है, जबकि आस्टिओक्लास्ट्स अस्थि के आन्तरिक भाग का शोषण करते हैं ताकि उसकी गुहिका चौडी रहे और अस्थि ज्यादा भारी होने से बची रहे।

अस्थि विकास (Ossification) :

अस्थि विकास दो प्रकार का होता है।

अन्तर्झिल्लीय अस्थिविकास (Intramembranous ossification) मे घने सयोजी ऊतको के स्थान पर केल्सिअम लवण जमा हो जाते है और अस्थि का निर्माण करते है। खोपडी की अस्थियाँ इसी तरह बनती है।

अधिकाश अस्थियो का विकास अत उपास्थिय *(Intracartilaginous)* विधि से होता है। इसमे उपास्थियो का स्थान अस्थियाँ ले लेती है।

अस्थि की वृद्धि एवं सुधार (Bone growth and repair) .

गर्भवती स्त्रियो एव दूध पिलाने वाली माताओं मे, बढते हुए बच्चो मे और ऐसे व्यक्तियो के आहार मे जिनकी अस्थि का सुधार अस्थि टूटने के बाद या

बीमारी के बाद हो रहा है, मे केल्सिअम और फॉस्फोरस की अधिक पूर्ति होना आवश्यक है। केल्सिअम दूध, अडो और हरी सब्जियो मे रहता है। फॉस्फोरस मांस, अडे की जर्दी और मछली मे पाया जाता है। छोटी आत मे केल्सिअम एव फॉस्फोरस का अवशोषण शरीर के उपयोग के लिए होता रहे इसके लिए विटामिन D मिलना भी आवश्यक है। विटामिन D की कमी से बालको मे रिकेट्स (Rickets) और वयस्को मे आस्टिओमेलेशिया (Osteomalacia) नामक बीमारिया हो सकती है। दोनो ही स्थितियो मे अस्थियाँ मुलायम हो जाती हैं जो शरीर के वज़न से ही झुक जाती है और वज़न वहन करने वाली अस्थियो मे विभिन्न विकृतियाँ पैदा हो जाती हैं। विटामिन D मछलियो के तेल, पशु वसा और कृत्रिम रूप से ससाधित मार्गरिन मे पाया जाता है।

मानव शरीर भी विटामिन D का निर्माण कर सकता है। सूर्य के प्रकाश की अल्ट्रावॉइलेट किरणें त्वचा मे एरगोस्टेरॉल (*Ergosterol*) पर क्रिया करके उसे विटामिन D मे परिवर्तित कर देती है।

विटामिन C अस्थि के विकास मे महत्वपूर्ण है क्योंकि यह कॉलेजेन जमा करने मे सहायता करता है जो सयोजी ऊतको का मुख्य घटक है। यह ताजे फलो विशेष रूप से नीबूवशी फलो, काले अगूरो, हरी सब्जियो, टमाटर एव आलू मे पाया जाता है।

अस्थि की वृद्धि एव विकास व्यायाम और आराम दोनो से ही प्रभावित होता है। व्यायाम से किसी अग की पेशियो और अधीनस्थ अस्थियो की रक्तपूर्ति बढ जाती है, चूंकि रक्त शरीर का निर्माण करने वाले आवश्यक पदार्थों का स्रोत होता है, इसलिये व्यायाम से वृद्धि अधिक होती है। इस तथ्य को समझने से ही आजकल स्कूलो मे शारीरिक व्यायाम पर ध्यान दिया जाने लगा है। विकासशील पेशियो का खिचाव अस्थियो की आकृति के निर्धारण मे महत्वपूर्ण रोल अदा करता है, बैठने या खडे होने की स्थिति से अस्थियो पर जो तनाव पडता है उससे भी आकृति प्रभावित हो सकती है। आराम का महत्त्व भी बडा रोचक एव महत्वपूर्ण है। बालक की अस्थिया काफी लचीली होती है, अत दिन मे खडे रहने और दौडने के कारण शाम के समय उनकी लम्बाई मे कुछ कमी हो जाती है। लेटकर आराम करने से अस्थियाँ पुन पूरी लम्बाई प्राप्त कर लेती है। इसलिये रात मे ज्यादा समय तक सोने और दोपहर को एक घटा लेटने से वृद्धि हो सकती है।

वृद्धि का नियन्त्रण करने वाला एक अन्य पहलू अत स्रावी (वाहिकाविहीन) ग्रन्थियो का स्रावण है। इसका विवेचन अध्याय 20 मे किया जायेगा।

अस्थि-ऊतक के प्रकार (Types of bone tissue) :

अस्थि-ऊतक दो प्रकार का होता है। ठोस एव स्पजी।

ठोस *अस्थि* (*Compact bone*) . सख्त दिखती है, लेकिन माइक्रोस्कोप से जब इसका परीक्षण किया जाता है तब इसमे हैवूरसिअन तत्र (**Haversian systems**) दिखाई देते हैं। हैवूसिअन तंत्र निम्न भागो का बना होता है ·

(i) मध्य मार्ग (*Central canal*), जिसे हैवर्सिअन मार्ग कहते हैं, इसमे रक्त वाहिकाएँ, स्नायु और लिम्फेटिक्स (लसिका-वाहिकाए) रहती है।

(ii) अस्थि की प्लेट्स, जिन्हे लेमिलो (*Lamellae*) कहते हैं, ये मध्य मार्ग के आस-पास रहती है।

(iii) लेमिली के बीच मे कुछ स्थान रहते है, जिन्हें लेक्यूनि (*Lacunae*) कहते है। इन मे अस्थि कोशिकाए (जिन्हे ऑस्टिओसाइट्स कहते है) और लिम्फ रहते है।

(iv) पतले सकरे मार्ग जिन्हें कैनालिक्यूलाइ (*Canaliculi*) कहते है, ये लेक्यूनी और मध्य मार्ग के बीच फैली रहती है और अस्थि कोशिकाओ तक भोज्यपदार्थ एव ऑक्सीजन लाने के लिये लिम्फ वहन करती है।

अस्थि की छोटी-छोटी गोल प्लेट्स रहती है, जिन्हें इन्टरस्टिशिअल लेमिली (*Interstitial lamellae*) कहते है।
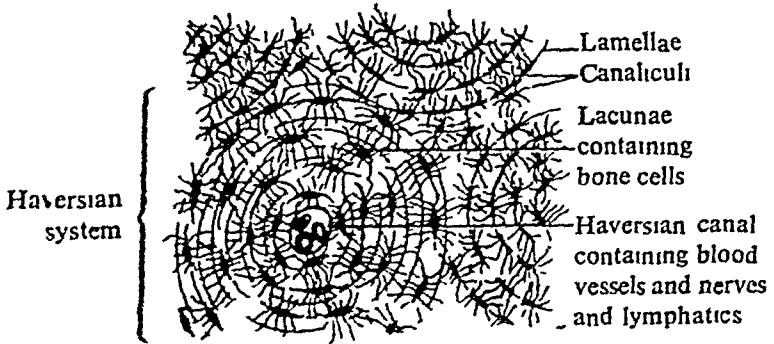
चित्र 29–ठोस अस्थि की रचना।

स्पंजी अस्थि (*Spongy bone*) सभी अस्थियों के समान सख्त रहती है लेकिन इसकी दिखावट स्पंजी होती है। जब माइक्रोस्कोप द्वारा इसका परीक्षण किया जाता है तब इसमे हैवर्सिअन मार्ग अधिक बडे दिखते है और लेमिली बहुत कम रहती है। स्पंजी अस्थि के बीच की जगहें लाल अस्थि मैरो से भरी रहती है। यह वसा एव रक्त कोशिकाओ का बना होता है और इनमे लाल रक्ताणु बनते है।

अस्थियों के प्रकार (Types of Bones)

अस्थियाँ तीन प्रकार की होती है–

1 लम्बी अस्थियाँ
2 चपटी अस्थियाँ
3 असमाकृति अस्थियाँ

लम्बी अस्थियाँ (Long bones) .

लम्बी अस्थि शाफ्ट (अस्थि के बीच का भाग) और दो सिरो (Extremities) से बनी होती है। शाफ्ट के मध्य मार्ग के आसपास ठोस ऊतक की मजबूत दीवार

होती है। इस मध्य मार्ग को मेड्यूलरी गुहिका (*Medullary cavity*) कहते हैं। इसमें पीला अस्थि-मैरो रहता है। स्पंजी अस्थि के लाल अस्थि-मैरो के समान यह अस्थि मैरो वसा एवं रक्त कोशिकाओं का बना होता है लेकिन इसमें न तो उतनी अधिक रक्त पूर्ति होती है, और न ही लाल रक्ताणु होते हैं। दोनों सिरे स्पंजी अस्थि के बने होते हैं और ठोस अस्थि की पतली तह द्वारा ढँके रहते हैं। स्पंजी अस्थि में लाल अस्थि-मैरो रहता है जो रक्त प्रवाह में लाल रक्ताणुओं की पर्याप्त संख्या बनाये रखता है। लम्बी अस्थि तन्तुमय ऊतक के मजबूत आवरण से ढँकी रहती है जिसे पेरिऑस्टिअम (*Periosteum*) कहते हैं। इसमें बहुत रक्त-वाहिकाएँ रहती हैं। जो अस्थि में प्रविष्ट होकर उसको पोषण प्रदान करती हैं।
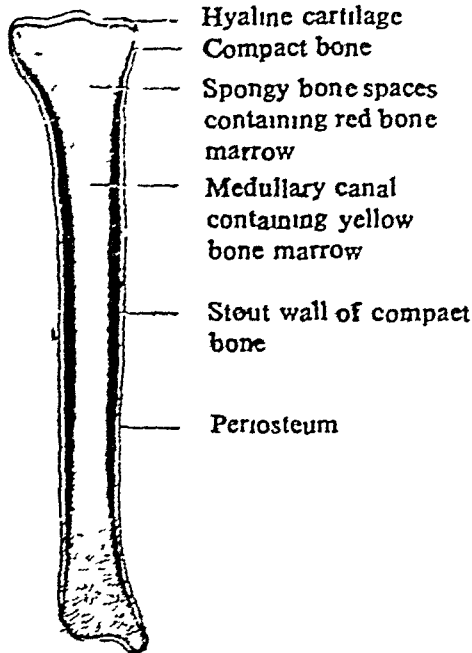
चित्र 30—लम्बी अस्थि की रचना।

रक्तवाहिकाओं के तीन विभिन्न प्रकार लम्बी अस्थि की रक्तपूर्ति करते हैं:

(1) अनगिनत छोटी-छोटी धमनियाँ ठोस अस्थि में फैली रहती हैं जो हैवर्-सिअन मार्गों और तंत्रों की रक्तपूर्ति करती है।

(2) कई बड़ी धमनियाँ सिरों की ठोस अस्थि में छिद्र करके स्पंजी ऊतक और लाल अस्थि-मैरो को रक्त देती हैं। जिन छिद्रों से ये वाहिकाएँ प्रविष्ट होती हैं उन्हें आसानी से देखा जा सकता है।

(3) एक या दो बड़ी धमनियाँ मेड्यूलरी गुहिका को रक्त पहुँचाती हैं। इन्हें पोषक धमनियाँ (Nutrient arteries) कहते हैं, और ये पोषक फोरामेन (Nutrient

foramen) नामक एक बडे छिद्र से अस्थि मे प्रवेश करती हैं। यह छिद्र शाफ्ट से मेड्यूलरी गुहिका तक तिरछे रूप मे रहता है।

रक्त वाहिकाओ के ये तीनो प्रकार अस्थि के अन्दर अपनी पतली शाखाओ द्वारा आपस मे जुड़े रहते हैं।

पेरिऑस्टिअम अपनी रक्तवाहिकाओ द्वारा अधीनस्थ अस्थि को पोषण प्रदान करती है यदि यह निकल जाती है तो अधीनस्थ अस्थि मृत हो जाती है, इसके विपरीत यदि अस्थि बीमारी के द्वारा नष्ट हुई हो लेकिन पेरिऑस्टिअम स्वस्थ हो, तो नई अस्थि का निर्माण हो सकता है। पेरिऑस्टिअम अस्थि की मोटाई मे वृद्धि के लिये ऑस्टीओब्लास्ट्स की क्रिया के माध्यम से जिम्मेवार रहती है, जो अस्थि की सतह के नजदीक रहते हैं और नई अस्थि का निर्माण करने मे सक्षम होते हैं। पेरिऑस्टीअम का कार्य सुरक्षात्मक है और यह पेशियो के टेन्डॅन्स के जुडने के लिये भी स्थान प्रदान करती है। यह अस्थि की जोड वाली सतह पर नही रहती है, लेकिन वहाँ हाएलिन कार्टिलेज होता है, जिसे आर्टिक्यूलर कार्टिलेज कहते हैं जो चिकनी सतह प्रदान करता है ताकि बिना घर्षण के जोडो की हलचल हो सके।

लम्बी अस्थियों का विकास लम्बी अस्थियाँ अस्थि विकास के तीन केन्द्रो से विकसित होती है—जिनमे से एक शाफ्ट मे और एक या दो दोनो सिरो पर स्थित होते हैं। शाफ्ट मे अस्थि विकास का केन्द्र *डायफिसिस (Diaphysis)* कहलाता है। सिरो पर स्थित केन्द्र को *एपीफिसिस (Epiphysis)* कहते है जो जन्म के बाद विकसित होना आरभ करते हैं। इन केन्द्रो से अस्थि विकास धीरे-धीरे सिरे
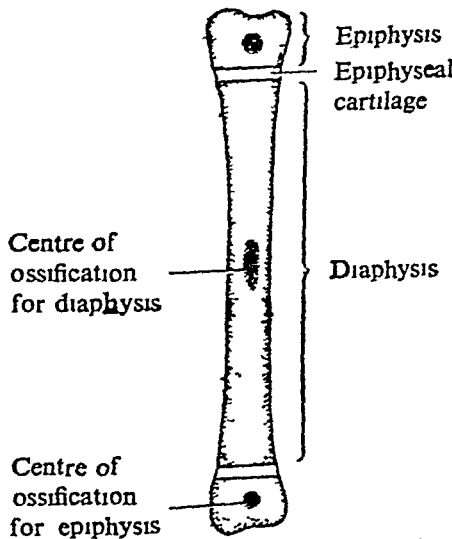
चित्र 31–लम्बी अस्थि का विकास (लम्बाई में वृद्धि एपिफिसीस पर होती है)।

द्वारा ढंकी रहती हैं, जिस पर ठोस एव स्पजी अस्थि की रक्तपूर्ति के लिये रक्त-वाहिकाओ के दो समूह होते हैं। इस प्रकार की अस्थियाँ रीढ, कान के बीच तथा टखने और कलाई मे भी पाई जाती हैं। इन अस्थियो को छोटी अस्थियाँ भी कहते हैं।
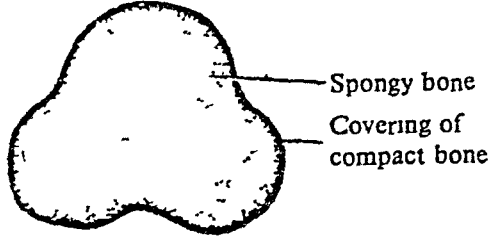
चित्र 33—असमाकृति अस्थि की रचना।

सतह की असमानताएँ (Surface irregularities) :

सभी अस्थियो की सतहें बहुत असमान रहती हैं तथा इन पर कई उभार (*Projections*) एव गड्ढे (*Depressions*) रहते हैं। इन्हें कार्य के अनुसार निम्न प्रकारो मे विभाजित किया जा सकता है

1. जोड बनाने वाली सतहें (Articular), जो जोडो के बनने मे सहायता करती हैं और चिकनी रहती हैं।

2 जोड नही बनाने वाली सतहे (Nonarticular), जो पेशियो या लिगॅमेन्ट्स के जुडने मे सहायता करती है और खुरदरी रहती हैं।

जोड बनाने वाले उभारों के नाम निम्नलिखित हैं

1. हेड (Head), जब उभार गोले या तश्तरी के समान गोल होता है।

2. कॉन्डाइल (Condyle), जब उभार गोल लेकिन अण्डाकार होता है। जैसे कि ऊँगलियो की अस्थि के जोड़ मे।

जोड बनाने वाली सतह के गड्ढों को सॉकेट्स या फोसी (Fossae) कहते हैं।

जोड नहीं बनाने वाली सतह के उभारों के नाम उनके प्रकार के अनुसार हैं—

1 प्रोसेस (छोटा उभार) (Process), पेशी के जुडने के लिये खुरदरा उभार।

2. स्पाइन (तीखा उभार) (Spine), तीखा, खुरदरा उभार।

3 ट्यूबरॉसिटि (बडा गोल उभार) (Tuberosity), चौडा खुरदरा उभार।

4. ट्रॉकैन्टर (चपटा बडा उभार) (Trochanter), चौडा खुरदरा उभार।

5. ट्यूबरकल (छोटा गोल उभार) (Tubercle) बहुत छोटा गोल उभार।

6. क्रेस्ट (Crest), लम्बी खुरदरी, सकरी उभरी हुई सतह।

इन सभी खुरदरे उभारो पर पेशिया जुडती हैं। पेशी जितनी अधिक मजबूत होती है और जितना अधिक उसका उपयोग होता है, उभार उतना ही बडा एवं

खुरदरा हो जाता है और पेशी के जुड़ने के लिये अधिक स्थान प्रदान करता है। अंगघात हुए हाथ या पैर (Paralysed limb) मे उम्र के अनुसार छोटे उभार या तो विकसित होने मे विफल हो जाते हैं या क्षीण हो जाते है।

जोड़ नहीं बनाने वाली सतह के गड्ढों के नाम निम्न हैं

1 फोसा (Fosa), अस्थि मे चपटा गड्ढा।

2. ग्रूव (Groove), लम्बा, सकरा गड्ढा।

अस्थियो में अन्य गड्ढो के लिये प्रयुक्त शब्द .

1. फोरामेन (Foramen), अस्थि मे छिद्र।

2 साइनस (Sinus), अस्थि मे खोखली गुहिका।

7. सिर और धड़ की अस्थियाँ
Bones of the Head and Trunk

छात्र को यह बता दें कि अस्थि पंजर का अध्ययन पूरे ककाल और अलग-अलग अस्थियो को हाथ मे लेकर और अच्छी तरह जाँच-परीक्षण किये विना सभव नही है।

अस्थिपजर को निम्नलिखित भागो मे विभाजित किया जा सकता है

. 1 सिर की अस्थियाँ
2 धड की अस्थियाँ
3 भुजा की अस्थियाँ और स्कध (Shoulder girdle)
4 पैर की अस्थियाँ और श्रोणि (Pelvic girdle)

सिर एव धड की अस्थियाँ *अक्षीय* (*axial*) अस्थिपजर बनाती हैं जो शरीर का मुख्य आधार है, जबकि भुजा और पैर (extremities) की अस्थियाँ *अनुबधी* (*Appendicular*) अस्थिपजर कहलातीं हैं।

सिर की अस्थियाँ (The Bones of the Head)

वर्णन के लिए सिर की अस्थियाँ निम्न समूहो मे विभाजित की जा सकती हैं—

1 खोपडी की अस्थियाँ।
2 चेहरे की अस्थियाँ।

खोपड़ी की अस्थियाँ (The bones of the cranium)

खोपडी छोटे बक्से के समान एक गुहिका है जिसमे मस्तिष्क सुरक्षित रूप से रहता है। इसमे गुम्बज के आकार का ऊपरी भाग (Roof) रहता है जिसे खोपडी का टोप या कैल्वेरिआ (Calvaria) कहते हैं, तथा इसके निचले भाग (Floor) को खोपडी का आधार या तल (Base) कहा जाता है। खोपडी पद्रह अस्थियो की बनी है—

एक फ्रॅन्टल अस्थि (One frontal bone)
दो पॅराइटल अस्थिया (Two parietal bones)
एक ऑक्सिपिटल अस्थि (One occipital bone)
दो टेम्पोरल अस्थिया (Two temporal bones)
एक एथ्मॉइड अस्थि (One ethmoid bone)
एक स्फीनॉइड अस्थि (One sphenoid bone)

दो इन्फीरिअर नेजल कोन्की (Two inferior nasal conchae)
दो लेक्रिमल अस्थिया (Two lacrimal bones)
दो नासिका अस्थिया, (Two nasal bones)
एक वोमर अस्थि (One vomer)
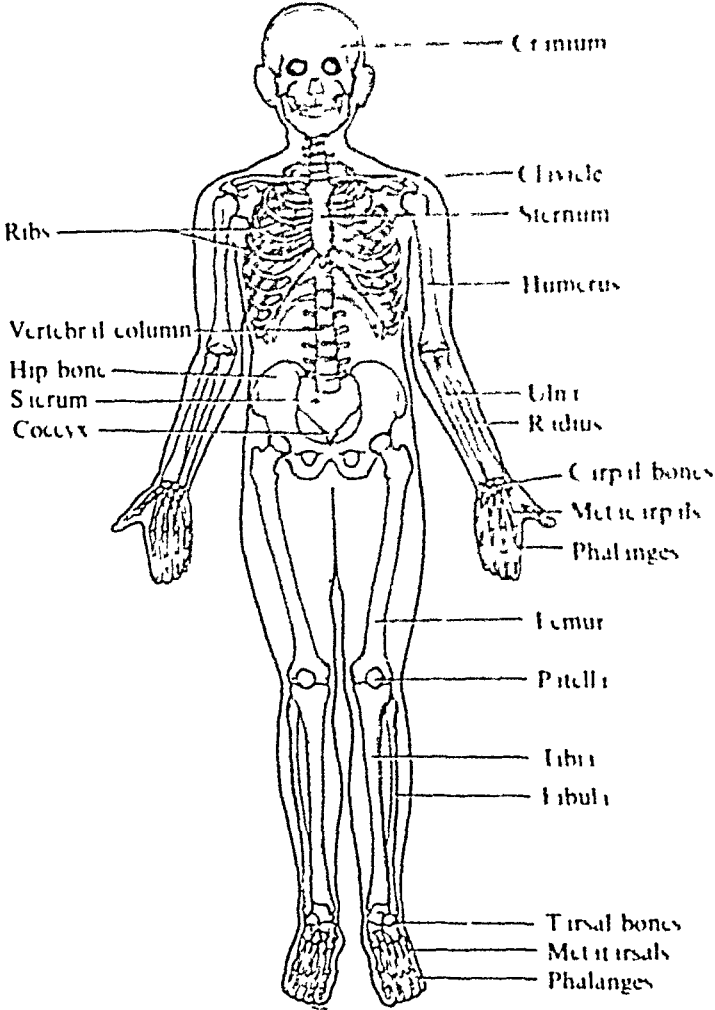
चित्र 34—अस्थिककाल (पुरुष)।

फ्रॅन्टल अस्थि—यह एक बडी चपटी अस्थि है जो ललाट (माथा) और नेत्र-गुहिकाओ (Orbits) की छत बनाती है। इसमे दो गोल उभार होते हैं। जिन्हें फ्रॅन्टल ट्यूबरोसिटीज़ (*Frontal tuberosities*) कहते हैं, ये मध्य रेखा के दोनो ओर रहते हैं। उनका आकार हर व्यक्ति मे अलग होता है और ये दोनो उभार मिलकर ललाट बनाते हैं। इस अस्थि मे दो विषम आकृति की गुहिकाएँ होती हैं जिन्हें फ्रॅन्टल साइनसेस (*Frontal sinuses*) कहते हैं जो प्रत्येक नेत्रगुहा के ऊपर मध्य

रेखा की तरफ स्थित रहते हैं। इनमे वायु होती है, जो नासिका गुहिकाओ मे स्थित छोटे छिद्र द्वारा प्रविष्ट होती है। इनमे श्लेमिष्क झिल्ली का अस्तर रहता है। ये आवाज मे गूज (Resonance) पैदा करते है, तथा खोपडी को हलकापन प्रदान करते हैं, लेकिन श्लेष्मिक झिल्ली सक्रमित हो सकती है, इस स्थिति को *साइन-साइटिस* (*Sinusitis*) कहते हैं।
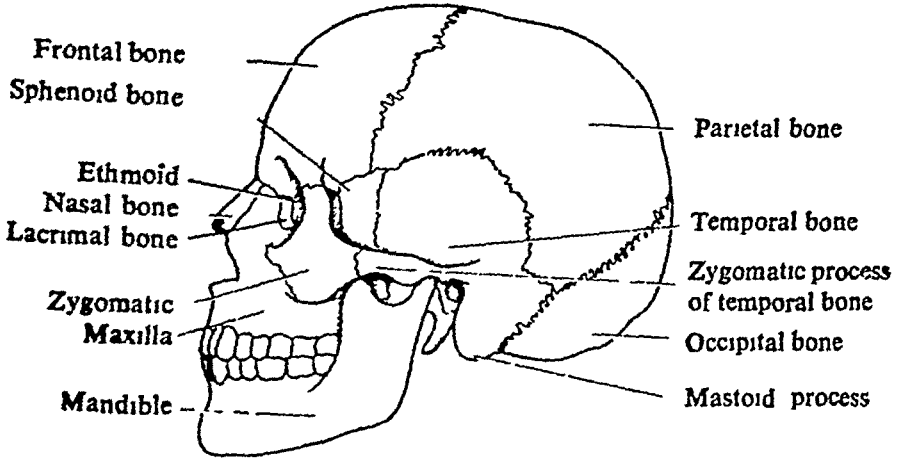
चित्र 35—सिर की अस्थियां।

पैराइटल अस्थियां खोपडी की बाजू के भाग एव ऊपरी भाग बनाती हैं, ये फ्रन्टल अस्थि से तथा पीछे ऑक्सिपिटल अस्थि से सधि रेखाओ (Sutures) या जोड (Joints) द्वारा जुडकर खोपडी के जोड बनाती है (देखिए अध्याय 9) इनकी अन्दरूनी सतह पर छोटे-छोटे गड्ढे रहते हैं जिनमे मस्तिष्क को रक्त पहुँचाने वाली रक्तवाहिकाए रहती हैं। इसके अलावा मस्तिष्क की सतह के मोड या कुण्डलियो के निशान भी देखे जा सकते हैं। जन्म के समय पॅराइटल अस्थियो के कोण पर झिल्लीदार खाली स्थान रहता है जिन्हें *फॉन्टेनेल्स* (*Fontanelles*) कहते हैं (देखिए अध्याय 9)।

ऑक्सिपिटल अस्थि खोपडी के पीछे का भाग बनाती है। इस पर एक उभरा हुआ भाग रहता है जिसे *वाह्य ऑक्सिपिटल उभार* (*External occipital protuberance*) कहते हैं। यह पेशियो के जुडने के लिये स्थान प्रदान करता है। इसमे एक बडा अडाकार छिद्र रहता है जिसे *फोरामॅन मैग्नम* (*Foramen magnum*) कहते है। यह स्पाइनल कॉर्ड के गुजरने के लिये रहता है। फोरामॅन के दोनो तरफ दो कॉन्डाइल्स (उभार) रहते है, जिन्हें *ऑक्सिपिटल कॉन्डाइल्स* कहते है, ये प्रथम सरवाइकल वर्टिब्रा, 'एटलस' के साथ एक जोड बनाते हैं जिसके द्वारा सिर इधर-उधर हिलता है।

टेम्पोरल अस्थियाँ (Temporal bones) : खोपड़ी के दोनों तरफ तथा आधार (तल) पर स्थित रहती है, इसके चार भाग होते हैं।
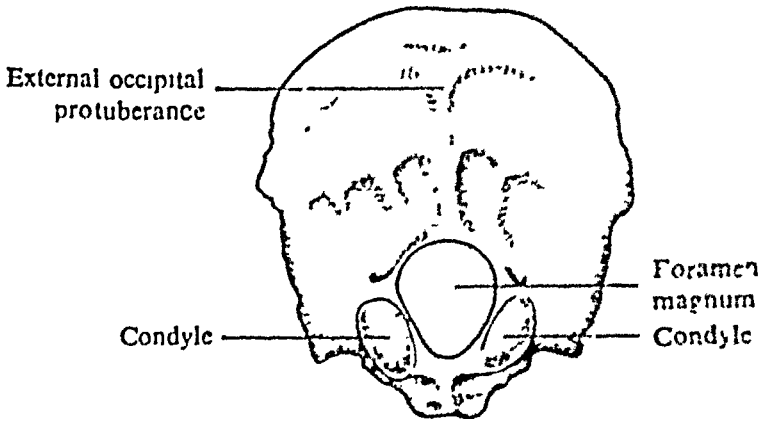
चित्र 36–ऑक्सिपिटल अस्थि (पीछे से देखने पर)।

1 स्क्वेमॅस भाग (*Squamous part*) से अस्थि का अगला एवं ऊपरी भाग बनता है और यह पतला एवं चपटा होता है। एक लम्बी झुकी हुई प्रोसेस (बाहर की ओर निकली अस्थि), जिसे जाइगोमा या जाइगोमेटिक प्रोसेस कहते हैं, इसके निचले भाग से आगे की ओर निकली रहती है।

2 पेट्रोमेस्टॉइड भाग (*Petromastoid part*) अस्थि का पिछला हिस्सा बनाता है और इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(अ) मेस्टॉइड भाग (Mastoid portion) मेस्टॉइड प्रोसेस नामक शंकुनुमा उभार के रूप में निरंतर रहता है, इसमें वायुकोष्ठ रहते हैं।

(ब) पीट्रस भाग (Petrous portion) आक्सिपिटल अस्थि और स्फीनॉइड के बीच होता है। इसमें आन्तरिक कान (Internal ear) बनाने वाली संरचनाएँ रहती हैं।
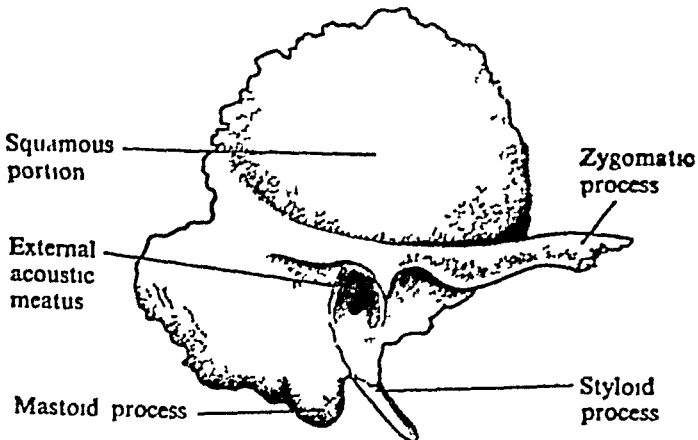
चित्र 37–टेम्पोरल अस्थि।

3. *टिम्पेनिक भाग (Tympanic part)* एक मुडी हुई प्लेट है जो स्क्वेमॅस भाग के नीचे और मस्टॉइड प्रोसेस के सामने रहती है। इसमे वाह्य अस्कॉस्टिक मीऍटस (Acoustic meatus) रहता है।

4 स्टाइलॉइड प्रोसेस *(Styloid process)* अस्थि के नीचे से आगे तथा नीचे की ओर निकला रहता है।

एथ्मॉइड अस्थि वहुत हलकी एव असमाकृति अस्थि है, जो तीन भागो की वनी होती है।

1 छोटी आडी प्लेट, जो छलनी की तरह कई वारीक छिद्रो से युक्त रहती है। इसे क्रिब्रिफॉर्म प्लेट (Cribriform plate) कहते हैं। यह नाक का ऊपरी भाग वनाती है, और इसके छिद्रो से गध के स्नायु (Olfactory nerves) निकलते हैं।

2 *अनुलम्व या खडी प्लेट (Perpendicular plate)* जो क्रिब्रिफॉर्म प्लेट से नीचे की ओर जाती है और नेज़ल सेप्टम का ऊपरी भाग वनाती है। यह नासिका गुहिका को दो भागो मे विभाजित करती है।
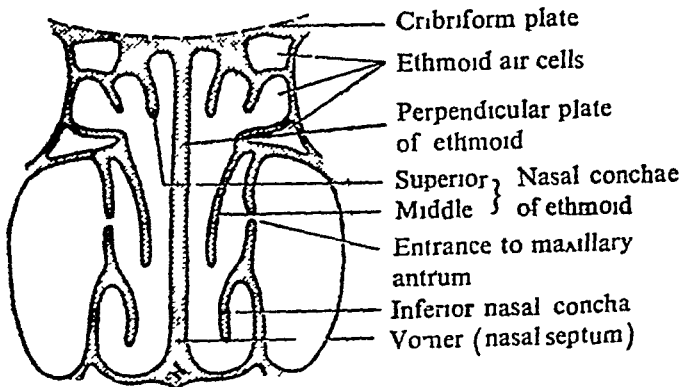
चित्र 38–एथ्मॉइड अस्थि के काट का रेखाचित्र।

3 *दो लेविरिन्थ्स (Labyrinths)*, प्रत्येक पतली दीवार वाली कई एथ्मॉइडल वायुकोष्ठो का वना होता है जो नासिका गुहिका से जुडा रहता है और इससे सक्रमित भी हो सकता है। अस्थि की दो पतली प्लेट्स जिन्हे *ऊपरी एव मध्य नेज़ल कॉन्की* कहते हैं, स्पजी लेविरिन्थ्स से नासिका गुहिकाओ मे निकली रहती हैं।

स्फीनॉइड अस्थि (Sphenoid bone) खोपडी के आधार (तल) पर टेम्पोरल अस्थि के सामने रहती है। इसका आकार चमगादड के फैले हुए पख की तरह होता है। इसके मुख्य भाग (Body) मे दो वड़े वायु प्रकोष्ठ होते हैं जिनका सम्वन्ध नासिका गुहा से रहता है। इसमे एक गहरा गड्ढा रहता है जिसे **हाइपोफिसियल फोसा** (Hypophyseal fossa) कहते हैं, उसमे हाइपोफिसिस **सेरेब्री** या

पिट्यूटरी ग्रंथि रहती है। इसके बड़े और छोटे पत्रनुमा भागों में (The greater and lesser wings) में स्नायु और रक्त वाहिकाओं के लिए कई छिद्र होते हैं।
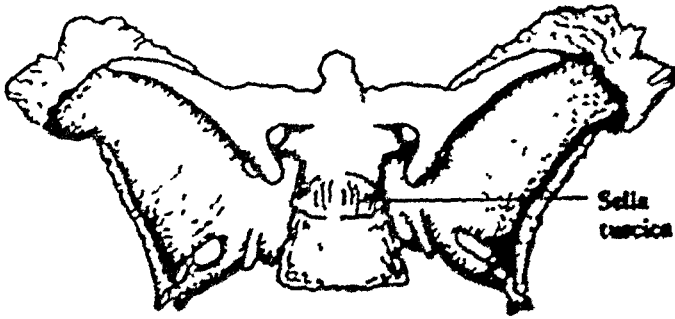
चित्र 39—स्फीनॉइड अस्थि।

इन्फीरियर नेजल कोन्की (*Inferior nasal conchae*) मुड़ी हुई प्लेट हैं जो नासिका गुहा की दीवार में रहती हैं। ये एथमॉइड अस्थि के सुपीरिअर और मध्य नेजल कोन्की के नीचे रहती हैं।

लेक्रिमल अस्थियाँ (*Lacrimal bones*) खोपड़ी की सबसे छोटी और भुरभुरी अस्थियाँ हैं और नेत्र गुहिका की दीवार का हिस्सा बनाती हैं। इनमें गड्ढा होता है जिसमें लेक्रिमल थैली (आँसू की थैली) (Lacrimal sac) और नेजोलेक्रिमल वाहिका (Nasolacrimal duct) रहती है जिसके द्वारा आँसू या लेक्रिमल द्रव नीचे की ओर नासिका गुहिका में आता है।

नाक की अस्थियाँ (*Nasal bones*), दो छोटी झुकी हुई अस्थियाँ हैं जो नाक का ऊपरी भाग (Bridge) बनाती हैं।

वोमर (*Vomer*) चपटी अस्थि है जो दोनों नासिका गुहिकाओं के बीच सेप्टम या पट का निचला भाग बनाती हैं।

चेहरे की अस्थियाँ (The bones of the face) :

चेहरे की अस्थियाँ निम्नलिखित हैं

मेक्ज़िली (Maxillae)

मेन्डिबल (Mandible)

दो जाइगोमेटिक अस्थियाँ (Two Zygamatic bones)

दो तालु की अस्थियाँ (Two Palatine bones)

हाइऑएड अस्थि (कण्ठिका अस्थि) (Hyoid bone)

मेक्ज़िली (*Maxillae*) चेहरे की सबसे बड़ी अस्थियाँ हैं (मेंडीबल को छोड़कर)। ये मध्य रेखा में एक दूसरे से जुड़कर ऊपरी जबड़ा (Upper jaw) बनाती है। उनमें एक उभरे हुए भाग एल्विओलर प्रोसेस (*Alveolar process*) में दाँत स्थित रहते हैं।

मेक्जिला का पेलेटाइन प्रोसेस (*Palatine process*) एक आडा उभार है जो मुंह के ऊपरी भाग और नासिका गुहिकाओ का तल (Floor) बनाता है। मेक्जिलरी साइनस (*Maxillary Sinus*) एक हवा भरी गुहिका है। यह नाक से जुडी रहती है। नाक मे सक्रमण होने पर यह भी सक्रमित हो सकती है।

मेन्डिबल (*Mandible*) असमाकृति अस्थि है, और सिर मे यही एक गतिशील अस्थि है। यह निचला जबडा बनाती है, और इसमे दांत का निचला समूह एल्विओलर प्रोसेस मे स्थित रहता है। दो खडे भाग या रैमि (Rami), जिनमे एक कॉन्डाइलर प्रोसेस कान के ठीक सामने टेम्पोरल अस्थि से जुडता है तथा दूसरा कोरोनॉइड प्रोसेस (Coronoid process) होता है जिससे पेशी जुडती है। खडे और आडे भाग मिलकर जबडे के कोण बनाते हैं।
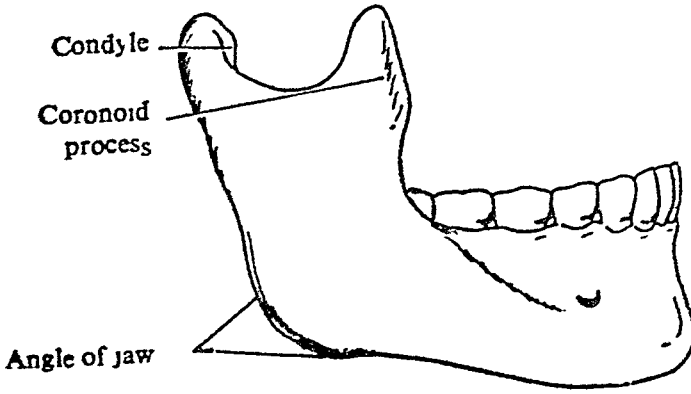
चित्र 40—मेन्डिबल।

ज़ाइगोमेटिक अस्थियां (Zygomatic bones) असमाकृति अस्थिया है जो गाल के उभार और नेत्रगुहा तल का कुछ भाग भी बनाती हैं। इसका टेम्पोरेल प्रोसेस टेम्पोरल अस्थि के ज़ाइगोमेटिक प्रोसेस से जुडकर दोनो तरफ ज़ाइगोमेटिक आर्च बनाता है।

तालु की अस्थियां (*Palatine bones*) असमान आकार की अस्थियाँ हैं जो कडक तालु का भाग, नासिका गुहिका की पार्श्वीय दीवार और नेत्र गुहिका का तल भाग बनाती हैं।

हाइऑएड अस्थि (Hyoid bone), यह अंग्रेजी के U अक्षर के आकार की छोटी अस्थि है जो ज़बान के तल (Base) मे स्थित रहती है तथा ज़बान की पेशियो को जुडने के लिये स्थान प्रदान करती है। यह अन्य किसी अस्थि से जुडी नही होती है, लेकिन यह टेम्पोरल अस्थि की स्टिलॉइड प्रोसेस से लिगॅमेन्ट्स द्वारा जुडी रहती है।

चित्र 41—हाइऑएड अस्थि।
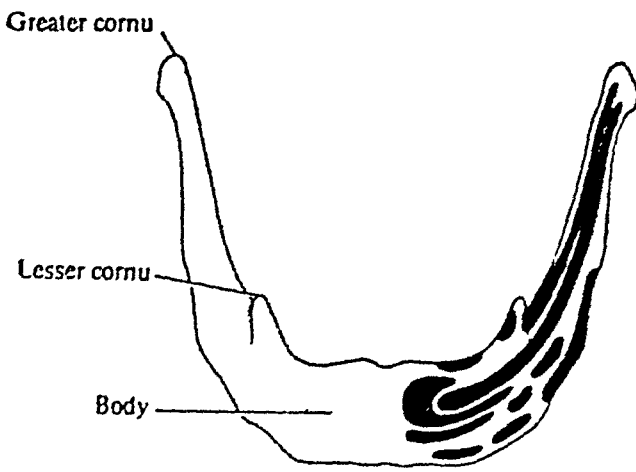
धड़ की अस्थियाँ (The Bones of the Trunk)

धड की अस्थियाँ निम्नलिखित हैं :

स्टर्नम या वक्ष-स्थल की अस्थि

पसलियाँ

रीढ की अस्थियाँ

स्टर्नम (The Sternum) :

स्टर्नम एक लम्बी-चपटी अस्थि है जो नीचे की ओर वक्ष के सामने त्वचा के बिल्कुल नीचे रहती है। इसका ऊपरी सिरा क्लेविकल को सहारा देता है। यह सात जोटी पसलियो से भी जुडा रहता है। यह अस्थि तीन भागो मे विभाजित रहती है

1 *मेन्यूब्रिअम (Manubrium)* तिकोने आकार का होता है और इसका निचला किनारा उपास्थि (Cartilage) की एक पतली तह से ढका रहता है। इसमे मुख्य भाग (Body) का ऊपरी किनारा जुडता है।

2 *मुख्य भाग (Body)* मेन्यूब्रिअम से लम्बा और सकरा होता है। जहाँ यह मेन्यूब्रिअम मे जुडता है वहाँ एक गड्ढा (Notch) रहता है, वहीं दूसरी पसली की उपास्थि जुडती है।

3. *ज़िफॉइड प्रोसेस (Xiphoid process)* एक छोटा और भिन्न आकृति वाला उभार है जो पूर्णरूपेण अस्थिमय नहीं हो सकता है।
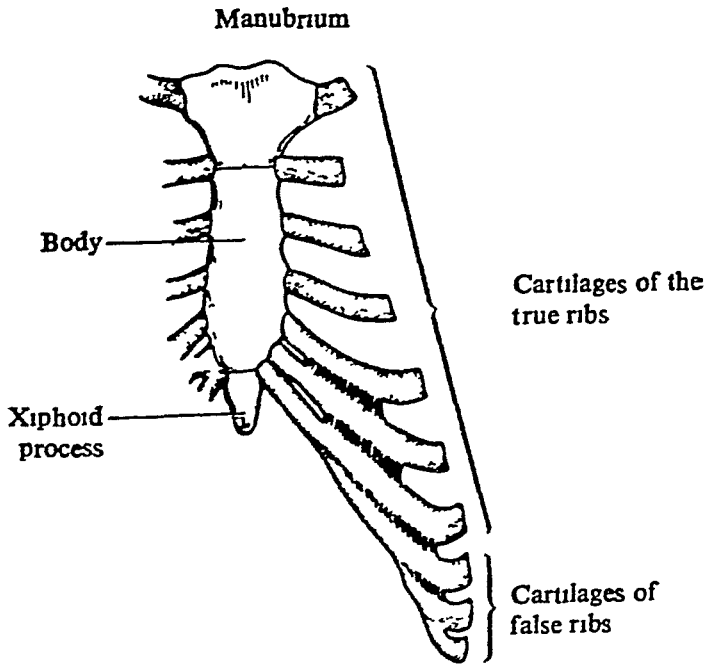
चित्र 42—स्टर्नम एव कॉस्टल उपास्थियाँ।

पसलियाँ (The Ribs) .

पसलियाँ झुकी हुई अस्थियाँ हैं जो पीछे की ओर रीढ की अस्थियो से जुडी रहती हैं। इनके प्राय बारह जोडे होते है, पहले सात जोडे *कॉस्टल उपास्थियों* के द्वारा स्टर्नम से जुडे रहते हैं, उन्हें वास्तविक पसलियाँ (True ribe) कहते हैं। शेष पाँच जोडे अवास्तविक पसलियाँ (False ribs) कहलाते हैं। इनमे से ऊपरी तीन पसलियो की उपास्थि से जुडे रहते हैं जबकि निचले दो जोडो के अग्रभाग स्वतत्र रहते हैं। उन्हें 'तैरती हुई पसलियाँ' (Floating ribs) कहते हैं।

पसलियाँ वक्ष की दीवार को घेरे हुए स्थित होती है, तथा सामने की तरफ नीचे की ओर झुकी हुई, एव अग्र और पश्च जोडो के बीच नीचे की तरफ मुडी हुई भी रहती हैं। ये ऊपर से नीचे की ओर आकार मे बढती है, अत वक्षीय गुहिका मोटे रूप से शंकु-आकार होती है।

प्रत्येक पसली मुडी हुई रहती है जिसकी निचली सतह पर इटरकॉस्टल धमनियो, शिराओ और स्नायुओ के लिए गड्ढे बने रहते हैं। वर्टिब्रल सिरो मे एक शीर्ष गर्दन और ट्यूबरकल होता है। शीर्ष (Head) मे दो चिकने गड्ढे (Facets) होते हैं जो सम्बन्धित वर्टिब्री के मुख्य भाग से जुडे रहते हैं।

ट्यूबरकल में एक छोटा अण्डाकार गड्ढा होता है जो सम्बन्धित वर्टीब्रा के ट्रान्सवर्स प्रोसेस से जुड़ने के लिए होता है।
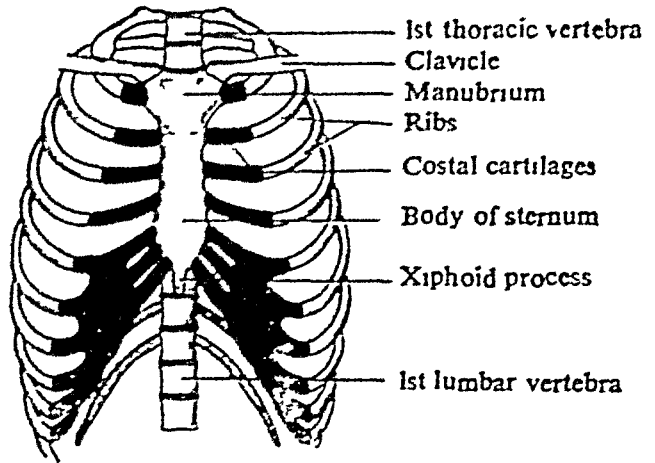
THORACIC CAGE FROM THE FRONT
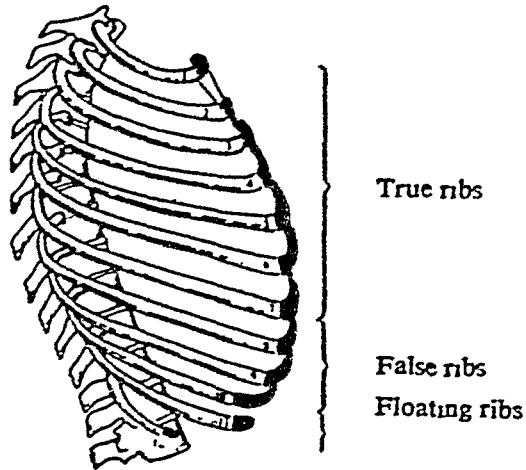
THORACIC CAGE FROM THE SIDE

चित्र 43—वक्षीय पिंजरे का ढांचा।

रीढ़ (The Vertebral column) :

रीढ कई असमाकृति अस्थियो की बनी होती है जिन्हें वर्टिब्री (Vertebrae) कहते हैं। ये आपस मे एक दूसरे से मजबूती से जुड़े रहते हैं लेकिन सीमित हलचल कर सकते हैं। रीढ शरीर की केन्द्रीय धुरी है और स्पाइनल कॉर्ड, जिसे वह घेरती है, की सुरक्षा करती है। प्रत्येक वर्टीब्रा मे सामने की ओर एक बेलनाकार मुख्य भाग (*Body*) और पीछे की ओर वर्टिब्रल आर्च (*Arch*) निकला रहता है। यह

एक जगह घेरती है जिससे एक छिद्र बनता है इसे 'वर्टिब्रल फोरामॅन' कहते हैं, इसमें से स्पाइनल कॉर्ड गुजरती है। वर्टिब्रा की इस आर्च में एक स्पाइनॅस प्रोसेस (तीखा उभार) पीछे की ओर उभरी रहती है तथा दो ट्रान्सवर्स प्रोसेसेस (आडे उभार) दोनों तरफ रहते हैं। इन पर पेशियाँ और लिगॅमेंट्स जुड़ते हैं। इस आर्च की निचली सतह पर दोनों तरफ एक गड्ढा होता है जिसमें से स्पाइनल कॉर्ड और रक्त-वाहिकाएँ गुजरती हैं। प्रत्येक में चार आर्टिक्यूलर प्रोसेस (Articular processes) होते हैं, दो ऊपर और दो नीचे, जो अगले वर्टीब्री के सम्बन्धित प्रोसेस से मिलते हैं।
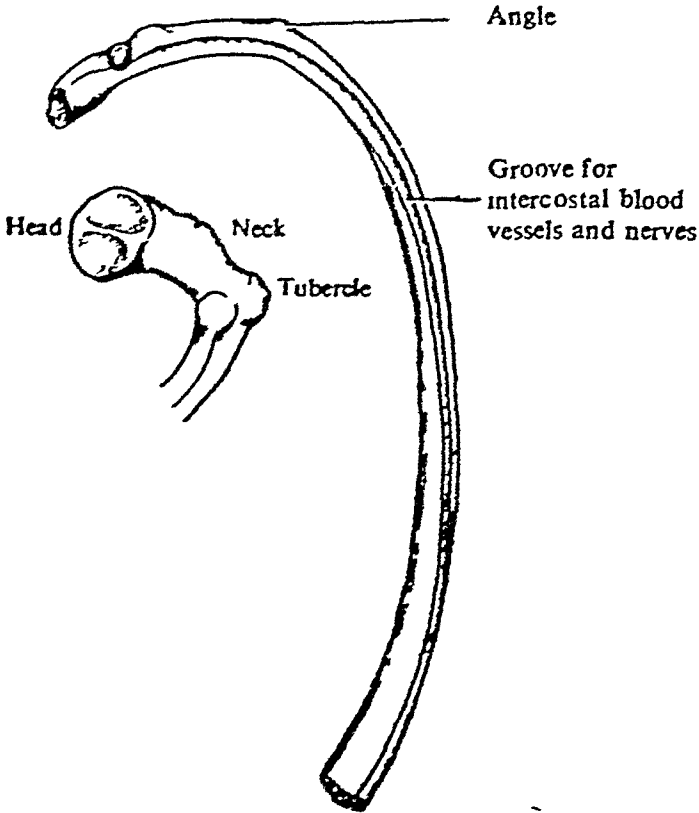
चित्र 44—एक सामान्य पसली।

आर्च के चौड़े भाग को, जिस पर स्पाइनॅस प्रोसेस रहती है, लेमिना (Lamina) कहते हैं और यह रीढ की पिछली दीवार बनाता है। किसी चोट के बाद या बीमारी के कारण स्पाइनल कॉर्ड पर पड़ने वाले दबाव को समाप्त करने के लिये किये जाने वाले लैमिनेक्टॉमि (Laminectomy) नामक ऑपरेशन में इसे निकाल दिया जाता है।

वर्टिब्री के मुख्य भाग (Bodies) आपस में तन्तुमय उपास्थि की मोटी गद्दी के द्वारा जुड़े रहते हैं, इस गद्दी को 'इन्टरवर्टिब्रल डिस्क कहते हैं। प्रत्येक इन्टरवर्टिब्रल

डिस्कस तन्तुमय उपास्थि के बाहरी छल्ले (Ring) और मुलायम एवं गूदेदार मध्य भाग की बनी रहती है। इसे न्यूक्लिअस पल्पोसस (*Nucleus pulposus*) कहते हैं। जब छल्ला फट जाता है तो न्यूक्लिअस पल्पोसस इसमें से बाहर निकल कर पीछे की ओर स्पाइनल स्नायु-मूलों या स्पाइनल कॉर्ड पर दबाव डालकर दर्द पैदा करता है।

वर्टिब्री को पाँच समूहों में विभाजित किया जाता है

1. सात सर्वाइकल वर्टिब्री
2. बारह थॉरेसिक वर्टिब्री
3. पाँच लम्बर वर्टिब्री
4. पाँच सेक्रल वर्टिब्री
5. चार कॉक्सिजिअल वर्टिब्री
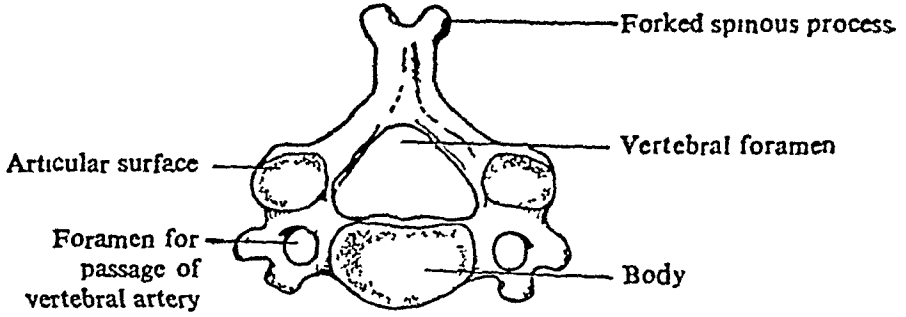
चित्र 45—एक सामान्य सर्वाइकल वर्टिब्रा।

सात सर्वाइकल वर्टिब्री (*Cervical vertebrae*) सबसे छोटे वर्टिब्री हैं। ये आसानी से पहचाने जा सकते हैं क्योंकि इनकी ट्रान्सवर्स प्रोसेसेस में छिद्र होते हैं जिनमें से मस्तिष्क की रक्तपूर्ति करने वाली वर्टिब्रल धमनियाँ गुजरती हैं। स्पाइनस प्रोसेस दो भागों में विभाजित रहती है और पेशियों तथा लिगॅमेंट को जुड़ने का स्थान प्रदान करती है।

पहले सर्वाइकल वर्टिब्रा को एटलस (*Atlas*) कहते हैं। इसमें मुख्य भाग नहीं रहता और न ही स्पाइन होती है, लेकिन अस्थि का एक छल्ला होता है जिसमें ऑक्सिपिटल अस्थि से जुड़ने के लिए दो गड्ढे होते हैं। एक लिगॅमेंट, जिसे ट्रांसवर्स लिगॅमेंट कहते हैं, छल्ले को दो भागों में बाँटता है।

एक्सिस (*Axis*) या दूसरे सर्वाइकल वर्टिब्रा में दाँत की आकृति के समान उभार रहता है जिसे डेन्स (Dens) (या ओडोन्टॉइड प्रोसेस) कहते हैं, यह मुख्य भाग से उठा हुआ रहता है और एटलस के छल्ले से गुजरकर एक धुरी (Pivot) बनाता है जिस पर एटलस घूमता है, और इसी कारण सिर भी घूमता है। इस

प्रोसेस को स्थिति मे बनाये रखने के लिए और स्पाइनल कॉर्ड पर दवाव पडने से रोकने के लिये डेन्स और स्पाइनल कॉर्ड के वीच एटलस का ट्रासवर्स लिगेमेन्ट होता है।
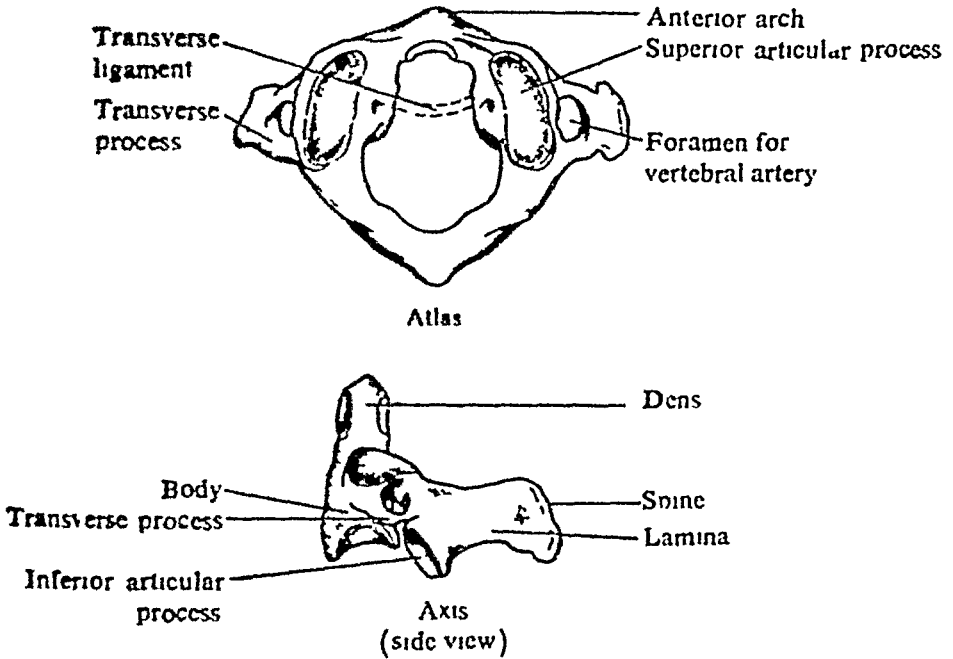
चित्र 46–प्रथम और द्वितीय सर्वाइकल वर्टिब्री।

सातवें सर्वाइकल वर्टिब्रा मे स्पाइनस प्रोसेस विभाजित नही होती है। इसकी प्रोसेस बहुत अधिक उभरी हुई रहती है, तथा इसे गर्दन के निचले भाग पर देखा व स्पर्श किया जा सकता है।

बारह थॉरेसिक वर्टिब्री (*Twelve thoracic vertebrae*) सर्वाइकल वर्टिब्री की अपेक्षा वडे होते हैं और इनके मुख्य भाग मोटे रूप मे हृदयाकार होते हैं। ये वक्ष के पीछे नीचे की ओर स्थित रहते हैं तथा पीछे की ओर एक कमान (झुकाव) बनाते हैं। इन्हें दो विशेषताओ द्वारा पहचाना जाता है

1 इसमे पसलियो के शीर्ष और ट्यूवरकल को जुडने के लिए अतिरिक्त गड्ढे दोनो तरफ होते हैं।

2 इनमे लम्बी तीखी स्पाइनस प्रोसेसेस रहती है जो नीचे की ओर उभरी रहती है। पसलियो के गोल सिरे (Heads) वर्टिब्री के वीच स्थित रहते है और ऊपर के वर्टिब्रा के गड्ढे तथा नीचे के वर्टिब्रा के गड्ढे से जुडते है।

पाँच लम्बर वर्टिब्री (*Lumbar vertebrae*) सवमे वडे वर्टिब्री हैं और उनमे पसलियो से जुडने के लिए गड्ढे नही होते। इनकी स्पाइनस प्रोसेसेस वडी होती हैं, एव पेशियो के जुडने के लिये स्थान प्रदान करती हैं।

पांच सैक्रल वर्टिब्री (*Sacral vertebrae*) एक साथ जुड़कर एक अस्थि बनाते हैं जिसे सेक्रम (*Sacrum*) कहते हैं। यह त्रिभुजाकार होती है और कूल्हे की दोनों अस्थियों के बीच फान (Wedge) की तरह फंसी रहती है। यह श्रोणि (Pelvis) के पीछे नीचे की ओर स्थित रहती है तथा पीछे की ओर कमान बनाती है। ऊपर की उभरी हुई कमान सेक्रम की प्रोमोन्टॅरि (Promontory) बनाती है (चित्र 53)। दूसरे वर्टीब्री में पाए जाने वाला वर्टिब्रल फोरामेन उसमें सेक्रल केनाल कहलाता है और उसके चार छिद्रों में से स्नायु मूल निकलती हैं।
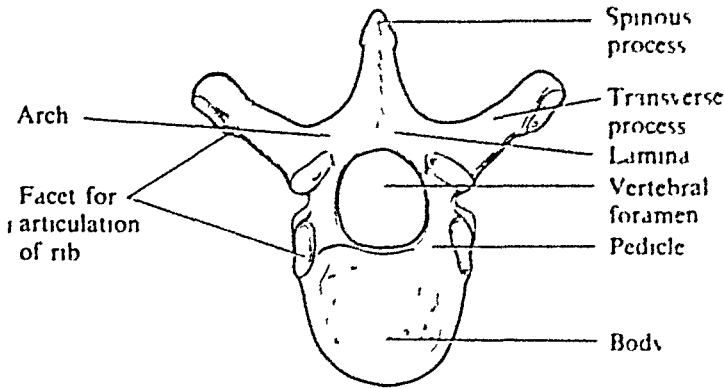
चित्र 47—एक सामान्य थरेसिक वर्टिब्रा (ऊपर से देखते हुए)।

चित्र 48—एक सामान्य थरेसिक वर्टिब्रा (साइड से देखते हुए)।

चित्र 49—लम्बर वर्टिब्रा।
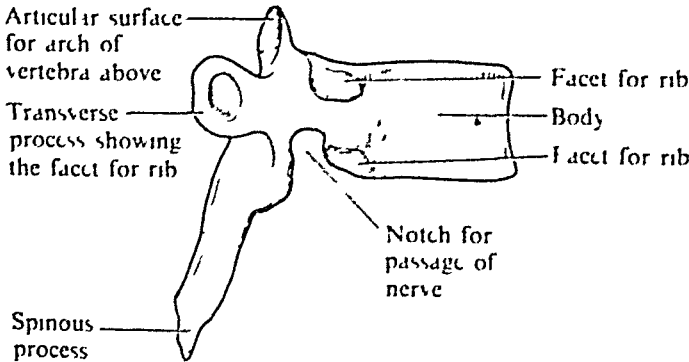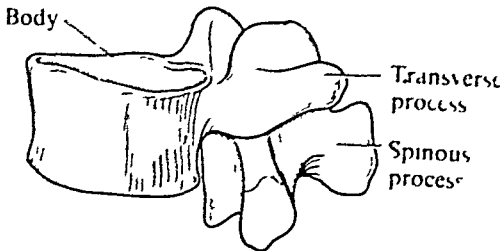
कॉक्सिक्स (*Coccyx*) एक छोटी त्रिभुजाकार अस्थि है जिसमे चार वर्टिब्री आपस में चिपके रहते है। यह सेक्रम के निचले सिरे मे जुडी रहती हैं। सेक्रम और

चित्र 50–सेक्रम ।

चित्र 51–रीढ की कशेरुकाएँ ।
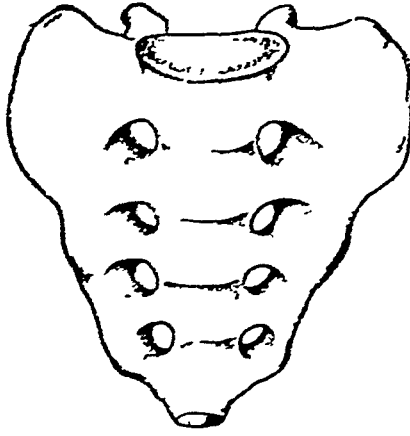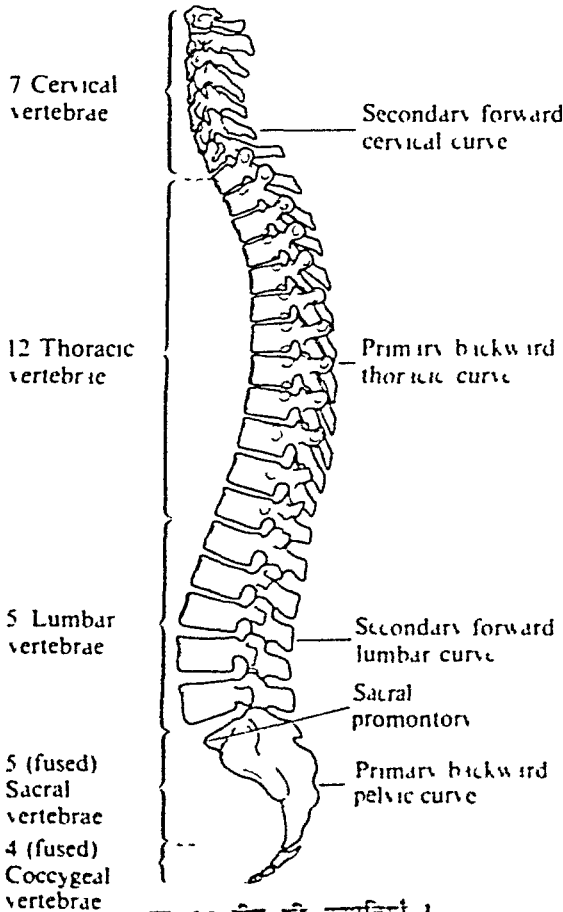
कॉक्सिक्स के बीच का जोड कॉक्सिक्स को आगे पीछे हिलने देता है। इससे शिशु-जन्म के दौरान शिशु के निकलने के लिये श्रोणि के बाह्य द्वार का आकार बढाने मे मदद मिलती है।

रीढ, धड और गर्दन का मुख्य आधार होती है एव स्पाइनल कॉर्ड को सुरक्षा प्रदान करती है। जब इसे बाजू से देखते है तो उसमे चार मोड या झुकाव (Curves) दिखाई देते हैं, वक्षीय और श्रोणीय मोड प्राथमिक मोड कहलाते हैं, क्योकि वे गर्भस्थ शिशु मे रहते है। सर्वाइकल और लम्बर मोड द्वितीयक हैं, क्योकि वे तब दिखाई देते हे जबकि बच्चा सिर उठाता है और बैठता है (सर्वाइकल) और जब वह खडे होना और चलना शुरू करता हे (लम्बर)।

यद्यपि दो वर्टिब्री के बीच सीमित हलचल होती है लेकिन पूरी रीढ मे काफी हलचल हो सकती है। इन्टरवर्टीब्रल डिस्क कूदने वगैरह से होने वाले आघात को सहने हेतु गद्दियाँ प्रदान करती हैं। मोड रीढ को बिना टूटे झुकने देते हैं, किन्तु यदि रीढ पर जोर से मारा जाए तो इससे अस्थिभग या विस्थापन हो जाता है, क्योकि वर्टिब्री आपस मे काफी मजबूती से जुडे रहते है।

8. हाथ-पैर की अस्थियाँ
Bones of the Limbs

भुजा (हाथ) की अस्थियाँ (The Bones of the upper Limbs)

भुजा (हाथ) की अस्थियाँ निम्नलिखित है

स्कैप्युला
क्लैविकल } स्कंध गर्डल बनाती हैं।

ह्यूमरस
रेडिअस
अलना } अग्र-भुजा बनाती है।

आठ कार्पल अस्थियाँ,
पाँच मेटाकार्पल अस्थियाँ
चौदह् फैलेन्जेस

स्कैप्यूला (Scapula) त्रिकोणाकार चपटी अस्थि है; यह वक्ष के पीछे पसलियो के ऊपर स्थित रहती है, लेकिन उनसे जुडती नही है। यह उन पेशियो के द्वारा स्थिति मे रहती है जो इसे पसलियो और रीढ से जोडती है। इस व्यवस्था से शोल्डर गर्डल को काफी मुक्त हलचल करने का मौका मिलता है जिससे हाथ शरीर के आगे एव पीछे तथा आजू-बाजू दूर तक पहुँच सकता है, स्कैप्यूला अस्थि गिरने से प्राय नही टूटती क्योकि यह पेशियो से ढँकी रहती है। इसमे तीन किनारे और
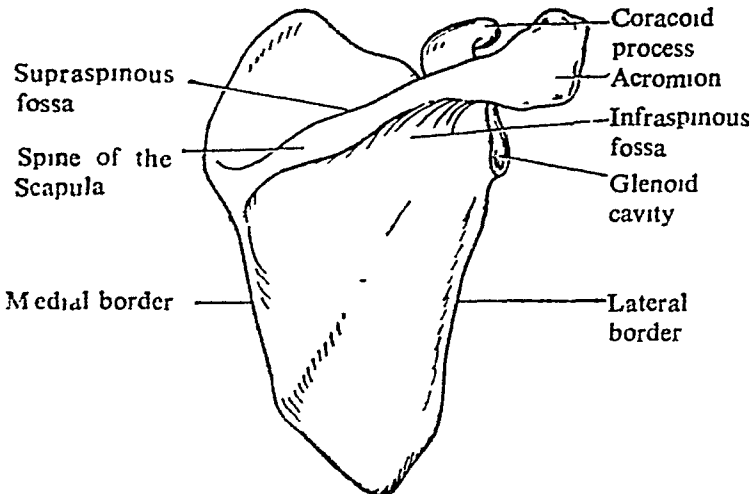
चित्र 52—स्कैप्यूला।

तीन कोण होते हैं, निचले सिरे को कोण इसलिये कहा जाता है क्योंकि यह सबसे नुकीला रहता है और आसानी से स्पर्श किया जा सकता है। पसलियो पर आधार लेने के लिये इसकी सामने की सतह अवतल रहती है, पीछे की सतह उनल होती है तथा इस पर एक उभरी हुई किनार रहती है जिसे स्कैप्यूला की स्पाइन कहते हैं। यह पेशियों के जुड़ने के लिये स्थान प्रदान करती है तथा दो गड्ढे या 'फोसी' बनाती है, एक ऊपर एव एक नीचे।

अस्थि के बाहरी कोण पर एक उथला गड्ढा रहता है जिसे *ग्लीनॉइड गुहिका* (*Glenoid cavity*) कहते है, इसमे कंधे का जोड बनाने के लिये ह्यूमरस अस्थि का सिरा प्रविष्ट होता है। इसके ऊपर दो प्रोसेसेस उभरी हुई रहती है

1 *एक्रोमिअन प्रोसेस* (*Acromion process*) यह बडी होती है और गड्ढे (गुहिका) को ढँके रहती है, तथा स्कध गर्टल बनाने के लिये क्लैविकल से जुडती है।

2 *कोराकॉइड प्रोसेस* (*Coracoid process*) यह आगे की ओर उभरी हुई रहती है तथा काँटे के समान होती है।

इन दोनो को छू कर अनुभव किया जा सकता है। ये पेशियो के जुडने के लिये स्थान प्रदान करती है तथा ह्यूमरस के सिरे को स्थिति मे बनाये रखने मे भी सहायता करती है और ऊपर की तरफ विस्थापन होने से रोकती है।

चित्र 53—क्लैविकल।

क्लैविकल (Clavicle) लम्बी अस्थि है जो करीब-करीब S के आकार की होती है। यह अपने अन्दरूनी या स्टर्नल सिरे पर स्टर्नम से जुडती है और बाहरी या एक्रोमिअन सिरे पर स्कैप्यूला से जुडती है। ये दोनो सिरे एक दूसरे से आसानी से पहचाने जा सकते है। अन्दरूनी सिरा पिरामिड की आकृति के समान होता है। बाहरी सिरा चपटा, तथा आकृति और प्रकार मे स्कैप्यूला के एक्रोमिअन प्रोसेस के बहुत समान होता है, जिससे कि यह जुडता है। यह अस्थि त्वचा के नीचे स्थित रहती है तथा इसे पूरी लम्बाई मे आसानी से स्पर्श किया जा सकता है। स्टर्नल सिरे से आरम्भ होकर यह पहले आगे की ओर तथा बाद मे पीछे की ओर मुडती है। यह स्कैप्यूला को स्थिति मे रखती है और जब यह टूट जाती है तो कधा आगे एव नीचे की ओर झुक जाता है। भुजा और अक्षीय अस्थिककाल (Axial skeleton) के बीच सिर्फ यही एक कडी है, क्योंकि स्कैप्यूला न तो पसलियो और न ही रीढ से

जुडती है, यह एक ऐसी अस्थि है, जो चार पैरो वाले कई प्राणियो के अस्थि पजर मे नही पायी जाती है, क्योकि इसकी आवश्यकता केवल तव ही होती है जव भुजा को धड से वाहर की ओर घुमाया जाता है। कधे के वल गिर जाने मे यह अस्थि आसानी से टूट सकती है, क्योकि यह स्टर्नम और गिरने के स्थान के वीच दव जाती है। दरअसल यह अच्छा ही है कि यह टूटे वजाय इसके कि गर्दन के निचले भाग पर चोट लगे जहाँ कई महत्वपूर्ण भाग होते है, या कधे के वास्तविक जोड पर चोट लगे जहाँ पर चोट के कारण हलचल सीमित होने की आशका रहेगी।

ह्यूमरस (Humerus) · एक लम्वी तथा भुजा की सवसे वडी अस्थि है। इसके ऊपरी सिरे पर एक गोलाकार सिर (Head) होता है जो हाइएलीन उपास्थि से ढँका रहता है और स्कैप्युला की *ग्लेनॉइड गुहिका* मे फिट होकर कधे का जोड बनाता है। ऊपरी सिरे पर *ऐनाटॉमिकल गर्दन* के सकीर्णन के पास वडे और छोटे *ट्यूवरक्ल्स* होते है जिन पर पेशियाँ जुडती है। ये ट्यूवरकल्स एक गहरे गड्ढे द्वारा पृथक रहते है जिसमे से वाइसेप्स पेशी के टेन्डन्स गुजरते है।
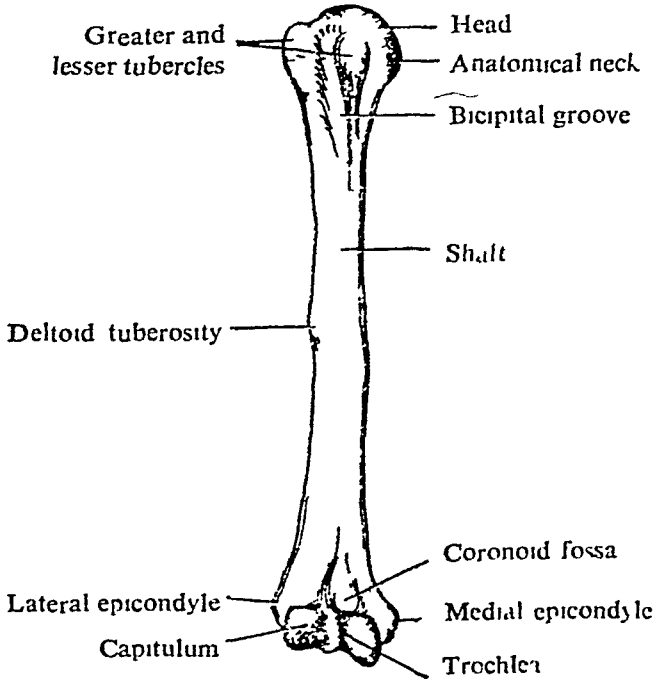
चित्र 54–ह्यूमरस (सामने से देखने पर)।

शाफ्ट पर कई खुरदरी सतहे होती है जो पेशियो के जुडने के लिये स्थान प्रदान करती है। इन सब मे से अधिक स्पष्ट वाहर की ओर स्थित *डेल्टॉइड ट्यूवॅरॉसिटि* होती है जहाँ डेल्टॉइड पेशी का प्रवेशन (Insertion) होता है। शाफ्ट के पिछले

भाग मे एक चक्राकार गड्ढा रहता है जिसमें से रेडिअल स्नायु गुजरती है। यह स्नायु भुजा की तीन मुख्य स्नायुओं मे से एक है।

ह्यूमरस का निचला सिरा संधि और असंधि (Articular and Non-articular) भागो मे बटा रहता है। संधि भाग रेडिअस और अल्ना के साथ मिलकर कोहनी का जोड (Elbow joint) बनाता है। यह एक उथले गड्ढे के द्वारा मेरीडियन मे विभाजित होता है। यह गोल उभार रेडिअस से जुडता है और घिरनीनुमा (Pulley) ट्रॉक्लिआ अल्ना के साथ जुडता है। असंधि (*Non-articular*) वाले भाग मे दो एपिकॉन्डाइल्स (*Epicondyles*) होते हैं जिनमे पेशियाँ जुडती हैं। दो गहरे गड्ढे भी होते हैं, पिछले को *ऑलिक्रेनॉन फोसा* (*Olecranon fossa*) कहते हैं, क्योंकि जब कोहनी फैलती है तब यह अल्ना के ओलिक्रेनन प्रोसेस को स्थान देता है। अगली सतह पर कोरोनॉइड फोसा (*Coronoid fossa*) होता है जो कुहनी के मुडने पर अल्ना के कोरोनॉइड प्रोसेस को समाने का स्थान देता है।

रेडिअस (Radius) अग्र-भुजा की बाहरी अस्थि है। इसका ऊपरी सिरा छोटा होता है, तथा इस पर गोलाकार सिर होता है जो ऊपर ह्यूमरस के बाहरी कॉन्डाइल से एवं अन्दर की तरफ अल्ना से जुडता है। ऊपरी सिरे के नीचे *गर्दन* होती है, तथा अस्थि के सामने की तरफ *रेडिअल ट्यूबरॉसिटि* नामक एक प्रोसेस होती है, जिस पर बाइसेप्स पेशी जुडती है। शॉफ्ट पर एक तीखी किनार अल्ना की तरफ होती है। इस किनार से तन्तुमय ऊतक की एक पट्टी *इन्टरोसिअस झिल्ली* अल्ना तक फैली रहती है। तन्तुमय ऊतक की यह पट्टी दोनो अस्थियो को पूरी लम्बाई मे जोडती है। इस अस्थि का निचला सिरा चौडा हो जाता है तथा इस पर कलाई के साथ जुडने वाली सतह होती है। इस पर स्टाइलॉइड प्रोसेस भी होती है जिसे अंगूठे के आधार (Base) पर आसानी से अनुभव किया जा सकता है।

अल्ना (Ulna) अग्र-भुजा के अन्दर की तरफ स्थित रहती है। इसका ऊपरी सिरा हुकनमा होता है जिस पर दो उभार होते हैं। *ऑलिक्रेनन* जब भुजा सीधी होती है तब ह्यूमरस के ऑलिक्रेनॉन फोसा मे फिट हो जाती है और कोहनी का नुकीला हिस्सा बनाती है। इस पर ट्राइसेप्स पेशी जुडती है तथा यह कोहनी जोड को पीछे की ओर झुकने या मुडने से रोकती है। *कोरोनॉइड प्रोसेस* छोटी होती है तथा आगे की ओर निकली हुई रहती है। ये दोनो प्रोसेसेस *ट्रॉक्लीअर नॉच* (*Trochlear notch*) बनाने मे सहायता करते हैं जो ह्यूमरस के ट्रॉक्लिया से जुड जाते हैं। रेडिअल नॉच कोरोनॉइड प्रोसेस के ऊपर एक गड्ढा है जिससे रेडिअस का शीर्ष जुडता है। यह जोड हाथ को घुमाने मे सहायक होता है। जब कोहनी मे हाथ घूमता है तब रेडिअस का निचला सिरा अल्ना के निचले सिरे का चक्कर लगाते हुए घूम जाता है और कलाई के अन्दर की तरफ आ जाता है। घूमने की इस क्रिया मे दोनो अस्थियो के शॉफ्ट्स अग्र-भुजा की मध्य रेखा मे क्रास होते है।

रेडिअॅस के शाफ्ट के समान अलूना के शाफ्ट पर भी तन्तुमय ऊतक की पट्टी के जुड़ने के लिये एक तीखी किनार रहती है। तन्तुमय ऊतक की इस पट्टी को इन्टर-ऑसीयॅस झिल्ली (Interosseous membrane) कहते हैं जो दो अस्थियो के बीच स्थित रहती है।
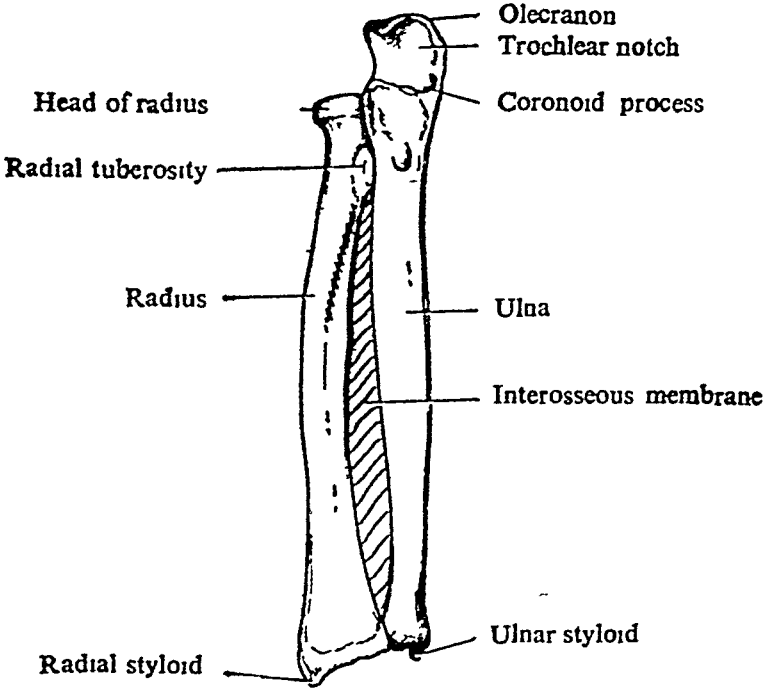
चित्र 55—रेडिअस और अलूना।

अल्ना का निचला सिरा गोल होता है, इसे शीर्ष (Head) कहते हैं, एक उभार भी होता है जिसे स्टाइलॉइड प्रोसेस कहते हैं। शीर्ष रेडिअॅस की अल्नर नॉच से जुडता है। स्टाइलॉइड प्रोसेस कलाई के जोड के लिगॅमेट को जुडने का स्थान प्रदान करते हैं। इसे कलाई की त्वचा के नीचे स्पर्श किया जा सकता है और कभी-कभी यह बहुत ही उभरा रहता है।

कारपल (या कारपस) अस्थियाँ (Carpal bones) : आठ छोटी-छोटी असमाकृति अस्थियाँ हैं जो चार-चार की कतारो मे होती हैं। ऊपरी कतार की अस्थियो को स्कॅफॉइड (*Scaphoid*), ल्यूनेट (*Lunate*), ट्राइक्वीट्रल (*Triquetral*) और पिसिफॉर्म (*Pisiform*) कहते हैं। निचली कतार मे ट्रेपीजिअम (*Trapezium*), ट्रेपीजॉइड (*Trapezoid*), कैपीटेट (*Capitati*) और हैमेट (*Hamate*) नाम की अस्थियाँ होती हैं। कारपस की हथेली बनाने वाली सतह गहरी होती है, उसे कारपल गड्ढा (*Carpal groove*) कहते हैं। उसमे तन्तुमय पट्टियाँ होती हैं जिसमे मध्यस्नायु और टेन्डन्स रहते हैं। इसे कारपल टनल (*Carpal Tunnel*) के नाम से जाना जाता है।

मेटाकारपल अस्थियाँ या मेटाकारपस (Metacarpal bones or Metacarpus) पाँच छोटी और लम्बी अस्थियाँ हैं, जो हथेली मे फैली रहती हैं। इन अस्थियो के आधार (Bases) कारपस की निचली अस्थियों से जुडे रहते हैं; शीर्ष फैलेन्जेस के साथ जुडता है। पहली मेटाकरपल, जो कि अगूठा बनाने वाली दो फैलेन्जेस से जुडती है, आसानी से हिल-डुल सकती है।
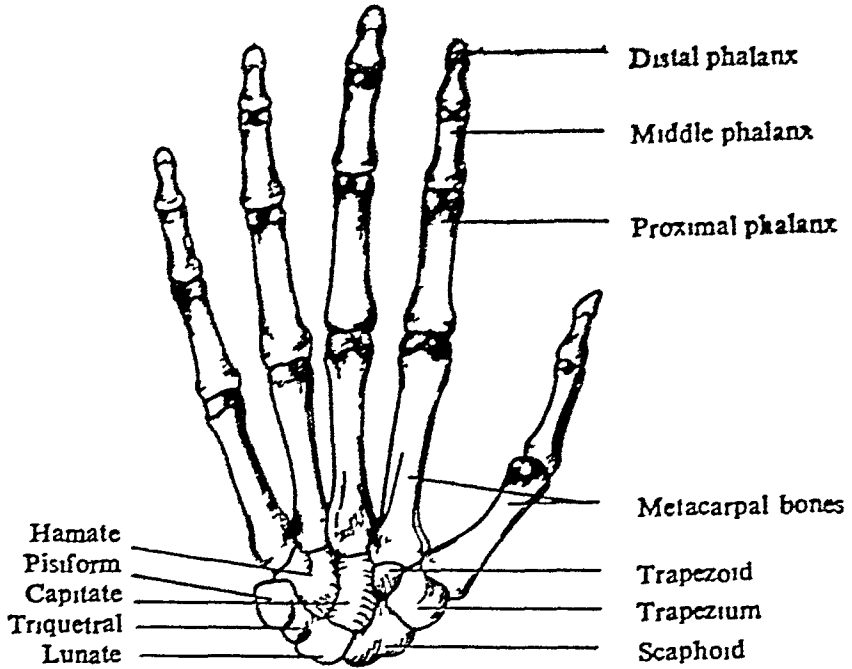
चित्र 56—हाथ।

यह हर अंगुली के सामने भी आ सकती है इसमें पकड मजबूत होती है।

फैलेन्जेस (Phalanges) छोटी और लम्बी अस्थियाँ हैं। इनकी संख्या प्रत्येक अंगुली में तीन और अगूठे मे दो होती हैं।

पैर की अस्थियाँ (The Bones of the Lower Limbs)

पैर की अस्थियाँ निम्नलिखित है

कूल्हे की अस्थि, जो श्रोणि या पेल्विस का भाग बनाती है।

फीमर

पटेला

टिबिआ } टाँग बनाती है।
फिबुला }

सात टार्सल अस्थियाँ

पाँच मेटाटार्सल्स

चौदह फैलेन्जेस

कूल्हे की अस्थि (Hip bone) बडी और असमाकृति अस्थि है जो सामने की ओर अपने जैसी दूसरी अस्थि से जुडी रहती है। यह अस्थि तीन अलग-अलग भागो मे विकसित होती है जो उपास्थि द्वारा जुडे रहते है। ये तीन भाग है—*इलिअम (Illium)*, *इस्किअम (Ischium)* और *प्यूबिस (Pubis)*। इन तीनो के भाग कप के आकार का गड्ढा बनाते है जिसे एसिटॅब्यूलम (*Acetabulum*) कहते है। पद्रह से पच्चीस वर्ष की आयु के बीच अस्थि का विकास पूरा नही होता तब वह उपास्थि द्वारा जुडी रहती है।
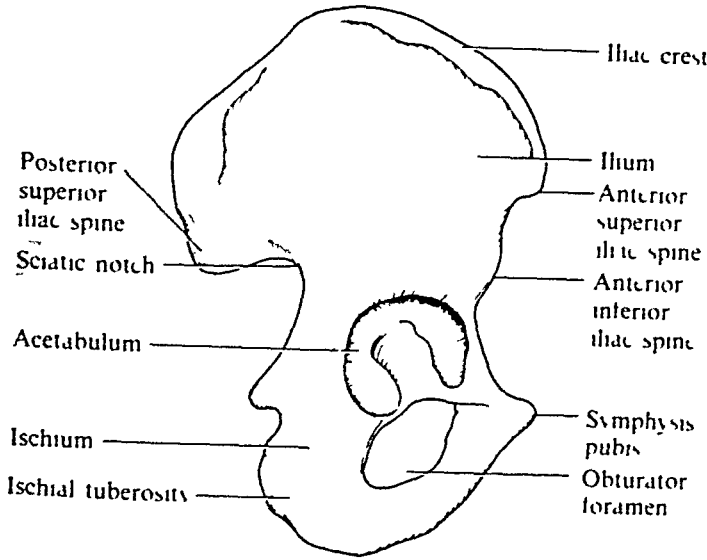
चित्र 57—कूल्ह की अस्थि।

इलिअम मे एसिटॅब्यूलम का ऊपरी हिस्सा भी शामिल है। इसके ऊपर की ओर चौडी किनार होती है जिसे *इलिअक क्रेस्ट (Iliac crest)* कहते है। यह क्रेस्ट उदरीय दीवार की पेशियो से जुडने के लिये स्थान प्रदान करती है। सामने की तरफ यह क्रेस्ट 'एन्टिरिअर स्यूपीरिअॅर इलिअॅक स्पाइन' के रूप मे समाप्त हो जाती है जिसे त्वचा के नीचे आसानी मे अनुभव किया जा सकता है। इस क्रेस्ट के पीछे 'पोस्टीरिअर स्यूपीरिअॅर इलिअॅक स्पाइन' रहता है जो पीठ के निचले भाग पर दोनो तरफ आसानी से दिखने वाले गड्ढो के नीचे स्थित रहता है। इलिअम मे 'इन्फीरिअर एन्टिरिअर व पोस्टीरिअर स्पाइन्स' भी रहते हैं, जो इनकी चौडी सतहो के साथ कूल्हे को नियन्त्रित करने वाली कई शक्तिशाली पेशियो के जुड़ने के लिये स्थान प्रदान करते है। इस अस्थि के पीछे सेक्रम से जुडने के लिये एक जोड बनाने वाली सतह रहती है, तथा इसके नीचे साएटिक स्नायु के गुजरने के लिये एक नॉच रहती है, जिसे ग्रेटर *साएटिक नॉच* कहते हैं।

इस्कियम, कूल्हे की अस्थि का निचला एवं पिछला भाग है। इस पर इस्कियल उभार (*Ischial tuberosity*) रहता है, जहाँ पेशियाँ जुड़ती हैं। यह अस्थि बैठी हुई स्थिति मे शरीर का वजन वहन करती है।

प्यूबिस कूल्हे की अस्थि का सामने का निचला भाग है जो श्रोणि की सामने की दीवार बनाता है। दोनो ओर की प्यूबिस अस्थियाँ तन्तुमय उपास्थि की मोटी गद्दी द्वारा मध्य रेखा मे एक-दूसरे से जोड़ी जाती है, इस जोड़ को *सिम्फिसिस प्यूबिस* (*Symphysis pubis*) कहते है। प्यूबिस का मुख्य भाग सिम्फिसिस बनाने मे हिस्सा लेता है तथा इसकी दो शाखाएँ है जिनमे से ऊपर की शाखा इलियम से तथा नीचे की शाखा इस्कियम से जुड़ती है। इन दोनो शाखाओ और इस्कियम के बीच एक बड़ा छिद्र रहता है जिसे ऑब्ट्यूरेटॅर फोरमॅन (*Obturator foramen*) कहते हैं। यह तन्तुमय ऊतक द्वारा भरा रहता है।

एसीटॅब्यूलम (*Acetabulam*) कूल्हे की अस्थि के निचले भाग के मध्य मे एक गड्ढा है जिसमे फीमर अस्थि का सिर फिट होता है।

श्रोणि (*Pelvis*) अस्थिमय गोलाई है जो कूल्हे की दो अस्थियो और सेक्रम तथा कॉक्सिक्स से बनती है। यह बड़ी (अवास्तविक) और छोटी (वास्तविक) श्रोणि मे *लिनिआ टर्मिनेलिस* (*Linea Terminalis*) और सेक्रम के सिरे से विभाजित रहती है। बड़ी श्रोणि ऊपर का बढ़ा हुआ भाग है जो दोनो तरफ से इलियम और पीछे
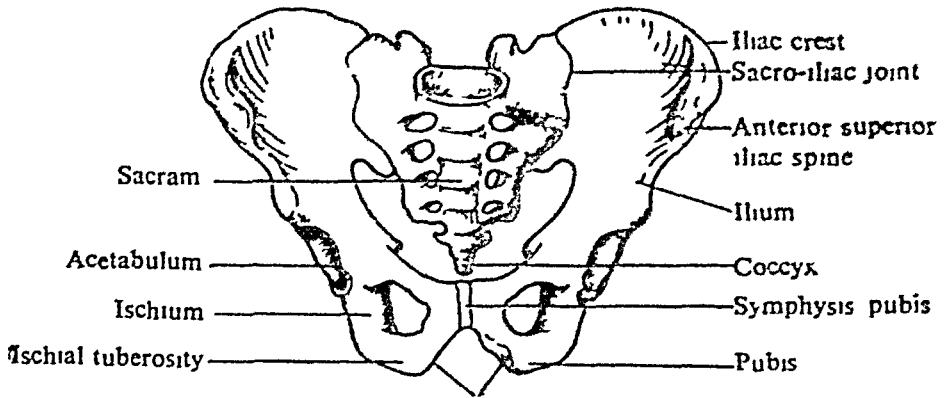
चित्र 58—पुरुष की श्रोणि।

की तरफ सेक्रम के आधार से कसा रहता है। छोटी श्रोणि मे एक छोटी मुड़ी नाली होती है जोकि पीछे की तरफ अधिक गहरी रहती है। महिलाओ की श्रोणि पुरुषो से छोटी और अधिक चौड़ी होती है। उसका किनारा गोल होता है जबकि पुरुषो मे उसका आकार हृदय की तरह होता है।

फीमर (Femur) : लम्बी तथा शरीर की सबसे बड़ी और मजबूत अस्थि है। इसके ऊपरी सिरे पर एक गोलाकार सिर होता है जो कूल्हे के एसिटॅब्यूलम से

जुड़ता है। सिर के शिखर पर एक छोटा गड्ढा फोविया (*Fovea*) होता है जहाँ फीमर के सिर का लिगॅमेन्ट जुडता है, यह लिगॅमेन्ट फीमर के सिर से एसिटॅब्यूलम के तल तक होता है। सिर के नीचे लम्बी सकरी गर्दन रहती है जो शॉफ्ट से एक निश्चित कोण पर मुड़ी रहती है, यह कूल्हे के जोड को मुक्त हलचल प्रदान करता है। जहाँ गर्दन शॉफ्ट से जुडती है वहाँ पेशियो के जुडने के लिये दो उभरी हुई
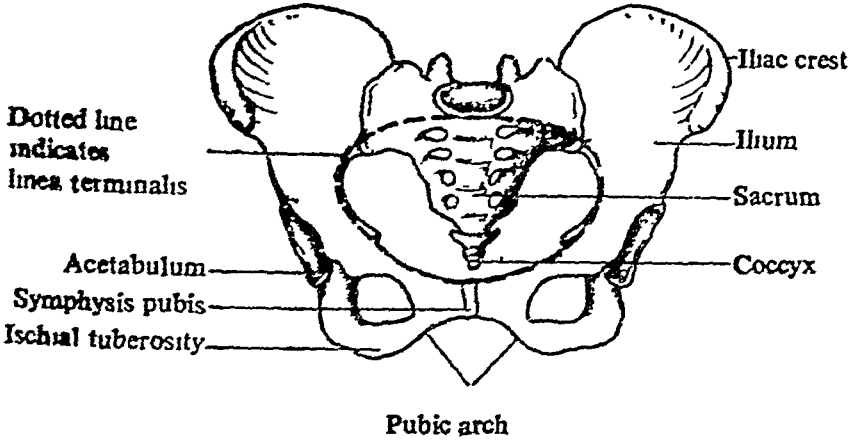
चित्र 59—स्त्री की श्रोणी।

प्रोसेसेस रहती है, इन्हें ग्रेटर (बडा) और लेसर (छोटा) ट्रॉकेन्टर्स कहते हैं। ग्रेटर ट्रॉकेन्टर बाहर की तरफ त्वचा के एकदम नीचे स्थित रहता है, अत यह आसानी से महसूस किया जा सकता है। फीमर का शॉफ्ट बीच मे पतला और निचले सिरे पर चौडा रहता है । पिछली सतह को छोडकर यह चिकना एवं गोल रहता है। पिछली सतह पर एक खुरदरी किनार अस्थि की पूरी लम्बाई मे स्थित होती है जिसे *लिनिआ एस्पिरा* (*Linea aspera*) कहते हैं। यह किनार पेशियो के जुडने के लिये स्थान प्रदान करती है । फीमर अस्थि का निचला सिरा अत्यधिक रूप से फैला हुआ रहता है ताकि टिबिआ अस्थि पर शरीर का वज़न वहन होने के लिये अधिक क्षेत्र उपलब्ध रहे । इस सिरे पर दो बडे कॉन्डाइल्स रहते हैं जो टिबिआ अस्थि से जुडते हैं, पीछे की ओर ये इन्टरकॉन्डाइलर फोसा नामक गहरे स्थान से पृथक् रहते हैं तथा सामने की ओर चिकनी सतह द्वारा जुडे रहते हैं, यह सतह पटेला अस्थि से जुडती है। कॉन्डाइल्स के ऊपर अस्थि के पिछले भाग पर पॉप्लिटीअल सतह होती है जो पॉप्लिटीअल गड्ढा (*Popliteal fossa*) बनाती है, इसमे रक्तवाहिकाएँ और स्नायु रहते हैं।

पटेला (Patella) घुटने के सामने क्वाड्रिसेप्स पेशी के टेन्डॅन मे स्थित रहती है जो घुटने को मजबूत बनाती है। इस प्रकार विकसित होने वाली अस्थियो को·

सेसमाइड अस्थियाँ (*Sesamoid bones*) कहते हैं। पटेला चपटी त्रिकोणाकार अस्थि है जिसका शिखर नीचे की ओर रहता है उसकी पिछली सतह चिकनी रहती है और फीमर की कोंडाइल से जुड़ती है। उसकी अगली सतह खुरदरी होती है और त्वचा की एक थैली जो कि साइनोवियल झिल्ली की तरह होती है, के द्वारा पृथक रहती है उसे बर्सा (*Bursa*) कहते हैं।
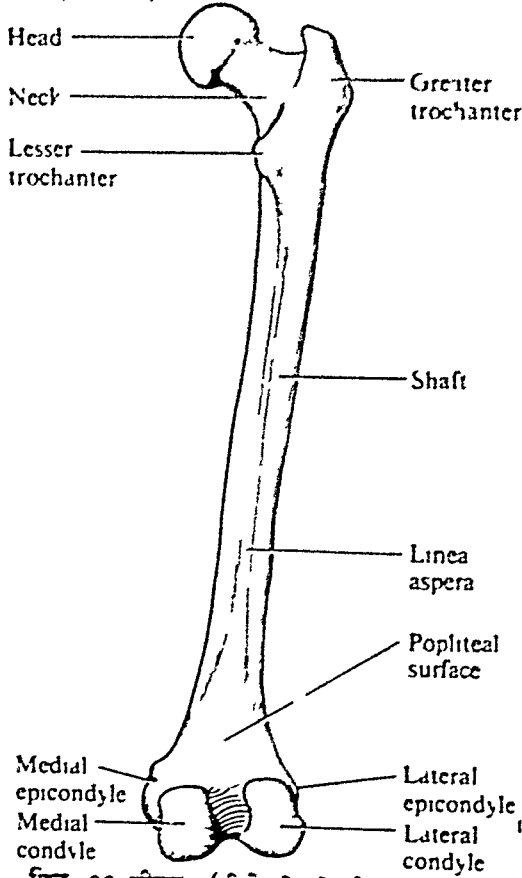
चित्र 60—फीमर (पीछे से देखने पर)।

टिबिआ (Tibia) टांग की दोनों अस्थियों में अधिक मजबूत अस्थि है और अन्दर या मध्य की ओर रहती है। इसका ऊपरी सिरा काफी चौड़ा होता है और शरीर के वजन को झेलता है। इसमें दो स्पष्ट उभार होते हैं जिन्हें मीडियल और लेटरल कॉन्डाइल कहते हैं। ये फीमर के कॉन्डाइल्स से जुड़ते हैं। इन दोनों के बीच खुरदरा क्षेत्र है जो घुटने का जोड़ बनाने वाले लिगॅमेन्ट्स और उपास्थियों को जुड़ने का स्थान प्रदान करता है। कॉन्डाइल के नीचे एक छोटा उभार होता है जिसे टिबिआ की ट्यूबरॉसिटी या उभार कहते हैं। उस पर लिगॅमेंटम पटेली (*Ligamentum patellae*) जुड़ता है। लेटरल कॉन्डाइल पर एक छोटा गोल गड्ढा होता है जिस पर फिबुला का ऊपरी सिरा जुड़ता है।

टिबिआ का *शॉफ्ट* आडी काट मे मोटे रूप से त्रिकोणाकार होता है। इसमे तीन किनारे या उभार होते हैं, इनमे सबसे ज्यादा स्पष्ट उभार अस्थि के सामने होता है जो शिन (Shin) बनाता है और इसे त्वचा के नीचे महसूस किया जा सकता है। दूसरा उभार फिबुला की ओर रहता है तथा तन्तुमय ऊतक की पट्टी (इन्टरॉसिअॅस झिल्ली) को जुडने के लिये स्थान प्रदान करता है। यह पट्टी इन दो अस्थियो को आपस मे जोडती है ठीक उसी प्रकार जैसे कि अग्रभुजा मे रेडिअॅस एव अलना को एक तन्तुमय पट्टी जोडती है, इस अस्थि का *निचला सिरा* कुछ फैला हुआ होता है तथा नीचे की ओर निकला रहता है। वह *मिडिअल मेलिओलस– (Medial malleolus)* नामक उभार बनाता है। यह उभार टखने की भीतरी ओर होता है और *टैलस (Talus)* से जुडता है। यह अस्थि फिबुला मे भी जुडी रहती है।

फिबुला (Fibula) टाँग के बाहर की तरफ स्थित यह पतली लम्बी अस्थि है। इसका ऊपरी भाग सिर, घुटने के ठीक नीचे टिबिआ से जुडता है। यह जोड बनाने मे भाग नही लेती है। *शॉफ्ट* पतला होता है तथा इस पर उभारें (किनारें) रहती हैं। इन उभारो मे से एक पर तन्तुमय ऊतक की पट्टी जुडी होती है जो इसको टिबिआ से जोडे रखती है। इसका निचला सिरा टखने के बाहर की तरफ एक अस्थिमय उभार बनाता है जिसे *लेटरल मेलिओलस* कहते हैं। यह टिबिआ के नीचे निकला रहता है और टैलस नामक अस्थि से जुडता है।
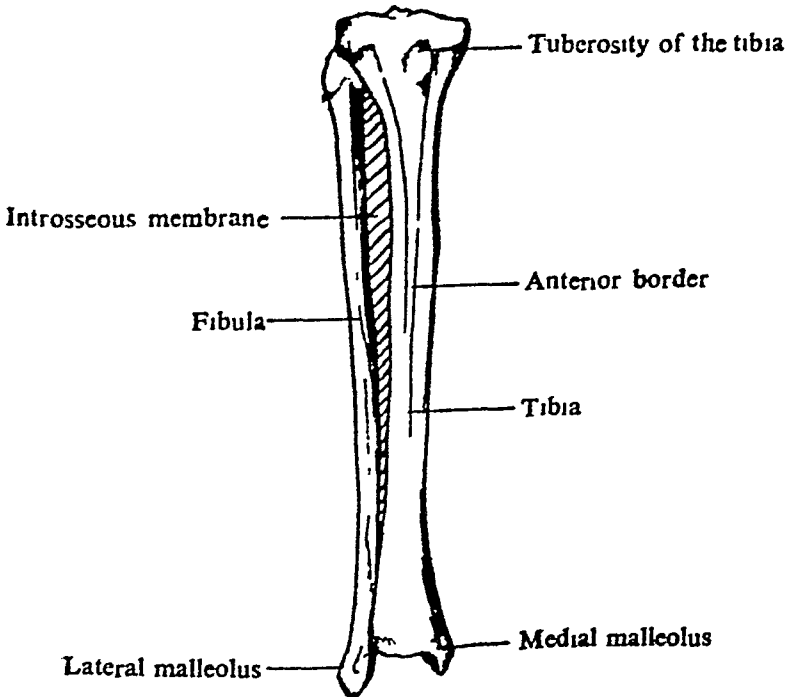
चित्र 61–टिबिआ एव फिबुला (सामने से देखने पर)।

टार्सल अस्थियां (Tarsal bones) या टार्सल सात होती हैं और पैर का पिछला आधा भाग बनाती हैं। टेलस पंजे और टांग को जोड़ने वाली मुख्य अस्थि है और टखने के जोड़ का महत्वपूर्ण हिस्सा बनाती है। कैल्केनियस (*Calcaneus*) टारसल अस्थियों में सबसे मजबूत और बड़ी अस्थि है। यह पीछे की ओर निकली रहती है और एड़ी का उभार बनाती है। यह पिण्डली की पेशियों को लीवर (*Lever*) प्रदान करती है, जो कि उसकी पिछली सतह से जुड़ी रहती हैं। नैविक्यूलर (*Navicular*) अस्थि टैलस और तीन क्यूनिफार्म अस्थियों के बीच रहती है। तीन क्यूनिफार्म अस्थियां (*Cuneiform*) फानाकार होती हैं और नैविक्यूलर और पहली तीन मेटाटारसल अस्थियों से जुड़ी रहती हैं। क्यूबॉइड (*Cuboid*) अस्थि कैल्केनियस और पाँचवीं मेटाटारसल अस्थि के बीच होती है।
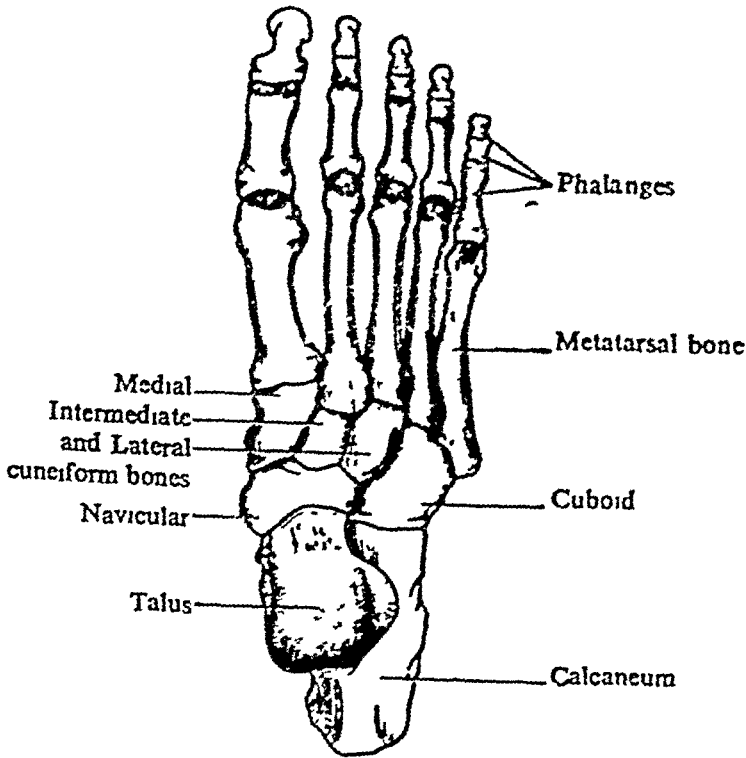
चित्र 62–पाँव।

मेटाटार्सल अस्थियां (Metatarsal bones) या मेटाटार्सस पाँच छोटी लम्बी अस्थियां हैं जो मेटाकारपस की तरह ही होती हैं। उनके आधार (*Bases*) क्यूनीफार्म और क्यूबॉइड अस्थियों से जुड़े रहते हैं। शीर्ष फैलेन्जेस से जुड़ते हैं। हाथ की तरह पाँव में भी फैलेन्जेस की संख्या और क्रम रहता है, अंगूठे में दो और अन्य अंगुलियों में तीन।

पाँव की आर्चेस (The Arches of the Foot) :

पाँव के दो मुख्य कार्य हैं : शरीर के वजन को सहारा देना और चलते समय शरीर को आगे की ओर धकेलना। इन कार्यों को पूरा करने के लिए पाव मे दो लम्बी आर्चेस (*Longitudinal arches*) होती हैं। मीडिअल आर्च विशेष रूप से लचीली होती है और लेटरल आर्च मजबूत, वह सीमित हलचल होने देती है। आड़ी आर्चेस की भी एक शृंखला होती है।

पाँव की आर्चेस चलते समय पाव को उछाल (*Spring*) प्रदान करती हैं। इस कार्य मे तलुए से गुजरने वाले मजबूत लिगमेंट्स टेन्डन्स और पेशियाँ सहायता करती हैं, खिंच जाने पर मीडिअल लांगिट्यूडिनल आर्च नीची हो जाती है और अंतत स्वयं अस्थियो मे परिवर्तित हो जाती है और 'चपटा पाँव' (*Flat foot*) नामक स्थिति निर्मित हो जाती है।

9. जोड़ या सन्धियाँ

Joints or Articulations

जहाँ कही दो या दो से अधिक अस्थियाँ मिलकर एक दूसरे से जुडती हैं वहाँ जोड या सन्धियाँ बनती हैं, परन्तु यह आवश्यक नही है कि हर जोड पर एक अस्थि दूसरी के ऊपर घूमे। जोडो को तीन वर्गों मे विभाजित किया जाता है :

1 *तन्तुमय* या अगतिशील जोड
2. *उपास्थिमय* या मामूली गतिशील जोड
3 *साइनोविअल* या पूर्णत गतिशील जोड

किन्तु सभी जोड इस वर्गीकरण मे अच्छी तरह नही आते, क्योंकि कुछ जोड ऐसे भी हैं जो थोडे से गतिशील हैं (जैसे टिबिआ और फिबुला का निचला जोड)। कुछ उपास्थिमय जोड होते हैं जो विरले ही गतिशील हैं (जैसे सिम्फीसिस प्यूबिस)।

अस्थियाँ आपस मे लिगॅमेन्ट्स (अस्थि बन्धनो) द्वारा जुडी रहती हैं, लिगॅमेन्ट्स तन्तुमय ऊतक की मजबूत डोरियाँ (Cords) हैं जो एक अस्थि से दूसरी अस्थि तक फैली होती हैं और पेरिऑस्टिअॅम से मजबूती से जुडी रहती हैं। ये लिगॅमेन्ट्स थोडे तन सकते हैं लेकिन अलचीले होते हैं। विभिन्न लिगॅमेन्ट्स उनके कार्यों एव उन पर पडने वाले तनाव के अनुसार मजबूती और आकृति मे भिन्न होते हैं। लिगॅमेन्ट्स न सिर्फ गति होने देते हैं (क्योंकि ये तन सकते हैं) बल्कि अपनी मजबूती, अलचीलेपन और अच्छी सवेदक स्नायु सपूर्ति के कारण ये गति को सीमित भी करते हैं और इस प्रकार ये अत्यधिक तनाव से जोडो की सुरक्षा भी करते हैं।

तन्तुमय जोड़ (Fibrous joint) :

यह जोड आरी के समान किनारो वाली दो अस्थियो का बना होता है और ये किनारे एक दूसरे मे फिट हो जाते हैं। पहले ये अस्थियाँ तन्तुमय ऊतक की रेखा द्वारा जुडती हैं, लेकिन अतत इसमे अस्थिविकास हो जाता है और अस्थि से अस्थि जुडकर स्थायी जोड बन जाता है, जो किसी भी प्रकार की हलचल नहीं होने देता है। ये जोड खोपडी मे पाये जाते हैं तथा इन्हें *सधि रेखाएँ (Sutures)* कहते हैं। शिशु मे जन्म के समय अस्थि और अस्थि के बीच तन्तुमय ऊतक की स्पष्ट रेखा रहती है जो अस्थियो के किनारो को एक दूसरे के ऊपर मामूली खिसकने देती है, जिससे श्रोणीय मार्ग से निकलते वक्त शिशु के सिर का शीर्षानुकूलन (Moulding) होने मे आसानी होती है। अन्य ततुमय जोड दाँतो की जडों

जहाँ वे ऊपरी या निचले जबडो से जुडती हैं और इटरऑसिअस लिगॅमेट मे होते हैं, जैसे कि टिबिया-फिबुला के जोड़ मे।

चित्र 63–तन्तुमय जोड का रेखाचित्र।

उपास्थिमय जोड (Cartilagenous joint) :

उपास्थिमय जोड वहाँ होता है जहाँ दो अस्थिया हाएलिन कार्टिलेज से ढँकी रहती हैं और फाइब्रोकार्टिलेज की गद्दी तथा लिगॅमेन्ट्स से जुडी रहती हैं। लिगॅमेंट्स जोड की दोनो अस्थियो पर अधूरे चढे रहते हैं। उनमे थोड़ी हलचल सम्भव है क्योंकि उपास्थि की गद्दी दब सकती है। वर्टीब्री के मुख्य भागो, मेन्यूब्रिअम के बीच और स्टर्नम के मुख्य भाग मे उपास्थिमय जोड पाए जाते हैं।
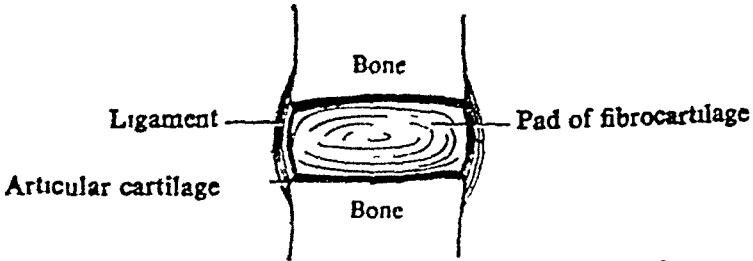
चित्र 64–उपास्थिमय जोड (मामूली गतिशील) के काट का रेखाचित्र।

साइनोविअल जोड़ (Synovial joint) :

साइनोविअल जोड उन दो या दो से अधिक अस्थियो मे मिलते हैं जो कि आर्टिक्यूलर हाएलिन कार्टिलेज (जोड बनाने वाली उपास्थि) से ढँके रहते हैं। इसमे एक जोड़ गुहिका होती है जिसमे *साइनोविअल द्रव* भरा रहता है जो रक्तवाहिका-विहीन आर्टिक्यूलर कार्टिलेज को पोषण प्रदान करती है। जोड़ *तंतुमय केप्सूल* से घिरा रहता है जिसमे *साइनोविअल झिल्ली* का अस्तर रहता है। यह अस्तर अस्थि के सिरो, अर्धचन्द्राकार उपास्थि और डिस्क पर नहीं रहता। अस्थिया कई लिगॅमेंट्स से जुडी रहती हैं जिसके कारण साइनोविअल जोड़ मे कुछ हलचल बहुत ही सीमित, हो सकती है, ठीक उसी तरह जैसी कि फिसलने वाली गति मेटाकारपल अस्थियों में दिखाई देती है।

कुछ साइनोविअल जोडो मे गुहिका फाइब्रोकार्टिलेज की बनी *आर्टिक्यूलर डिस्क या मेनिस्कस* द्वारा विभाजित हो सकती है जो जोड को चिकना रखने, आर्टिक्यूलर सतहो के घर्षण को कम करने और जोड को गहरा बनाने मे सहायता करती हैं।
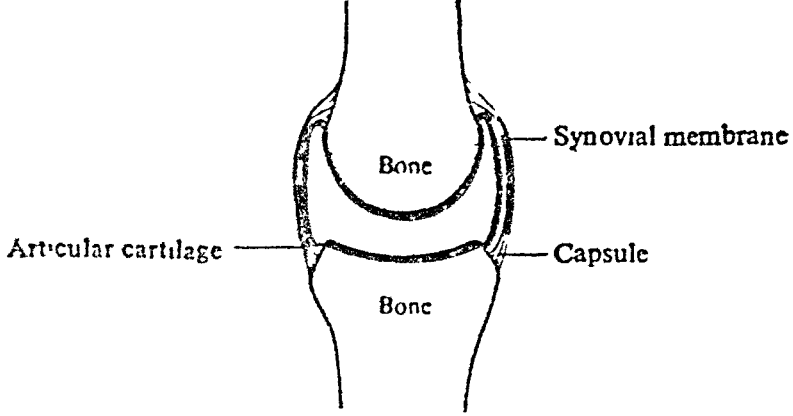
चित्र 65—साइनोवियल (पूर्णत गतिशील) जोड़ की काट का रेखाचित्र।

साइनोवियल जोड़ों के प्रकार (Types of synovial joints) :

सॉइनोवियल जोड़ो को होने वाली हलचल के प्रकार के अनुसार विभिन्न वर्गो मे विभाजित किया जाता है

1. हिन्ज जोड़ (*Hings joints*)—ये एक ही दिशा मे हलचल होने देते है, उदाहरणार्थ, कोहनी के जोड़।

2. घुमावदार जोड़ (*Pivot joints*)—इनमे एक अस्थि दूसरी अस्थि के ऊपर घूमती है, उदाहरणार्थ कोहनी के जोड़ मे रेडिअॅस अल्ना के ऊपर, तथा "एटलस' 'एक्सिस' पर घूमता है, जो क्रमश हाथ एव सिर की घुमावदार हलचल करते हैं।

3 कॉन्डाइलर जोड़ (*Condylar joints*)—इसमे दो जोडी जुडने वाली सतहे एक ही दिशा मे [illegible] रहती है चाहे वे सतहे एक या अलग केप्सूल मे हो। घुटने का जोड़ इसका अच्छा उदाहरण है।

4. बॉल एन्ड-सॉकिट जोड़ (*Ball-and-socket joints*)—इसमे अर्द्धगोलाकार [illegible] आकार के सॉकिट मे 'फिट' होता है, उदाहरणार्थ, कंधे एव कूल्हे का जोड़।

5. प्लेन जोड़ (*Plane joints*)—इनमे, अस्थियाँ एक दूसरे के ऊपर फिसलती है, उदाहरणार्थ [illegible] और [illegible] अस्थियो के बीच।

जोड़ों की हलचलें (*Joint movement*)—जोड़ो मे तीन तरह की हलचलें होती है : [illegible] (*Gliding*), कोणीय (*Angular*) और घुमावदार (*Circular*) [illegible] किसी भी जोड़ मे कई तरह की हलचलें पैदा कर सकती है।

[illegible]—जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है बिना किसी कोणीय या [illegible] है।

कोणीय हलचल—अस्थियों के बीच कोण बढाती या घटाती है। इसमे मुडाव (*Flexion*) और प्रसरण (*Extension*) या तानना, और मध्य रेखा मे दूरीकरण (*Abduction*) और समीपीकरण (*Adduction*) वाली हलचलें सम्मिलित हैं।

घुमावदार हलचल से ही आतरिक घुमाव (*Internal rotation*) याने किसी भी भाग का अपने एक्सिस पर मध्यरेखा की ओर घुमाव और बाह्य घुमाव (*External rotation*) याने मध्यरेखा से दूर घुमाव होता है। चक्राकार हलचल (*Circumduction*) से हाथ-पैरो की गोलाकार हलचलें होती हैं। स्यूपिनेशॅन (*Supination*) और प्रोनेशॅन (*Pronation*) का अर्थ हथेली (*Palm*) को क्रमशः ऊपर या नीचे की ओर घुमाना है।

विभिन्न प्रकार के जोडो मे भिन्न-भिन्न हलचलें होती हैं। बॉल एव सॉकेट जोड में केवल स्यूपिनेशॅन और प्रोनेशॅन को छोडकर सभी तरह की गतियाँ हो सकती हैं। हिन्ज (कब्जेनुमा) जोडो मे केवल मुडाव और प्रसरण की हलचलें ही होती हैं। फिसलने वाले जोडो मे सिर्फ मामूली हलचल होती है, जो सभी दिशाओ मे हलचल की मात्रा बढा देते हैं, जैसे कलाई और टखने के जोडो पर क्रमश कारपल एवं टारसल अस्थियो मे। हाथ मे, समीपीकरण और दूरीकरण शब्दो का अर्थ उस अग की मध्य रेखा मे दूर एव पास की गति के लिए किया जाता है, न कि शरीर की मध्य रेखा से दूर एव पास के लिए। इस प्रकार अगूठे की समीपीकरण गति उसे हथेली की ओर बीच मे लाती है, तथा छोटी उगली की समीपीकरण गति इसे अंगूठे की ओर लाती है। हथेली के सामने वाली एनैटॅमिकल स्थिति मे इस गति के दौरान छोटी उगली शरीर की मध्य रेखा से दूर लेकिन हाथ की मध्य रेखा की ओर जाती है।

जोड गतिशील रहते हैं, लेकिन हलचलें जोडो से सबधित विभिन्न पेशियो के द्वारा होती है। ये पेशियाँ हलचल पैदा करने के अलावा लिगॅमेन्ट्स की तरह दो अस्थियो से जुडी होने के कारण उन अस्थियो को स्थिति मे बनाये रखती हैं और जोड के कैप्स्यूल को सहारा देती है। यह कार्य वे तभी करती हैं जब उनका सामान्य तनाव (Tone) बना रहता है। जब पेशियाँ अगाघातग्रस्त एव शिथिल हो जाती हैं तब ढीले जोड आसानी से विस्थापित होते हैं, जैसे काफी गतिशील कधे का जोड। जब पेशियाँ अगाघातग्रस्त हो जाती हैं, लेकिन कडी एव सिकुडी हुई रहती हैं तब जोड पूर्णत अगतिशील हो सकता है। जोड की अगतिशीलता रोकने का उपाय जोड को अधिकाधिक घुमाकर पेशी को लचीला बनाये रखना ही हो सकता है। जोड को प्रभावित करने वाली बीमारी से या चोट के कारण जब जोड बनाने वाली सतहें एक दूसरे से चिपक जाती हैं या जोड़ के कैप्स्यूल से चिपक जाती हैं तब भी जोड़ अगतिशील हो सकता है।

सिर के जोड़ (The joints of the Head)

टेम्पोरोमेंडिवुलर जोड (*Temporomandibular joint*)—टेम्पोरल अस्थि और मेडीवल के सिर के बीच होता है। सिर का यही एकमात्र गतिशील जोड है। इसकी हलचल तीन दिशाओ मे हो सकती है ऊपर और नीचे, पीछे और आगे तथा अगल-वगल मे।

सिर के स्यूचर्स (मधिरेखाओ) का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। पैराइटल अस्थियो के कोनो पर जो अस्थिविकास रहित झिल्लीदार क्षेत्र होता है उसे फॉन्टेनेल्स (*Fontanells*) कहते हैं।

एन्टीरिअर फॉन्टेनेल (Anterior fontanelle) सवसे वडी है और खोपडी के शिखर पर फ्रन्टल अस्थि के दो भागो और दो पॅराइटल अस्थियो के सगम पर स्थित रहती है। यह मोटे रूप से हीरे की आकृति की होती है, और सामान्यतया जव तक शिशु 15 से 18 माह का नही होता, तव तक यह पूरी वद नही होती। इसके वद होने मे देरी 'रिकेट्स' नामक बीमारी का चिन्ह है।

शैशवावस्था मे निर्जलीकरण से होने वाले शक्तिपात (Collapse) के मामलो मे यह क्षेत्र दव जाता है, और यह एक गभीर चिन्ह है। एक वडा शिरीय मार्ग फॉन्टनेल्स के सहारे पीछ से आगे तक फैला रहता है, इसमे से रक्त का नमूना प्राप्त करने के लिये या इन्ट्राविनस इन्जेक्शन देने हेतु सुई प्रविष्ट की जा सकती है।

पोस्टीरिअर फॉन्टेनेल (Posterior fontanelle)—खोपडी के पीछे ऑक्सि-पिटल अस्थि के माथ दो पॅराइटल अस्थियो के सगम पर स्थित रहती है। यह त्रिकोणाकार होती है और जन्म के कुछ ममय वाद वन्द हो जाती है। फॉन्टेनेल के वद होने मे देरी का कारण हाइड्रोसेफेलस (मिर मे पानी) स्थिति हो सकती है लेकिन कभी-कभी सामान्य वच्चो मे भी देरी हो सकती है।

चित्र 66—फॉन्टेनेल्म दर्शाता हुआ जन्म के वाद शिशु का मिर।
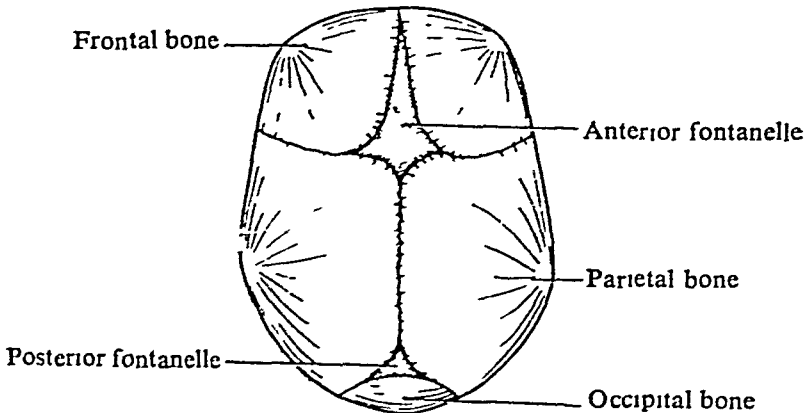
धड़ के जोड़ (The Joints of the Trunk)

सभी वर्टिब्री में, दूसरे सर्वाइकल से लेकर सैक्रम तक, जोड होतें हैं। वर्टिब्री के मुख्य भागो के बीच उपास्थिमय जोड़ होते हैं और वर्टिब्रल आर्चेस के बीच साइनोविअल जोड़ पाए जाते हैं। कई जोडो के कारण रीढ मे काफी हलचल हो सकती है। एन्टीरिअर और पोस्टीरिअर लांगीट्यूडनल लिगमेंट्स स्पाइन मे लेकर सैक्रम तक सहारा देने के लिए होते हैं। अन्य लिगमेंट्स वर्टिब्रल आर्चेस के बीच से गुजरते हैं।

पसलियो और वर्टीब्री के बीच कॉस्टोवर्टिब्रल जोड होते हैं जो फिसलने वाली हलचल करते हैं। ऐसी ही हलचल स्टर्नोकॉस्टल जोड मे होती है।

भुजा के जोड़ (The joints of the upper extremity)

स्टर्नोक्लेविक्यूलर जोड़ (Sternoclavicular joint)—क्लेविकल के स्टर्नल सिरे, स्टर्नम की मेनुब्रिअम और पहली पसली की उपास्थि से बनता है। इससे क्लेविकल द्वारा फिसलने वाली हलचल होती है।

एक्रोमिओक्लेविक्यूलर जोड़ (Acromioclavicular joint) क्लेविकल के एक्रोमिअल सिरे और स्कैपुला के एक्रोमिऑन के बीच होता है और सामान्यत कधे की हलचल से सम्बन्धित रहता है।

कंधे का जोड़ (Shoulder joint) बॉल-एवं-सॉकिट प्रकार का जोड है, तथा शरीर के सभी जोडो की अपेक्षा अधिक मुक्त गति होने देता है। यह छोटी उथली ग्लीनॉइड गुहिका मे ह्यूमरस के सिर के फिट होने से बनता है। जोड बनाने वाली सतहें जोड बनाने वाली उपास्थियो के द्वारा ढँकी रहती हैं, तथा ग्लीनॉइड गुहिका तन्तुमय-उपास्थि की गोल किनार (Rim) के द्वारा बडी एव गहरी बना दी जाती है। इस किनार को लेब्रम ग्लीनॉइडेल (Labrum glenoidale) कहते हैं, यह गुहिका के चारो और स्थित रहती है। यह गति को सीमित किये बिना विस्थापन (Dislocation) की जोखिम को कम करती है, जो एक बडी गहरी अस्थिमय गुहिका मे सभव हो सकता है। अस्थियाँ, लिगमेन्ट्स के लचीले कैप्सूल के द्वारा आपस मे मिली रहती हैं जो की मुक्त हलचल होने देता है, लेकिन शक्तिशाली पेशियाँ अस्थियो को स्थिति मे बनाये रखने मे सहायता करती है। बाइसेप्स पेशी का लम्बा टेन्डॅन इन्ट्राकैप्स्यूलर लिगमेन्ट का कार्य करता है। यह टेन्डॅन ह्यूमरस की ट्यूबॅरॉसिटिज़ के बीच बाइसिपिटल गड्ढे (Bicipital groove) से जोड की गुहिका मे जाता है और चूंकि यह ग्लीनॉइड गुहिका के ठीक ऊपर स्कैप्यूला से निकलता है इसलिये यह जोड बनाने वाली सतहो को सही स्थिति मे बनाये रखता है। कधे के जोड के ऊपर भुजा की हलचल वक्ष के पिछले भाग पर स्कैप्यूला की गति के कारण होती है।
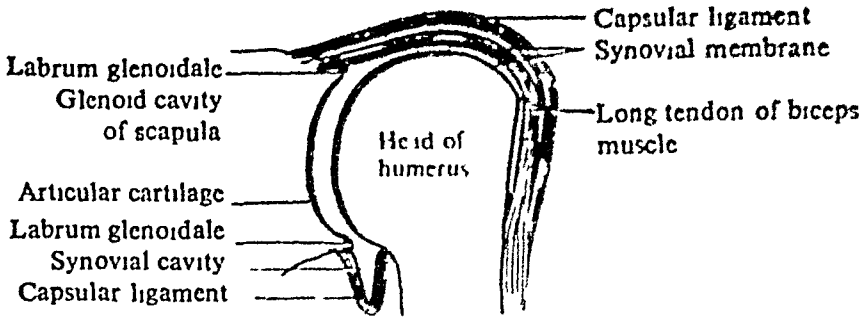
चित्र 67—कधे के जोड की काट या रेखाचित्र।

कोहनी का जोड (Elbow joint) जटिल है क्योंकि इसमें एक ही गुहिका में ह्यूमरस, अल्ना व रेडिअस के बीच हिन्ज जोड और रेडिअस व अल्ना के बीच पाइवॅट जोड रहता है। इसमें तीनो अस्थियो के बीच कैप्स्यूलर लिगमेन्ट और आजू-बाजू लेटरल लिगॅमेन्टस भी रहते है। *एन्यूलर लिगॅमेन्ट* (*Annular ligament*) नामक एक गोलाकार लिगॅमेन्ट भी रेडिअस के सिर के आसपास स्थित रहता है जो इसे अल्ना की रेडिअल नॉच मे रखता है। रेडिअस का निचला सिरा भी अल्ना के साथ पाइवॅट जोड बनाता है।

कलाई का जोड (Wrist joint)—रेडिअस के निचले सिरे और स्केफॉइड, ल्यूनेट, और ट्राइक्वीट्रल अस्थियो मे मिलकर बनता है। कारपल अस्थियो के जोडो के साथ मिलकर इसमे मुडाव, प्रसरण, समीपीकरण (अल्ना का विचलन Deviation) दूरीकरण (रेडिअस का विचलन) और चक्राकार हलचले होती हैं।

मेटाकारपोफैलेन्जिअल जोड (Metacarpophalangeal joint) भी कलाई के जोड की तरह हलचलें कर सकता है लेकिन इंटर-फैलेन्जिअल जोड हिन्ज जोड होते हैं जो सिर्फ मुडाव और प्रसरण की हलचल होने देते हैं।

पैर के जोड (The joints of the Lower extremity)

सैक्रोइलिअक जोड (*Sacroiliac joint*)—साइनोविअल जोड है जो धड के मुडाव और प्रसरण के समय कुछ चक्राकार हलचल होने देता है।

सिम्फिसिस प्यूबिस (*Symphysis pubis*) उपास्थिमय जोड है जो बहुत कम हलचल करता है। गर्भावस्था के समय पेल्विक जोड और लिगॅमेंट्स फैल जाते हैं और कुछ अधिक हलचल होने देते हैं।

कूल्हे का जोड (Hip joint)—बॉल-एन्ड-सॉकेट प्रकार का जोड है जो कप के आकार के गहरे एसिटॅब्यूलम मे फीमर के सिर के फिट होने से बनता है। जोड बनाने वाली सतहें जोड बनाने वाली उपास्थि से ढँकी रहती हैं। एसिटॅब्यूलम भी ग्लीनॉइड गुहिका के समान तन्तुमय उपास्थि की गोल किनार द्वारा गहरा किया जाता है। इस किनार को *एसिटॅब्यूलर लेब्रम* कहते हैं। *फीमर के शीर्ष का लिगॅमेंट* एक

छोटे और खुरदरे गड्ढे फोविआ (Fovea) से जुडा रहता है। यह गड्ढा फीमर के शीर्ष के बीच में रहता है। लिगॅमिट एसिटॅब्यूलम तक जाता है। जोड पर एक मजबूत तंतुमय केप्स्यूल और कई लिगॅमिंट होते हैं। उनमे से एक इलिओफीमोरल लिगॅमिंट जोड के सामने रहता है और कूल्हे का प्रसरण धड की मध्यरेखा से अधिक दूर नहीं होने देता। कूल्हे के जोड पर कई तरह की हलचलें सम्भव हैं। यद्यपि जब घुटना मुडता है तो कूल्हे का मुडाव जांघ का अगली उदरीय दीवार से सम्पर्क के कारण सीमित रह जाता है। इसी तरह जब घुटना फैलता है तब कूल्हे का मुडाव हेमस्ट्रिग पेशियो के तनाव से सीमित रहता है।
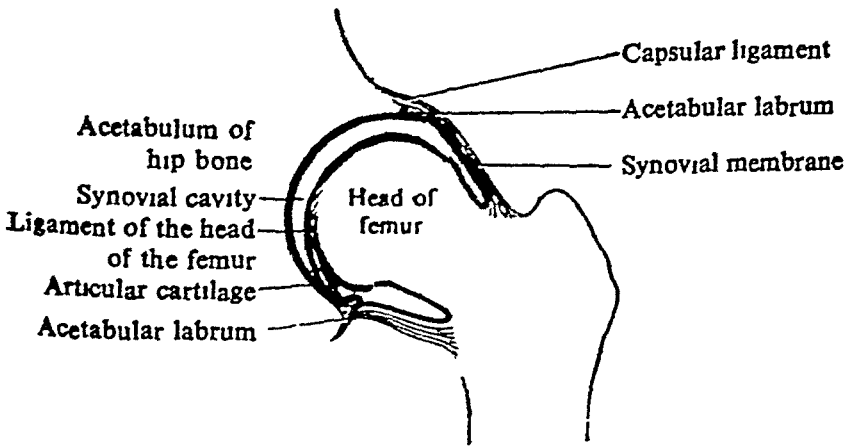
चित्र 68—कूल्हे के जोड की काट का रेखाचित्र।

घुटने का जोड (Knee joint)—शरीर का सबसे बडा जोड है। यह मिश्रित जोड है· एक कॉन्डाइलर जोड फीमर के कॉन्डाइल और टीबिआ को जोडता है
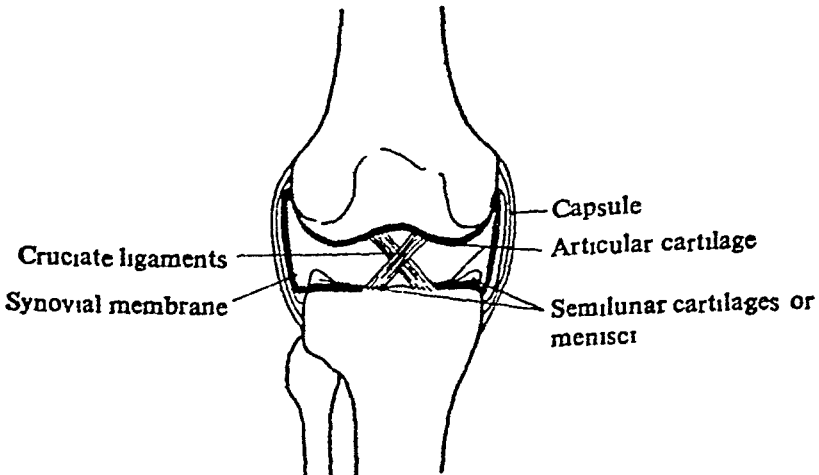
चित्र 69—घुटने के जोड की काट का रेखाचित्र।

और एक सीधा जोट जो पटेला और फीमर को जोडता है। जोड पर एक तन्तुमय कैप्स्यूल होता है जिसमे सामने की ओर पटेला प्रवेश करती है और साइनोवियल झिल्ली का अस्तर उसमे रहता है। **क्रूशिएट लिगमेंट्स** (Cruciate ligaments) काफी मजबूत होते हैं और जोड के भीतर ही एक दूसरे को क्रॉस करते हैं। वे टीबिआ के इटरकॉन्डाइलर क्षेत्र से फीमर तक फैले रहते हैं और साइनोवियल झिल्ली के द्वारा आशिक रूप से ढके रहते हैं। एक्स्ट्राकेप्स्यूलर लिगमेंट्स भी मोटे और मजबूत होते है और जोड की हलचलो को नियंत्रित करते हैं। **मेनिस्काइ** (Menisci—अर्ध चद्राकार उपास्थिया) टीबिआ की ऊपरी सतह को और गहरा बना देती है। वे फानाकार होती हैं और उनका बाहरी किनारा मोटा और उत्तल (Convex) होता है तथा भीतरी पतला और अवतल (Concave) होता है। ये घुटने के ऐंठनयुक्त तनाव से टूट सकती हैं, हालांकि वे उचित व्यायाम से फिर ठीक हो जाती हैं। घुटने की मुख्य हलचलें मुडाव और प्रसरण ही हैं, यद्यपि वह कुछ घूम भी सकता है।

ऊपरी टिबिओफिबुलर जोड (Upper tibiofibular joint) साइनोविअल प्रकार का सीधा जोट है जो कुछ फिसलने वाली हलचल कर सकता है। अस्थियो के निचले सिरे पर टखने की हलचलो के दौरान फिबुला मे कुछ घुमावदार हलचल भी हो सकती है।

टखने का जोड (Ankle joint) एक हिन्ज जोड है जो टिबिआ, फिबुला एवं टैलस के बीच बनता है। इसकी गति मुडाव एव प्रसरण हैं, लेकिन साधारणत इन्हें **डॉर्सिफ्लेक्शॉन्** (पाँव को ऊपर की ओर उठाना), तथा **प्लान्टर फ्लेक्शॉन्** (ऐडी को ऊपर उठाना) कहते हैं।

विभिन्न टार्सल अस्थियो के बीच तथा टारसस एव मेटाटारसस अस्थियो के बीच फिसलने वाले जोड होते हैं और उनकी हलचल सीमित होती है। *मेटाटारसो-फैलेन्जिअल* जोड और इटर *फैलेन्जिअल* जोड मे भी हाथ के जोडो की तरह हलचलें हो सकती हैं।

10. पेशी की रचना एवं क्रिया
Structure and Action of Muscle

पेशीय तत्र कई पेशियो का वना होता है जिनके द्वारा शरीर की विभिन्न हलचलें होती हैं । ऐच्छिक (Voluntary) पेशियाँ अस्थियो, उपस्थियो, लिगॅमेंट्स, त्वचा या अन्य पेशियो से टेन्डॅन (Tendons) और एपोन्यूरोसिस (Aponeuroses) के द्वारा जुडी रहती है। ऐच्छिक पेशियो का हर ततु सार्कोलीमा की झिल्ली सहित **एंडोमाइसिअम** (Endomysium) के वडल वनाती है और **पेरीमाइसिअम** (Perimysium) से ढकी रहती हैं।

वडल या **फेसीक्यूली** (Fasciculae) आपस मे एक और मोटी झिल्ली **एपीमाइ-सिअम** (Epimysium) मे वधे रहते है । यही शरीर मे ऐच्छिक पेशियो के समूह बनाते हैं। सभी पेशियो को आसपास की रक्तवाहिकाओ से उचित मात्रा मे रक्त मिलता है। आर्टिरिओल्स (Arterioles) पेरीमाइसिअम मे केशिकाएँ फैलाते हैं जो एडोमाइसिअम मे ततु के ऊपर फैली रहती है। रक्तवाहिकाएँ और स्नायु पेशी मे हाइलम के पास प्रवेश करते हैं ।

अधिकाश पेशियो मे दोनो सिरो पर टेन्डॅन्स होते हैं । ये धागेनुमा दिखाई देते हैं। कुछ स्थानों पर ये चपटे हो सकते है। वहाँ धागो की जगह ततुओ का मजबूत चौडा भाग होता है जिसे एपोन्यूरोसिस कहते है। ततुमय ऊतक पेशियो के ऊपर रक्षक आवरण भी वनाते हैं जिसे फॅशिया (Fascia) कहते है ।

जहाँ एक पेशी दूसरे से जुडती है वहाँ ततु पेरीमाइसिअम से मिले हुए हो सकते हैं। ऐसी स्थिति मे दोनो पेशियो का सयुक्त टेडन होगा। एक तीसरे प्रकार का जोड उदर की दीवार मे होता है। इसमे एपोन्यूरोसिस के ततु आपस मे मिलकर **लिनिआ अल्बा** (Linea alba) वनाते है जो नाभि के ऊपर नालीनुमा रचना के रूप मे देखी जा सकती है।

पेशी की क्रिया (Action of Muscles)

जव पेशी सकुचित होती है तव सामान्यतया एक सिरा स्थिर रहता है और दूसरा सिरा पहले की ओर खीचता है। जो सिरा स्थिर रहता है उसे **पेशी की उत्पत्ति** (Origin) कहते है तथा जो खिचता है उसे **पेशी का प्रवेशन** (Insertion) कहते हैं। उत्पत्ति एवं प्रवेशन दोनो ही अस्थि से जुडने वाले सिरे होते हैं। प्रत्येक पेशी मे निश्चित उत्पत्ति एव प्रवेशन होता है, और जव पेशी सकुचित होती है तव सामान्यतया प्रवेशन की अस्थि खीची जाकर उत्पत्ति की तरफ वढती है और

एक अस्थि दूसरी अस्थि के ऊपर जोड पर घूमती है। ग्लूटिअस मेक्सिमस इसका अच्छा उदाहरण है। इसकी उत्पत्ति सैक्रम से होती है और प्रवेशन फीमर पर होता है। जब प्रवेशन उत्पत्ति की तरफ चलता है तो मुड़ी हुई जाघ फैल जाती है। जब शरीर को कूल्हो पर झुकाया जाता है तब खडी हुई स्थिति उत्पत्ति से प्रवेशन की ओर हलचल के द्वारा प्राप्त की जाती है। यह व्यवस्था पेशियो की सख्या कम करती है और कई पेशियो को उचित रूप से स्थित करके उनकी सख्या मे कमी की गई है। इस व्यवस्था से एक पेशी एक से अधिक क्रियाएँ करती हैं। किसी जोड पर वही पेशी अस्थियो को गति देती है जो जोड पर से क्रॉस होती हो। जो पेशियाँ दो जोडो पर से क्रॉस होती हैं, वे एक से अधिक जोडो पर हलचल पैदा करती हैं, उदाहरणार्थ बाइसेप्स पेशी कधे एव कोहनी के जोडो को क्रॉस करती है और दोनो जोडो मे मुडाव पैदा करती है।
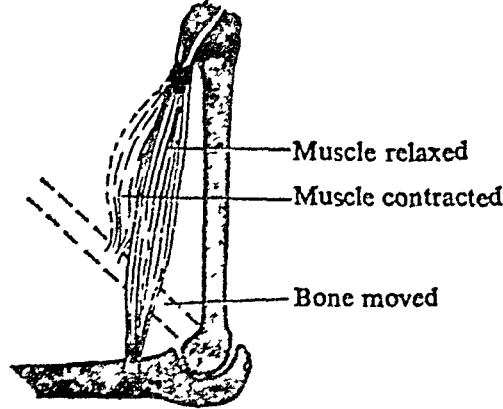
चित्र 70—पेशी के सकुचित होने पर अस्थि की हलचल दर्शाते हुए।

पेशिया केवल सकुचन के द्वारा ही क्रिया करती हैं। ये सकुचित होती है और खीचती हैं, वे ढकेलती कभी नही है, हालाकि यह बगैर छोटी हुए सकुचित हो सकती है और जोड को सकुचन की मात्रा के अनुसार काफी हद तक स्थिर रखती हैं। जब सकुचन समाप्त होता है तब पेशी मुलायम हो जाती है, लेकिन स्वय
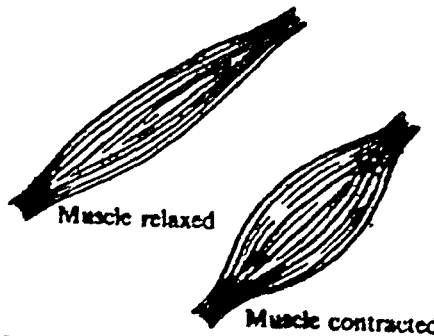
चित्र 71—सकुचन दर्शाते हुए सामान्य ऐच्छिक पेशी।

सम्बी नही होती। जोड के दूसरी तरफ अन्य पेशी के सकुचन द्वारा तन सकती है। इन्हें प्रतिरोधी पेशिया (Antagonist) कहते है।

पेशिया अकेले बहुत कम कार्य करती है, यहाँ तक की साधारण गति भी प्राय: कई पेशियो की क्रिया द्वारा होती है, उदाहरणार्थ पेन्सिल उठाने के लिये उगलियो, अंगूठे, कलाई, कोहनी, और सभवत कधे तथा धड की हलचल आवश्यक होती है क्योकि पेन्सिल तक पहुँचने के लिये शरीर आगे की ओर झुकता है। इस क्रिया मे भाग लेने वाली प्रत्येक पेशी को पर्याप्त रूप से सकुचित होना जरूरी है, तथा हर गति पूरी करने के लिए न सिर्फ सवधित पेशी का सकुचित होना आवश्यक है बल्कि विरोधी पेशी का शिथिल होना भी जरूरी है। कई पेशियो की इस सम्मिलित क्रिया को पेशी समन्वय या तालमेल (Muscle co-ordination) कहते हैं। किसी भी नई क्रिया मे, जो हम सीखते है, नये पेशीय समन्वय की आवश्यकता होती है और जब तक इस नये समन्वय को हम सीख नही लेते तब तक हमे काफी कठिनाई होती है और एक बार जब समन्वय हो जाता है तो ये क्रियाएं आसान हो जाती हैं और हम इन्हें विना किसी मानसिक प्रयत्न के कर सकते हैं।

सवेदी स्नायु पेशीय सवेद (Muscle sense) पैदा करते है। यह सवेद बहुत तीव्र नही होता, केवल पेशी को सकुचन और शिथिलन की जागरूकता भर देता है। यह जागरूकता ऐच्छिक है याने इच्छा के अनुसार पेशी को शिथिल या सकुचित किया जा सकता है। सामान्य स्थिति मे पेशी स्वय ही कुछ तनी होती है जिसे टोन (Tone) कहते है। टोन ही के कारण पेशियाँ विना थके एक सी स्थिति मे रहती हैं। यह क्रिया एक कार्य-प्रणाली पर आधारित है जिसके द्वारा विभिन्न समूह के पेशीय ततु सकुचित और शिथिल होते है जो प्रत्येक समूह को आराम एवं सक्रियता की अवधि प्रदान करती है। सबसे अधिक टॉनिसिटी युक्त पेशियाँ गर्दन और पीठ मे होती हैं।

पेशी का संकुचन (Contraction of Muscle) :

पेशी निम्नलिखित पदार्थो की बनी होती है :

75 प्रतिशत पानी.

20 प्रतिशत प्रोटीन.

5 प्रतिशत खनिज लवण, ग्लाइकोजन और वसा।

स्नायु आवेगो के कारण पेशी संकुचन होता है। पेशीय तन्तुओ को सकुचित होने के लिये उर्जा की आवश्यकता रहती है और ये उर्जा आहार के (विशेषत कार्वोहाइड्रेट्स के) ऑक्सीकरण से प्राप्त होती है। पाचन के दौरान कार्वोहाइड्रेट्स साधारण शर्करा मे विभाजित होते हैं; इस शर्करा को ग्लूकोज कहते हैं। ग्लूकोज, जिसकी शरीर को तुरन्त आवश्यकता नही रहती है, ग्लाइकोजन मे परिवर्तित हो जाता है और यकृत एवं पेशियो मे सचित रहता है। पेशी मे सचित ग्लाइकोजन पेशीय

क्रिया के लिये उष्मा एव उर्जा का स्रोत होता है। ग्लाइकोजन का ऑक्सीकरण होने पर कार्बन डाई आक्साइड तथा पानी बनते हैं तथा इस क्रिया मे एक यौगिक बनता है जो ऊर्जा से भरपूर होता है। इस यौगिक को एडिनो ट्राइफॉस्फेट Adenotriphosphate ATP) कहते हैं। पेशी सकुचन के लिए आवश्यक ऊर्जा ATP से प्राप्त होती है क्योकि यह यौगिक एडिनोडाइफॉस्फेट (Adenodiphosphate: ADP) मे बदल जाता है। ग्लाइकोजन के ऑक्सीकरण के दौरान पाइरुविक अम्ल (Pyruvic acid) बनता है। यदि ऑक्सीजन काफी मात्रा मे उपलब्ध हो (जैसा कि सामान्य हलचल के दौरान होता है) तो पाइरुविक अम्ल कार्बन डाइऑक्साइड और पानी मे विभाजित हो जाता है, तथा इस प्रक्रिया के दौरान जो उर्जा मुक्त होती है उसका उपयोग और अधिक ATP बनने मे होता है। यदि ऑक्सीजन अपर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध हो तो पाइरुविक अम्ल लैक्टिक अम्ल मे परिवर्तित हो जाता है, जो एकत्रित होकर पेशीय थकावट पैदा कर देता है।

अत्यधिक व्यायाम के दौरान पेशियो को अधिक ऑक्सीजन प्राप्त होती है। लेकिन फिर भी पेशीय कोशिकाओ तक पर्याप्त ऑक्सीजन नही पहुँचती है, विशेषरूप से किसी तेज क्रिया के आरभ मे। अत लैक्टिक अम्ल जमा होकर ऊतक द्रव और रक्त मे फैल जाता है। रक्त मे लैक्टिक अम्ल की उपस्थिति से श्वसन केन्द्र उत्तेजित होता है और श्वसन क्रिया की दर एव गहराई बढ जाती है। व्यायाम या तेज क्रिया समाप्त हो जाने के बाद भी तेज श्वसन क्रिया तब तक होती रहती है जब तक कि पेशियो और यकृत की कोशिकाओ द्वारा लैक्टिक अम्ल का पूर्णतया ऑक्सीकरण न कर लिया जाये, या लैक्टिक अम्ल का ग्लाइकोजन में परिवर्तन हो न जाय। इन क्रियाओ के लिए आवश्यक ऑक्सीजन तेज श्वसन से मिलता है। इस अतिरिक्त ऑक्सीजन की आवश्यकता जमा हो गये लैक्टिक अम्ल को निकालने के लिये होती है; इस अतिरिक्त ऑक्सीजन आवश्यकता को 'ऑक्सीजन कर्ज' (*Oxygen* debt) कहते हैं, जिसका भुगतान तेज क्रिया पूर्ण होने के बाद करना जरूरी होता है।

तालिका 2

पेशी सकुचन के दौरान होने वाले परिवर्तन

चित्र 72
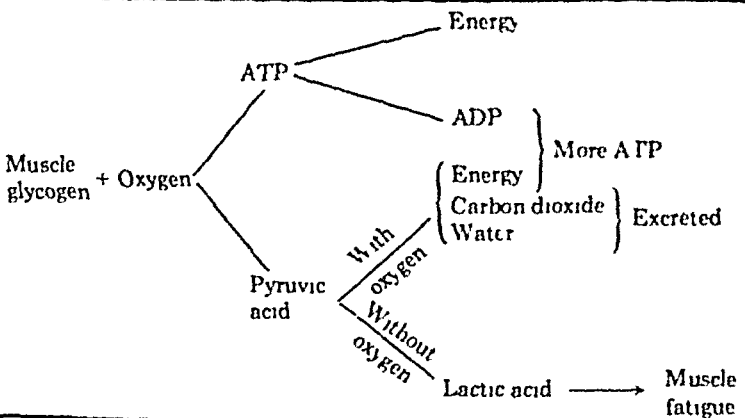
11. शरीर की मुख्य पेशियां
The Chief Muscles of the Body

सिर की पेशियां (The Muscles of the Head)

सिर की पेशियो को उनके कार्यों के अनुसार दो समूहो मे विभाजित किया जाता है। इनके नाम हैं . (1) हाव-भाव की पेशियां, और (2) चबाने की पेशियां।

हाव-भाव की पेशियां (Muscles of expression) अस्थि के बजाय त्वचा से जुडी रहती हैं, अत ये त्वचा को हिलाती हैं और चेहरे के हाव-भाव मे परिवर्तन करती हैं। **गोलाकार पेशियां** (Circular muscles), जिन्हें *ऑर्बिक्यूलेरिस ऑक्यूलाइ* और *ऑर्बिक्यूलेरिस ऑरिस* कहते हैं, क्रमश आंखो और मुंह के चारो तरफ रहती हैं तथा उन्हें
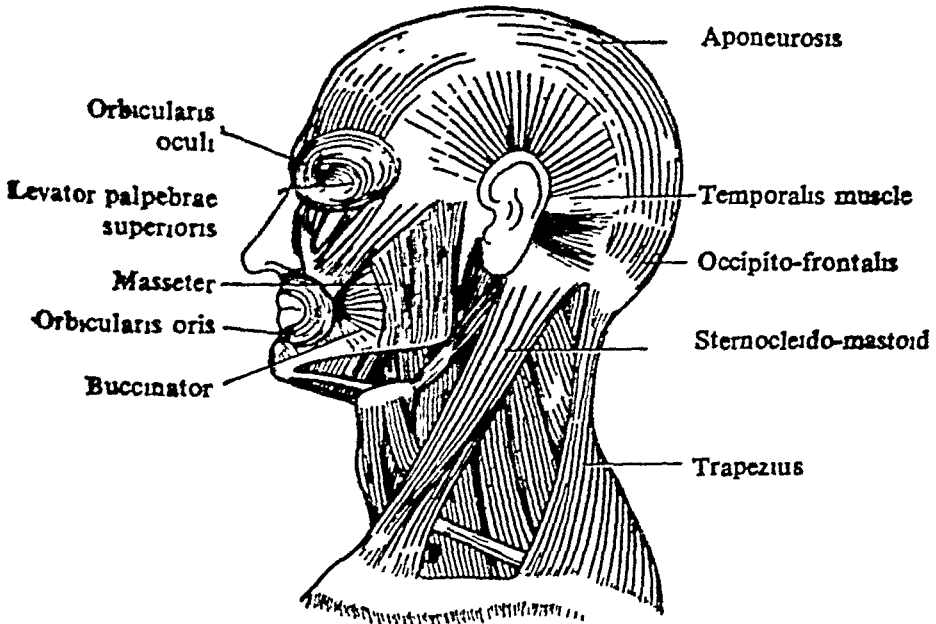
चित्र 73 — सिर एव गर्दन की पेशियां।

बंद करती हैं। **छोटी पेशियां** (Small muscles), भौहो और ऊपरी पलको, तथा मुंह के कोणो को ऊपर व नीचे हिलाती हैं, और नथुनो को विस्तारित करती हैं; इस प्रकार आश्चर्य, घबराहट, प्रसन्नता या दु ख के हाव-भाव पैदा होते हैं। छोटी पेशियां आंखों को नेत्रगुहिकाओ मे घुमाती भी हैं जिससे देखने की दिशा बदलने के साथ ही हावभाव भी बदले जाते हैं।

चबाने की पेशियां (Muscles of mastication) निचले जबडे को काटने की क्रिया मे ऊपर व नीचे, तथा चबाने की क्रिया मे आजू बाजू और आगे-पीछे घुमाती हैं। ये पेशिया हैं मैसेटर (*Masseter*) जो जबडे के कोण मे जाइगोमेटिक आर्च तक स्थित रहती हैं, टेम्पोरेलिस पेशी (*Temporalis muscle*), जो टेम्पोरल अस्थि के ऊपर स्थित रहती है और निचले जबडे में प्रवेशित होती हैं। कुछ अन्य **छोटी-छोटी पेशियां** खोपडी से निचले जबडे तक फैली होती है। ये वही पेशियाँ है, जो टेटॅनस नामक बीमारी मे 'लॉक जॉ' अर्थात् कसे हुए जबडे की स्थिति पैदा करती हैं।

गर्दन की पेशियां (The Muscles of the Neck)

गर्दन मे दो बडी पेशिया होती है, स्टर्नोक्लीडोमैस्टॉइड एव ट्रेपीजियॅस।

स्टर्नोक्लीडोमैस्टॉइड (Sternocleidomastoid) गर्दन के सामने स्थित रहती है, और स्टर्नम व क्लैविकल मे मैस्टॉइड प्रोसेस व टेम्पोरल अस्थि के पीछे की सतह तक फैली होती है। जब एक तरफ की पेशी सकुचित होती है तब वह सिर को उस कधे की ओर खीचती है। जब दोनो तरफ की पेशियो का उपयोग एक साथ होता है तब ये गर्दन को झुकाती है।

ट्रेपीजियॅस (Trapezius) पेशी गर्दन और सीने के पीछे स्थित रहती है, तथा इसकी आकृति करीब-करीब त्रिकोणाकार होती है जिसका तल (आधार) गर्दन और सीने के पीछे ऑक्सिपट के नीचे से जुडा रहता है। यह पेशी ऑक्सिपट से भी नीचे की ओर जुडी होती है। इसका नुकीला हिस्सा कधे के ऊपर व पीछे स्कैप्यूला और क्लैविकल मे प्रवेशित रहता है। जब पूरी पेशी सिकुडती है तब यह कधो को पीछे की ओर खीचती है, जब इसके ऊपरी एव निचले भागो का अलग-अलग उपयोग होता है तब यह स्कैप्यूला को ऊपर एव नीचे की ओर खीचती है (देखिये तालिका न 3)।

धड़ की पेशियां (The Muscles of the Trunk)

धड की मुख्य पेशियो को उनके कार्यों के अनुसार निम्न समूहो मे विभाजित किया जाता है

1. घधे को घुमाने वाली पेशिया,
2. श्वसन की पेशियाँ,
3. उदरीय दीवार बनाने वाली पेशिया,
4. कूल्हे को घुमाने वाली पेशिया,
5. रीढ को घुमाने वाली पेशिया, और
6. श्रोणि की निचली सतह की पेशिया।

तालिका 3

गर्दन की पेशियाँ

नाम	स्थिति	उत्पत्ति	प्रवेशन	क्रिया
स्टर्नोक्लीडोमैस्टॉइड	गर्दन के सामने का भाग	स्टर्नम एवं क्लैविकल	मैस्टॉइड प्रोसेस	पृथक रूप से उपयोग करने पर सिर को एक तरफ घुमाती है। एक साथ उपयोग करने पर गर्दन को झुकाती है।
ट्रैपीजिअम	गर्दन एवं सीने के पीछे का भाग	ऑक्सिपट और थॉरेसिक वर्टिब्री के स्पाइन्स	स्पाइन, स्कैप्यूला और क्लैविकल	स्कैप्यूला को पीछे खींचती है, कंधों को तानती है। ऊपरी भाग कंधों को ऊपर उठाता है, निचला भाग कंधों को नीचे करता है। ऊपरी भाग का उपयोग गर्दन को तानने में ऑक्सिपट को खींचने के लिए भी किया जाता है।
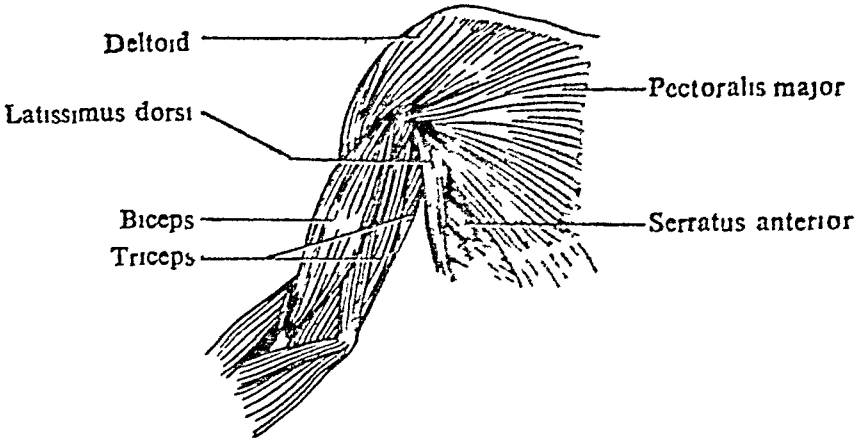
चित्र 74—कंधे और भुजा की पेशियाँ।

कंधे को घुमाने वाली पेशियाँ (Muscles moving the shoulder) :

कंधों को घुमाने वाली मुख्य पेशियाँ सीने के पिछले एवं अगले भाग को ढंकने वाली शक्तिशाली पेशियाँ हैं। ये हैं पेक्टोरेलिस मेजर, ट्रेपीजिअस (देखिये गर्दन की पेशियां), लेटिसिमॅस डॉर्सी एवं सीरेटॅस एन्टिरिअर। पेक्टोरेलिस (Pectoralis) सीने के सामने के भाग को ढंकती है, और स्टर्नम से ह्यूमरस तक फैली रहती है। *लेटिसिमॅस डॉर्सी (Latissimus dorsi)* वक्ष एवं उदर के पिछले भाग को ढंकती है, और लम्बर वर्टिब्री एवं इलिअक क्रेस्ट से ह्यूमरस तक फैली रहती है। ये पेशियां बगल (Armpit) की सामने एवं पीछे की पेशी बनाती है। *सीरेटॅस एन्टिरिअर (Serratus anterior)* वक्ष की बगल की दीवार के बाहर सामने की ओर पसलियों से लेकर स्कैप्यूला, जिसके नीचे से यह गुजरती है, की वर्टिब्रल किनारों तक फैली रहती है। देखिये तालिका 4)।

श्वसन की पेशियाँ (Muscles of Respiration) :

श्वसन-क्रिया की मुख्य पेशियां निम्नलिखित हैं

1 डायफ्राम

2 बाह्य इन्टरकॉस्टल पेशियाँ।

3 आन्तरिक इन्टरकॉस्टल पेशियां।

डायफ्राम (*Diaphragm*) गुम्बज के आकार की चौटी पट्टीनुमा पेशी है जो उदर से वक्ष को पृथक करती है। इसकी किनार पेशी की होती है, जबकि मध्य भाग तन्तुमय ऊतक या एपॉन्यूरोसिस की पट्टी का होता है। यह पेशी स्टर्नम के नुकीले सिरे, निचली पसलियों व इनकी उपास्थियों और पहले तीन लम्बर वर्टिब्री से निकलती है और मध्य एपॉन्यूरोसिस में प्रवेशित रहती है। डायफ्राम में तीन छिद्र होते हैं जो आहार-नलिका, महाधमनी और निचली महाशिरा के साथ ही कुछ

तालिका 4

भुजा को धड़ से जोड़ने वाली पेशियाँ

नाम	स्थिति	उत्पत्ति	प्रवेशन	क्रिया
पेक्टोरेलिस मेजॅर	वक्ष के सामने का भाग	स्टर्नम, क्लैविकल और वास्तविक पसलियो की उपास्थियाँ	ह्यूमरस (बाइसिपिटल गड्ढा)	कधे का समीपीकरण, भुजा को वक्ष के सामने की ओर खीचना । कधे का आतरिक घुमाव भी ।
लेटिसिमस डॉर्सी	पीठ पर लम्बर क्षेत्र से कधो तक गुजरती है	लम्बर वर्टिब्री, निचले थॉरेसिक वर्टिब्री और इलिॲक क्रेस्ट का पिछला भाग	ह्यूमरस (बाइसिपिटल गड्ढा)	कधे की समीपीकरण हलचल, भुजा को पीछे एवं नीचे की ओर खीचना, जैसे कि घटी की डोरी खीचना और नाव की पतवार चलाना तथा कधे का आन्तरिक घुमाव ।
सीरेटॅस एन्टीरिअर	वक्ष के बगल की दीवारो के ऊपर से लेकिन पीठ मे स्कैप्यूला के नीचे	वक्ष के सामने के भाग मे ऊपरी आठ पसलियाँ	स्कैप्यूला की मीडिअल किनार	स्कैप्यूला को आगे की ओर खीचती है, ट्रैपीजिअस की प्रतिरोधी पेशी है ।
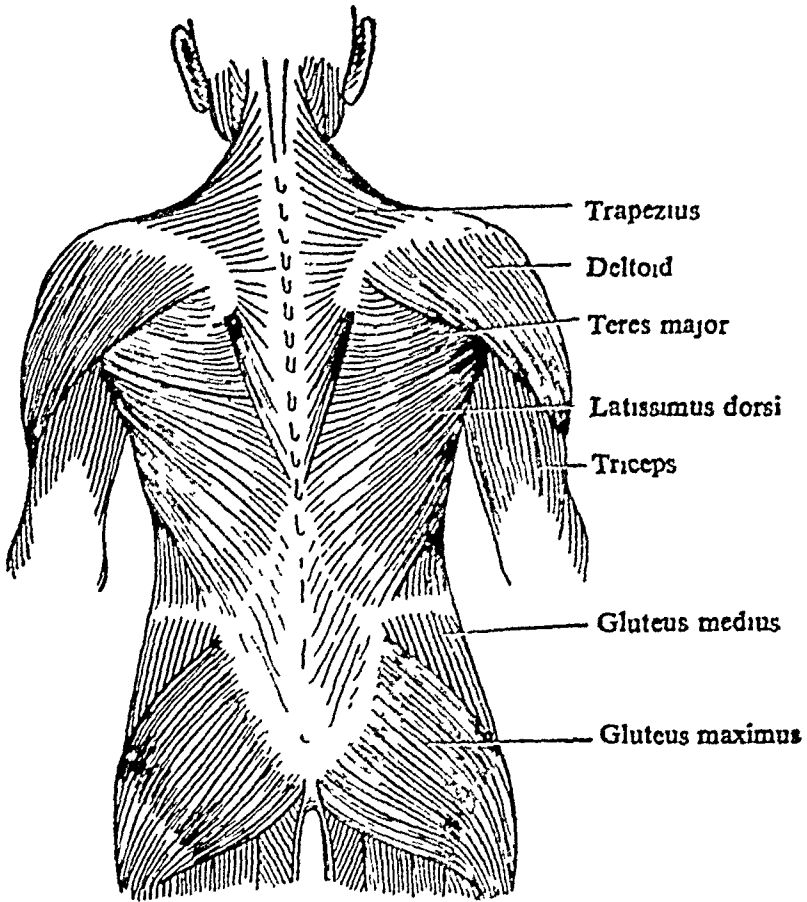
चित्र 75—पीठ की पेशियाँ।

छोटी रचनाओ जैसे वैगस स्नायु एव थॉरेसिक वाहिका, जो क्रमश. आहार नलिका एवं महाधमनी के साथ रहती है, के गुजरने के लिये रहते हैं। जब पेशीय तन्तु सकुचित होते हैं तब डायफ्राम का उठा हुआ भाग चपटा होकर नीचे की ओर दब जाता है जिससे वक्षीय गुहिका की ऊपर से नीचे तक की गहराई बढ जाती है।

वाह्य इन्टरकॉस्टल पेशिया (External intercostal muscles) पसलियो के बीच स्थित रहती हैं। इसके तन्तु एक पसली से नीचे की दूसरी पसली तक नीचे एव आगे की ओर फैले रहते हैं। ये पेशिया ऊपर वाली पसली की निचली किनार से उत्पन्न होती है और नीचे वाली पसली की ऊपरी किनार मे प्रवेशित रहती हैं। इनकी क्रिया से पसलिया आगे और ऊपर उठती हैं तथा वक्षीय गुहिका का आकार बढाती हैं। वक्ष का आकार दोनो बाजू तथा सामने की ओर बढता है।

आन्तरिक इन्टरकॉस्टल पेशियाँ (Internal intercostal muscles) भी पसलियो के बीच मे तथा वाह्य इन्टरकॉस्टल पेशियो के नीचे स्थित रहती हैं और

इनकी प्रतिरोधी पेशियां होती हैं। इनके तन्तु एक पसली से नीचे वाली दूसरी पसली तक नीचे एव पीछे की ओर फैले रहते हैं। ये ऊपर वाली पसली की निचली किनार से उत्पन्न होती हैं और नीचे वाली पसली की ऊपरी किनार मे प्रवेशित रहती हैं। इनकी क्रिया आजू-बाजू एवं पीछे से आगे तक वक्षीय गुहिका का आकार कम करने के लिये पसलियो को नीचे एव अन्दर की ओर खीचने की है, विशेषत: जोर से श्वास बाहर निकालते समय।
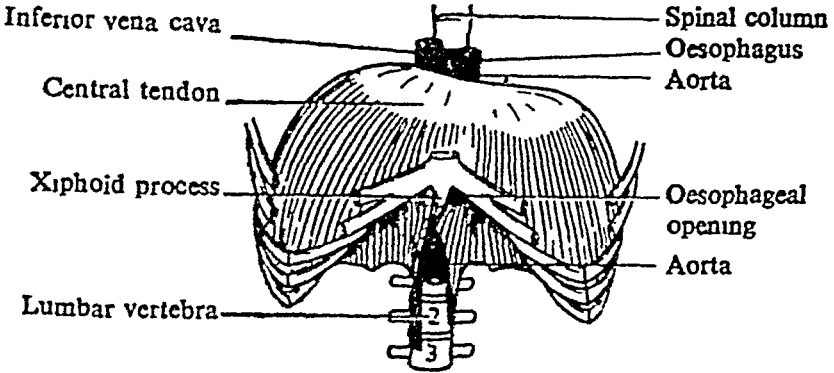
चित्र 76—डायफ्राम।

उदरीय दीवार बनाने वाली पेशियां (Muscles forming the abdominal wall) :

उदरीय दीवार की पेशियां निम्नलिखित हैं :

1. रेक्टस एब्डॉमिनिस, सामने की दीवार बनाती है
2. एक्सटरनल ऑब्लिक
3. इन्टरनल ऑब्लिक
4. ट्रान्सवर्सस एब्डॉमिनिस

(2–4) } बगल की दीवार बनाती है और एक दूसरे के नीचे स्थित रहती है।

5. क्वाड्रेटस लम्बोरम

रेक्टस एब्डामिनिस (Rectus abdominis) सामने की उदरीय दीवार बनाती है, और प्यूबिस से ऊपर की तरफ स्टर्नम एव कॉस्टल उपास्थियो तक फैली रहती है। इसके तन्तु ऊपर से नीचे सीधे फैले रहते है, इसीलिये यह नाम दिया गया है, क्योकि रेक्टस शब्द का अर्थ है—सीधा। शरीर की मध्य रेखा मे यह तन्तुमय ऊतक की रेखा द्वारा दो भागो मे विभाजित होती है। इसे *लिनिआ एॅल्बा* कहते हैं। कुछ अतर पर यह तन्तुमय ऊतक की रेखाओ द्वारा क्रॉस भी होती है। ये तन्तुमय पट्टियाँ इस पेशी को मजबूत बनाती हैं और तनने से रोकती हैं।

एक्सटरनल आब्लिक (External oblique) पेशी बगल की दीवार की बाहरी परत बनाती है। इसके तन्तु नीचे एव आगे की तरफ फैले रहते हैं। यह निचली पसलियो से उत्पन्न होती है और इलिॲक क्रेस्ट एव इन्वायनल लिगॅमेन्ट मे प्रवेशित रहती है। *इन्वायनल लिगॅमेन्ट* ग्रॉएन (उदर और जाँघ के ऊपरी भाग के मिलने का स्थान) पर उदरीय दीवार की सख्त किनार बनाता है, जहाँ पेशियाँ अस्थि

पर प्रवेशित नही होती तथा एक खाली स्थान छोड देती है जिसमे मे धड से पेशियाँ, रक्तवाहिकाएँ एवं स्नायु पैर तक जाते है। यहाँ यह पेशियो के जुडने के लिये स्थान प्रदान करता है। यह तन्तुमय ऊतक की एक मजबूत डोरी है। उदर के सामने एक्स्टरनल ऑब्लिक एक मजबूत एपॉन्यूरोसिस बनाती है जो रेक्टस के सामने से गुजरकर लिनीआ एल्बा मे जुडता है।
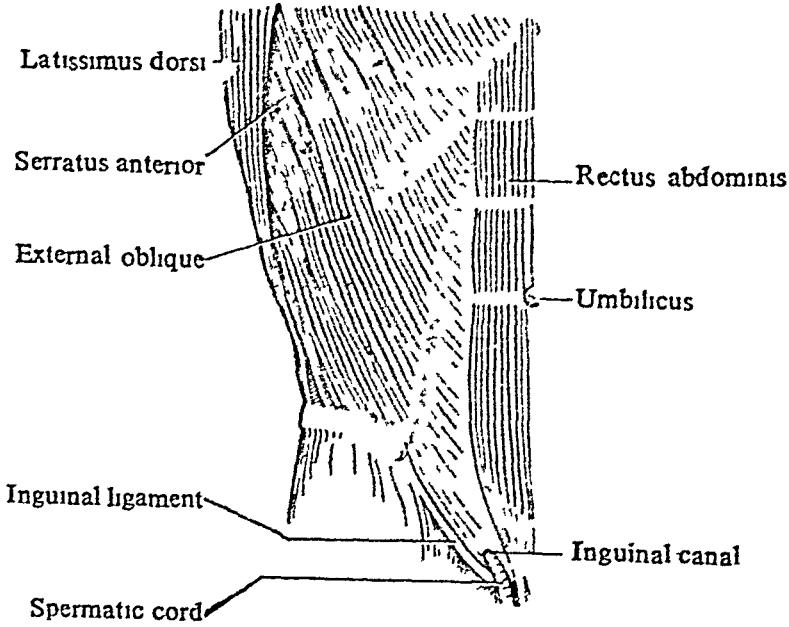
चित्र 77—उदरीय दीवार। ध्यान दीजिये कि रेक्टस पेशी दिखाने के लिये एपॉन्यूरोसिस को काट दिया गया है।

इन्टरनल ऑब्लिक (*Internal oblique*) उदर के बगल की दीवार की दूसरी तह बनाती है। इसके तन्तु ऊपर एव आगे की ओर फैले रहते है। इसकी उत्पत्ति इलियॅक क्रेस्ट और इन्वायनल लिगमिन्ट पर होती है, तथा निचली पसलियो और उनकी उपास्थियो मे यह प्रवेशित होती है। यह भी एपॉन्यूरोसिस बनाती है, जो रेक्टस के अंशत आगे एव पीछे से गुजरकर एक्स्टरनल ऑब्लिक एव ट्रान्सवर्सस एब्डॉमिनिस के एपॉन्यूरोसिस मे जुड जाता है।

ट्रान्सवर्सस एब्डॉमिनिस (*Transversus abdominis*) उदर के बाजू की दीवार की आन्तरिक तह बनाती है और इन्टरनल आब्लिक पेशी के नीचे स्थित रहती है। इसके तन्तु उदरीय दीवार के चारो ओर स्थित होते है। यह इलिॲक क्रेस्ट एव लम्बर फेशिआ से उत्पन्न होती है जिसके द्वारा यह लम्बर वर्टिब्री से जुडी रहती है। यह एपॉन्यूरोसिस मे प्रवेशित होती है, जो उदर के सामने रेक्टस के नीचे फैला रहता है और लिनीआ एल्बा से जुडता है।

क्वाड्रेटस लम्बोरम (*Quadratus Lumborum*) पिछली दीवार बनाती है और इलिअॅक क्रेस्ट से बारहवीं पसली तथा ऊपरी लम्बर वर्टिब्री तक फैली रहती है। श्वसन-क्रिया के दौरान यह बारहवीं पसली को स्थिर रखती है।

उदरीय दीवार मे नीचे की ओर दोनो ग्रॉएन से एक-एक मार्ग बनता है, इस मार्ग को इन्ग्वायनल केनॅल (*Inguinal canal*) कहते हैं। यह मार्ग इन्वायनल लिगॅमेन्ट के ऊपर अन्दरूनी सिरे के पास पेशीय तहो मे तिरछा होता है। इस मार्ग से निम्न अग गुजरते है पुरुष मे, टेस्टिकल (वृषण) से स्परमेटिक कॉर्ड; स्त्रियो मे गर्भाशय का राउन्ड लिगॅमेन्ट तथा इससे सबधित रक्तवाहिकाएँ और स्नायु।

कूल्हे की पेशियां (Muscles of the hip) :

कूल्हे को घुमाने वाली धड मे स्थित पेशियाँ निम्नलिखित है:

1 इलिओसोएॅम
   (a) सोएॅम
   (b) इलिएॅकस

2. ग्लूटीअल पेशियाँ, मेक्सिमस, मीडिअॅस, मिनिमस।

इलिओसोएॅस पेशियां (Iliopsoas muscles) ग्रॉएन के सामने इन्वायनल लिगॅमेन्ट के नीचे क्रॉस करती है। *सोएॅस पेशी* लम्बर वर्टिब्री के मुख्य भागो से, और *इलिएॅकस* पेशी इलिअम के ऊपरी भाग की सामने की सतह से उत्पन्न होती है। ये दोनो पेशियाँ फीमर के छोटे ट्रॉकेन्टर मे प्रवेशित होती है। ये पेशिया कूल्हे के जोड पर मुडाव, दूरीकरण एव पार्श्वीय घुमाव की गतियाँ पैदा करती हैं, लेकिन जब फीमर स्थिर रहती है तब यह धड को सामने की ओर झुकाती है।

ग्लूटीअल पेशिया (Gluteal muscles) नितम्ब बनाती है (देखिये चित्र 74) इन पेशियो की उत्पत्ति सेक्रम और इलिअम के पिछले भाग से तथा प्रवेशन फीमर के बडे ट्रॉक्न्टर और इसके नीचे ग्लूटीअल किनार पर होता है। इसकी सख्या तीन होती है—ग्लूटीअस मेक्सिमस, मीडिअस और मिनिमस। ये कूल्हे के जोड को तानती (Extend) है, और कूल्हे का दूरीकरण एव पार्श्वीय घुमाव भी करती हैं (देखिये तालिका 5), लेकिन जब फीमर स्थिर रहती है तब ये धड को पैरो पर प्रसरित करती है। सामान्यतया इन पेशियो का उपयोग इन्ट्रामस्क्यूलर इन्जेक्शन्स के लिये किया जाता है क्योंकि ये मोटी और मासल होती है। यह ध्यान रखना जरूरी है कि ऊपरी बाहरी चौथाई भाग का उपयोग किया जाये क्योंकि अन्य भागो से साएॅटिक स्नायु गुजरती है।

रीढ़ को घुमाने वाली पेशियां (Muscles moving the spine) :

उदरीय दीवार की पेशिया धड को मोडती और घुमाती है, रेक्टस पेशी मोडती है और उदर के बगल की पेशिया वक्ष को उदर पर घुमाती है। उदरीय पेशिया

तालिका 5

कूल्हे को घुमाने वाली धड़ की पेशियाँ

नाम	स्थिति	उत्पत्ति	प्रवेशन	क्रिया
सोऐंस मेजर	इन्ग्वायनल लिगॅमेन्ट के नीचे से ग्रॉएन के सामने क्रॉस होती है	लम्बर वर्टिब्री के मुख्य भाग	फीमर का छोटा ट्रॅकेन्टर	कूल्हे को मोडती है
इलिऐंकस	इन्ग्वायनल लिगॅमेन्ट के नीचे से सोऐंस के साथ ग्रॉएन के सामने क्रॉस होती है	इलिअॅक अस्थि की सामने की सतह	फीमर का छोटा ट्रॅकेन्टर	कूल्हे को मोडती है
•लूटीअल पेशियाँ	कूल्हे के पीछे से क्रॉस होती है और नितम्ब बनाती है	इलिअम और सेक्रम के पीछे की सतह	फीमर का बडा ट्रॅकेन्टर और ग्लूटीअल रेखा	कूल्हे का प्रसरण एवं दूरीकरण करती है तथा इसे बाजू की ओर घुमाती है

आन्तरिक अगो को दबाती भी हैं। *स्पाइनेलिस पेशियां* रीढ को तानती हैं। यह रीढ के दोनो तरफ धड के पीछे स्थित होती है । यह इलियेक क्रेस्ट के पिछले भाग और सेक्रम से उत्पन्न होती है, और पसलियो तथा ऊपरी वर्टिब्री मे प्रवेशित होती हैं।

श्रोणीय डायफ्राम की पेशियां (Muscles of the pelvic diaphragm) :

श्रोणीय डायफ्राम श्रोणीय अगो को सहारा देने वाली पेशियो का वना होता है। यह सामने स्थित प्यूबिस से, पीछे स्थित सेक्रम एव कॉक्सिक्स तक, तथा दोनो तरफ इस्किअम के बाहर तक फैला रहता है। यह खुली हुई पुस्तक की आकृति के सामान होता है, और पीछे से सामने की ओर झुका हुआ एवं दोनो तरफ से मध्य
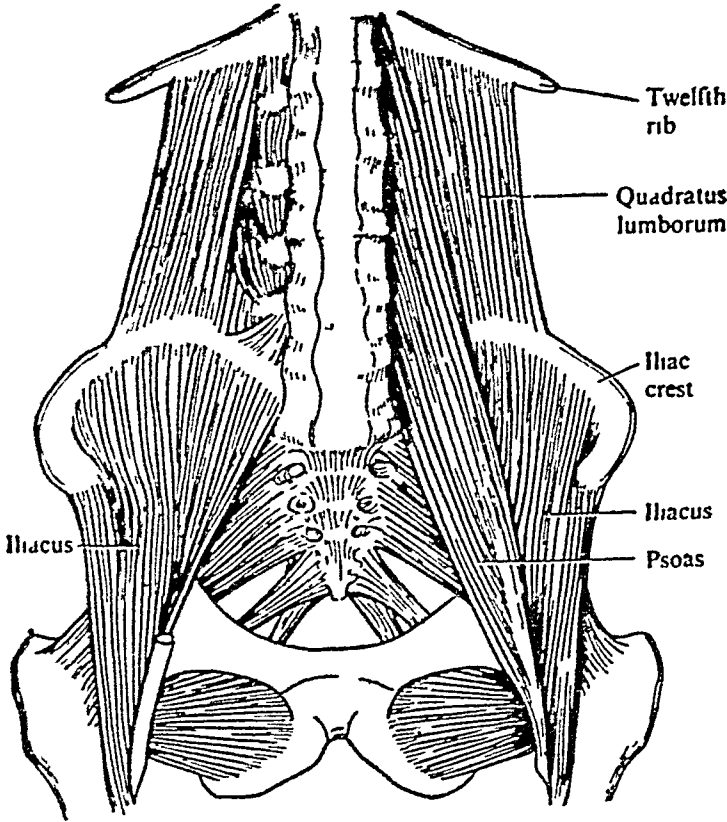
चित्र 78–इलिओसोएँस।

रेखा की ओर झुका हुआ रहता है। यह लीवेटॅर-एनि और कॉक्सिजिअस पेशियो का बना होता है। स्त्रियो मे इस पेशी की मध्य रेखा मे तीन छिद्र होते हैं। इन छिद्रो मे से मूत्रमार्ग, योनिमार्ग और मलाशय गुजरते है। पुरुषो मे सिर्फ दो छिद्र रहते हैं जिनमे से क्रमश मूत्रमार्ग और मलाशय गुजरते हैं।
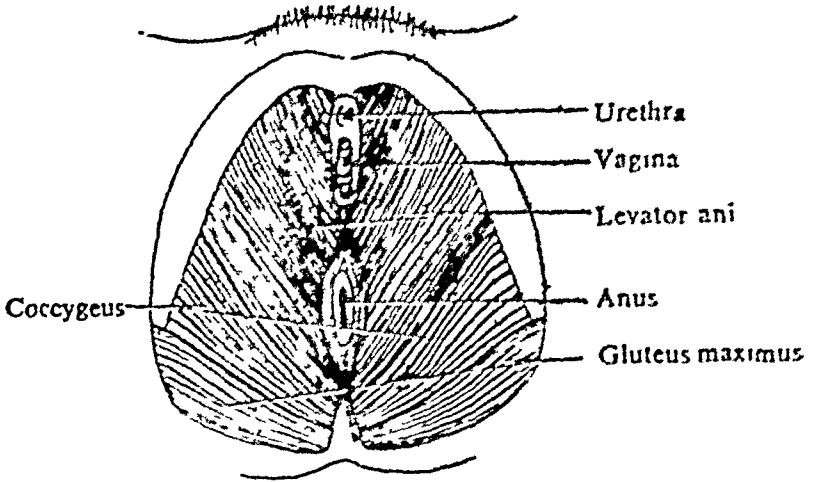
चित्र 79—श्रोणीय डायफ्राम।

भुजा की अस्थिया (The Muscles of the Upper Limb)

भुजा की मुख्य पेशियों को निम्न भागो मे विभाजित किया जा सकता है : ऊपरी भुजा की पेशिया, अग्र-भुजा की पेशिया, एव हाथ की पेशिया।

ऊपरी भुजा की पेशियां (The muscles of the arm) :

ऊपरी भुजा की पेशिया भुजा की अन्य पेशियो की अपेक्षा बडी एव मजबूत रहती हैं और ये निम्नानुसार हैं

1 बाइसेप्स
2 ट्राइसेप्स
3 डेल्टॉइड
4 ब्रैकिएलिस

बाइसेप्स (*Biceps*) पेशी इसलिए कहलाती है क्योंकि इसके दो ऊपरी सिरे (Heads) होते हैं (लैटिन मे कैपट का अर्थ सिर होता है)। यह भुजा के सामने नीचे की ओर फैली रहती है, और जब यह सकुचित होती है तब इसे आसानी से महसूस किया जा सकता है। यह दो सिरो के द्वारा उत्पन्न होती है, एक सिर की उत्पत्ति ग्लीनॉइड गुहिका से और दूसरे की स्केप्यूला की कोराकॉइड प्रोसेस से होती है तथा यह कोहनी के जोड के सामने अग्र-भुजा मे रेडिअल ट्यूबॅरॉसिटी पर प्रवेशित होती है। यह कोहनी एव कधे के जोड को मोडती है, और हथेली को ऊपर की ओर (*Supinates*) लाती है। इसलिये हथेली को ऊपर लाने की क्रिया स्यूपिनेशॉन काफी ताकत से की जा सकती है, तथा स्क्रू एव ढिबरियां इस प्रकार बनाई जाती हैं कि दाहिने हाथ से कार्य करने वाला आदमी हाथ को उलटने की क्रिया से उनको कस सकता है।
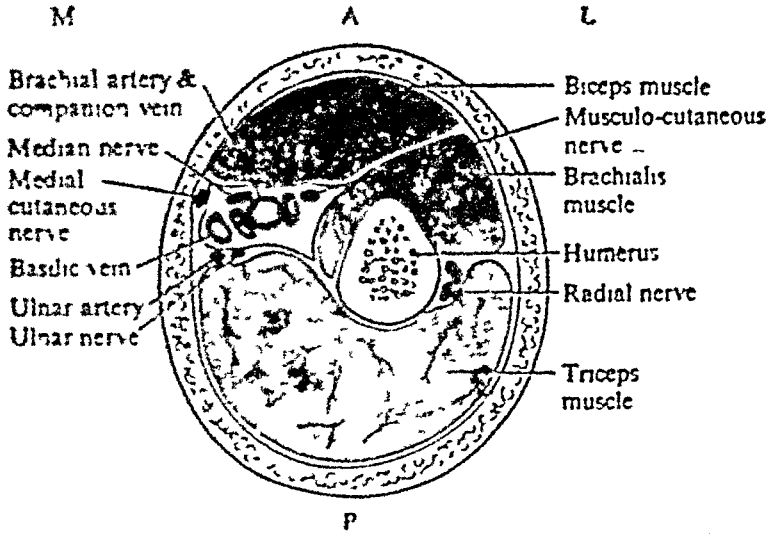
चित्र 80—अस्थि एवं अन्य रचनाओं में पेशियों का सम्बन्ध दर्शाते हुए भुजा की काट। L, लेटरल, M, मीडिअल, A, एन्टीरिअर, P, पोस्टीरिअर भाग।

ट्राइसेप्स (*Triceps*) पेशी इसलिये कहलाती है क्योंकि इसके तीन ऊपरी सिरे होते हैं। यह भुजा के पीछे स्थित रहती है। यह तीन सिरों के द्वारा उत्पन्न होती है उनमें से एक स्कैप्यूला से और दो ह्यूमरस से उत्पन्न होते हैं तथा यह कोहनी के जोड़ के पीछे अलना के ऑलीक्रेनन में प्रवेशित होती है। यह कोहनी एवं कंधे को तानती है, तथा बाइसेप्स की प्रतिरोधी है।

डेल्टॉइड (*Deltoid*) पेशी त्रिकोणाकार होती है। यह कंधे के ऊपर जहाँ झब्बा (स्कन्धाभरण-Epaulette) लगाया जाता है वहाँ स्थित रहती है। इस त्रिकोणाकार पेशी का आधार उत्पत्ति बनाता है और कंधे के ठीक ऊपर शोल्डर गर्डल से जुड़ता है। यह पेशी ह्यूमरस के बाहर की तरफ डेल्टॉइड ट्यूबेरॉसिटि में प्रवेशित होती है। इसकी क्रिया समकोण पर कंधे का दूरीकरण करने की है। (समकोण से ऊपर भुजा को उठाने के लिये शोल्डर गर्डल का घूमना भी जरूरी है। इस काम को ट्रेपीजिअस करती है, जो स्कैप्यूला और क्लैविकल को ऊपर ऑक्सिपट की तरफ खींचती है।) डेल्टॉइड पेशी के सामने के भाग का अकेले ही उपयोग होने पर यह कंधे को मोड़ने में सहायक होती है और ह्यूमरस को आगे की ओर घुमाती है, तथा जब सिर्फ पिछले भाग का उपयोग होता है तब यह कंधे तानने में सहायक होती है और ह्यूमरस को मध्य रेखा की तरफ पीछे की ओर घुमाती है।

ब्रैकिऐलिस (*Brachialis*) पेशी भुजा के सामने बाइसेप्स की अपेक्षा कुछ नीचे स्थित रहती है। यह ह्यूमरस से उत्पन्न होती है और अलना की कोरोनॉइड प्रोसेस में प्रवेशित होती है। कोहनी के जोड़ की शक्तिशाली मुड़ाव क्रिया में यह बाइसेप्स की सहायता करती है (देखिये तालिका 6)।

तालिका 6

भुजा की पेशियाँ

नाम	स्थिति	उत्पत्ति	प्रवेशन	क्रिया
बाइसेप्स (दो सिरे)	भुजा के सामने	कोराकॉइड प्रोसेस और स्कैप्यूला की ग्लीनॉइड गुहिका के ऊपर	रेडिअल ट्यूबॅरॉसिटि	कोहनी और कंधे का मुड़ाव तथा हाथ का पीछे की ओर उलटना
ट्राइसेप्स (तीन सिरे)	भुजा के पीछे	एक सिरा स्कैप्यूला की एक्सिलरी बॉर्डर से और दो सिरे ह्यूमरस के शाफ्ट से	अल्ना की ऑलीक्रैनॅन	कोहनी और कंधे का प्रसरण
डेल्टॉइड	कंधे के ऊपर	एक्रोमिअन और स्कैप्यूला की स्पाइन, क्लैविकल	ह्यूमरस की डेल्टॉइड ट्यूबॅरॉसिटि	समकोण पर कंधे का दूरीकरण
ब्रैकिएलिस	कोहनी के सामने से क्रॉस होती है	ह्यूमरस	अल्ना की कोरोनॉइड प्रोसेस की अगली सतह	कोहनी का मुड़ाव

अग्र-भुजा की पेशियाँ (The muscles of the forearm) :

कलाई और ऊँगलियों की हलचलों के लिये अग्र-भुजा मे कई छोटी-छोटी, कम शक्तिशाली पेशियाँ होती हैं। अग्र-भुजा के सामने कलाई की मुड़ाव पेशियां (Flexors), ऊँगलियो की सामान्य मुड़ाव पेशियां, अगूठे की लम्बी मुड़ाव पेशी और कलाई को नीचे की ओर पलटने वाली पेशियां (Pronators) रहती हैं। उंगलियो की मुड़ाव पेशियाँ
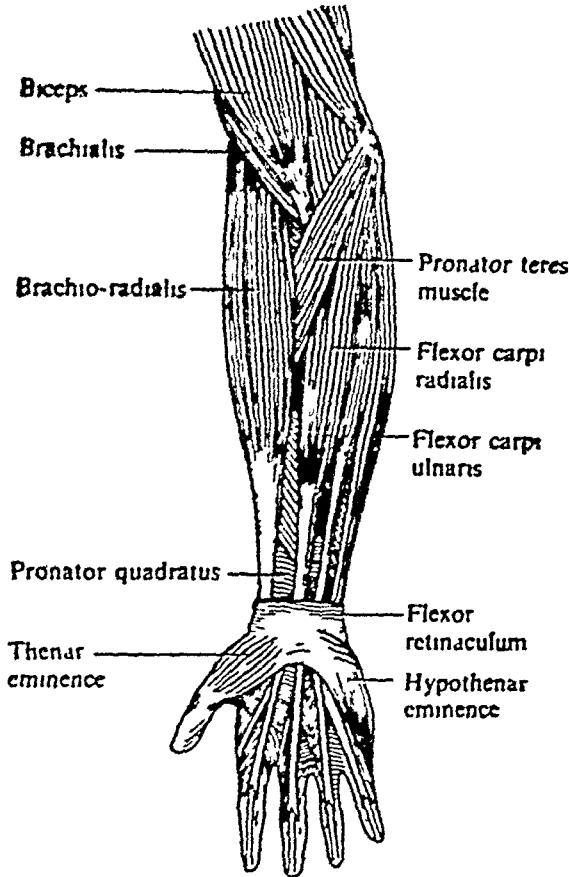
चित्र 81—अग्र-भुजा एव हाथ की पेशियाँ।

चार टेन्डॅन्स मे विभाजित रहती हैं जो हथेली के सामने से प्रत्येक उगली की अन्तिम फॅलेन्क्स तक पहुँच कर उनमे प्रवेशित होती हैं। अग्रभुजा के पीछे-कलाई को प्रसरित (तानने) करने वाली पेशिया (Extensors), उँगलियो की सामान्य प्रसरण पेशिया, प्रथम उँगली व अगूठे की प्रसरण पेशिया और कलाई को ऊपर की ओर पलटने वाली पेशिया (Supinators) होती हैं। कलाई के सामने से जाने वाली पेशियो के टेन्डॅन्स कलाई के जोड़ के ठीक ऊपर फ्लेक्सॅर रेटिनाक्यूलम (Flexor retinaculum) द्वारा बँधे रहते हैं। इसी प्रकार ये टेन्डॅन्स अस्थियो को उनके नज़दीक रखने के लिये ऊँगलियो से बँधे रहते हैं।

हाथ की पेशियाँ (The muscles of the hand) :

हाथ मे बहुत कम पेशियाँ रहती है, क्योकि ज्यादा पेशियाँ उसे बेडौल बना देती है और चीजो को पकडने व उठाने की उसकी उपयोगिता मे बाधा पैदा करती है। इसलिये हाथ की हलचल करने वाली पेशियो मे से कई अग्र-भुजा मे स्थित रहती है। हाथ मे केवल अगूठे की छोटी मुडाव पेशी और उंगलियों की समीपीकरण एव दूरीकरण पेशियाँ रहती है। उपरोक्त समीपीकरण तथा दूरीकरण को इन्टरॉसिजस पेशियाँ (*Interosseous muscles*) कहते है। ये सिर्फ अगूठे के आधार पर अच्छी तरह से एव छोटी ऊगली के आधार पर अँगूठे के आधार की तुलना मे कुछ कम रूप मे विकसित रहती है। इन स्थानो पर ये क्रमश थीनर (*Thenar*) और हाइपोथीनर (*Hypothenar*) उभार बनाती है, तथा इस पकड को मजबूती प्रदान करती है जिसमे अगूठे का समीपीकरण विशेष महत्वपूर्ण होता है।

पैर की पेशियाँ (The Muscles of the Lower Limb)

पैर की पेशियाँ भुजा की अपेक्षा अधिक बडी और अधिक शक्तिशाली होती है, क्योकि पैर शरीर का सम्पूर्ण वजन वहन करते है। इन्हें निम्न समूहो मे विभाजित किया जा सकता है, जाँघ की पेशियाँ, टांग की पेशियां, और पांव की पेशियाँ।

जांघ की पेशियाँ (The muscles of the thigh) :

जाँघ की पेशियाँ विशेष रूप से मजबूत होती है, तथा इसमे निम्न पेशियाँ रहती है

1 क्वाड्रिसेप्स फीमोरिस,

2 हैमस्ट्रिन्ग्स,

3 सार्टोरिअॅस, एव

4 कूल्हे की एडक्टॅर्स पेशियाँ।

क्वाड्रिसेप्स (*Quadriceps*) इसे इसलिये कहते हैं क्योंकि इसमे चार सिरे होते हैं, बल्कि ये चार पेशियाँ ही होती है जिनका मिलाजुला प्रवेशन पटेला मे रहता है, और पटेलर लिगॅमेन्ट के द्वारा यह टिबिआ से जुडती हैं। यह घुटने को तानने वाली पेशी है जिनका उपयोग खडे रहने और 'किक' लगाने की शक्तिशाली क्रिया मे होता है। यह एक रेक्टस या सीधी पेशी तथा तीन वास्टस (*Vastus*) पेशियो—लेटरल, इन्टरमीडिअल एव मीडिअल की बनी होती हैं। इन तीनो वास्टस पेशियो मे लेटरल वास्टस सबसे लम्बी होती है और जांघ के बाहर की तरफ स्थित रहती है। कभी-कभी इसका उपयोग इन्ट्रामस्क्यूलर इन्जेक्शन्स लगाने के लिये किया जाता है, क्योकि यह पेशी पैर की रक्तवाहिकाओ, स्नायुओ, एवं लसिकाओ से काफी दूर रहती है।
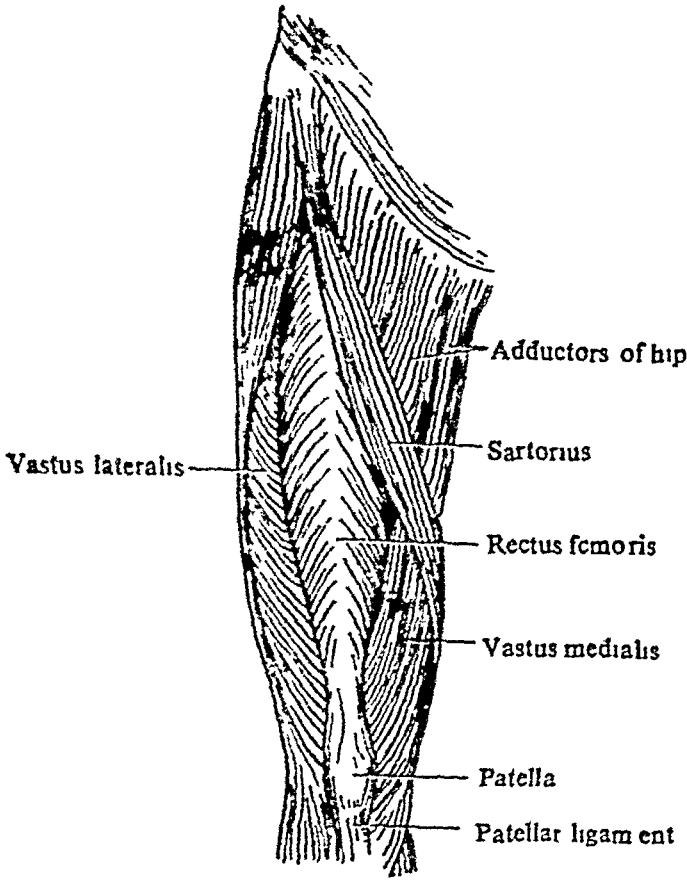
चित्र 82–जाँघ की सामने की पेशियाँ।

हैमस्ट्रिन्ग्स (Hamstrings) घुटने को मोडने वाली पेशियाँ हैं और इन्हें ऐसा इसलिये कहते हैं क्योंकि घुटने के जोड के पीछे पॉप्लिटीअल स्थान के दोनो तरफ मजबूत टेन्डॅन्स या 'स्ट्रिन्ग्स' बनाती हैं। जब घुटने को झुकाया जाता है तब इन्हें आसानी से महसूस किया जा सकता है। ये पेशियाँ हैं

1 *बाइसेप्स फीमोरिस (Biceps femoris)* इसलिये कहलाती है क्योंकि यह दो सिरो से उत्पन्न होती है, एक सिरा इस्किअल ट्यूबरॉसिटि से और दूसरा फीमर के पीछे से। यह फिब्यूला मे प्रवेशित होती है। यह जाँघ के पीछे बाहर की तरफ स्थित रहती है।

2 *सेमिटेन्डिनोसस (Semitendinosus)* इसलिये कहलाती हैं क्योंकि इसके टेन्डॅन की लम्बाई अधिक रहती है जिसके द्वारा यह टिबिआ में प्रवेशित होती है। यह बाइसेप्स फीमोरिस के साथ इस्किअल ट्यूबरॉसिटि से उत्पन्न होती है, तथा जाँघ के पीछे मध्य मे स्थित रहती है।

3 सेमिमेम्ब्रेनोसस (*Semimembranosus*) इसलिये कहलाती हैं क्योंकि इसका वह टेन्डॅन जो इस्किअल ट्यूबॅरॉसिटि से उत्पन्न होता है, झिल्लीनुमा रहता है। यह टिबिआ मे प्रवेशित होती है तथा जाँघ के पीछे अन्दर की तरफ स्थित रहती है।

इस प्रकार बाइसेप्स फीमोरिस घुटने के पीछे बाहर की तरफ 'हैमस्ट्रिन्ग' टेन्डॅन्स बनाती है तथा सेमिटेन्डिनोसस एवं सेमिमेम्ब्रेनोसस पेशियाँ घुटने के पीछे अन्दर की तरफ 'हैमस्ट्रिन्ग' टेन्डॅन्स बनाती है। हैमस्ट्रिन्ग पेशियाँ बहुत शक्तिशाली पेशी समूह बनाती है जो चलने मे, कूदने मे और चढने मे घुटने को मोडने मे सहायता करती है, तथा जब टिबिया स्थिर रहती है, जैसे खडे रहने मे तब इस्किअल ट्यूबॅरॉसिटि पर खिचाव डालकर कूल्हे के जोड को तानने मे ग्लूटीयल पेशियो की सहायता भी करती है।

सार्टोरिअस (Sartorius) या टेलर पेशी, ऊपरी अगली इलिअॅक स्पाइन से जाँघ के सामने से होकर घुटने के अन्दर तक, जहाँ यह घुटने को क्रास करती है, फैली रहती है, और टिबिआ मे प्रवेशित होती है। यह दर्जी के समान बैठने पर जोडो की हलचलो मे सहायता करती है अर्थात् कूल्हे एवं घुटने को मोडती है और फ़ीमर को घुमाती है।
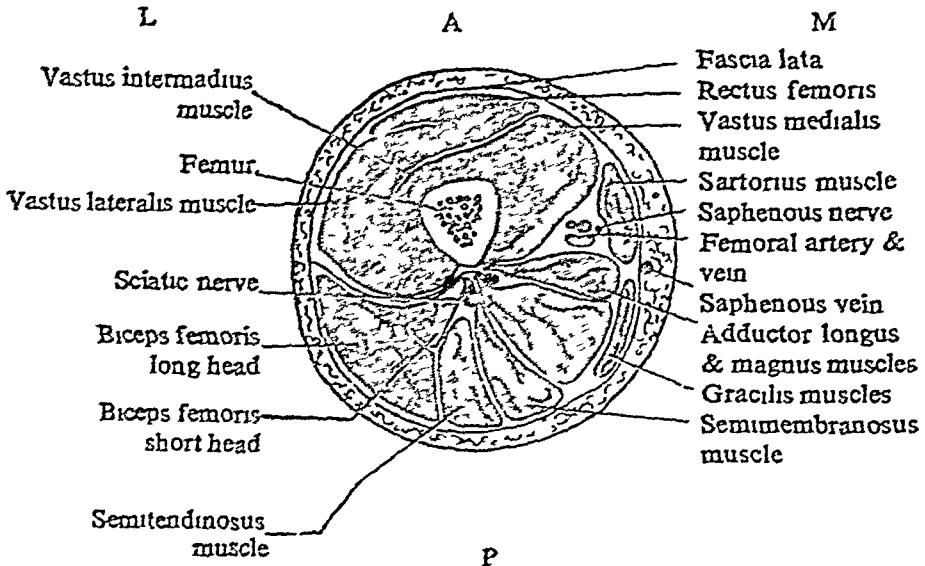
चित्र 83—जाँघ के काट का, पेशियो का अस्थियो तथा अन्य भागो से सम्बन्ध दर्शाने वाला रेखाचित्र, L, लेटरल, M, मीडियन, A, एन्टीरियॅर P, पोस्टीरिअर भाग।

एडक्टर पेशियाँ (Adductor muscles) जाँघ के अन्दर की तरफ का माँसल भाग बनाती हैं और ये ऐसी पेशियाँ है जिसके द्वारा कूल्हे की समीपीकरण गति होती है। इस क्रिया मे एक छोटी बाहर की ओर स्थित ग्रेसिलिस पेशि (*Gracilis*)

सहायक होती है। घुडसवारी करने वाले व्यक्तियो मे ये पेशियाँ अच्छी तरह विकसित रहती है, क्योकि घुडसवार कूल्हो का समीपीकरण करके घुटनो के द्वारा पकड बनाये रखता है। एडक्टॅर पेशियाँ प्यूबिस और इस्किअम मे उत्पन्न होकर फीमर के लिनीआ एस्पीरा एव मीडिअल एपिकॉन्डाइल मे प्रवेशित होती है। इस पेशी का
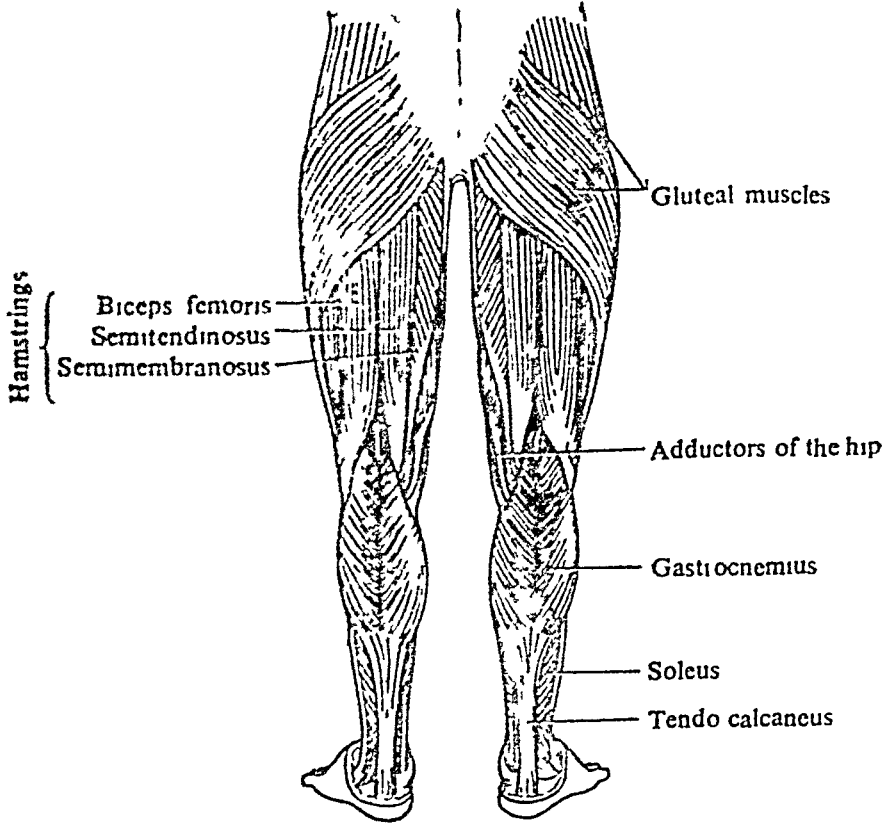
चित्र 84–पैरो के पीछे की पेशियाँ।

बहुत बडा भाग एडक्टॅर मैग्नस पेशी से बनता है और इसमे से एक मार्ग (Canal) गुजरता है जिसमे जाँघ की मुख्य धमनी जाँघ के अन्दर की तरफ से घुटने तक जाती है, जहाँ यह अच्छी तरह सुरक्षित रहती है (देखिए तालिका 7)।

टाँग की पेशियाँ (The muscles of the leg)

टाग मे कुछ बडी पेशिया होती है जो टखने का नियत्रण करती हैं तथा कई छोटी पेशिया होती है जो पाव को घुमाती हैं। मुख्य पेशिया है

1. गैस्ट्रॉक्नीमिअस } पिण्डली की पेशिया
2. सोलीअॅस }
3. टिबिऍलिस एन्टीरिअर
4. उगलियो की मुडाव और प्रसरण पेशिया

तालिका 7

जांघ की पेशियाँ

नाम	स्थिति	उत्पत्ति	प्रवेशन	क्रिया
क्वाड्रिसेप्स फीमोरिस	जाघ के सामने	इलिअम और फीमर	पटेला, जिसमें से यह पटेलर लिगॅमेन्ट के द्वारा टिबिआ से जुडती है	घुटने का पसरण और कूल्हे का मुडाव
हैम्स्ट्रिन्ग्स	जाघ के पीछे	इस्किअल टयूबॅरॉसिटि और फीमर	पॉप्लिटीअल स्थान के दोनो तरफ टेन्डॅन्स के द्वारा टिबिआ एव फिबुला पर	घुटने का मुडाव और कूल्हे का प्रसरण
सार्टोरिअॅस	जाघ के सामने से क्रॉस होती है	अगली ऊपरी इलिअॅक स्पाइन	घुटने के नीचे टिबिआ के अन्दर की तरफ	घुटने और कूल्हे के मुडाव मे सहायता तथा कूल्हे का दूरीकरण और बाह्य घुमाव
कूल्हे की एडक्टर्स पेशिया	जाघ के अन्दर की तरफ	प्यूबिस एव इस्किअम	फीमर का लिनीआ एस्पीरा और मीडिअल एपि-कोन्डाइल	कूल्हे का समीपीकरण
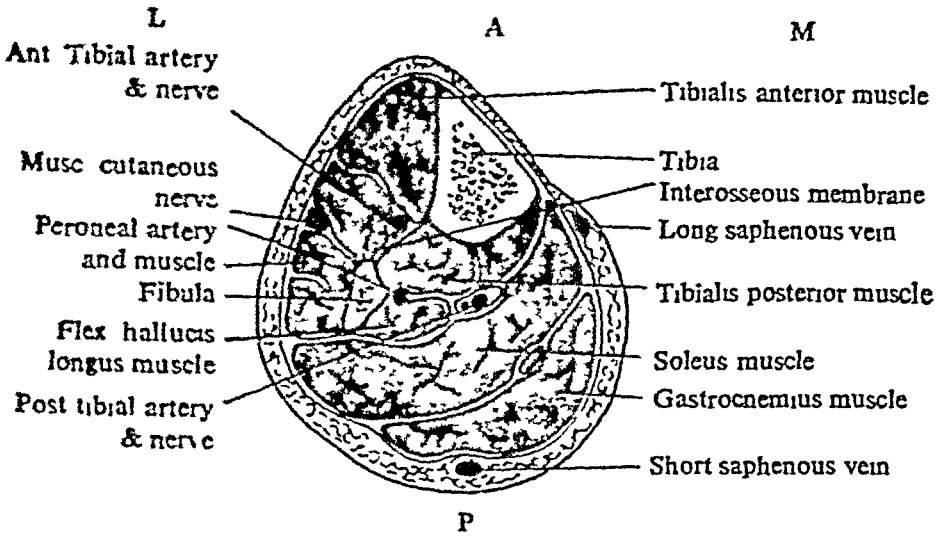
चित्र 85–अस्थियों के सम्बन्ध में पेशियों की स्थिति दर्शाते हुए टाँग का काट। A, पैर के बीच का एन्टिरिअर, M, मीडिअल, L, लेटरल, P, पोस्टीरिअर भाग।

गैस्ट्रॉक्नीमिअस (*Gastrocnemius*) एवं *सोलीअॅस* (*Soleus*) मिलकर पिण्डली का मासल भाग बनाती है, गैस्ट्रॉक्नीमिअस पीछे की ओर सोलीअॅस उसके आगे की ओर स्थित रहती है। *गैस्ट्रॉक्नीमिअस* दो सिरो के द्वारा फीमर से उत्पन्न होती है तथा नीचे की ओर पॉप्लिटीअल स्थान की किनारे बनाती है, जैसे कि हैमस्ट्रिन्गस घुटने के ऊपर की ओर इस जगह की किनारें बनाती है। *सोलिअॅस* टिबिआ से उत्पन्न होती है और घुटने के जोड को क्रास नही करती है और इसलिये घुटने की गति को प्रभावित नही करती। दोनो पेशियाँ नीचे की ओर एक साथ जुड़कर एक मज़बूत उभय टेन्डॅन – टेन्डो कैल्केनीअॅस बनाती हैं जिसके द्वारा ये कैल्केनीअम मे प्रवेशित होती हैं। पिण्डली की पेशियाँ एडी को उठाकर प्लान्टर फ्लेक्शॅन (पादतल मुडाव) करती है, या जैसा कि आजकल कहा जाता है टखने के जोड का प्रसरण करती है। यह कार्य चलने और दौडने की क्रियाओ मे होता है।

टिबिएलिस (*Tibialis*) टाँग के सामने टिबिआ की किनार के एकदम बाहर की ओर स्थित रहती है, जहाँ इसे देखा जा सकता है और जब पाँव की उंगलिया तथा गोल भाग ज़मीन से ऊपर उठाया जाता है तब इसे अनुभव किया जा सकता है। पहाडो पर चढने के अनभ्यस्त लोग जब पहाड पर चढते है तब यही पेशी असामान्य व्यायाम के कारण जकड जाती है। यह पेशी घुटने के नीचे टिबिआ एव फिबुला से उत्पन्न होती है और पाँव के बीच के ऊपरी भाग के अन्दर की

तरफ टारसल एव मेटाटारसल अस्थियो मे प्रवेशित होती है। जब पाँव के गोल भाग को ज़मीन से ऊपर उठाया जाता है एव तलुवे को मध्य रेखा की तरफ घुमाया जाता है तब इसका टेन्डॅन आसानी से देखा और अनुभव किया जा सकता है। यह टखने का 'डॉर्मीफ्लेक्शन' करती है–अर्थात् पृष्ठ सतह की तरफ झुकाती है। आजकल इस क्रिया को कभी-कभी टखने के जोड का मुड़ाव भी कहते हैं। यह पाँव को अन्दर की ओर घुमाती भी है (देखिये तालिका 8)।
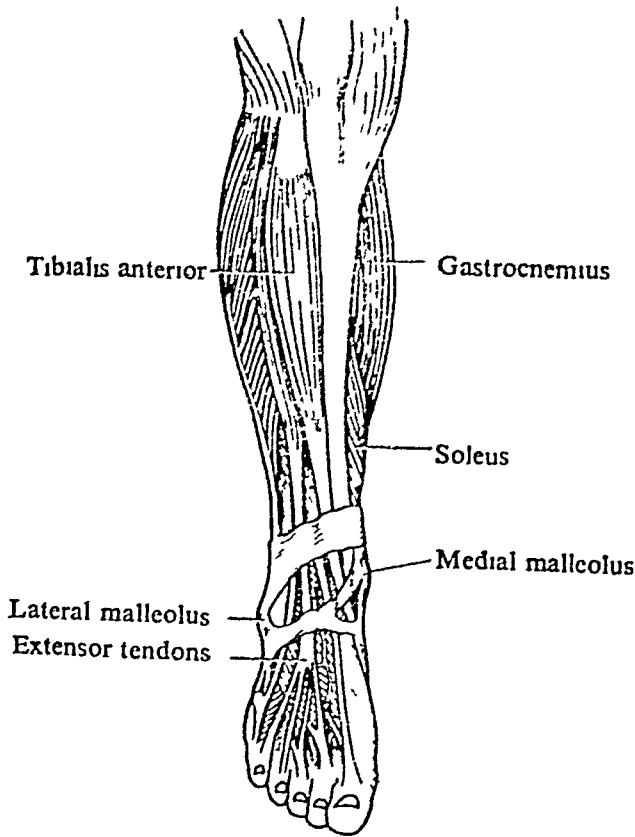
चित्र 86–टाँग और पाँव के सामने की पेशियाँ।

पाँव की पेशियाँ (The muscles of the foot) :

हाथ के समान पाँव मे भी कुछ पेशियाँ रहती है, पाँव को घुमाने वाली मुख्य पेशियाँ ज्यादातर टाँग मे ही स्थित रहती हैं। उँगलियो की *प्रसरण पेशियों* के टेन्डॅन्स पाँव की पृष्ठ सतह को क्रॉस करते हैं, पाँव के अगूठे की अलग पेशी और टेन्डॅन रहता है। उँगलियो की *मुड़ाव पेशियों* (*Flexors*) के टेन्डॅन्स तलुए को क्रॉस करते हैं और मजबूत रहते हैं, तथा साथ ही 'पाँव की आर्च' को

तालिका 8

टॉग की पेशियाँ

नाम	स्थिति	उत्पत्ति	प्रवेशन	क्रिया
गैस्ट्राक्नीमिअॅस	पिण्डली का भाग	फीमर के एपिकॉन्डाइल्स	कैल्केनीअम	एडी को उठाकर, टखने का प्लान्टर फ्लेक्शन्
सोलीअॅस	पिण्डली का भाग	टिबिआ एव फिबुला	कैल्केनीअम	एडी को उठाकर, टखने का प्लान्टर फ्लेक्शॅन,
टिबिएलिस एन्टिरिअर	टॉग के बाजू मे	टिबिआ	पांव के अन्दर की तरफ टार्सल्स एव मेटाटार्सल्स पर	उगलियो को उठाकर टखने का डॉर्सीफ्लेक्शॅन् और पांव को अन्दर की तरफ घुमाना

सहारा देते मे महत्वपूर्ण मदद करते है। पांव की उँगलियो के लिये एक उभय मुडाव पेशी और अगूठे के लिये अलग मुडाव पेशी रहती है। इसके अतिरिक्त उँगलियो की छोटी मुडाव पेशी तलुए मे क्रॉस होकर कैल्केनीअम मे फैलेंजेन्स तक जाती है, तथा आर्च को भी सहारा देती है। मेटाटार्सल अस्थियो के बीच स्थित छोटी-छोटी इन्टररॉसिअॅस पेशियाँ उँगलियो का दूरीकरण एव समीपीकरण करती हैं, लेकिन इनका उपयोग कम होता है और इसलिये ये अल्पविकसित रहती हैं।

12. रक्त
The Blood

रक्तपरिसंचरण तंत्र शरीर का परिवहन तंत्र है जिसके द्वारा आहार, ऑक्सीजन, पानी एवं अन्य सभी आवश्यक पदार्थ ऊतक कोशिकाओ तक पहुंचते है और वहाँ के व्यर्थ पदार्थ ले जाये जाते हैं। यह तीन भागो का वना होता है

1. रक्त वह द्रव पदार्थ है जिसके द्वारा विभिन्न पदार्थ ऊतको तक पहुंचते हैं और ऊतको से वापस ले जाये जाते हैं।
2. हृदय वह संचालक शक्ति है जिसके द्वारा रक्त आगे वढता है।
3. *रक्तवाहिकाएँ* वे मार्ग है जिनके द्वारा रक्त ऊतको तक और ऊतको मे से संचरित होता है, और पुन हृदय मे आता है।

रक्त गाढ़ा, लाल, द्रव है, धमनियो मे यह चमकीला लाल होता है क्योकि यह ऑक्सीजिनेटेड रहता है और शिराओ मे यह गहरा वैंगनी-लाल होता है क्योकि उनमे यह डिऑक्सीजिनेटेड रहता है। शिराओ का रक्त अपनी कुछ ऑक्सीजन ऊतकों को देने के कारण जिससे रग वैंगनी-लाल दिखाई देता है—डी ऑक्सीजिनेटेड हो जाता है और इसी ऑक्सीजन देने के दौरान इसमे ऊतको से व्यर्थ पदार्थ मिल जाते हैं। रासायनिक प्रतिक्रिया मे यह मामूली क्षारीय होता है, और जीवन के दौरान यह प्रतिक्रिया वहुत कम वदलती है, क्योकि शरीर की कोशिकाएँ सिर्फ तब ही जीवित रह सकती है जबकि प्रतिक्रिया सामान्य हो।

यह शरीर के वजन का करीब पाच प्रतिशत भाग वनाता है, इस प्रकार इसका औसत आयतन 3 से 4 लिटर्स रहता है।

रक्त की संरचना (Composition of the blood)

हालांकि रक्त देखने मे केवल द्रव मालूम होता है लेकिन वास्तव मे यह द्रव और ठोस भाग का वना होता है। जव माइक्रोस्कोप द्वारा इसका परीक्षण किया जाता है तव इसमे कई छोटी-छोटी गोल कणिकाएँ देखी जा सकती है जिन्हें *रक्ताणु* (*Blood corpuscles*) या रक्त *कोशिकाएँ* कहते हैं। ये रक्त का ठोस भाग बनाती है, जवकि जिस तरल पदार्थ मे ये तैरती रहती है वह द्रव भाग बनाता है, इस द्रव भाग को *प्लाज्मा* (*Plasma*) कहते हैं। कुल आयतन का 45 प्रतिशत भाग रक्ताणु और 55 प्रतिशत भाग प्लाज्मा वनाता है।

प्लाज्मा (Plasma) :

प्लाज्मा या रक्त का द्रव भाग साफ, हल्के पीले रंग का पानी जैसा द्रव है, जो साधारण फफोले में पाये जाने वाले द्रव के समान होता है। यह निम्न पदार्थों का बना होता है

1 पानी, जो कुल प्लाज्मा का 90 प्रतिशत से भी अधिक भाग बनाता है।

2. खनिज लवण इनके अन्तर्गत सोडियम, पोटैशिअम और कैल्सिअम क्लोराइड्स, फॉसफेट्स एवं कार्बोनेट्स आते हैं। प्लाज्मा में मौजूद मुख्य लवण सोडिअम क्लोराइड या सामान्य लवण होता है, शरीर के ऊतकों को सामान्य कार्य करने के लिये विभिन्न लवणों का सही सन्तुलन आवश्यक है और इसमें कुल 0.9 प्रतिशत अकार्बनिक पदार्थ रहते हैं।

3 प्लाज्मा प्रोटीन्स एल्ब्यूमिन, ग्लोब्यूलिन, फाइब्रिनोजन, प्रोथ्रॉम्बिन एवं हेपरिन।

4 भोज्य-पदार्थ अपने सरल रूप में ग्लूकोज़, एमिनोएसिड्स, वसीय अम्ल एवं ग्लिसेरॉल, और विटामिन्स।

5 घोल में गैसें ऑक्सीजन, कार्बन डाइऑक्साइड एवं नाइट्रोजन।

6 ऊतकों से आने वाले व्यर्थ पदार्थ यूरिआ, यूरिक एसिड एवं क्रिएटिनिन।

7 एन्टिबॉडीज़ एवं एन्टिटॉक्सिन्स जो बेक्टीरिअल संक्रमण से शरीर की सुरक्षा करती हैं।

8 वाहिकाविहीन (अंतःस्रावी) ग्रन्थियों से आने वाले हॉर्मोन्स।

9 एन्ज़ाइम्स।

प्लाज्मा में उपस्थित *पानी* उस द्रव को ताजा पानी प्रदान करता है जो शरीर की सभी कोशिकाओं को भिगोए रखता है। शरीर के वजन का 60 प्रतिशत भाग पानी होता है और 70 किलोग्राम वजन वाले मनुष्य में यह करीबन 46 लिटर्स होता है। 46 लिटर्स में करीब 29 लिटर्स कोशिकाओं में (अन्तर्कोशिकीय द्रव) रहता है और 17 लिटर्स कोशिकाओं के बाहर (बाह्यकोशिकीय द्रव) रहता है। बाह्यकोशिकीय द्रव रक्तवाहिकाओं (3 लिटर्स) और कोशिकाओं को भिगोए रखने वाले द्रव, जिसे इन्टरस्टिशिअॅल द्रव (14 लिटर्स) कहते हैं, के रूप में होता है।

प्लाज्मा में उपस्थित *लवण* प्रोटोप्लाज्म के निर्माण के लिये आवश्यक होते हैं और ये शरीर में आवश्यकतानुसार अम्लों या क्षारों को निष्प्रभावित करने के लिये प्रतिरोधक पदार्थ (Buffer substances) का कार्य करते हैं तथा रक्त की उपयुक्त रासायनिक प्रतिक्रिया बनाये रखते हैं। स्वस्थ व्यक्ति में रक्त सदैव मामूली क्षारीय होता है और इसका pH 7 4 होता है (देखिए अध्याय 1)। प्लाज्मा में करीबन

155 mmol/L पॉज़िटिव-चार्जड आयॅन्स, मुख्यतया सोडिअम, रहते हैं जो, (155 mmol/L) निगेटिव-चार्जड आयन्स, मुख्यत क्लोराइड और कार्बोनेट या बाइकार्बोनेट के द्वारा संतुलित रहते हैं। इसे इलेक्ट्रोलाइट संतुलन कहते है, और इन्टरस्टिशिअॅल द्रव मे यही सतुलन रहता है। अन्तर्कोशिकीय द्रव मे निगेटिव चार्जड आयॅन्स के रूप मे सोडिअम के स्थान पर पोटैशिअम, और पॉजिटिव-चार्जड आयन्स के रूप मे क्लोराइड के स्थान पर फॉस्फेट आयॅन्स एव प्रोटीन्स रहते हैं।

प्लाज्मा मे मौजूद *प्रोटीन्स* रक्त को चिपचिपा बनाते है। प्लाज्मा के इस गुण को लसलसापन कहते है, और यह केशिकीश दीवारो से ऊतको मे अधिक द्रव बहने मे रोकने के लिए आवश्यक होता है। यदि प्रोटीन की कमी है, जैसे गुर्दे की बीमारी मे जिसमे प्रोटीन एल्ब्यूमिन के रूप मे मूत्र के साथ शरीर से निकलता रहता है, तो प्लाज्मा का परासरण या रसाकर्षण दबाव (Osmotic pressure) कम हो जाता है और ऊतको मे अधिक द्रव चला जाता है। ऊतको मे उपस्थित इस अधिक द्रव की स्थिति को ईडीमा (Oedema) कहते है रक्त दबाव बनाये रखने मे रक्त का लसलसापन भी सहायता करता है। ऐसा माना जाता है कि एल्ब्यूमिन यकृत मे बनता है और ग्लोब्यूलिन उन सफेद रक्ताणुओ से जिन्हें लिम्फोसाइट्स कहते हैं, उत्पन्न होता है। फाइब्रिनोजन एव प्रोथ्रॉम्बिन यकृत मे बनते हैं और रक्त के थक्का बनने की क्रिया मे दोनो ही आवश्यक होते है। बिना फाइब्रिनोजन के प्लाज्मा को सीरम कहते है, इसे पीले द्रव के रूप मे देखा जा सकता है, जो कटे हुए स्थान पर थक्का बनने के बाद रिसता रहता है। हेपॅरिन भी यकृत मे बनती है और यह रक्तवाहिकाओ मे रक्त का थक्का बनने को रोकती है।

ग्लूकोज, एमिनो एसिड्स, वसीय अम्ल एव ग्लिसेरॉल के रूप मे *भोज्य-पदार्थ* आहार नाल द्वारा रक्त मे शोषित किये जाते हैं। ये कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन एव वसा के चयापचय (Metabolism) के अन्त-पदार्थ है।

यूरिया, यूरिक एसिड एव क्रिएटिनिन प्रोटीन चयापचय के *व्यर्थ-पदार्थ* है। ये यकृत मे बनते है और गुर्दो के द्वारा उत्सर्जित होने के लिये रक्त द्वारा ले जाये जाते है।

एन्टिबॉडीज एव एन्टिटॉक्सिन्स जटिल प्रोटीन पदार्थ हैं जो सक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करते है और विषाक्त बेक्टीरिअल टॉक्सिन्स को निष्प्रभावित करते है।

एन्जाइम्स शरीर के द्वारा निर्मित रासायनिक पदार्थ है जो प्रतिक्रिया मे भाग लिये बिना अन्य पदार्थो मे रासायनिक परिवर्तन पैदा करते हैं।

रक्त कोशिकाएँ (The Blood Cells) :

रक्त कोशिकाएँ तीन प्रकार की होती है लाल रक्ताणु (एरिथ्रोसाइट्स), सफेद रक्ताणु (ल्यूकोसाइट्स) एव प्लेट्लिट्स (थ्रॉम्बोसाइट्स)।

लाल रक्ताणु (*The red cells*) ये छोटी-छोटी डिस्क के आकार की कोशिकाएँ है जो दोनो तरफ अवतल (Concave) रहती है। ये बहुत बड़ी सख्या मे होती है और रक्त मे 5,000,000 प्रति क्यूबिक मि लि के हिसाब मे विद्यमान रहती हैं। ये बहुत छोटी होती है, जिनका डाइमीटर सिर्फ 7 2 माइक्रॉन (1 माइक्रॉन=1 माइक्रोमीटर=1/1000 मि मी, इसे μm या μ लिखा जाता है)। इनमे न्यूक्लिअस नही होता है, बल्कि एक विशिष्ट प्रोटीन रहता है जिसे हीमोग्लोबीन (*Haemoglobin*) कहते है। यह एक प्रकार का रग होता है जो पीला रहता है और बहुत सारी पीली कणिकाओ के सयुक्त प्रभाव से रक्त लाल दिखाई देता है। हीमोग्लोबिन मे थोडा सा आयर्न (लोहा) होता है, और आयर्न का होना सामान्य स्वास्थ्य के लिये जरूरी है, हालाँकि ऐसा कहा जाता है कि पूरे शरीर मे लौह की कुल मात्रा सिर्फ 2 इची कील बनाने के लिये ही पर्याप्त होती हैं। हीमोग्लोबिन मे ऑक्सीजन के प्रति अत्यधिक आकर्षण होता है। जैसे ही लाल रक्ताणु फुप्फुसो से गुजरते है, हीमोग्लोबिन वायु मे उपस्थित ऑक्सीजन से मिल जाता है (ऑक्सीहीमोग्लोबिन) और चमकीले रग का हो जाता है। इससे ऑक्सीजिनेटेड रक्त चमकीला लाल हो जाता है। जैसे ही लाल रक्ताणु ऊतको से गुजरते है, रक्त मे ऑक्सीजन निकल जाती है और हीमोग्लोबिन का रग हलका हो जाता है (न्यूनीकृत हीमोग्लोबिन) जिससे रक्त बैंगनी लाल रग का हो जाता है। हीमोग्लोबिन को ग्राम्स प्रति 100 मि ली के रूप मे नापा जाता है, इसका सामान्य मान 14 से 16 ग्रा प्रति 100 मि लि, है।
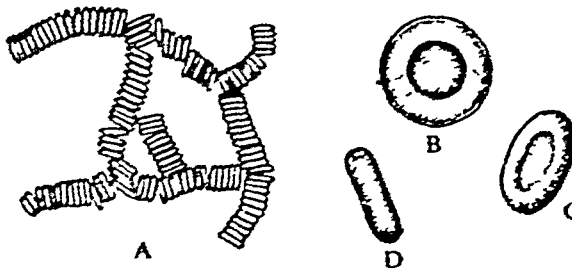
चित्र 87—लाल रक्ताणु। (A) गोल लच्छो मे निकले हुए रक्त को माइक्रोस्कोप मे देखने पर; (B) (C) एव (D) एक ही कोशिका के तीन दृश्य।

लाल रक्ताणुओ का कार्य फुप्फुसो मे ऊतको तक ऑक्सीजन लाना और थोडी कार्बन-डाइऑक्साइड वहाँ से वापस ले जाना है। यही इनका एकमात्र कार्य है, और यह इनमे उपस्थित हीमोग्लोबिन की मात्रा पर निर्भर रहता है। लाल रक्ताणुओ की सख्या मे कमी आने के कारण या प्रत्येक कोशिका मे हीमोग्लोबिन की मात्रा सामान्य से कम होने के कारण यदि हीमोग्लोबिन की मात्रा मे कमी हो जाती है तो वह व्यक्ति एनीमिआ से पीडित हो जायेगा।

लाल रक्ताणुओं का *निर्माण* जालीदार अस्थि के लाल बोन मैरो मे होता है। इस प्रकार की अस्थि लम्बी अस्थियो के सिरों और चपटी तथा असमाकृति अस्थियो मे पायी जाती है। बाल्यावस्था मे लाल बोन मैरो लम्बी अस्थियो के पूरे शाफ्ट मे भी पाया जाता है क्योंकि बालको मे लाल रक्ताणुओं के निर्माण की आवश्यकता अधिक होती है।

बोन मैरो (अस्थि मज्जा) मे लाल रक्ताणु विकास की कई अवस्थाओ मे गुजरते है। एरिथ्रोब्लास्ट बडी कोशिकाएँ है जिनमे न्यूक्लिआइ और थोडी मात्रा मे हीमोग्लोबिन होता है। ये नार्मोब्लास्ट बन जाती है जो अधिक हीमोग्लोबिन और छोटी न्यूक्लिआइ वाली छोटी-छोटी कोशिकाएँ है। इसके बाद न्यूक्लियस नष्ट होकर अदृश्य हो जाता है और साइटोप्लाज्म मे पतले धागो जैसी रचनाएँ बच जाती है, इस अवस्था मे कोशिकाओं को रेटिक्यूलोसाइट्स (Reticulocytes) कहते है। अतत धागे जैसी रचनाएँ समाप्त हो जाती है और पूर्ण रूप से विकसित एरिथ्रोसाइट रक्त प्रवाह मे चला जाता है। स्वस्थ व्यक्ति के रक्त मे करीब-करीब सभी लाल रक्ताणु एरिथ्रोसाइट्स होने चाहिए, साथ मे कभी-कभी रेटिक्यूलोसाइट्स हो सकते है। लाल रक्ताणुओं के सामान्य निर्माण के लिये कई पदार्थ आवश्यक होते है।

प्रोटीन प्रोटोप्लाज्म के निर्माण के लिये जरूरी है।

आयर्न हीमोग्लोबिन के लिये आवश्यक है। बहुत कम आयर्न उत्सर्जित होता है। जैसे ही लाल रक्ताणु टूटते है, आयर्न सचित होकर पुन उपयोग मे आ जाता है, लेकिन आयर्न की कुछ मात्रा आहार मे लेना जरूरी होता है। पुरुष को प्रतिदिन करीब 10 मि ग्रा आयर्न की आवश्यकता होती है, जबकि स्त्री को 15 मि ग्रा प्रतिदिन, ताकि रजोधर्म के दौरान होने वाली कमी और गर्भावस्था, प्रसव, एव दुग्धक्षरण के दौरान होने वाली कमी को पूरा किया जा सके। आयर्नयुक्त भोज्य-पदार्थ लाल मास, अडे की जर्दी, हरी सब्जियाँ, मटर, सेम और मसूर है।

विटामिन B_{12} (साइनोकोबालामिन) लाल रक्ताणुओं के निर्माण के लिये जरूरी है और यह समशीतोष्ण जलवायु मे रहने वाले व्यक्तियो के आहार मे प्राय प्रर्याप्त मात्रा मे होता है। यह छोटी आँत मे तब ही शोषित हो सकता है जब यह आमाशय द्वारा स्रावित इन्ट्रिन्सिक फैक्टॅर से जुडा हुआ हो। इन दोनो पदार्थो को मिलाकर एन्टि-एनीमिक फैक्टॅर (या हीमोपॉइटिक फैक्टॅर) कहते है, जो यकृत मे सचय होता है और आवश्यकतानुसार अस्थि मैरो मे चला जाता है। विटामिन B_{12} को एक्स्ट्रिन्सिक फैक्टॅर भी कहते है।

अन्य पदार्थ जो थोडी मात्रा मे ही क्यो न हो, मगर आवश्यक होते है। ये है, विटामिन C, फॉलिक एसिड (विटामिन B कॉम्पलेक्स का एक घटक), थाइरॉक्सिन हॉर्मोन तथा कॉपर व मैंगनीज़ की थोडी मात्रा।

लाल रक्ताणु रक्तपरिसंचरण में करीब 120 दिन तक रहते हैं जिसके बाद ये स्प्लीन और लिम्फ नोड्स में स्थित रेटिक्यूलोएन्डोथीलिअॅल तंत्र की कोशिकाओं द्वारा अन्तर्ग्रहित हो जाते हैं। यहाँ हीमोग्लोबिन अपने अलग-अलग भागों में टूटकर यकृत में पहुँच जाता है। ग्लोबिन प्रोटीन संचयक में पुनः चला जाता है या बाद में और अधिक टूटकर मूत्र में उत्सर्जित हो जाता है। हीम पुनः दो भागों में विभाजित होता है, एक आयर्न जो संचय हो जाता है और फिर से उपयोग में आता है, तथा दूसरा रंग (Pigment) जो यकृत द्वारा पित्त वर्ण (Bile pigments) में परिवर्तित होता है तथा मल में उत्सर्जित हो जाता है। लाल रक्ताणुओं का निर्माण और क्षयकरण प्रायः समान दर से होते हैं जिससे रक्ताणुओं की संख्या स्थिर रहती है।

सफेद रक्ताणु (*The white cells*) सफेद रक्ताणु या ल्यूकोसाइट्स लाल रक्ताणुओं की अपेक्षा बड़े होते हैं, इनका डाइमीटर करीब 10 μm होता है और इनकी संख्या कम रहती है। ये रक्त में 7,000 से 10,000 प्रति क्यूबिक मि मी (mm³) रहते हैं, हालाँकि जब शरीर में कोई संक्रमण होता है तब यह संख्या काफी बढ़कर 30,000 प्रति क्यूबिक मि मी तक पहुँच जाती है। ल्यूकोसाइटस की संख्या की इस वृद्धि को ल्यूकोसाइटोसिस कहते हैं। ल्यूकोसाइटस अथवा सफेद रक्ताणु तीन प्रकार के होते हैं।

1 *पॉलिमॉर्फोन्यूक्लिअर ल्यूकोसाइट्स* को ग्रेन्यूलोसाइटस भी कहते हैं क्योंकि इसका साइटोप्लाज्म ग्रेन्यूलर (कणमय) दीखता है। न्यूक्लिअस में धीरे-धीरे कई खंड (Lobes) बन जाते हैं, इसलिये यह नाम दिया गया है (पॉलि = कई, मॉरफ = प्रकार)। सफेद रक्ताणु की कुल संख्या का करीब 75 प्रतिशत भाग ये कोशिकाएँ बनाती हैं। ये अस्थि के लाल मैरो में बनती हैं और करीब 21 दिन तक जीवित रहती हैं। ग्रेन्यूलोसाइटस को पुनः इनकी रंग सोखने की क्षमता (रजकता—Staining) के गुणों के अनुसार वर्गीकृत किया जा सकता है।

न्यूट्रोफिल्स (70 प्रतिशत) अम्लीय और क्षारीय दोनों ही प्रकार के रजकों को शोषित कर लेते हैं। इनमें छोटे-छोटे कणों को निगलने की क्षमता रहती है, उदाहरणार्थ बैक्टीरिआ और कोशिका के अवशेष। इस शक्ति को फैगोसाइटोसिस (Phagocytosis) कहते हैं, इसीलिये इन्हें कभी-कभी फैगोसाइटस भी कहा जाता है। इनमें अमीबॉइड गति होती है और ये केशिकीय दीवारों से निकलकर संक्रमण के स्थान पर एकत्रित होने के लिये रक्त-प्रवाह के बाहर जा सकते हैं।

इओसिनोफिल्स (4 प्रतिशत) अम्लीय रजकों को शोषित करके लाल रंग के हो जाते हैं। इनकी संख्या में वृद्धि एलर्जिक अवस्थाओं के दौरान होती है, जैसे एस्थमा और कृमि संक्रमण के दौरान।

बैसोफिल्स (1 प्रतिशत या कम) क्षारीय रजकों को शोषित करके नीले रंग के हो जाते हैं। इनमें हेपरिन और हिस्टैमिन रहते हैं।

2 *लिम्फोसाइट्स* कुल सफेद रक्ताणुओं की संख्या का करीब 20 प्रतिशत भाग बनाते है, ये लिम्फ नोड्स और लिम्फेटिक ऊतक मे बनते हैं जो स्प्लीन, यकृत और अन्य अगो मे रहते हैं। इनमे कुछ अमीबॉइड हलचल होती है, लेकिन ये सक्रिय रूप से फैगोसाइटिक नही होते है। ये एन्टिबॉडीज़ के निर्माण से सबंधित रहते हैं।

3. *मोनोसाइट्स* कुल सफेद रक्ताणुओं की संख्या का करीब 5 प्रतिशत भाग बनाते हैं। सभी सफेद रक्ताणुओं मे ये सबसे बडे होते है और इनमे घोडे की नाल के आकार का न्यूक्लिअस रहता है। इनमे अमीबॉइड और फैगोसाइटिक दोनो ही प्रकार की हलचल होती है, तथा ये रेटिक्यूलोएन्डोथीलिअल तत्र का भाग हो सकते हैं (देखिये पेज 131)।

A B C
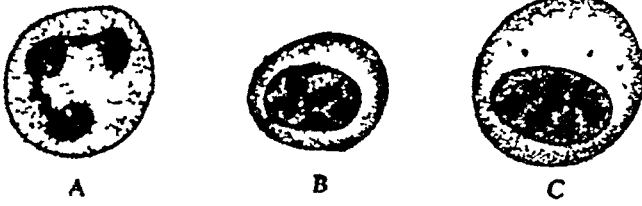
चित्र 88—सफेद रक्ताणु। A पॉलिमॉर्फोन्यूक्लिअर ल्यूकोसाइट, B लिम्फोसाइट, C मोनोसाइट।

प्लेट्लिट्स (Platelets) प्लेटलिट्स या थ्रॉम्बोसाइटस लाल रक्ताणुओ की अपेक्षा छोटे होते है और अस्थि के मैरो मे बनते है। इनकी संख्या रक्त मे करीब 2,50,000/mm^3 होती है। ये रक्त का थक्का बनाने के लिये आवश्यक होते है।

रक्त का थक्का बनना (The Clotting of Blood)

जब रक्त खुरदरी सतह पर बहता है तब क्षतिग्रस्त ऊतक कोशिकाओ या क्षतिग्रस्त थ्रॉम्बोसाइट्स से थ्रॉम्बोकाइनेज़ नामक एन्जाइम निकलता है। इस एन्जाइम की उपस्थिति मे, और जब कैलसिअम भी पर्याप्त मात्रा मे उपस्थित रहता है तब
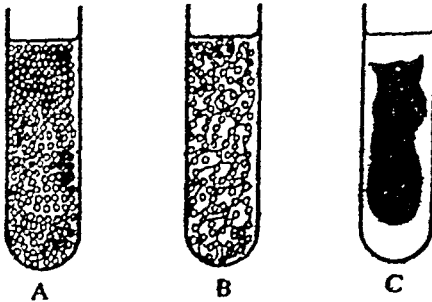
चित्र 89—रक्त का थक्का बनना। A, निकला हुआ रक्त, B, तन्तु बने हुए, C, सिरम मे थक्का तैरते हुए।

प्रोथ्रॉम्बिन, जो कि सामान्यतया प्लाज्मा मे उपस्थित रहता है, एक नये पदार्थ मे परिवर्तित हो जाता है जिसे थ्रॉम्बिन कहते है। थ्रॉम्बिन भी एक सक्रिय एन्ज़ाइम है

जो फाइब्रिनोजन (सामान्य प्लाज्मा प्रोटीन्स का एक प्रकार) पर क्रिया करके एक अघुलनशील तन्तुमय पदार्थ बनाता है जिसे फाइब्रिन कहते हैं। फाइब्रिन के तन्तु रक्त कोशिकाओं को घेरकर थक्का बनाते हैं। कुछ समय बाद थक्का सिकुड़ जाता है और सिरम निकल जाता है (सिरम=प्लाज्मा=फाइब्रिनोजन)।

तालिका 9

थक्का बनने की अवस्थाएं
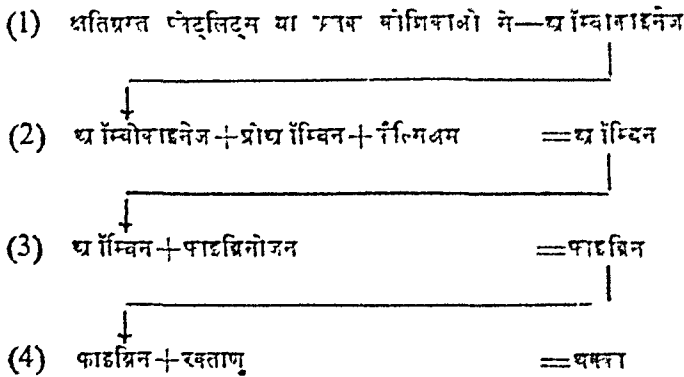
थक्का बनने को प्रभावित करने वाले पहलू (Factors affecting clotting)

प्रोथ्रॉम्बिन यकृत में बनता है और इसके निर्माण के लिए विटामिन K आवश्यक होता है। विटामिन K हरी सब्जियों में रहता है और यह बेक्टीरिअल क्रिया द्वारा आंतों में भी बनता है। यह सिर्फ पित्त की उपस्थिति में ही आंतों से रक्त में शोषित हो सकता है। यदि पित्त उपस्थित नहीं है, जैसे कि पीलिआ के कुछ प्रकारों में, तो प्रोथ्रॉम्बिन की कमी हो सकती है तथा रक्तस्राव की प्रवृत्ति बढ़ जाती है।

हेपॅरिन रक्त में सामान्य रूप से उपस्थित एक प्रोटीन है जो यकृत में बनता है और यह रक्तवाहिकाओं में थक्का बनने को रोकता है। इसे थक्का-विरोधी (Anti-coagulant) कहा जाता है।

रक्त के कार्य (The Functions of Blood)

रक्त के कार्य (उपयोग) निम्नलिखित हैं

1 ऊतकों तक आहार ले जाना।

2 ऑक्सिहीमोग्लोबिन के रूप में ऊतकों तक ऑक्सीजन ले जाना।

3 ऊतकों तक पानी ले जाना।

4 व्यर्थ पदार्थों को उत्सर्जित करने वाले अंगों तक व्यर्थ पदार्थों को ले जाना।

5. सफेद रक्ताणुओं और एन्टिबॉडीज के द्वारा बेक्टीरियल संक्रमण से प्रतिरोध करना।

6. ग्रन्थियों को उन पदार्थों की पूर्ति करना जिनसे वे अपना स्रावण बनाती है।
7. वाहिकाविहीन ग्रन्थियों के स्रावणों, तथा एन्जाइम्स का वितरण करना।
8. सम्पूर्ण शरीर में समान रूप से उष्मा वितरित करना, और इस प्रकार शरीर के तापक्रम का नियन्त्रण करना।
9. थक्का बनाकर रक्तस्राव को रोकना।

रक्त समूह (Blood Groups)

किसी एक व्यक्ति के रक्त को दूसरे व्यक्ति के रक्त के साथ मिश्रित करना हमेशा सुरक्षित नहीं है। यह तथ्य रक्ताधान की शुरुआत से स्पष्ट हुआ, जिससे आरम्भ में कभी-कभी रोग-मुक्ति हुई लेकिन कभी-कभी रोगी की मृत्यु भी हुई। ऐसा इस तथ्य के कारण हुआ था कि रक्त के चार मूलभूत समूह होते हैं, यदि भिन्न समूहों के रक्त को मिलाया गया तो लाल रक्ताणु आपस में चिपककर गुच्छे बना सकते हैं। इसे संयोजन (*Agglutination*) कहते हैं। यह मारक है क्योंकि लाल रक्ताणु के गुच्छे रक्तवाहिकाओं को अवरुद्ध करके रक्तपरिसंचरण को रोक देते हैं। इसके अलावा क्षतिग्रस्त लाल रक्ताणुओं से निकलने वाले वर्ण की अत्यधिक मात्रा को उत्सर्जित करने के कारण गुर्दे गम्भीर रूप से क्षतिग्रस्त हो जाते हैं।

जब किसी व्यक्ति को रक्ताधान की आवश्यकता होती है तब पहले उसका रक्त समूह ज्ञात करना और बाद में उसी समूह के रक्तदाता को ढूंढना जरूरी है। लाल रक्ताणुओं में पाये जाने वाले एग्ल्यूटिनोजन्स (*Agglutinogens*) नामक पदार्थों की उपस्थिति या अनुपस्थिति के अनुसार रक्त समूहों का नाम दिया जाता है। दो एग्ल्यूटिनोजन्स होते हैं जिन्हें A और B कहा जाता है। यदि A एग्ल्यूटिनोजन उपस्थित है तो रक्त समूह को A समूह, यदि B है तो B समूह, यदि दोनों A और B हैं तो AB समूह, तथा यदि कोई भी एग्ल्यूटिनोजन नहीं है तो रक्त समूह को O समूह कहा जाता है। रोगी का रक्त समूह ज्ञात करने और उसी समूह के व्यक्ति (रक्तदाता) में रक्त लेने के बाद, दाता के रक्त में लाल रक्ताणुओं का नमूना लेकर जिसे रक्त देना है उस रोगी के कुछ प्लाज्मा के साथ मिलाया जाता है (इस रोगी को अब रक्तप्राप्तकर्ता कहा जाता है)। ऐसा इसलिये किया जाता है क्योंकि प्लाज्मा में (एग्ल्यूटिनिन्स) (*Agglutinins*) नामक पदार्थ रहते हैं जो असंगत रक्त समूहों का मिलान होने पर लाल रक्ताणुओं का संयोजन कर देते हैं। एग्ल्यूटिनिन्स को एन्टि-A एवं एन्टि-B कहते हैं, और प्लाज्मा में वे सभी एग्ल्यूटिनिन्स रहते हैं जो इसके स्वयं के लाल रक्ताणुओं को प्रभावित नहीं करेंगे। इसलिये A समूह के प्लाज्मा में एन्टि-B एग्ल्यूटिनिन, B समूह के प्लाज्मा में एन्टि-A एग्ल्यूटिनिन, AB समूह के प्लाज्मा में कोई भी एग्ल्यूटिनिन्स नहीं, और O समूह के प्लाज्मा में दोनों एन्टि-A एवं एन्टि-B एग्ल्यूटिनिन्स रहते हैं। जब प्रयोगशाला में रक्तदाता के लाल रक्ताणुओं को रक्तप्राप्तकर्ता के प्लाज्मा के साथ मिलाया जाता है तब यह देखने में सहायता हो सकती है कि संयोजन हो रहा

है या नही। यह ज्ञात होगा कि AB समूह के प्लाज्मा मे कोई एग्ल्यूटिनिन्स नही रहते हैं और इसीलिये यह किन्ही भी लाल रक्ताणुओ का सयोजन नही कर सकता, इसका अर्थ यह हुआ कि इस समूह (AB) के रक्त वाला रोगी अन्य किसी भी समूह का रक्त प्राप्त करने मे समक्ष रहेगा, अत इस समूह को सर्वसमूह प्राप्तकर्ता (Universal receepient) कहते है। O समूह के लाल रक्ताणुओ मे कोई एग्ल्यूटिनोजन्स नही रहते है और इसीलिए ये किसी भी प्रकार के प्लाज्मा मे उपस्थित एग्ल्यूटिनिन्स द्वारा सयोजित नही हो सकते। अत इस समूह का रक्त किसी भी रक्तसमूह वाले रोगी को सुरक्षित रूप से दिया जा सकता है, तथा इसे सर्वसमूह दाता (Universal donor) कहते है। व्यावहारिक तौर पर किसी भी रोगी को रक्त देने के पूर्व रक्त की सगतता या अनुकूलता (Compatibility) की जांच हमेशा बहुत ही सावधानीपूर्वक करनी चाहिये।

तालिका 10

रक्त समूह	लाल रक्ताणुओं मे एग्ल्यूटिनोजन	प्लाज्मा मे एग्ल्यूटिनिन	इनसे रक्ताधान सम्भव
A	A	एन्टि-B	A एव O समूह
B	B	एन्टि-A	B एव O समूह
AB	A एव B	कोई भी नही	कोई भी समूह
O	कोई भी नही	एन्टि-A एव एन्टि-B	सिर्फ O समूह

रीसॅस फैक्टॅर (Rhesus factor)

करीब 85 प्रतिशत व्यक्तियो के रक्त मे ABO समूहन के अलावा एक अतिरिक्त फैक्टॅर उपस्थित रहता है। यह एक एग्ल्यूटिनोजन है जिसे रीसॅस फैक्टॅर कहते है। जिन व्यक्तियो मे यह फैक्टॅर रहता है उन्हे रीसॅस पॉज़िटिव (Rh+) कहते हैं, बाकी बचे हुए 15 प्रतिशत को रीसस निगेटिव (Rh—) कहते है। यदि Rh निगेटिव व्यक्ति को Rh पाज़िटिव दाता का रक्त प्राप्त होता है तो एग्ल्यूटिनोजन एन्टि-Rh एग्ल्यूटिनिन्स के निर्माण को उत्तेजित करते हैं। यदि बाद मे दूसरा Rh पॉजिटिव रक्ताधान दिया गया तो इस दिये हुए रक्त की कोशिकाएँ सयोजित होकर नष्ट (हीमोलाइज्ड) हो जायेंगी और प्राप्तकर्त्ता की गभीर स्थिति या मृत्यु हो जावेगी। गर्भावस्था के दौरान भी यह फैक्टॅर कठिनाई पैदा कर सकता है। यदि Rh निगेटिव माता मे Rh पॉज़िटिव गर्भस्थ शिशु है तो माता मे एन्टि-Rh एग्ल्यूटिनिन्स बनना आरम्भ हो सकता है जो बाद मे शिशु के लाल रक्ताणुओ को नष्ट कर सकता है। शिशु मे इस समस्या का समाधान स्वय ही हो जाता है या उसे बदलाव रक्ताधान (Exchange transfusion) की आवश्यकता पड सकती है।

असंक्राम्यता (Immunity)

जब बाह्य प्रोटीन को शरीर मे प्रविष्ट किया जाता है तब शरीर इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप एक जैसे पदार्थ का निर्माण करता है जो उमसे क्रिया करके उसे अहानिकारक बना देता है। ऐसे बाह्य प्रोटीन को एन्टिजन (*Antigen*) कहते है और इसकी प्रतिक्रिया मे जो पदार्थ बनते है उन्हें एन्टिवॉडीज (*Antibodies*) कहा जाता है। एन्टिजन्स कोई भी बाह्य प्रोटीन हो सकते है, लेकिन सामान्य एन्टिजन्स है–सूक्ष्म जीव, कुछ दवाइयां (पेनिसिलिन एक उदाहरण है), प्राणीय और वनस्पति प्रोटीन्स–जिसमे परागकण तथा बाहरी ऊतक जैसे प्रत्यारोपित अग सम्मिलित है। जो प्रतिक्रिया होती है उसे एन्टिजन-एन्टिवॉडी प्रतिक्रिया कहते है। जब यह सूक्ष्म-जीवो की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होती है तो उसे असक्राम्यता (Immunity) कहा जाता है।

असक्राम्यता सक्रमण के विरुद्ध उपयोगी सुरक्षा है। प्रत्येक प्रकार के सूक्ष्म-जीव जो शरीर मे प्रविष्ट होते है, एन्टिजन का कार्य करते है और विशिष्ट एन्टिवॉडी का निर्माण उत्तेजित करते है जो सिर्फ उसी एन्टिजन को नष्ट करती है, अन्य को नही। पहली बार कोई व्यक्ति मीजल्स पैदा करने वाले वाइरस के सम्पर्क मे आता है तो एन्टिवॉडी बनती है जो सक्रमण को समाप्त करने के लिये शरीर की सहायता करती है और उसी प्रकार के वाइरस द्वारा भविष्य के सक्रमण की रोकथाम के लिये रक्त मे मौजूद रहती है। जब शरीर की कोशिकाएँ एन्टिवॉडी बनाती हैं तब असक्राम्यता सक्रिय (Active) होती है, किसी दूसरे व्यक्ति की कोशिकाओ मे बनी एन्टिवॉडी से प्राप्त असक्राम्यता निष्क्रिय (Passive) होती है।

सक्रिय असक्राम्यता कई प्रकारो से प्राप्त की जा सकती है। *सक्रिय प्राकृतिक असक्राम्यता (Active natural immunity)* वीमारी होने के वाद प्राप्त होती है, जिसके वाद इसी प्रकार की वीमारी के दूसरे आक्रमण की रोकथाम के लिये एन्टिवॉडी रक्त मे तैयार रहती है। इस प्रकार की असक्राम्यता ऐसे सक्रमणो (अनैदानिक) के द्वारा भी विकसित हो सकती जिसमे जीवाणु रोग पैदा करने लायक सख्या मे नही होते। इस प्रकार के सक्रमणो मे इन सूक्ष्म-जीवाणुओ की इतनी कम सख्या शरीर मे पहुँचती है कि ये जीवाणु रोग के कोई निश्चित लक्षण पैदा नही करते, लेकिन एन्टिवॉडी के निर्माण के लिये शरीर को उत्तेजित करने के लिये पर्याप्त रहते है। *सक्रिय कृत्रिम असक्राम्यता (Active artificial immunity)* वालको और यात्रियो को ऐसी वीमारियो की रोकथाम करने के लिये दी जाती है जो गभीर या मारक हो सकती है। मृत सूक्ष्म जीवाणुओ या अहानिकारक बनाए हुए जीवित जीवाणुओ का इन्जेक्शन दिया जाता है और शरीर प्रतिक्रियास्वरूप एन्टिवॉडीज निर्माण करता है। इस प्रकार सक्रिय असक्राम्यता प्राप्त होती है। इस प्रकार की असक्राम्यता प्राप्त करने के लिये अहानिकारक टॉक्सिन्स

का भी उपयोग किया जाता है। टॉक्सिन्स सूक्ष्म-जीवाणुओ द्वारा निर्मित रासायनिक विष है और जब इनको अहानिकारक बना दिया जाता है तो ये एन्टिजन्स का कार्य भी करते हैं। अहानिकारक सूक्ष्म-जीवाणुओ को वैक्सिन्स (Vaccines) और अहानिकारक टॉक्सिन्स को टॉक्साइड्स (Toxoids) कहते हैं। सक्रिय कृत्रिम असक्राम्यता द्वारा कई बीमारियो की रोकथाम की जाती है, इनमे से कुछ सामान्य बीमारियाँ कुकर-खाँसी, डिफ्थीरिआ, मीज़ल्ज़, चेचक, पोलिओमाइलाइटिस एव क्षयरोग हैं।

तालिका 11
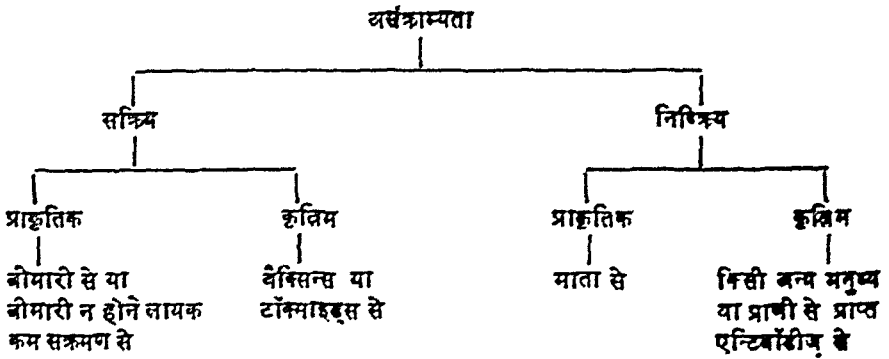
निष्क्रिय प्राकृतिक असंक्राम्यता (Passive natural immunity) शिशु द्वारा जन्म के पूर्व प्राप्त की जाती है क्योकि एन्टिबॉडीज़ माता से गर्भस्थ शिशु तक जाती है। *निष्क्रिय कृत्रिम असक्राम्यता (Passive artificial immunity)* बीमारी की रोकथाम या इसके उपचार के लिये उपयोगी है। किसी अन्य मनुष्य या प्राणी मे एन्टिबॉडीज़ का निर्माण किया जाता है और इन्हें बीमार व्यक्ति मे प्रविष्ट किया जाता है। निष्क्रिय असक्राम्यता हमेशा कम समय के लिये रहती है क्योकि कुछ समय बाद एन्टिबॉडीज़ नष्ट हो जाती है।

एन्टिजन-एन्टिबॉडी प्रतिक्रिया सामान्यत रक्तप्रवाह मे होती है और मृत कोशिकाएँ रेटिक्यूलो-एन्डोथिलिअल प्रणाली द्वारा ले जाई जाती हैं। जब असक्राम्यता प्रतिक्रिया ऊतको मे ही होती है तब कोशिकाएँ नष्ट होने लगती हैं इसे *एलर्जी (Allegry)* कहते है। एलर्जी प्रतिक्रिया बहुधा प्रोटीन जैसे पदार्थों से होती है जिन्हें *एलर्जन्य* कहते हैं। एलर्जिक प्रतिक्रिया मे ऊतक *हिस्टैमिन (Histamine)* स्रावित करते हैं जिससे त्वचा लाल हो जाती है और सूजन आ जाती है, जैसा कि अर्टिकेरिआ मे होता है या द्रव बाहर बहने लगता है जैसे कि हे-बुखार *(Hayfever)* मे होता है। श्वसन मार्ग की अनैच्छिक पेशिया भी सकुचित हो सकती हैं और एस्थमा पैदा हो जाता है।

स्वअमक्राम्यता (*Auto immunity*) शब्द का अर्थ है कि ऐसी परिस्थिति जिसमे शरीर अपनी ही कुछ कोशिकाओ के विरुद्ध एन्टिबॉडीज़ तैयार करता है। कई बीमारियो का स्रोत स्वअमक्राम्यता ही मानी जाती है, ऐसी दो सामान्य बीमारियाँ हैं रूमेटॉइड आर्थ्राइटिस और रूमैटिक बुखार ।

रेटिक्यूलो-एन्डोथिलिअल प्रणाली (Reticulo-endothelial system) :

मोनोसाइट्स का वर्णन पहले ही सफेद रक्त कणो के रूप मे किया जा चुका है जो सक्रिय रूप मे फैगोसाइटिक होते हैं और रेटिक्यूलो-एन्डोथिलिअल प्रणाली मे इनकी भूमिका के बारे मे भी बताया गया था। यह प्रणाली पूरे शरीर मे फैली हुई है और इसकी कोशिकाओ मे गतिशीलता की क्षमता होती है जो फैगोसाइटिक शक्ति (कोशिकाभक्षी शक्ति) के साथ सूक्ष्म-जीवाणुओ के विरुद्ध शरीर के महत्वपूर्ण प्रतिरक्षक हैं। इनका सम्बन्ध एन्टिबॉडीज़ के निर्माण से भी है ।

इस प्रणाली की कोशिकाएँ शरीर के निम्न भागो मे मिलती है .

1 सयोजी ऊतको मे, जहाँ उन्हें *हिस्टिओसाइट्स* (*Histiocytes*) कहते है।

2 रक्त मे, जहाँ उन्हें *मोनोसाइट्स* कहा जाता है।

3 बोनमैरो को घेरने वाली रक्त वाहिकाएँ, स्प्लीन, यकृत और सुप्रारीनल ग्रंथि तथा हाइपोफिसिस के एन्टीरिअर लोब मे।

4 लिम्फ नोड्स, छोटी आंत के लिम्फ फॉलिकल्स और टॉसिल्स मे।

5 मीनिन्जीस मे जहाँ उन्हें *मैनिन्जिओसाइट्स* (*Meningiocytes*) कहते हैं।

13. हृदय एवं रक्तवाहिकाएँ
The Heart and Blood Vessels

हृदय एक खोखला, पेशीय, शकुआकार का अग है जो वक्ष मे फुप्फुसो के मध्य ऊतको के एक भाग मे जिसे मीडिऍस्टिनम कहते है, तथा वायी वाजू की ओर इसके दो तिहाई भाग के साथ स्टर्नम के पीछे स्थित रहता है। इसका गोलाकार आधार ऊपर एव दाहिनी ओर, दाहिने कधे की तरफ रहता है, तथा इसका शिखर (Apex) नीचे एव आगे की ओर वायी तरफ डायफ्राम पर स्थित रहता है। शिखर पाँचवें इन्टरकॉस्टल जगह की सीध मे मध्य रेखा से करीव 9 से मी दूर रहता है' हृदय के शिखर की धडकन लेने के लिए नर्स को यह स्थान मालूम होना जरूरी है। हृदय का आकार शिखर से आधार तक करीव 12 से मी, चौडाई 9 से मी. एवं मोटाई 6 से. मी होती है।

हृदय की सामान्य रचना (General Structure of the Heart) :

हृदय आधार से शिखर तक पेशीय पट द्वारा दो अलग-अलग भागो मे विभाजित रहता है, जिनका स्वास्थ्य मे एक-दूसरे मे कोई सीधा सबध नही रहता है। प्रत्येक
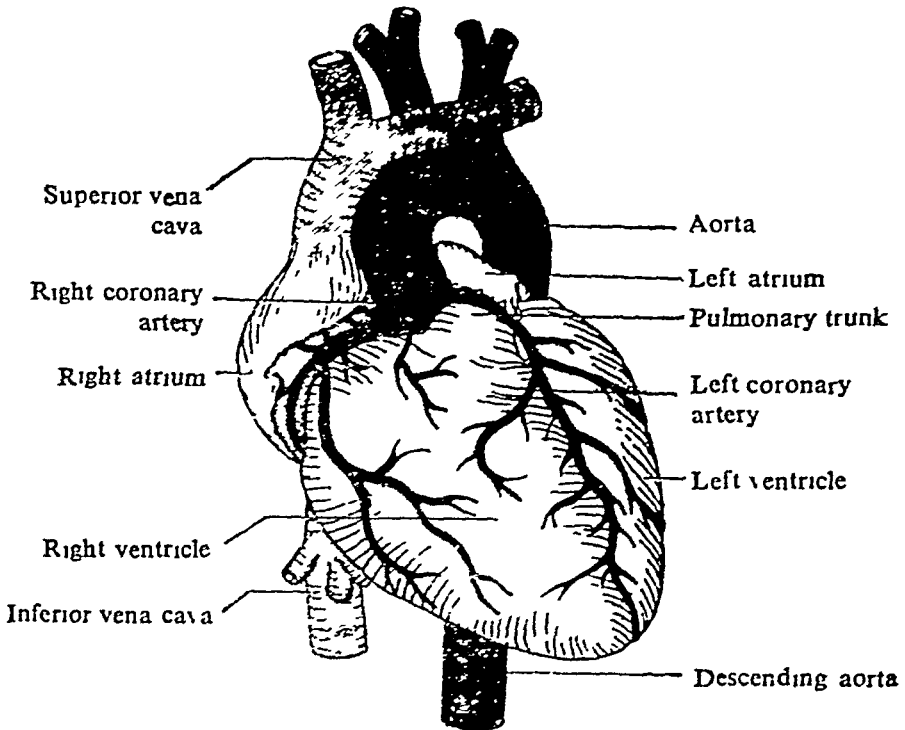
चित्र 90–हृदय का सामने का दृश्य।

भाग दो कोष्ठो मे विभाजित होता है परिकोष्ठ (Atrium), यह हृदय का छोटा ऊपरी कोष्ठ है, यह ग्राही कोष्ठ है जिसमे शिराओ द्वारा रक्त आता है। निलय (Ventricle), हृदय का बडा निचला कोष्ठ है, यह रक्त को बाहर निकालने वाला कोष्ठ है जिसके द्वारा धमनियो मे रक्त प्रवाहित होता है। प्रत्येक परिकोष्ठ नीचे की ओर हृदय के उसी तरफ के निलय से एक छिद्र द्वारा सबधित रहते है, यह छिद्र एक वाल्व द्वारा सुरक्षित रहता है जिसे एट्रिओ-वेन्ट्रिक्यूलर वाल्व कहते है, हृदय की रचना हृदीय पेशी, *मायोकार्डिअम (Myocardium)* मे होती है जिसकी क्रिया मे रक्त का परिसचरण होता है। मायोकार्डिअम की मोटाई भिन्न-भिन्न होती है, अर्थात् बायें निलय मे अधिक मोटी रहती है क्योंकि इसे अधिक कार्य करना पडता है, दाहिने निलय मे पतली रहती है क्योंकि इसे सिर्फ फुप्फुसो तक रक्त प्रवाहित करना होता है, तथा वह परिकोष्ठो मे बहुत पतली रहती है।
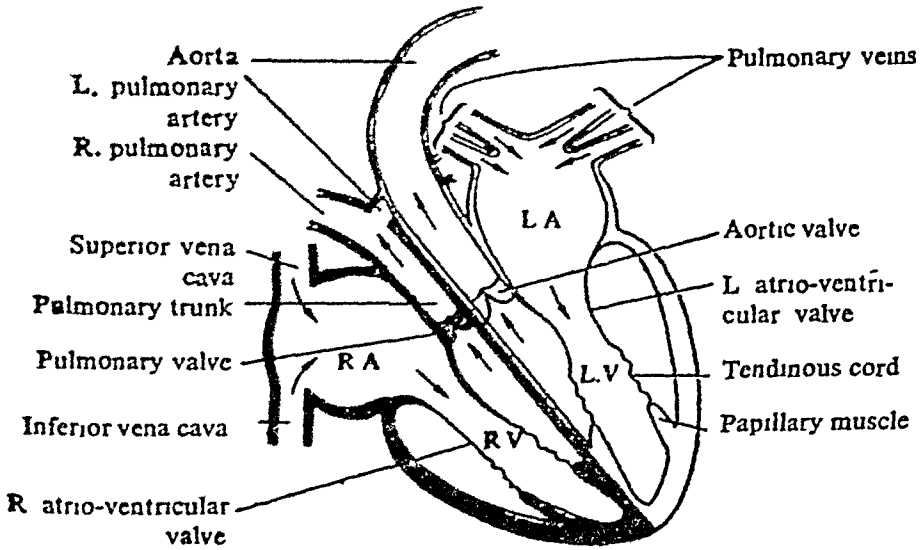
चित्र 91–हृदय की रचना दर्शाते हुए रेखाचित्र। LA, बायाँ परिकोष्ठ, LV, बाया निलय, RA दाहिना परिकोष्ठ, RV, दाहिना निलय।

परिकोष्ठ और निलय मे चिकनी और चमकदार झिल्ली का अस्तर होता है जिसे *एन्डोकार्डिअम (Endocardium)* कहते है। इसमे इन्डोथिलिअल कोशिकाओ की एक तह रहती है जो वाल्वस् और रक्तवाहिनियो के अस्तर तक फैली रहती है।

पेरिकार्डिअम (Pericardium) हृदय और बडी रक्तवाहिकाओ के मूल स्थानो को ढँकती है। इसकी दो तहे हैं। बाह्य तह या *ततुमय पेरिकार्डिअम (Fibrous Pericardium)*, डायफ्राम तथा बडी रक्तवाहिकाओ की ऊपरी तह और स्टर्नम की पिछली सतह से अच्छी तरह जुडी रहती है, इस कारण वह हृदय को सीने मे ठीक स्थान

पर रखती है । ततुमय होने के कारण यह हृदय को जरूरत से ज्यादा नही फैलने देती । भीतरी तह, *सिरस पेरिकार्डिअम (Serous Pericardium)* ततुमय पेरिकार्डिअम और हृदय का अस्तर बनाती है, इसलिए इसकी दो तहें होती हैं । अदरूनी तह को विसरल भाग या *एपीकार्डिअम (Epicardium)* कहते है। यह पीछे को मुडकर पॅराइटल (भित्तीय) तह बनाती है। सामान्यत दोनो तहे सम्पर्क मे रहती है, और इनकी सतहें चिकनी एव चमकदार तथा झिल्ली से नि स्रावित सीरम द्वारा गीली रहती है। स्वस्थ अवस्था मे, सतहो को गीला रखने और हृदय के धडकने के वक्त घर्षण को- रोकने के लिये पर्याप्त द्रव रहता है। पेरिकार्डाइटिस मे, जव पेरिकार्डिअम प्रदाहित रहती है तव सीरम की मात्रा अधिक हो सकती है और पेरिकार्डिअल थैली मे द्रव की यह मात्रा हृदय की क्रिया मे वाधा पहुँचा सकती है, और इस द्रव को प्रचूपित किया जा सकता है।

हृदय के वाल्वस् (Valves of the Heart)

हृदय मे रक्त प्रवाह गलत दिशा मे होने से रोकने के लिए कपाट या वाल्वस् (Valves) होते है। हृदय मे चार मुख्य वाल्वस् हैं

दाया एट्रिओ-वेन्ट्रिक्युलर (या ट्राइकस्पिड) वाल्व दाएँ परिकोष्ठ और दायें निलय के वीच होता हे। इसमे तीन त्रिकोणोकार पल्ले या कस्पस होते है, प्रत्येक मे ततुमय ऊतको से मजवूती प्रदान की गई एडोकार्डिअम की दोहरी तह होती है । कस्पस की निचली सतह से कई पतले, टेन्डिनॅस धागे, जिन्हे कार्डीटेन्डिनी कहते हैं, जुडे होते है । ये निलय की पैपिलरी पेशियो से निकलते है। जव निलय सकुचित होता है तव रक्त परिकोष्ठ की ओर ढकेला जाता है लेकिन एट्रिओ-वेन्ट्रिक्यूलर वाल्व के पल्लो के द्वारा इसका प्रवेश रुक जाता है क्योकि यह वाल्व छिद्र की ओर ढकेला जाकर छिद्र को वद कर देता है, इसी समय पैपिलरि पेशियाँ सकुचित होकर टेन्डिनॅस कार्डस् पर खिचाव डालती है जिससे पल्ले दाएँ परिकोष्ठ मे नही जा पाते । *वाया एट्रिओ-वेन्ट्रिक्यूलर* वाल्व माइट्रल वाल्व भी कहलाता है क्योकि उसमे केवल दो पल्ले होते हे । उसकी रचना दाएँ एट्रिओ-वेन्ट्रिक्यूलर वाल्व की तरह ही होती है । यह वाएँ निलय के सकुचन के समय रक्त को वाएँ परिकोष्ठ मे वापस नही जाने देता।

एऑर्टिक वाल्व (Aortic valve) मे तीन पल्ले होते ह जो महाधमनी (Aorta) के वाएँ निलय मे प्रवेश द्वार को घेरते है। कस्पस अर्ध चद्राकार होते ह। ये पल्ले अपनी मुडी हुई किनारो के द्वारा महाधमनी की दीवार से जुडे रहते हैं, जवकि सीधी किनार मुक्त रहती है । इस प्रकार महाधमनी के सामने तीन पॉकेट्स वन जाते है । जैसे ही रक्त वाये निलय से महाधमनी मे (अर्थात् सही दिशा मे)

बहता है, ये पॉकेट्स वाहिका की दीवार मे सट कर चपटे हो जाते हैं, लेकिन जब निलय शिथिल होता है और रक्त गलत दिशा मे (महाधमनी से निलय) बहने की कोशिश करता है तब ये पॉकेट्स रक्त से भरकर फूल जाते हैं और मध्य मे मिलकर छिद्र को पूर्णरूपेण बन्द कर देते हैं। *कोरोनरी धमनियाँ*, जो कि हृदय की पेशियो को आक्सीकृत रक्त की पूर्ति करती है, महाधमनी से निकलती हैं। उनके निकलने का स्थान एओर्टिक वाल्व के पल्लो के जुडने के स्थान के ठीक ऊपर रहता है।
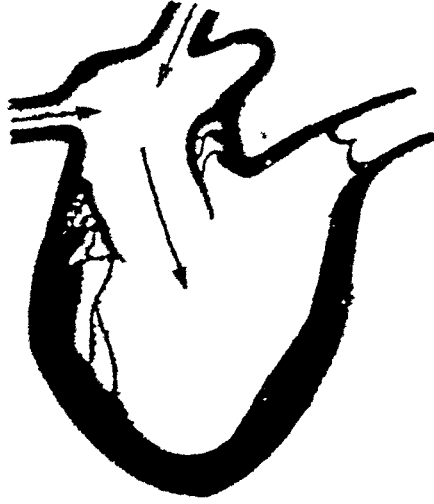
चित्र 92–हृदय के वाल्वस् की क्रिया। ऊपर–परिकोष्ठ के सकुचन और निलय के शिथिलन के दौरान वाल्वस की स्थिति। नीचे–निलय के सकुचन और परिकोष्ठ के शिथिलन के दौरान वाल्वस की स्थिति।

Branches of aorta
Arch of aorta
Superior vena cava
Aorta
Pulmonary trunk
Pulmonary valve
Right atrium
Left atrium
Right ventricle
R atrio-ventricular valve
Inferior vena cava
Left ventricle
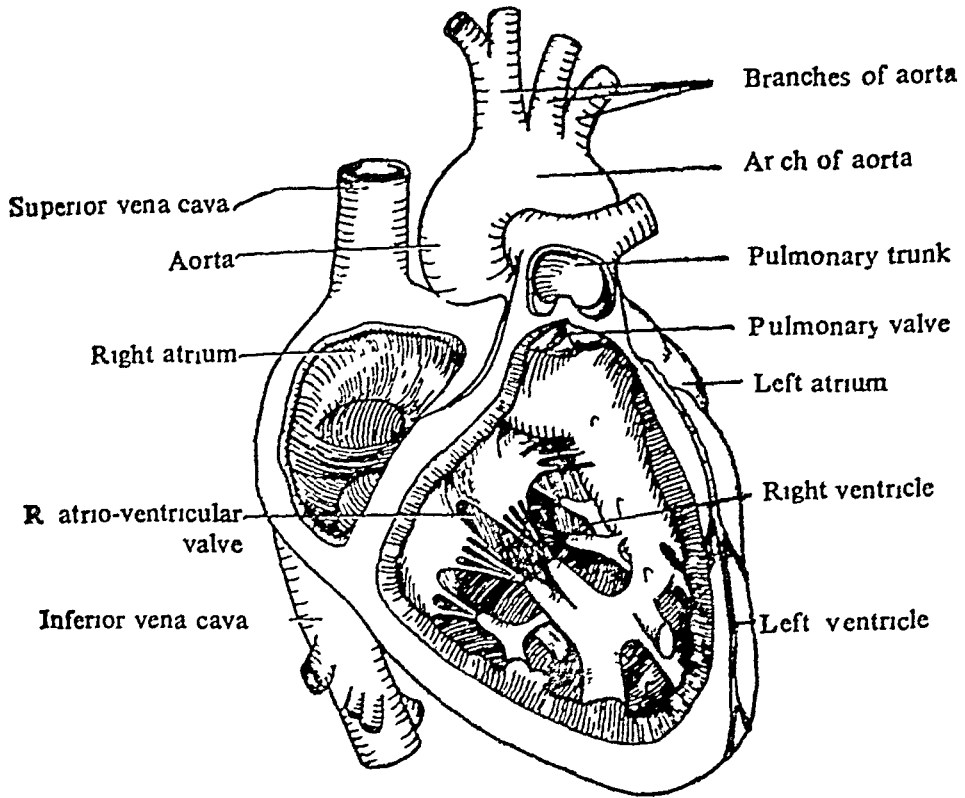
चित्र 93–हृदय के दाहिने भाग का अन्दरूनी दृश्य।

फुप्फुसीय वाल्व (*Pulmonary valve*) रचना और क्रिया में एऑर्टिक वाल्व के समान ही होता है, और यह फुप्फुसीय धमनी के मुख्य-भाग को बन्द करके धमनी से दाहिने निलय में रक्त के उलटे बहाव को रोकता है।
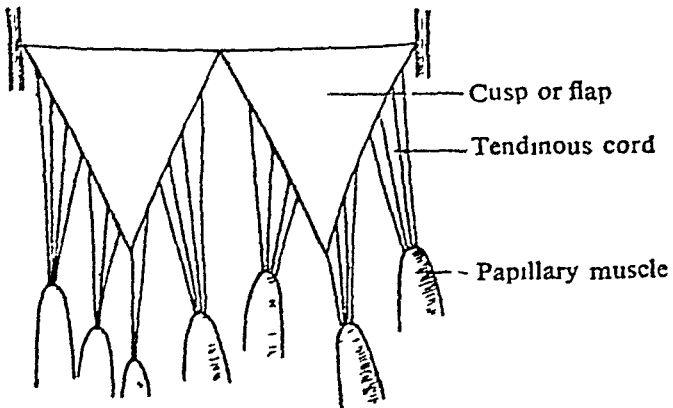
चित्र 94–माइट्रल वाल्व खुला हुआ (रेखांकित चित्रांकन)।

मायोकार्डिअम से हृदय मे लौटने वाला रक्त कॉरोनरी साइनस से होता हुआ सीधा दाएँ परिकोष्ठ मे खाली होता है। कॉरोनरी साइनस का छिद्र एक पतले और अर्ध गोलाकार वाल्व से सुरक्षित रहता है जिसे कॉरोनरी साइनस का वाल्व कहते हैं। यह दाएँ परिकोष्ठ के सकुचन के समय रक्त को साइनस मे लौटने
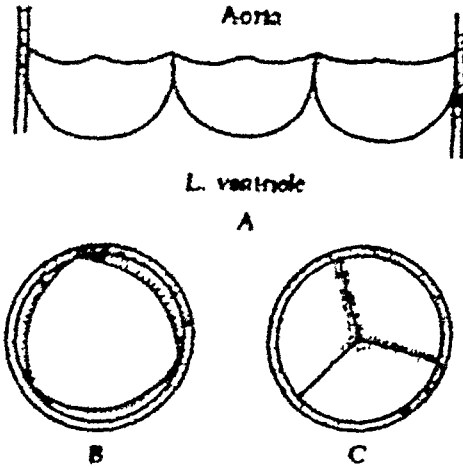
चित्र 95–एओर्टिक वाल्व (रेखाचित्र)। (A) महाधमनी खोल कर दर्शाया गया, (B) ऊपर से देखते हुए खुला हुआ एव (C) बद।

मे रोकता है। इसके अलावा एक अपूर्ण वाल्व भी होता है जो निचली महाशिरा के दाहिने परिकोष्ठ मे जुडने के स्थान पर होता है। इसे *निचली महाशिरा का वाल्व (Inferior venacava)* कहते हैं।
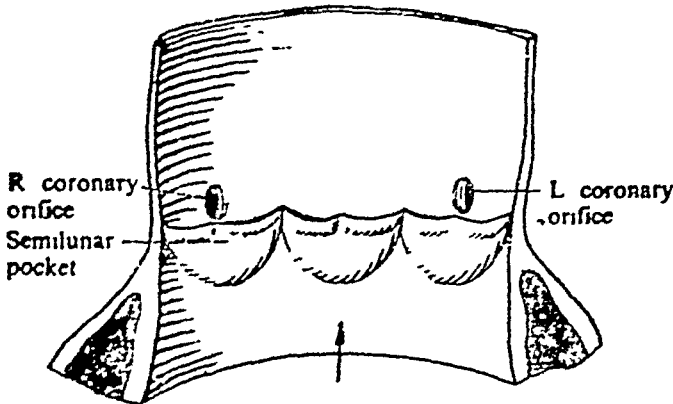
चित्र 96–एओर्टिक वाल्व।

हृदय को रक्त की पूर्ति दाई और बाई कॉरोनरी धमनियो से होती है जो कि महाधमनी की शाखाएँ हैं। हृदय पेशियो मे कई स्थानो पर इनका मिलन होता है लेकिन उनका अधिकाश रक्त मायोकार्डिअम से शिराओ मे लौट जाता है, जो कि कॉरोनरी साइनस मे खाली होती हैं।

हृदय का कार्य (The function of the heart) :

हृदय एक पम्प है जिसका उद्देश्य रक्त को अदर खिंचना और धमनियो के द्वारा शरीर के अन्य भागो मे पहुँचाना है, लेकिन हृदय का दाया और बाया भाग बिलकुल एक दूसरे से पृथक् रूप मे कार्य करते हैं।

रक्त शरीर के सभी अगो से दो महाशिराओ के माध्यम से दाएँ परिकोष्ठ मे जमा होता है। इन महाशिराओ को *ऊपरी* और *निचली महाशिराएँ* कहते हैं। जब दायाँ परिकोष्ठ पूरी तरह भर जाता है तो वह सकुचित होता है और रक्त दाएँ एट्रिओ–वेन्ट्रिक्यूलर वाल्व से होकर *दाएँ निलय* मे भर जाता है। जो बाद मे सकुचित होता है और रक्त *फुफ्फुसीय वाल्व* से होकर *फुफ्फुसीय मुख्य भाग (Trunk)* मे पहुँच जाता है। फुफ्फुसीय धमनी का मुख्य भाग दो शाखाओ मे विभाजित होता है जिन्हें दाहिनी और बायी *फुफ्फुसीय धमनियाँ* कहते हैं। ये धमनियाँ फुफ्फुसो तक रक्त ले जाती हैं जहाँ रक्त मे गैसो का आदान-प्रदान होता है। उसके बाद रक्त चार *फुफ्फुसिय शिराओं* के द्वारा एकत्र किया जाता है। ये शिराएँ बाएँ परिकोष्ठ मे खाली होती हैं। बाया परिकोष्ठ दाएँ परिकोष्ठ के साथ सकुचित होता है और रक्त बाएँ एट्रिओ–वेन्ट्रिक्यूलर वाल्व से होकर बाएँ निलय मे पहुँच जाता है। यह निलय दाएँ निलय के साथ सकुचित होता है और रक्त को महाधमनी (Aorta), जो कि शरीर की प्रमुख धमनी है, मे भेजता है।

हृदय आजीवन सत्तर से अस्सी बार प्रति मिनट के मान से धडकता है, हालाकि उसकी गति, आयु, भावावेश और व्यायाम से प्रभावित होती है। प्रत्येक धडकन गतिविधियो का एक चक्र है जिसमे 0 8 सैकड लगते है।

रक्त परिकोष्ठो मे महाशिराओ के द्वारा एकत्र होता है। दोनो के भरते ही एक साथ सकुचन होता है और रक्त निलयो मे पहुँच जाता है। परिकोष्ठो के सकुचन मे 0 1 सैकड का समय लगता है। निलय मे रक्त के प्रविष्ट होने से जो दबाव पैदा होता है उससे एट्रिओ वेन्ट्रिक्यूलर वाल्व बन्द होते है और हृदय मे पहली आवाज़ होती है, जिसे हृदय के सिरे पर स्टेथॅस्कोप रखकर सुना जा सकता है, यह आवाज 'लब्ब' शब्द की तरह होती है। निलयो के संकुचन से 0.3 सैकड का समय लगता है। इसके दबाव से फुफ्फुसीय और एऑर्टिक वाल्वस् खुल जाते है। रक्त महाधमनी और फुफ्फुसीय मुख्य भाग मे ढकेला जाता है और जब निलय शिथिल पडते हैं तब बडी रक्तवाहिकाओ का दबाव एऑर्टिक और फुफ्फुसीय वाल्वो को बन्द कर देता है। इस समय हृदय की दूसरी आवाज़ होती है जिसे दूसरी दाहिनी पसली के पास सुना जा सकता है। यह आवाज 'डप' की होती है और तेज होती है। निलयो के सकुचन के समय परिकोष्ठ शिथिल हो जाते हैं। निलयो के सकुचन के बाद पूरा हृदय करीब 0 4 सैकड के लिए आराम करता है। सकुचन के लिए *सिस्टॅलि (Systole)* और शिथिलन को *डाइस्टॅलि (Diastole)* कहते है।
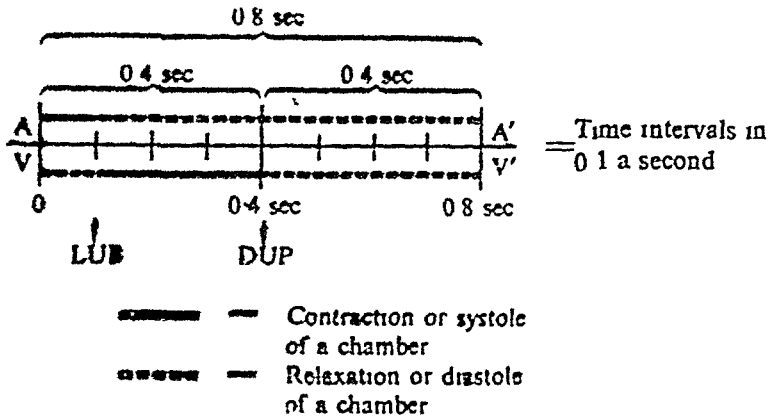
चित्र 97—हृदीय चक्र मे अवस्थाओ का क्रम दर्शाते हुए ग्राफ। A–A परिकोष्ठ का सकुचन और शिथिलन, 'V-V' निलय का सकुचन और शिथिलन। इस चक्र मे 0 8 सेकॅन्ड लगते हैं जिसमे से 0.4 सेकॅन्ड दोनो परिकोष्ठो और निलयो के सकुचन मे लग जाते हैं, तथा बाकी बचे हुए 0 4 सेकॅन्ड हृदय के सभी कोष्ठो के शिथिलन मे लग जाते हैं। (याद रखें यदि धडकन की दर 75 प्रति मिनट है तो 0 8 सेकॅन्ड एक धडकन का समय है।)

हृदय की संचालन प्रणाली (Conducting Mechanism of the Heart)

ऐच्छिक पेशियो के विपरीत हृदीय पेशियो मे यह गुण है कि वे विना किसी स्नायु-पूर्ति के लय-ताल मे सकुचित हो सकती हैं। आटोनॉमिक स्नायविक तंत्र हृदय की धडकन की गति वदल सकता है लेकिन हृदय को जन्तु के शरीर से अलग किया जा सकता है और वह फिर भी धडकता रह सकता है। सकुचन का आवेग एक विशेष ऊतक जो दाहिने परिकोष्ठ मे उस स्थान पर होते है जहाँ कि महाशिरा जुडती है, वहाँ होता है। इस स्थान को *साइनु-एट्रिअल नोड* या हृदय का पेसमेकर (गतिचालक) कहते हैं। इसके वाद आवेग दोनो परिकोष्ठो मे लगभग सकेन्द्री छल्लो (Concentric rings) के रूप मे आगे वढता है। यह इसलिए सम्भव होता है कि हृदीय पेशियो के ततु शाखाओ मे विभाजित होते हैं। यह तरग *एट्रिओ-वेन्ट्रिक्यूलर नोड*, जो कि परिकोष्ठ और निलय के जोड के पास वाली सेप्टम मे होते हैं, तक जाती है। कुछ क्षणो के अतराल के वाद आवेग *एट्रिओ-वेन्ट्रिक्यूलर वडल* मे फैलता है। इसकी दो शाखाएँ होती है, एक दाहिने और दूसरी वाएँ निलय को जाती हैं। ये शाखाएँ आगे चलकर विशेष ततुओ मे वदल जाती है जिन्हें *परकिन्जी फाइवर्स (Purkinji Fibres)* कहते है। वहाँ से शाखाएँ एडोकार्डिअम के नीचे जाती हैं और निलय के सभी भागो मे फैल जाती है।

साइनु-एट्रिअल नोड की लय-ताल 70 से 74 धडकन प्रति मिनट होती है और यही गति सचालन के अन्य क्षेत्रो पर भी रहती है। निलय परिकोष्ठ की सहायता के विना भी स्वतत्र रूप से सकुचित हो सकते है। वीमारी द्वारा सचालन प्रणाली

के प्रभावित होने पर वे ऐसा करते हैं। लेकिन तब उनकी सकुचन गति बहुत कम हो जाती है, करीब 40 धड़कन प्रति मिनट। इस स्थिति को हृदय *अवरोध* *(Heart Block)* कहते हैं। यह बहुत गंभीर स्थिति है क्योंकि इसमे ऊतकों को पर्याप्त रक्त नहीं मिलता। अन्य मामलो मे कुछ आवेग नीचे बंडल तक चले जाते हैं, लेकिन कुछ नहीं जाते। इसलिए निलय परिकोष्ठों मे दो-तीन सकुचन होने के बाद एक बार धड़कता है। इस स्थिति को अपूर्ण हृदीय अवरोध कहते हैं।

हृदय का स्नायविक नियत्रण (Nervous Control of the Heart):

हृदय की स्नायूपूर्ति आटोनॉमिक स्नायविक तत्र द्वारा होती है। *वेगस स्नायु* या दसवी क्रेनिअल स्नायु हृदय की गति को कम करती है और साइनु-एट्रिअल नोड तक आवेग भेज कर सकुचन की शक्ति घटाती है। *सिम्पेथेटिक स्नायु* हृदय की गति को तेज करती है और सकुचन की शक्ति बढ़ाती है (अध्याय 22 भी देखिए) हृदय की इस दोहरी व्यवस्था का समन्वय मस्तिष्क के मेडुला आब्लांगेटा मे मौजूद हृदीय केन्द्र मे होता है।

हृदय की गति का नियत्रण प्रतिवर्ती रूप मे दो रिसेप्टर्स (Receptors) के दो जोड़ो के द्वारा भी होता है। *प्रेशर रिसेप्टर्स* या बेरोरिसेप्टर्स रक्तचाप मे होने वाले परिवर्तनो के प्रति सवेदी होते हैं। वे *केरॉटिड धमनी* और महाधमनी की आर्च मे होते हैं। जब रक्तचाप बढ़ता है तब सिम्पेथेटिक स्नायु दबते हैं और हृदय की गति कम हो जाती है। इस तरह वे रक्तचाप को कम करने मे सहायता करते हैं। *कीमोरिसेप्टर्स* (रसायनग्राही) रक्त मे मौजूद ऑक्सीजन और कार्बन डायआक्साइड की मात्रा के प्रति सवेदी होते हैं। वे गर्दन मे केरॉटिड धमनी के पास और महाधमनी के समीप होते हैं तथा ऑक्सीजन की कमी के प्रति सवेदी होते हैं। आवेग हृदीय केन्द्र को भेजे जाते हैं इससे हृदय की गति बढ़ती है और रक्त की पूर्ति भी। इस तरह ऊतको को पर्याप्त ऑक्सीजन मिल जाती है।

स्वस्थ अवस्था मे हृदीय धड़कन की दर भिन्न-भिन्न होती है

1 आराम दर को मद और व्यायाम दर को तेज़ करना है।

2 आयु बढ़ने के साथ धड़कन की गति घटती है। शिशुओ मे दर जन्म के समय 120 से 140 और जैसे-जैसे बालक बढ़ता जाता है, कम होती जाती है, तथा सम्पूर्ण जीवन और वृद्धावस्था मे मन्द हो जाती है।

3 स्त्रियो मे दर तेज और पुरुषो मे कम होती है।

4 भावावेग और उत्तेजना धड़कन को तेज़ करती है।

बीमारी मे कई स्थितियाँ, जैसे बुखार, रक्तस्राव, आघात एव हाइपरथाइरॉइडिज्म हृदीय धड़कन को बढ़ा देती हैं, जबकि मस्तिष्क पर दबाव, पीलिया एवं हृदीय अवरोध धड़कन को कम कर देते हैं। दवाइयाँ भी धड़कन को तेज या मन्द कर सकती हैं।

रक्तवाहिकाएँ (The Blood Vessels)

निलयो के संकुचन मे शरीर के सभी अगो मे वाहिकाओ, जिन्हें *धमनिया* कहते हैं, की जटिल शृखला के माध्यम मे रक्त पहुँचता है, ये धमनियाँ छोटी-छोटी रक्तवाहिकाओ मे विभक्त हो जाती है जिन्हे आर्टीरिओल्स कहते है। ये आगे चल-कर रक्तवाहिकाओ के अतिसूक्ष्म जाल से सम्बन्धित रहती है जिन्हें *केशिकाएँ* (*Capillaries*) कहते है। इसके बाद रक्त वेन्युल्स (*Venules*) नामक छोटी वाहिकाओ मे एकत्रित हो जाता है, ये छोटी वाहिकाएँ मिलकर *शिराएँ* बनाती है। ये एक दूसरे से जुडकर बडी शिराएँ बनाती है जो अतत हृदय मे रक्त को पुन. ले जाती हैं।

रक्त वाहिकाओ की रचना (Structure of the Blood Vessels) :

धमनिया मोटी दीवार वाली वाहिकाएँ है। एक अपवाद को छोडकर वे आक्सीकृत रक्त ले जाती हैं। अपवाद है *फुप्फुसीय मुख्य शाखा* जो दो फुप्फुसीय धमनियो मे विभक्त रहती है और दाएँ निलय से डिआक्सीजिनेटेड रक्त फुप्फुसो तक ले जाती हैं। सभी धमनियो मे तीन तहें होती है

1 बाहरी आवरण या *ट्यूनिका एडवेन्टिशिया* (*Tunica adventitia*) जो कि कॉलेजिनस और लचीले ततुओ की होती है।

2. **मध्यस्तर** या *ट्यूनिका मीडिआ* (*Tunica Media*) जो मुख्यत अनैच्छिक पेशियों और लचीले ततुओ तथा कुछ कॉलेजन ततुओ की बनी होती है।

3. अस्तर या *ट्यूनिका इन्टिमा* (*Tunica intima*) जिसमे एडोथीलिअल कोशिकाओ की तह होती है और जो रक्त को बिना जमे बहने के लिए चिकनी सतह उपलब्ध कराती है।
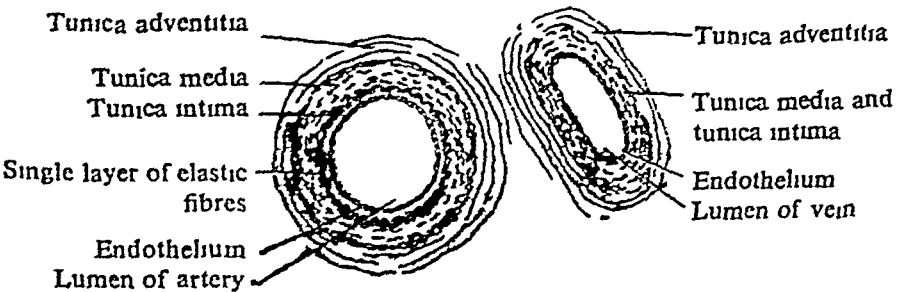
चित्र 98–धमनी एव शिरा की रचना।

शरीर के सभी अगो मे रक्त की पूर्ति होना चाहिए, धमनियाँ भी इसका अपवाद नही है। बहुत ही पतली रक्तवाहिनियाँ धमनियो की दीवारो मे रक्त ले जाती हैं। उतनी ही पतली वाहिकाएँ रक्त एकत्र कर शिराओ को पहुँचाती हैं। लिम्फ वाहिकाएँ और स्नायु ततु भी पाए जाते हैं।

आर्टिरिओल्स (*Arterioles*) में भी धमनियों की तरह तीनो रचनाएँ होती हैं लेकिन इन्टिमा और मीडिआ पतली होती है। एडवेन्टिशिआ, धमनी की एडवेन्टिशिआ से कुछ मोटी होती है। उनमें अधिक पेशीय तंतु और कम लचीले तंतु होते हैं।

केशिकाएँ (*Capillaries*) आर्टिरिओल्स और वेन्यूल्स के बीच एक जाल सा बनाती हैं। उनमें एंडोथीलिअल कोशिकाओं की एक तह होती है, वैसी ही जैसी
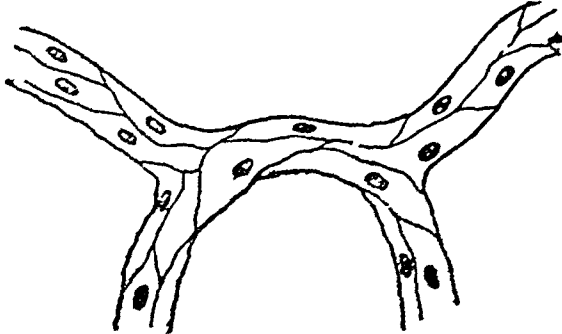
चित्र 99—साधारण एन्डोथीलिअम की दीवार दर्शाते हुए केशिकीय जाल।
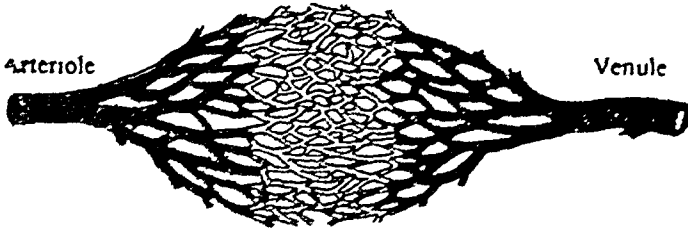
Network of capillaries
चित्र 100—केशिकीय जाल का रेखाचित्र।

कि अन्य रक्त वाहिकाओं में पाई जाती है। वेन्यूल्स और *शिराओं* में भी धमनिओं की तरह तीन तहें होती हैं लेकिन शिरा में मध्यस्तर धमनी से काफी पतला होता है।
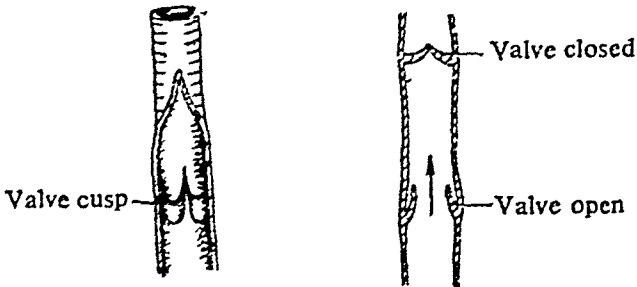
चित्र 101—शिराओं में वाल्व्स।

कई शिराओं में *वाल्व्स* भी होते हैं जो रक्त को गलत दिशा में बहने से रोकते हैं। हर वाल्व एन्डोथीलिअम की दोहरी तह से बनता है। उसे मजबूती

देने के लिए सयोजी ऊनक और लचीले ऊतक रहते है । वाल्व के कस्पस अर्ध-चन्द्राकार होते हैं और शिरा की उत्तल किनार मे जुडे रहते है । शिराओ मे भी धमनियो की तरह रक्त पूर्ति की अपनी व्यवस्था है। उनमे स्नायु ततु भी होते हैं, हालाँकि उनकी सख्या बहुत कम होती है।

रक्त परिसचरण की क्रिया-विधि (The Mechanism of Circulation)

नाड़ी की गति (The Pulse) :

बाएँ निलय से निकलने वाला रक्त ऑक्सीजन युक्त और चमकदार लाल रग का होता है । यह महाधमनी मे बाएँ निलय के सकुचन से पम्प होता है । इससे दबाव बढता है और एक तरग की तरह आगे बढता है । जब रक्त बाएँ निलय से बाहर पम्प किया जाता है तब तक महाधमनी पूरी तरह भर जाती है । इसलिए यह आवश्यक है कि वह अतिरिक्त रक्त को समाने के लिए फैले । जैसे ही बायाँ निलय शिथिल पडता है एओर्टिक वाल्व बन्द हो जाता है और लचीली महाधमनी अपने पूर्व डाइमीटर मे सकुचित हो जाती है । महाधमनी का पूर्व रूप मे लौटना अत्यन्त महत्वपूर्ण है क्योंकि इसी क्रियाविधि से रक्त शरीर मे आगे बढता है, चाहे निलय शिथिल रहे । महाधमनी के फैलने और सिकुडने से एक तरग पैदा होती है जिसे धडकन या पल्स (Pulse) कहते हैं । यह सभी बडी धमनियो मे आगे चलती जाती है । जिस अस्थि के ऊपर धमनी गुजरती है उसे वहाँ अगुलियो से दबाने पर धडकन महसूस की जा सकती है । चूकि हृदय के धडकने से ही धडकन पैदा होती है इसलिए धडकन की स्थिति की जाँच नाडी की गति देखकर की जा सकती है ।

रक्त चाप (Blood pressure) .

रक्तचाप वह दबाव है जो रक्त रक्तवाहिकाओ की दीवारो पर डालता है। यह विभिन्न रक्तवाहिकाओ मे अलग-अलग होता है और हृदीय धडकन के साथ भी बदलता है। हृदय से निकलने वाली बडी धमनियो मे दवाव सर्वाधिक रहता है और आर्टीरिओल्स तक पहुँचने पर धीरे-धीरे कम होता जाता है। केशिकाओ मे पहुँचते-पहुँचते यह दबाव इतना कम होता है कि बाहर से मामूली दबाव पडते ही ये वाहिकाएँ अवरुद्ध हो जायेंगी और इनसे रक्त बाहर बहने लगेगा । नाखून पर मामूली दवाव लगाकर या त्वचा पर काँच का छोटा टुकडा हलके से दबाकर इसे देखा जा सकता है। (इसी कारण यह बहुत महत्वपूर्ण है कि बिस्तर मे अधिक समय तक रहने वाले रोगी की स्थिति को बार-बार बदला जाये, क्योंकि शरीर का वजन वहन करने वाले ऊतक मे से बहुत कम रक्त परिसचरित होता है।) शिराओ मे दवाव कम रहता है और अतत हृदय तक पहुँचने मे बडी शिराओ से चूषण होने लगता है, अर्थात् जैसे ही हृदय के कोष्ठ विस्तारित होते हैं वैसे ही हृदय के द्वारा चूषण होने के कारण पॉज़िटिव के बजाय निगेटिव दबाव हो जाता है।

वडी धमनियो मे हृदीय धडकन के साथ दबाव वदलता है। जव निलय सकुचित होता है तव यह सर्वाधिक रहता है (इसे सिस्टॅलिक दबाव कहा जाता है) और जव निलय शिथिल होता है तव दबाव न्यूनतम रहता है (इसे डाइस्टॅलिक दबाव कहते हैं)।

रक्तचाप का मापन (Measurement of Blood Pressure) : रक्त का दवाव मरक्यूरी के कॉलम् की जिस ऊँचाई को रक्त सम्हालता है उसे नाप कर मालूम किया जाता है। ऊँचाई मिलिमीटर्स मे नापी जाती है। सामान्य धमनीय दवाव 110 से 120 मि मी सिस्टॅलिक दबाव और 65 से 75 मि मी डाइस्टॅलिक दवाव है। रक्त दवाव नापने के उपकरण को स्फिग्मोमैनोमीटर कहते है। यह उपकरण विभिन्न प्रकारो का होता है, लेकिन अधिक विश्वसनीय उपकरण खोखले रवर कफ का वना होता है। यह कफ ऐसे आवरण मे वन्द रहता है जिसे विना किसी प्रकार की सिकुडन के भुजा पर लगाया जा सके। इससे एक छोटा हाथ-पम्प जुडा रहता है जिसके द्वारा कफ मे हवा भरी जा सकती है जिससे यह फूल जाता है और अपने नीचे की भुजा एव रक्तवाहिकाओ को दवा देता है। यह कफ मैनोमीटर से भी जुडा रहता है जिसमे मर्क्यूरी (पारा) रहती है ताकि इसमे उपस्थित वायु का दवाव अकित पैमाने पर पढा जा सके।

रक्त दवाव लेने के लिये कफ को भुजा के आसपास वाँधा जाता है और एक हाथ से कलाई पर नाडी की धडकन महसूस की जाती है और दूसरे हाथ से कफ मे तव तक हवा भरी जाती है जव तक कि दवाव मे रेडिअल नाडी की धडकन महसूस
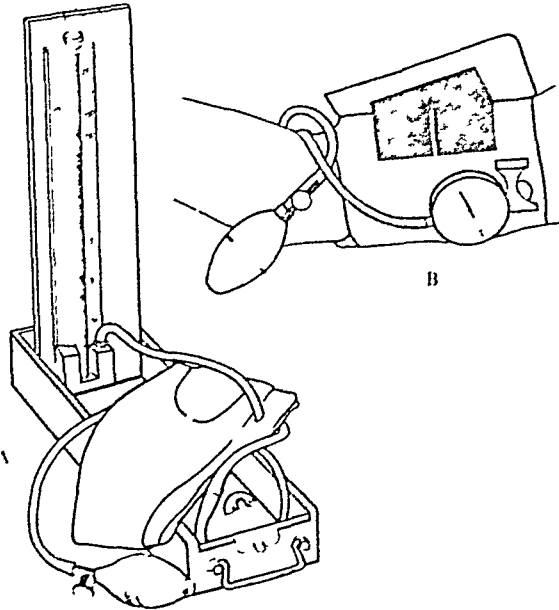
चित्र 102—A, निदानसूचक स्फिग्मोमैनोमीटर, और B, निर्द्रव स्फिग्मोमैनोमीटर।

होना बद नही हो जाती। इसके बाद क्यूबिटल फोसा मे ब्रैकिअल धमनी पर स्टेथॅस्कोप रखा जाता है और रीलिज वाल्व द्वारा कफ मे से धीरे-धीरे दवाव कम किया जाता है। जैसे ही दवाव कम होता है, धडकन की आवाज तब तक नही सुनाई देती है जब तक कि सिस्टॅलिक रक्त दबाव नही आ जाता, इस बिन्दु पर स्टेथॅस्कोप मे धडकन की आवाज सुनाई देगी। इस समय मैनोमीटर मे मरक्यूरी का स्तर नोट कर लेना चाहिये, जैसे-जैसे कफ मे दवाव कम किया जाता है, धडकन की आवाज वढती जाती है, जब तक कि डाइस्टॅलिक रक्त दवाव नही आ जाता, इस स्थान पर आवाज बदल जाती है और यह हल्की हो जाती है। कफ मे और दबाव कम करने से अवाज पूर्णत. बन्द हो जायेगी। जिस स्थान पर आवाज बदली थी उस स्थान पर डाइस्टॅलिक रक्त दवाव नोट किया जाता है।

धमनीय दबाव (Arterial pressure) :

धमनीय दवाव निम्नलिखित पहलुओ के द्वारा बना रहता है

1. कार्डिअक आउटपुट
2. परिधीय प्रतिरोध
3. कुल रक्त आयतन
4. रक्त का लसलसापन
5 धमनीय दीवारो का लचीलापन

कार्डिअक आउटपुट (Cardiac output) निलय के प्रत्येक सकुचन के साथ पम्प की हुई रक्त की मात्रा है। जव बायाँ निलय सकुचित होता है तव करीब 70 मि. ली रक्त महाधमनी मे जाता है, जो कि पहले से भरी रहती है, और उसे विस्तारित कर देता है।

परिधीय प्रतिरोध (Peripheral resistance) वह प्रतिरोध है जो छोटी रक्तवाहिकाओ द्वारा रक्त के बहाव के प्रति किया जाता है, विशेष रूप से आर्टीरिओल्स द्वारा। यह प्रतिरोध केशिकाओ मे रक्त के तेज वहाव को रोकता है और इस प्रकार धमनियो मे रक्त दवाव सामान्य वनाये रखने मे सहायक होता है। वाहिका-प्रेरक स्नायुओ की क्रिया एव एड्रीनल ग्रन्थियो से निकलने वाले एड्रीनॅलिन् एव नॉरएड्रीनॅलिन् द्वारा आर्टीरिओल्स का ल्यूमेन परिवर्तित हो सकता है। यदि ल्यूमेन सकरा हो गया है तो रक्त वहाव के प्रति प्रतिरोध वढ जाता है और धमनीय रक्त दवाव भी वढ जाता है। यदि ल्यूमेन चौडा हो गया है तो केशिकाओ मे अधिक रक्त शीघ्रता से बहेगा और रक्त दवाव कम हो जायेगा।

रक्त आयतन (Blood volume) परिसचरित रक्त की कुल मात्रा है। यदि यह पूर्ण रक्त की हानि द्वारा कम हुआ है, जैसे रक्तस्राव मे, या रक्त से द्रव

की हानि द्वारा कम हुआ है, जैसे आघात, जलने या निर्जलीकरण में, तो रक्त दबाव कम हो जायेगा।

रक्त का लसलसापन (Viscosity of blood) उसका चिपचिपापन या गाढ़ापन है। रक्त ऐसा लसलसा द्रव है जो सादे पानी की तुलना में दो या तीन गुना अधिक प्रतिरोध पैदा करता है। यह लसलसापन अंशत प्लाज्मा पर, विशेषरूप से प्लाज्मा प्रोटीन्स पर और अंशत लाल रक्ताणुओं की संख्या पर निर्भर रहता है। यदि इन्ट्राविनस विधि से नार्मल सैलाइन अधिक मात्रा में दिया गया है तो रक्त का लसलसापन कम हो जायेगा, तथा कम लसलसेपन का संबंध कम रक्त दबाव से होता है।

जब निलय संकुचित होता है तब धमनीय दीवारों का लचीलापन महाधमनी को विस्तारित होने देता है और निलय शिथिल होने पर उसे सिकुड़ने देता है। यह सिकुड़न रक्त को आगे की ओर ढकेलती है एवं रक्त का डाइस्टलिक दबाव बनाये रखती है। सभी धमनियों में विस्तारण एवं सिकुड़न होती है। धमनियों का लचीलापन एथीरोमा में कम हो सकता है जो धमनियों की एक क्षयकारक बीमारी है। इस स्थिति में धमनियों के लचीलेपन की कमी के कारण रक्त दबाव बढ़ जायेगा।

उच्च रक्तचाप (High blood pressure) 150 से 180 मि मी. या इससे अधिक का सिस्टलिक दबाव है। सामान्यत डाइस्टलिक दबाव भी बढ़ जाता है। बढ़ा हुआ डाइस्टलिक रक्त चाप, उदाहरणार्थ 90 से 120 मि मी या उससे अधिक हानिकारक होता है, क्योंकि यह हृदय पर तनाव डालता है। बढ़ा हुआ रक्तचाप खतरनाक इसलिए भी होता है क्योंकि उससे रक्तवाहिकाएँ फट सकती हैं। मस्तिष्क की वाहिका फटने की संभावना विशेष रूप से होती है और यह प्रमस्तिष्कीय-संवहनी दुर्घटना (Cerebro-vascular accident) या रक्तमूर्छा का एक सामान्य कारण है। इससे हृदय पर भी तनाव पड़ता है जिसके फलस्वरूप हृदीय विफलता हो सकती है।

कम रक्त दबाव (Low blood pressure) : 100 मि मी या इससे कम का सिस्टलिक दबाव है। यह रक्तस्राव, आघात व शक्तिपात, हृदयाघात, और सुप्रारीनल ग्रन्थियों की बीमारी के मामलों में होता है। इसका खतरा यह है कि मस्तिष्क के मुख्य केन्द्रों को पर्याप्त रक्त नहीं मिलता है। इसलिये इसका उपचार निम्न है

1 यदि आवश्यक हो तो पलंग के पाँव वाले भाग को ऊँचा उठाकर या वैसे ही रोगी को चित्त स्थिति में लिटाना, ताकि गुरुत्वाकर्षण द्वारा मस्तिष्क के मुख्य केन्द्रों तक रक्त पहुँच सके।

2 हृदीय उत्तेजक, उदाहरणार्थ निकेथॅमाइड, एड्रीनॅलिन् या नॉरएड्रीनॅलिन् देना तथा रक्तवाहिकाओ को सकुचित करने के लिये रक्त परिसचरण उत्तेजक दवाई देना, जैसे एड्रीनॅलिन एव नॉरएड्रीनॅलिन।

3 रक्तपरिसचरण मे द्रव की मात्रा बढाने के लिये सॅलाइन जैसा द्रव इन्ट्राविनस, सबक्यूटेनिजस या रेक्टल इन्फ्यूज़न द्वारा देना, या रक्त या प्लाज्मा देना (रक्ताधान)। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, रक्त वाहिकाओ की अपनी स्नायु पूर्ति होती है। आर्टिरिओल्स मे वाहिका प्रेरक (*Vasomotor*) स्नायु रहते हैं। ये स्नायु ऊतको की आवश्यकतानुसार धमनियाँ विस्तारित और सकुचित कर सकते हैं। आर्टीरिओल्स की दीवारो की पेशी रक्त मे हॉर्मोन्स की उपस्थिति के द्वारा भी प्रभावित हो सकती है, विशेष रूप से एड्रीनल ग्रन्थियो के एड्रीनॅलिन एव नॉरएड्रीनॅलिन् हॉर्मोन्स के द्वारा ये हॉर्मोन्स छोटी धमनियो का सकुचन करते हैं। आर्टीरिओल्स धडकते नही है। जब कोई अग कार्य करता है तब उसे अधिक रक्तपूर्ति की आवश्यकता होती है, और आर्टीरिओल्स विस्तारित हो जाते है ताकि वे उन केशिकाओ तक अधिक रक्त ले जा सकें जो उस अग का पोषण करती है। जब अग कार्य नही करता है तब उसे रक्त की आवश्यकता कम होती है, और आर्टीरिओल्स सकुचित हो जाते हैं ताकि वे उसकी केशिकाओ तक कम रक्त ले जा सकें। इस प्रकार आर्टीरिओल्स शरीर के विभिन्न अगो मे रक्त के वितरण का नियत्रण करते हैं और रक्त दबाव बनाये रखने मे आर्टीरिओल्स का यह सकुचन महत्त्वपूर्ण होता है क्योकि यह सकुचन बडी लचीली धमनियो मे से रक्त के प्रवाह को प्रतिरोध प्रदान करता है।

केशिकाएँ आर्टीरिओल्स से रक्त प्राप्त करके वेन्यूल्स मे पहुँचती है। इनकी दीवारें एक-कोशिका मोटाई की होती हैं और इनमे से आहार, ऑक्सीजन तथा पानी रक्त से ऊतक कोशिकाओं मे जाता है और व्यर्थ पदार्थ ऊतकों से रक्त प्रवाह मे वापस आ जाते हैं। जहाँ उन्हे रक्त द्वारा पुन ले जाया जाता है।

केशिकाए जाल बनाती हैं और उनमे से कई शाखासम्मिलन (Anastoses) बनाती है ताकि विभिन्न मात्रा मे रक्त आवश्यकतानुसार अग तक पहुँचाया जा सके।

शिरीय पुन बहाव (Venous return) : रक्त केशिकाओ के जाल द्वारा वेन्यूल्स और फिर शिराओ मे एकत्र होता है। जब तक वह शिराओ मे पहुचता है तब तक इसकी ऑक्सीजन छोडी जा चुकी होती है और रक्त गहरे नीले (Purplish) रग का हो जाता है। शिराओ मे वाल्व आवश्यक हैं क्योकि वे रक्त को गलत दिशा मे बहने से रोकते हैं।

शिराओ मे रक्त की वापसी तीन पहलुओ पर निर्भर है:

1 परिकोष्ठ के शिथिल होने पर चूपण।

2 प्रश्वसन के दौरान चूषण, जिससे रक्त हृदय की ओर खिचता है और फुफ्फुसो मे हवा भी भरती है।

3 पेशियो के सकुचन से पतली दीवार वाली शिराओ पर दबाव। जैसे ही शिरा का भीतरी दाबमीटर कम होता है रक्त दोनो दिशाओ मे बहेगा लेकिन वाल्वस की मौजूदगी के कारण वह केवल हृदय की ओर ही बहता है। शिरीय दबाव बनाए रखने मे चूषण की शक्ति का बहुत महत्व है। यदि शक्ति घटती है, जैसा कि हृदीय विफलता मे तो शिरीय पुनःबहाव गड़बड़ा जाता है और रक्तसंकुलता हो जाती है।

14. रक्तपरिसंचरण
The Circulation

रक्तपरिसचरण को तीन भागो मे विभाजित किया जाता है

1 तत्रीय या दैहिक रक्तपरिसचरण ।
2 फुप्फुसीय रक्तपरिसचरण ।
3 पोर्टल रक्तपरिसचरण ।

दैहिक रक्तपरिसंचरण (The Systemic Circulation)

वे रक्तवाहिकाएँ जो वाँए निलय से दाहिने परिकोष्ठ तक रक्त को शरीर मे परिसचरित करती है, दैहिक रक्त परिसचरण वनाती है। धमनियाँ एक ही विन्दु पर कई शाखाओ मे विभाजित हो सकती है या वाद मे कई शाखाओ मे विभक्त हो सकती है। धमनिया सदैव केशिकाओ मे समाप्त नही होती लेकिन आपस मे जुडकर शाखा-सम्मिलन तैयार कर सकती है। उदाहरणार्थ मस्तिष्क मे दो वर्टीब्रल धमनियाँ शाखा सम्मिलिन के द्वारा वेसिलर धमनी वनाती है और दो अग्र प्रमस्तिष्कीय धमनियाँ आपस मे अग्र कम्यूनिकेटिंग धमनी से जुडी रहती है (देखिए चित्र 103)। वढे हुए सम्मिलन से सहयोगी रक्त परिसचरण हो सकता है विशेपकर दुर्घटना या वीमारी के कारण अवरुद्ध हुई रक्तवाहिका के मामले मे । अचानक अवरोधन से रक्तवाहिका के ऊतक मृत हो सकते हैं जवकि मद अवरोधन मे सम्मिलन फैल सकता है और ऊतक को आवश्यक पोषण प्रदान कर सकता है। कुछ धमनियो का शाखासमिम्लन नही होता और ऐसी धमनिया अन्त धमनिया (End arteries) कहलाती है। अन्त धमनी का अवरोधन आपूर्ति वाले ऊतक को मृत कर सकता है। उदाहरणार्थ रेटिना की केन्द्रीय धमनी के अवरोधन से स्थाई अवता हो सकती है।

धमनिया (Arteries)

धमनियो के नाम, हाथ-पैरो की अस्थियो या जिन अगो की ये रक्तपूर्ति करती हैं उन पर रखे गये ह। ये नाम उतने महत्वपूर्ण नहीं है जितनी हर धमनी की स्थिति, विशेपत नाडी की धडकन देखने के लिये अस्थि से धमनी की सापेक्ष स्थिति, रक्तस्राव के मामलो मे प्राथमिक उपचार के लिए इन पर दवाव लगाने, और खपचियो तथा अन्य वस्तुओ से इन पर दवाव न पडने देने के लिये भी इनकी स्थिति जानना महत्वपूर्ण होता है। धमनिया सुरक्षित स्थिति मे होती है, जैसे जहाँ हाथ या पैर मे एक अस्थि रहती है वहाँ अन्दर की तरफ, ओर जहाँ दो अस्थियाँ

रहती है वहाँ दोनो के बीच मे पायी जाती हैं। ये जोडो की मुडाव सतहो पर से ऐसे स्थान से गुजरती है जहाँ दबाव पडने या चोट लगने की सभावना नही रहती है।

महाधमनी (Aorta) मुख्य धमनी है जो शरीर के सभी ऊतको को आक्सीकृत रक्त पहुँचाती है। यह हृदय के बाये निलय से निकलती है और **ऐसेन्डिंग महाधमनी** के रूप मे थोडी दूर ऊपर की ओर जाती है, इसके बाद दाहिनी ओर से बायी ओर हृदय के ऊपर की तरफ मुडकर *महाधमनी* की *आर्च* बनाती है। बाद मे यह हृदय के पीछे वक्ष मे नीचे की ओर *डिसेन्डिन्ग वक्षीय महाधमनी* के रूप मे जाती है और डायफ्राम के छिद्र जिसे *एओर्टिक हाएटस* (Aortic Hiatus) कहते हैं, मे से गुजर कर उदरगुहा मे जाती है और *उदरीय महाधमनी* (*Abdominal Aorta*) कहलाती है। यह महाधमनी चौथे लम्बर वर्टीब्रा के निचले किनारे पर दाहिनी और बायी *उभय इलियॅक धमनियों* (*Common iliac arteries*) मे विभाजित होने के बाद समाप्त होती है।

ऐसेन्डिन्ग महाधमनी (*Ascending aorta*) से दाहिनी और बायी कॉरोनरी धमनिया निकलती है ठीक एओर्टिक वाल्व के कस्प के ऊपर मे, जो हृदीय दीवार की रक्तपूर्ति करती हैं।

महाधमनी की आर्च मे निम्नलिखित धमनिया निकलती है

1 ब्रैकिओसिफैलिक मुख्य धमनी जो दो भागो मे विभाजित होती है *दाहिनी सबक्लैविअन धमनी* और *दाहिनी उभय कैरोटिड धमनी*।

2 *बायीं उभय कैरोटिड धमनी,*

3 *बायीं सबक्लैवियन धमनी,*

उभय कैरोटिड धमनिया (*Common carotid arteries*) सिर और गर्दन की रक्तपूर्ति करती हैं। थाइरॉइड उपास्थि के पास ये दो शाखाओ मे विभाजित होती है और बाह्य तथा आतरिक कैरोटिड धमनिया बनाती है। *बाह्य कैरोटिड* धमनी चेहरे व खोपडी के बाहरी भागो की रक्तपूर्ति करती ह और फैशिअल, टेम्पोरल, आक्सिपिटल तथा मैक्सिलरी शाखाओ मे विभाजित होती है। *आतरिक कैरोटिड धमनी* मस्तिष्क के सेरेब्रम, आखो, नाक और अग्रसिर (कपाल) को रक्त पूर्ति करती है। जिस विन्दु पर उभय कैरोटिड धमनिया विभाजित होती हैं वहाँ एक विस्तारित क्षेत्र होता है जिसे कैरोटिड साइनस कहते है। वहाँ ग्लॉसोफेरेन्जिअल स्नायु (नवी क्रेनिअल) के कई सवेदी सिरे रहते है। साइनस मे धमनीय रक्तचाप मे होने वाले परिवर्तनो के प्रति प्रतिक्रिया होती है और वह उसे सामान्य बनाने मे सहायता करता है। उभय कैरोटिड धमनी के विभाजन स्थल के पीछे एक लाल-भूरी रचना होती है जिसे *"कैरोटिड बॉडी"* कहते है, यह *कीमोरिसेप्टर* की तरह कार्य करती है (देखिए पृष्ठ 140)।
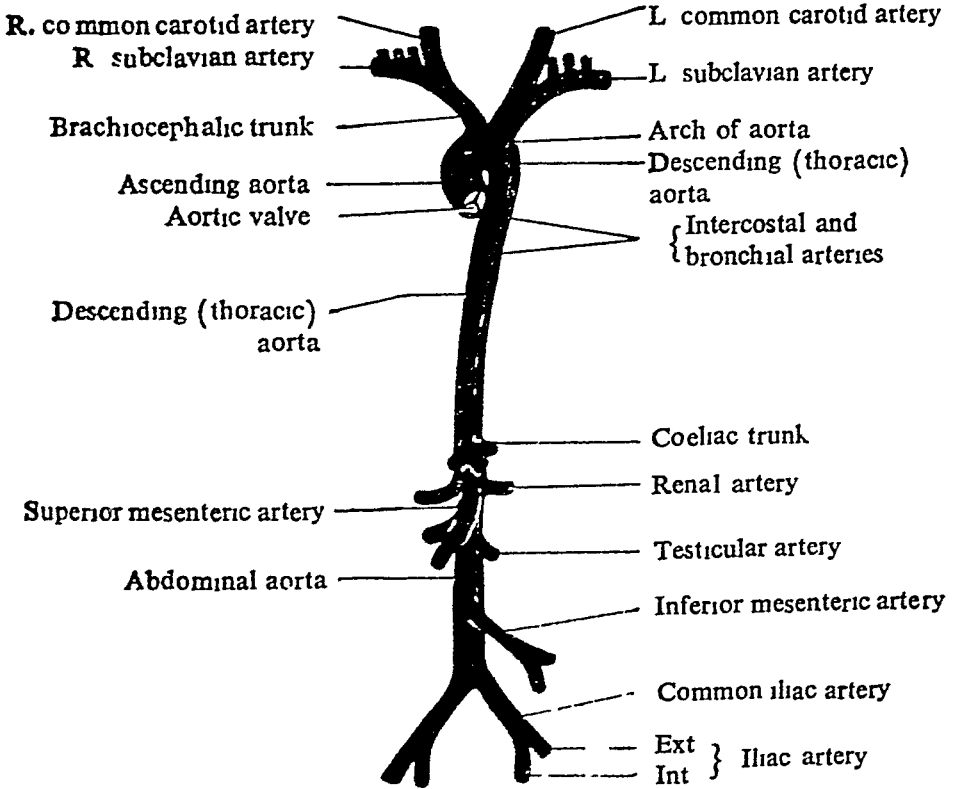
चित्र 103–महाधमनी की आर्च और शाखाएँ।

वर्टिब्रल धमनिया (Vertebral arteries) सवक्लेविअन धमनी के पहले भाग से निकलती है और सर्वाइकल वर्टिब्री की ट्रान्सवस प्रोसेसेस मे स्थित छिद्रो मे से गर्दन के ऊपर तक फैली रहती है, और मस्तिष्क की रक्तपूर्ति करने के लिए फोरामॅन मैग्नम के द्वारा खोपडी मे प्रविष्ट होती है। ये बाद मे जुडकर वेसिलर धमनी (देखिए चित्र 45) बनाती है।

एक शाखासम्मिलन जिसे *सरक्यूलस आर्टीरिओसस* कहते है वर्टीब्रल धमनियो और दो आतरिक कैरोटिड धमनियो को जोडता है। यह चक्र मस्तिष्क के आधार पर स्थित रहता है। सामने की ओर दो *अग्र सेरेब्रल धमनियाँ* अग्र कम्यूनिकेटिग धमनी मे जुडती है। पीछे वेसिलर धमनी होती है जोकि दो वर्टीब्रल धमनियो से जुडकर बनती है। यह आगे चलकर दो *पश्च सेरेब्रल धमनियों* मे विभाजित होती है जिनमे से प्रत्येक आतरिक कैरोटिड धमनियो से *पश्च कम्युनिकेटिग धमनी* के द्वारा जुडी रहती है। यह शाखासम्मिलन मस्तिष्क को वाहिकाओ मे चोट लगने या अवरोधन होने के बाद भी पर्याप्त मात्रा मे रक्त की पूर्ति बनाए रखता है।
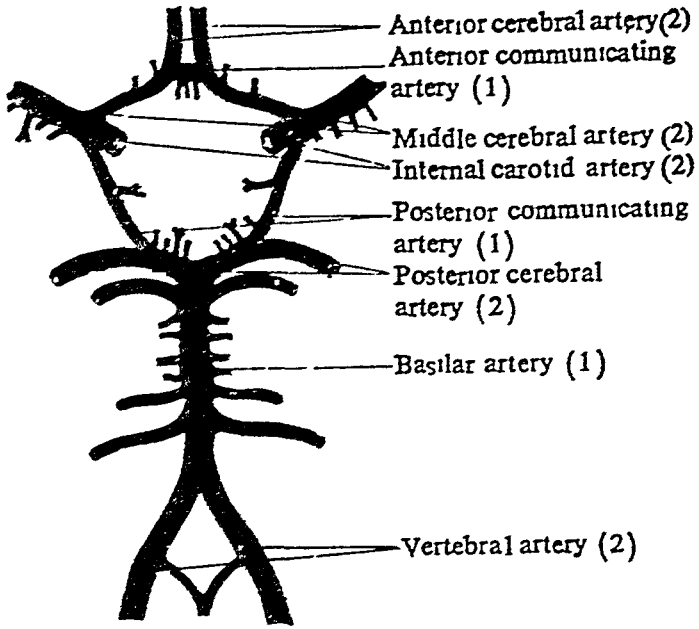
चित्र 104–प्रमस्तिष्क का धमनीय चक्र (सर्कल ऑव विलिस)।
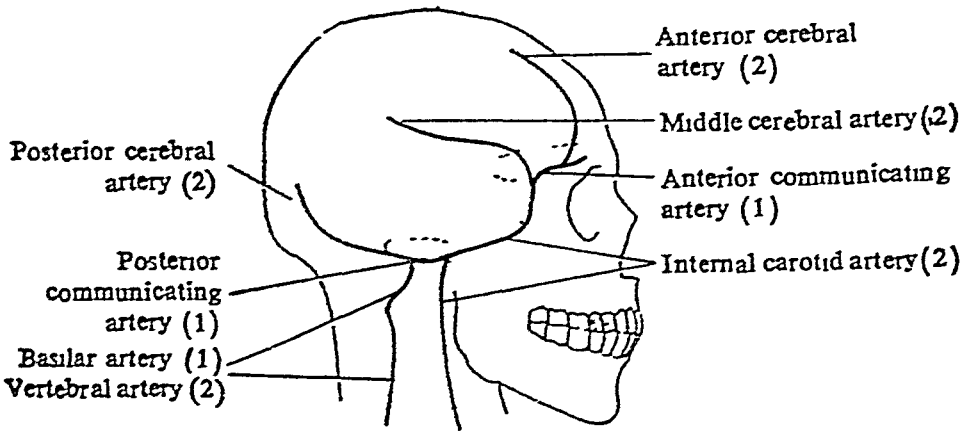
चित्र 105–मस्तिष्क की रक्तपूर्ति (बाजू का दृश्य)। बिन्दु-अंकित रेखा मस्तिष्क के दूसरी तरफ का संबंध दर्शाते हुए।

भुजा की रक्तपूर्ति सबक्लैवियन धमनी द्वारा होती है जो पहली पसली के ऊपर व क्लैविकल के नीचे से एक्जिला तक पहुँचती है, वहाँ इसे एक्जिलरी धमनी कहा जाता है। इसके बाद यह ऊपरी भुजा में जाती है जहाँ ब्रेकिअल धमनी कहलाती है, जो ह्यूमरस के अन्दर की तरफ नीचे की ओर पहुँचती है, तथा कोहनी के सामने से गुजरकर अग्रभुजा में रेडिअल और अल्नर धमनियों में विभाजित हो जाती है। रेडिअल धमनी हाथ के बाहर की तरफ से नीचे की ओर जाती है, और कलाई

के सामने से गुजरकर अगूठे के निचले भाग के पीछे से जाती है ताकि उस पर दवाव नही पड़े तथा हथेली मे प्रविष्ट होकर डीप पामर आर्च (*Deep palmer arch*) वनाती है।

अल्नर धमनी अग्रभुजा के अन्दर की तरफ से नीचे की ओर जाती है तथा कलाई के सामने से गुजरकर स्यूपरफिशिअल पामर आर्च वनाती है। इन पामर आर्चेस से उगलियो को रक्त पहुँचाने के लिए छोटी-छोटी धमनिया निकलती हैं। प्रत्येक आर्च एक दूसरे से जुडी रहती है, ताकि यदि एक धमनी कट जाये तो चोटग्रस्त वाहिका द्वारा रक्तपूर्ति होने वाले भाग को दूसरी धमनी के द्वारा रक्तपूर्ति हो सके।

डिसेन्डिन्ग वक्षीय महाधमनी (*Descending thoracic aorta*) मीडिएँस्टाइनम के बीच स्थित रहती है। यह पेरिकार्डिअम, ब्रॉन्काइ, आहारनली, फुफ्फुस, मीडिए-स्टाइनम, इन्टरकास्टल पेशियो और स्तनो को अपनी शाखाओ से रक्तपूर्ति करती है। शाखाओ का नाम अंगो की पूर्ति के अनुसार होता है।

उदरीय महाधमनी (*Abdominal aorta*) डायफ्राम के छिद्र एऑर्टिक हाएँट्स से शुरू होती है, करीबन अन्तिम थॉरेसिक वर्टीब्रा के स्तर पर। इसकी कई वडी शाखाएँ हैं जो उदर के विभिन्न हिस्सो को रक्त की पूर्ति करती है इसलिए वह तेजी से आकार मे घटती जाती हैं।

1 *फ्रेनिक धमनिया* डायफ्राम की रक्तपूर्ति करती है।

2 *सीलिअॅक मुख्य धमनी* डायफ्राम के धमनीय छिद्र के नीचे से निकलती है और तीन शाखाओ मे विभाजित होती है (अ) *वायी आमाशयिक धमनी* (*Left gastric artery*) जो उदर की रक्तपूर्ति करती हे और दो या तीन शाखाएँ निकालती है जोकि डायफ्राम मे आहारनली के छिद्र से होकर ऊपर की ओर जाती है तथा इसोफैगिअल धमनी से सम्मिलन करती है। (व) *यकृतीय धमनी* (*Hepatic artery*) यकृत की रक्त पूर्ति करती है और ड्यूओडेनम तथा वाइल डक्ट के अलावा दाहिनी आमाशयिक धमनी को भी शाखाए भेजती हैं। (स) *स्प्लीनिक धमनी* (*Splenic artery*) कई शाखाओ मे विभाजित होकर प्लीहा और अग्न्याशय को रक्तपूर्ति करती है।

3 *ऊपरी मीजेन्टॅरिक धमनी* (*Superior mesenteric artery*), छोटी आत को व वडी आँत के आरम्भिक भाग को रक्तपूर्ति करती है।

4 *मध्य सुप्रारीनल धमनियाँ* (*Middle suprarenal arteries*) महाधमनी के दोनो ओर ऊपरी मीजेन्टॅरिक धमनी की विपरीत दिशा मे निकलती हैं और सुप्रारीनल ग्रथि को रक्त की पूर्ति करती है।

5 *गुर्दीय धमनिया* (*Renal arteries*) गुर्दो को रक्त प्रदान करती हैं। बायी धमनी दाहिनी की अपेक्षा कुछ ऊपर रहती है क्योकि गुर्दो की स्थिति ऐसी ही होती है।

6 ओवॅरिअन धमनिया महिलाओ मे और टेस्टिक्यूलर धमनिया पुरुषो के उन अगो मे रक्तपूर्ति करती है जिनके आधार पर उनका नामकरण हुआ है।

7 निचली मीजेन्टॅरिक धमनी बडी आंत के बाकी बचे हुए भाग सिग्माइड कोलॅन और मलाशय की रक्तपूर्ति करती है।
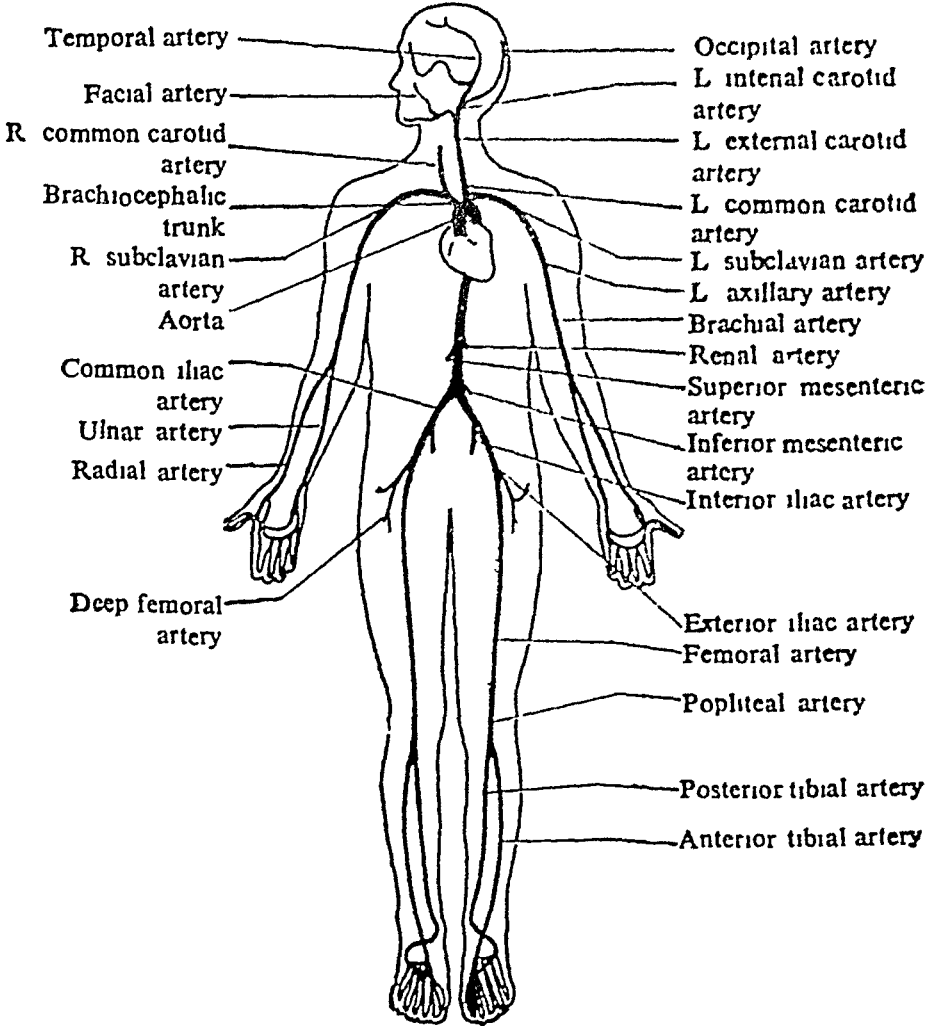
चित्र 106–मुख्य धमनियां।

उदरीय महाधमनी दो उभय इलिॲक धमनियों (*Common iliac arteries*) मे विभाजित होती है। वे पुन अतिम लम्बर वर्टिब्रल डिस्क की ऊचाई पर आतरिक इलिॲक धमनी (*Internal iliac art...*) जो कि श्रोणीय अगो, पेरिनीअम और नितम्बो की रक्तपूर्ति करती है और बाह्य इलिॲक धमनी (*External iliac artery*) जो कि पैरो को रक्त पूर्ति करती है, मे विभाजित होती हैं।

पैरो की रक्तपूर्ति *वाह्य इलिअॅक धमनी* के द्वारा होती है, जो जाँघ के ऊपरी भाग के मध्य से गुजरकर जाँघ मे फैली रहती है और *फीमोरल धमनी* वन जाती है। यह फीमोरल धमनी जाँघ के अन्दर नीचे की तरफ जाती है जहाँ इसे *पॉपलिटीअल धमनी* कहते है। यह टाँग मे जाकर दो भागो मे विभाजित हो जाती है·

1 *अग्र टिबिअल धमनी (Anterior tibial artery)* टाग के सामने नीचे की ओर इटरऑसिअस झिल्ली की अग्र सतह तक जाती है, तथा टखने के सामने से गुजरकर *डॉरसेलिस पीडिस धमनी* वनाती है जो पाँव की ऊपरी सतह को रक्तपूर्ति करती है।

2 *पश्च टिबिअल धमनी (Posterior tibial artery)* टाग के पीछे से नीचे की ओर जाती है, तथा टखने के अन्दर की तरफ पाँव के तलुए तक जाती है और *प्लाटर आर्च* मे वदल जाती है।

टखने के जोड के आसपास की धमनिया मुक्त रूप से शाखासम्मिलन करती हैं और वाहिकाओ का जाल वनाती है।

शिराएँ (The Veins) ·

शिराएँ, जो शिरीय रक्त को हृदय तक लौटाती है या तो *ऊपरी शिराएँ (Superficial veins)* है जो कई जगह होती है और *अन्दरूनी शिराएँ (Deep veins)* जो कि आमतौर से धमनियो के साथ रहती है। धमनीय धडकन एक मुख्य
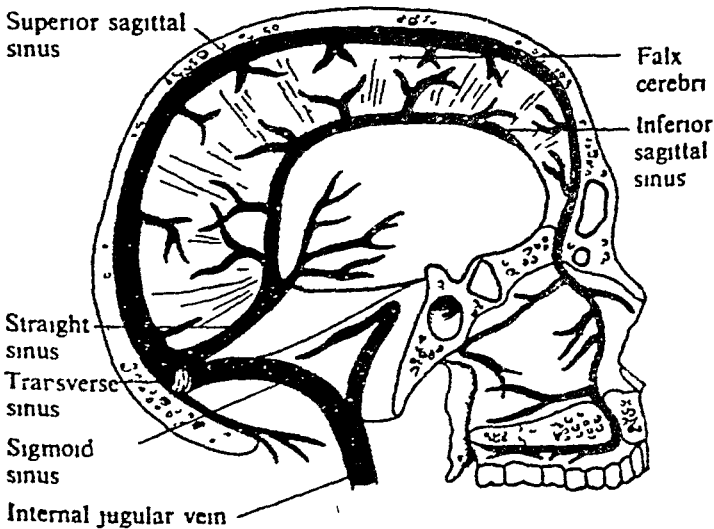
चित्र 107—खोपडी के अन्दर शिरीय साइनस।

पहलू है जिसकी वजह से शिराओ मे रक्त लौटता है। दैहिक शिराएँ सम्बधित धमनियो की तुलना मे अधिक विभिन्नता वाली होती है और अधिक
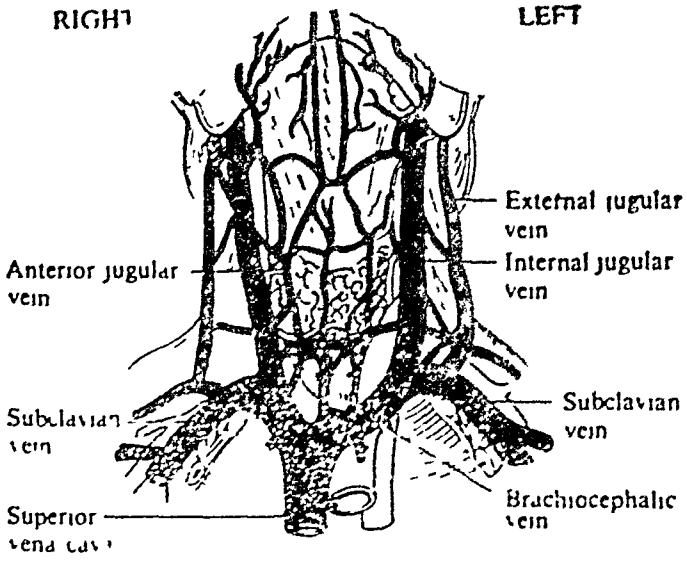
चित्र 108–गर्दन में स्थित मुख्य शिराएँ।

शाखासम्मिलन तैयार करती हैं। कुछ क्षेत्रों में, जैसे श्रोणीय और रीढ़ के आसपास शिराएं अत्याधिक शाखासम्मिलन बनाती हैं और उनमें वाल्व्स नहीं होते।
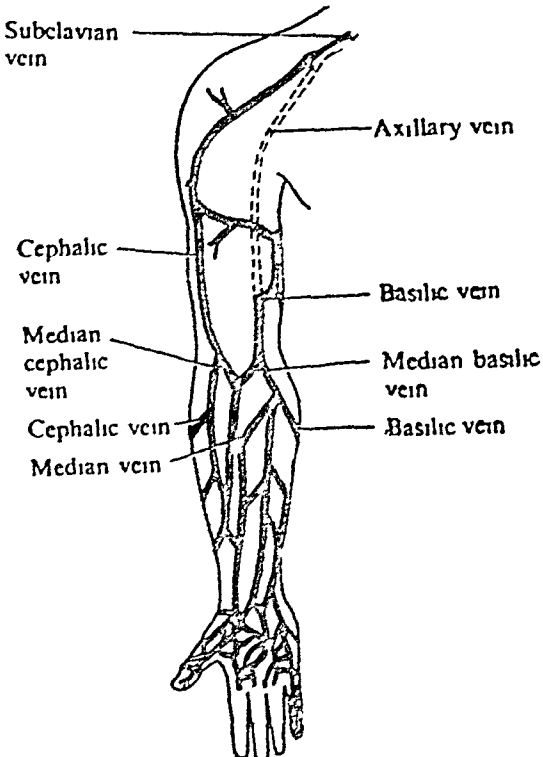
चित्र 109–अग्र भुजा की बाहरी शिराएँ।

शिराओ को दो समूहो मे वर्णित किया जा सकता है

1 सिर, गर्दन, भुजाओ और वक्ष की शिराए जो *सुपीरिअर वेना केवा* (ऊपरी महाशिरा) मे समाप्त होती हैं।

2 पैरो, उदर और श्रोणीय क्षेत्र की शिराएँ जो *इन्फीरिअर वेना केवा* (निचली महाशिरा) मे समाप्त होती हैं।

मस्तिष्क से रक्त उन वाहिकाओ मे एकत्र होता है जो ड्यूरामैटर की दो तहो के बीच होती हैं उन्हें *शिरीय साइनसेस (Venous Sinuses)* कहते है। ये *आतरिक जुगलर शिराओं* मे खाली होती है उन्ही मे चेहरे और गर्दन के सतही भागो से रक्त आता है।
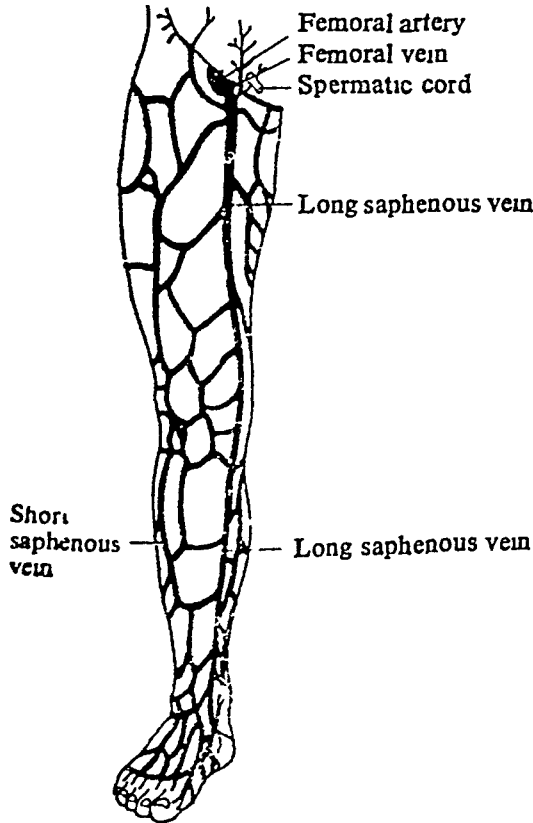
चित्र 110–पैर की ऊपरी शिराएँ।

बाह्य जुगलर शिराएँ (External jugular veins) चेहरे के अन्दरूनी भागो और क्रैनिअम के बाह्य हिस्से से रक्त प्राप्त करती है। गर्दन के निचले भाग पर जुगलर शिराएँ सबक्लैविअन शिराओ से जुडती हैं और *ब्रेकिओसिफेलिक शिराएँ* बनाती हैं। इसके बाद ये जुडकर *ऊपरी महाशिरा* बनाती हैं जो हृदय के दाहिने परिकोष्ठ मे रक्त पहुँचाती है।

भुजाओं की शिराएँ दो समूहों में होती हैं ऊपरी और अन्दरूनी।

ऊपरी शिराएँ (*Superficial veins*) त्वचा के ठीक नीचे होती हैं और सीफैलिक, बैसिलिक और मीडिअन शिराएँ तथा उनकी शाखाएँ इस श्रेणी में हैं।

अन्दरूनी शिराएँ (*Deep veins*) धमनियों के साथ चलती हैं और अपना रक्त एक्जिलरी शिरा (*Axillary vein*) में पहुँचाती हैं। यह बैसिलिक शिरा का ही भाग है जो आगे चलकर सबक्लेविअन शिरा में बदल जाती है।

पैरों की शिराएँ, भुजाओं की तरह ऊपरी और अन्दरूनी होती हैं और त्वचा के नीचे या धमनियों के साथ रहती हैं।
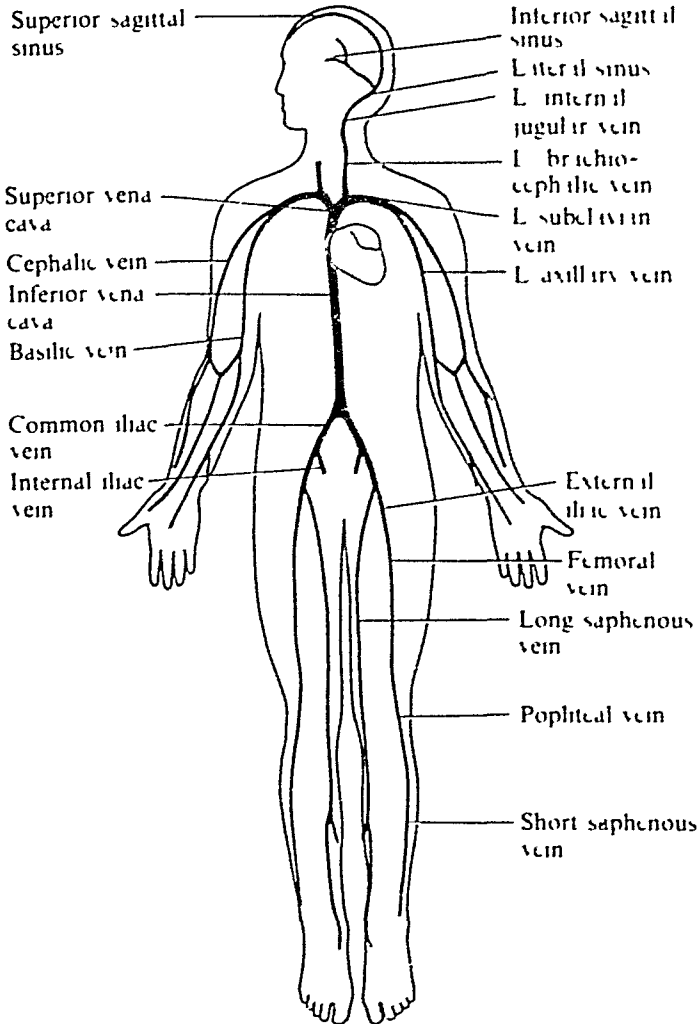
चित्र 111—मुख्य शिराएँ।

ऊपरी *शिराएँ* छोटी या लम्बी सेफॅनस शिराएँ (*Saphenous*) हैं। वे अपना रक्त अन्दरूनी पॉप्लिटिअल शिरा में घुटने के पीछे पहुँचाती हैं। *अन्दरूनी शिराएँ* अग्र और पश्च टिबिअल शिराएँ पॉप्लिटिअल शिराएँ, और फीमोरल शिरा है।

अन्दरूनी और ऊपरी शिराओ के वीच कई 'छिद्रक' (*Perforating*) शिराएँ होती हैं उनमे वाल्व इस प्रकार व्यवस्थित रहते है कि वे अन्दरूनी से ऊपरी शिराओ मे रक्त नही वहने देती। यदि ये वाल्व अप्रभावी हो जाते हैं तो रक्त अन्दरूनी से ऊपरी शिराओ मे पहुँचकर उनका दवाव वढा सकता है। इससे वे शिराएँ फूल जाती हैं और यह स्थिति स्फिन शिराएँ (*Varicose vein*) और घाव (*Ulcers*) पैदा कर सकती है।

फीमोरल शिरा इग्वीनल लिगॅमेट के पास समाप्त होकर *वाह्य इलिअॅक शिरा* वन जाती है। यह *आन्तरिक इलिअॅक* शिरा से जुडती है जो श्रोणीय अगो एव नितम्वो से रक्त लाती है, जुडने के वाद यह दोनो तरफ उभय इलिअॅक शिरा वनाती है। दाहिनी और वायी इलिअॅक शिराएँ जुडकर पाँचवें लम्वर वर्टिव्रा की सीध मे उस स्थान पर *निचली महाशिरा* (*Inferior venacava*) वनाती है। इसमे कई शिराएँ मिलती हैं, कुछ महत्वपूर्ण इस प्रकार है

1 गुर्दो से *गुर्दीय शिराएँ*।

2 प्रजनन अगो से *ओवॅरिअन या टेस्टिक्यूलर शिराएँ* जो जननागो से रक्त लाती है और वायी ओर गुर्दीय शिरा मे और दाहिनी ओर सीधे महाशिरा मे रक्त पहुँचाती है।

3 *यकृतीय शिराएँ* जो यकृत को वितरित होने वाले रक्त के अलावा पोर्टल रक्तपरिसचरण से भी सम्पूर्ण रक्त लाती है।

महाशिराएँ अपना सम्पूर्ण शिरीय रक्त दाहिने परिकोष्ठ मे पहुँचाती है, केवल कॉरोनरी रक्तपरिसचरण को छोडकर, जो कि कॉरोनरी साइनस के माध्यम से सीधे दाहिने परिकोष्ठ मे जाता है।

फुप्फुसीय रक्तपरिसचरण (The Pulmonary Circulation)

ये वाहिकाएँ डिआक्सीजिनेटेड रक्त को हृदय से फुप्फुसो तक और आक्सीजिनेटेड रक्त को पुन हृदय मे ले जाती हैं। *फुप्फुसीय* मुख्य शाखा (*Pulmonary Trunk*) शिरीय रक्त को वाएँ निलय से ले जाती है। पाचवें थॉरेसिक वर्टीव्रा के स्तर पर यह *दाहिनी और वायी फुप्फुसीय धमनी* मे विभाजित होती है जो वाद मे फुप्फुसो के अन्य भागो तक रक्त पूर्ति के लिए विभाजित होती रहती है। ये वाहिकाएँ ही केवल डिऑक्सीजिनेटेड रक्त को ले जाने वाली धमनियाँ है।

चार *फुप्फुसीय शिराएँ* आक्सीजिनेटेड रक्त फुप्फुसो से वाएँ परिकोष्ठ तक ले जाती हैं। प्रत्येक फुप्फुस से ऐसी दो वाहिकाएँ निकलती है। ये ही ऐसी शिराएँ हैं जो आक्सीजिनेटेड रक्त ले जाती है।

पोर्टल रक्त परिसंचरण (The Portal Circulation)

पोर्टल रक्त परिसचरण मे वे सव शिराएँ सम्मिलित है जो पाचन तत्र के उदरीय भाग तथा प्लीहा, अग्न्याशय और पित्ताशय से रक्त लाती है। इन अगो से रक्त यकृत तक *पोर्टल शिरा* के माध्यम से जाता है, जो केशिकाओ के समान वाहिकाओ मे ममाप्त होती है। उन्हे साइनुसॉइड्म कहते है। रक्त तव यकृतीय शिराओ से निचली महाशिरा मे एकत्र होता है। जैसा कि पहले वताया जा चुका है यकृत को भी ऑक्सीजिनेटेड रक्त मिलना चाहिए और यह यकृतीय धमनी के द्वारा मिलता है।

गर्भस्थ रक्त परिसंचरण (The Foetal Circulation)

गर्भस्थ रक्त प्लेसेन्टा से और प्लेसेन्टा तक नाभिय धमनियो और शिराओ द्वारा ले जाया जाता है। अधिकांश रक्त जो कि दाहिने परिकोष्ठ मे निचली महाशिरा से जाता है वह परिकोष्ठीय सेप्टम के एक छिन्द्र *फोरामॅन ओवेल (Foramen ovale)* से होकर सीधे वाएँ परिकोष्ठ मे जाता है और फिर वाएँ निलय और महाधमनी मे पहुँचता है। दाहिने परिकोष्ठ मे ऊपरी महाशिरा से लौटने वाला रक्त दाहिने निलय और फुप्फुसीय मुख्य वाहिका मे जाता है, जहाँ से यह वहुत कम मात्रा मे फुप्फुसो तक पहुँचता है। अधिकांश रक्त *डक्टस आर्टीरिओसस* से सीधा महाधमनी मे पहुँच जाता है।

जन्म के समय फोरामॅन ओवेल वद हो जाता है ताकि रक्त दाहिने परिकोष्ठ से वाएँ परिकोष्ठ मे न जा पाए, वल्कि वह फुप्फुसीय मुख्यवाहिका और फिर फुप्फुसो मे जाए। डक्टस आर्टीरिओसस भी जन्म के कुछ ममय वाद वद हो जाता है।

15. लसीकीय तन्त्र
The Lymphatic System

जैसे ही रक्त केशिकाओ से ऊतकों मे जाता है वैसे ही यह केशिकाओ की छिद्रमय दीवारो से बाहर रिसता है और ऊतको मे परिसंचरित होकर प्रत्येक जीवित कोशिका को भिगोकर रखता है। इस द्रव को *ऊतक या इन्टर्स्टिशिअल द्रव* कहते है, यह अन्त स्थानी अर्थात विभिन्न ऊतको को बनाने वाली कोशिकाओं के बीच की जगहो को भर देता है। यह स्वच्छ, पानी जैसा, पीले रग का, रक्त के प्लाज्मा के समान द्रव है जो रक्त मे निलकता है। रक्त सिर्फ रक्तवाहिकाओ मे ही बहता है जबकि ऊतक-द्रव ऊतक मे परिसचरित होता है और विभिन्न कोशिकाओ तक रक्त प्रवाह मे आहार, ऑक्सीजन एव पानी लाता है और इन कोशिकाओ से व्यर्थ पदार्थ जैसे कि कार्बन-डाइऑक्साइड, यूरीआ एव पानी लेकर इनको रक्त मे पहुँचाता है। दूसरे शब्दो मे, यह ऊतक कोशिकाओ और रक्त के बीच परिवहन माध्यम है।
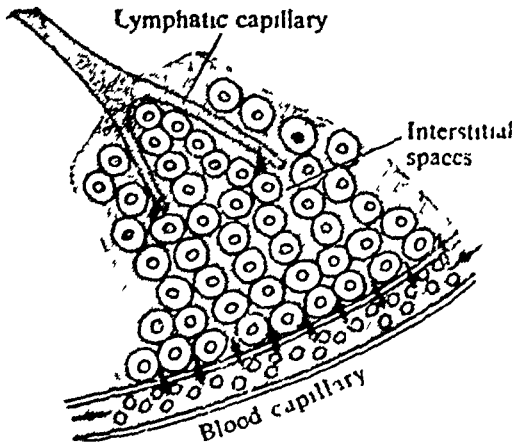
चित्र 112—ऊतक-द्रव का परिसचरण दर्शाते हुए रेखाचित्र। द्रव ऊतकों मे पहुँचकर अशत रक्त-केशिका द्वारा और अशत लिम्फ केशिका द्वारा एकत्रित होता है।

केशिकाओ से ऊतको मे बहने वाले द्रव की कुछ मात्रा फिर से केशिकीय दीवार से उनमे पहुँच जाती है। लेकिन चूंकि रक्त निरतर बहता है और केशिकाएँ रक्त से भरी होती हैं इसलिए इसकी वापसी इसके निकलने की अपेक्षा कठिन होती है। वह बचा हुआ द्रव जो केशिकाओ द्वारा सीधे रक्त प्रवाह मे नही लौट सकता, एकत्रित

होकर वाहिकाओं के दूसरे समूह द्वारा रक्त में पहुँच जाता है, यह दूसरा समूह लसीकीय तंत्र बनाता है और जो द्रव इन वाहिकाओं में रहता है उसे *लिम्फ* (*Lymph*) कहते हैं।
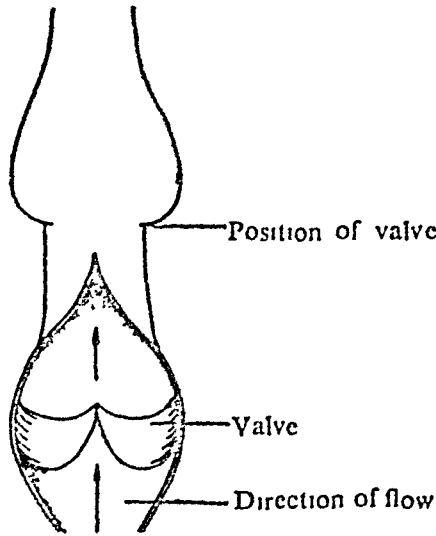
चित्र 113—लसीकीय वाहिका (काटकर खोली हुई)।

लसीकीय तंत्र निम्नलिखित भागों का बना होता है

1 लसीकीय केशिकाएँ
2 लसीकीय वाहिकाएँ
3 लसीकीय नोड्स
4 लसीकीय नलिकाएँ

लसीकीय केशिकाएँ (Lymphatic capillaries) :

लसीकीय केशिकाएँ ऊतकों की जगहों में से छिद्रित दीवारों वाली पतली केश के समान वाहिकाओं के रूप में उत्पन्न होती हैं। ये ऊतकों से अधिक द्रव एकत्रित करती हैं और जुड़कर लसीकीय वाहिकाएँ बनाती हैं। लसीका केशिकाओं की दीवार में से रक्त-केशिकाओं की अपेक्षा अधिक बड़े अणु गुज़र सकते हैं।

लसीकीय वाहिकाएँ (Lymphatic vessels) :

ये पतली दीवार वाली दबने लायक नलियाँ हैं जो रचना में शिराओं के समान होती है, लेकिन ये रक्त के बजाय लिम्फ ले जाती हैं। ये अधिक पतली और शिराओं की अपेक्षा संख्या में अधिक रहती हैं। लिम्फ को गलत दिशा में बहने से रोकने के लिये शिराओं के समान इनमें भी वाल्व्स रहते है। सिर्फ केन्द्रीय स्नायविक तंत्र को छोड़कर बाकी सभी ऊतकों में लसीकीय वाहिकाएँ रहती हैं। ये विशेष रूप से अवत्वचीय ऊतकों में होती है और एक या अधिक लसीकीय नोड्स में से गुजरती हैं।
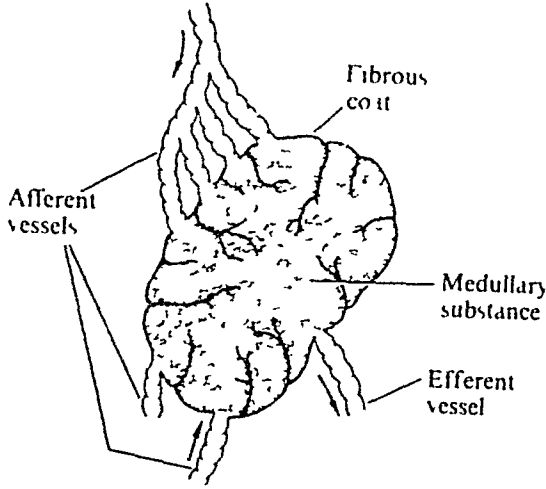
चित्र 114–ऐफॅरन्ट और इफॅरन्ट वाहिकाएँ दर्शाते हुए लसीकीय नोड।
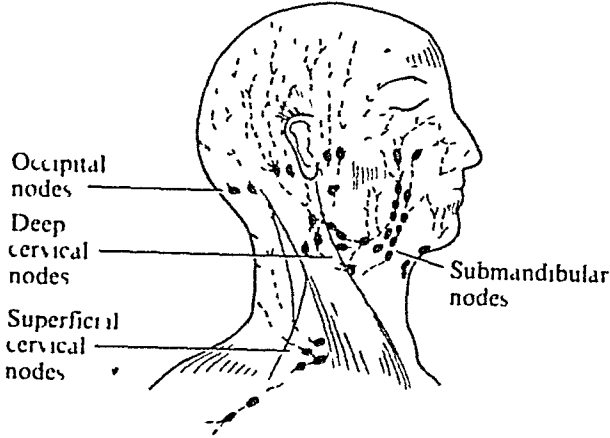
चित्र 115–सिर और गर्दन की लसीकीय वाहिकाएं।

लसीकीय नोड्स (Lymphatic nodes)

लसीकीय नोड्स छोटी-छोटी गठानें हैं जो आकार में आलपिन के सिर से लेकर बादाम के आकार तक होती हैं। जो लसीकीय वाहिकाएँ इन तक लिम्फ लाती हैं उन्हें ऐफॅरन्ट वाहिकाएँ कहते हैं। ये वाहिकाएँ नोड्स में प्रविष्ट होकर विभाजित हो जाती हैं और नोड के पदार्थ में लिम्फ पहुँचाती हैं। बाद में यह लिम्फ दूसरी लसीकीय वाहिकाओं में फिर से एकत्रित हो जाता है। इन वाहिकाओं को इफॅरन्ट वाहिकाएँ कहते हैं। इफॅरन्ट वाहिकाएँ अतत लिम्फ को वहन करके तथा सभवत अन्य नोड्स से लिम्फ वहन करके उसे लसीकीय नलिकाओं में पहुँचाती हैं। लसीकीय नोड्स मुख्यत सफेद रक्ताणुओं (लिम्फोसाइट्स) जैसी कोशिकाओं की बनी होती है, जो आपस में सयोजी ऊतक के जाल द्वारा जुड़ी रहती हैं जो नोड का कैप्सयूल भी बनाता है।
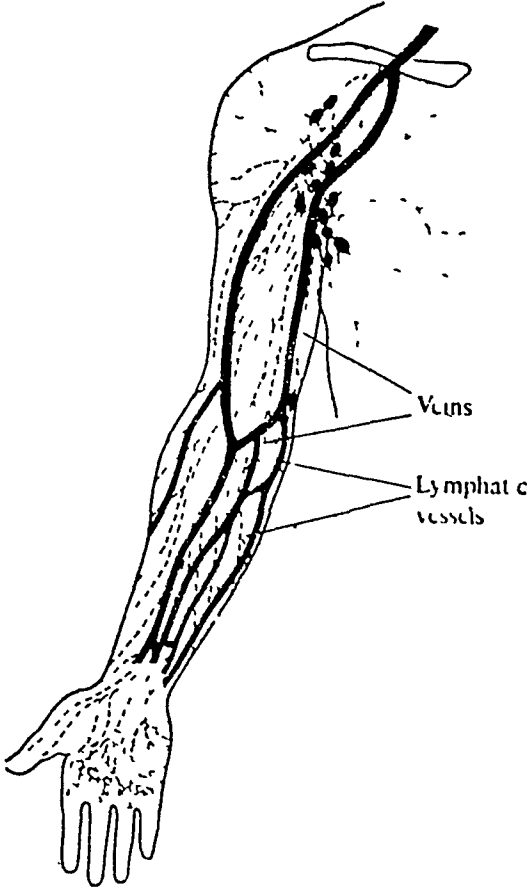
चित्र 116–भुजा की लसीकीय वाहिकाएँ।

लसीकीय नोड्स के कार्य निम्न है

1 लिम्फ नोड मे से गुज़रने वाले लिम्फ से वेक्टीरिआ को फिल्टर करना। इस प्रकार जब उतक सक्रमित हो जाते है तब नोड भी सूजकर दर्दमय हो जाते है। यदि सक्रमण मद है तो नोड की कोशिकाओ द्वारा जीवाणु नष्ट हो जायेगे और दर्द एव सूजन भी समाप्त हो जायेगी। यदि सक्रमण गभीर है तो जीवाणु तीव्र प्रदाह पैदा कर देगे और सफेद रक्ताणुओ की क्षति हो सकती है जिमसे नोड मे फोडा वन जायेगा। यदि नोड द्वारा वेक्टीरिआ नष्ट नही हुए तो ये लिम्फ प्रवाह मे पहुँच सकते ह और सामान्य रक्तपरि-सचरण को सक्रमित करके सेप्टिसीमिआ पैदा कर देते हैं।

2. रक्त के लिये ताजे लिम्फोसाइट्स की पूर्ति करना। नोड की कोशिकाएँ लगातार विभाजित होती है और नई वनी हुई कोशिकाएँ लिम्फ मे चली जाती है।

3. सक्रमण की रोकथाम के लिये कुछ एन्टिवॉडीज और एन्टिटॉक्सिन्स का निर्माण करना।

शरीर के विभिन्न अंगो मे अधिकांश लसीकीय नोड्स आपस मे समूह के रूप मे एकत्रित रहती हैं। गर्दन मे और ठुड्डी के नीचे स्थित नोड्स समूह सिर, जबान और मुँह की निचली सतह से लिम्फ फिल्टर करता है। बगल (एक्जिला) मे स्थित समूह भुजा एवं वक्षीय दीवार मे लिम्फ फिल्टर करता है। जाँघ के ऊपरी भाग (ग्रॉएन) मे स्थित समूह पैरो और निचली उदरीय दीवार से लिम्फ फिल्टर करता है। वक्ष और उदर मे स्थित समूह आन्तरिक अंगो से लिम्फ फिल्टर करते हैं।
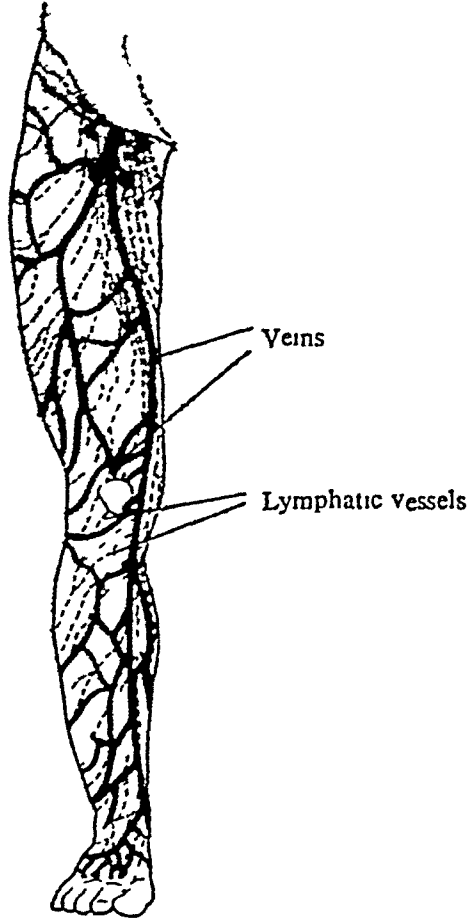
चित्र 117–पैरो की लसीकीय वाहिकाएँ।

विशिष्ट क्षेत्र जहाँ अधिक लसीकीय ऊतक पाये जाते हैं, उनमे पैलैटाइन एव फैरिन्जिअल टॉन्सिल्स, थाइमस ग्रन्थि, छोटी आँत मे स्थित लसीकीय फॉलिकल्स समूह; ऐपेन्डिक्स एव स्प्लीन सम्मिलित हैं।

लसीकीय नलिकाएँ (The Lymphatic ducts) :

लसीकीय नोड्स द्वारा फिल्ट्रेशन के बाद लिम्फ़ लसीकीय वाहिकाओ द्वारा दो

लसीकीय नलिकाओं में पहुँच जाता है। उन्हें वक्षीय नलिका (थॉरेसिक डक्ट) और दाहिनी लसीकीय नलिका कहते हैं।

वक्षीय नलिका (Thoracic duct) बड़ी होती है। यह उदर के पीछे स्थित छोटी थैली में आरम्भ होती है जिसे सिस्टरना काइलि (Cisterna chyli) कहते हैं। उसमें पैरों एवं उदरीय तथा श्रोणीय अंगों में आने वाली सभी लसीकीय वाहिकाएँ खाली होती हैं। सिस्टरना काइली से यह नलिका नीचे ऊपर हृदय के पीछे स्थित मीडि-एस्टाइनम में से गर्दन के निचले भाग तक जाती है। यहाँ पर यह बायीं ओर मुड़कर सिर के बायीं तरफ से और वक्ष एवं बायीं भुजा में आने वाली लसीकीय वाहिकाओं से जुड़ती है, और अंतत बायीं सबक्लेविअन शिरा में उस स्थान पर खाली होती है जहाँ बायीं आन्तरिक जुगॅलर शिरा बायीं सबक्लेविअन शिरा से मिलती है। यह करीब 45 से मी लम्बी होती है तथा लिम्फ को गलत दिशा में बहने से रोकने के लिये उसमें वाल्व्स होते हैं।

दाहिनी लसीकीय नालिका (Right lymphatic duct) अपेक्षाकृत छोटी वाहिका है जो गर्दन के निचले भाग पर सिर की दाहिनी तरफ से एवं वक्ष तथा दाहिनी भुजा से आने वाली लसीकीय वाहिकाओं के जुड़ने से बनती है। यह करीब 1 से मी लम्बी होती है और यह दाहिनी सबक्लेविअन शिरा में उस जगह खाली होती है जहाँ कि यह शिरा दाहिनी आन्तरिक जुगॅलर शिरा से जुड़ती है।
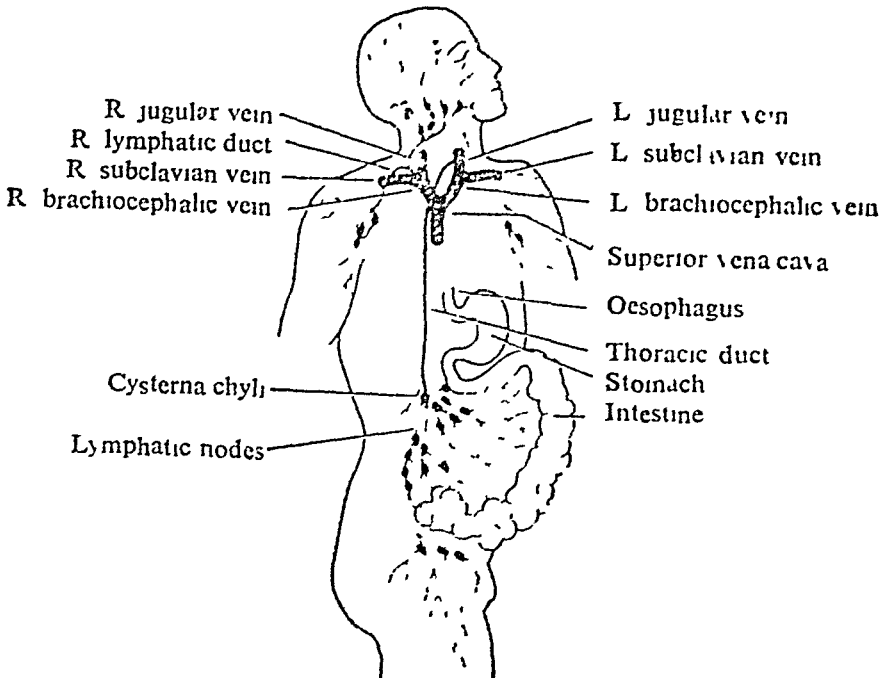
चित्र 118—लसीकीय नलिकाएं।

लसीकीय नलिकाएँ इस तरह सम्पूर्ण लिम्फ एकत्र करती है और रक्त प्रवाह मे पहुँचाती है जहाँ से द्रव ऊतको मे निरतर नवीनीकरण होता रहता है।

लसीकीय तंत्र के कार्य (The Functions of the Lymphatic System)

लसीकीय तत्र के कार्य निम्नलिखित है

1. लसीकीय वाहिकाएँ ऊतको मे अधिक द्रव या लिम्फ को एकत्रित कर लेती है और इस प्रकार ऊतको मे ताजे द्रव का निरन्तर प्रवाह होने देती है।

2 यह वह मार्ग है जिसके द्वारा ऊतकद्रव मे उपस्थित अधिक प्रोटीन्स पुन रक्त प्रवाह मे चले जाते हैं।

3. लसीकीय नोड्स बेक्टीरिअल सक्रमण और हानिकारक पदार्थो को लिम्फ मे से फिल्टर करते है।

4. परिसचरण के लिये लसीकीय नोड्स नये लिम्फोसाइट्स का निर्माण करते हैं।

5 उदरीय अगो मे स्थित लसीकीय वाहिकाएँ पचे हुए भोजन के शोषण मे सहायता करती है, विशेषरूप से वसायुक्त।

लसीकीय परिसंचरण की क्रिया-विधि
(The Mechanism of Lymphatic Circulation)

लसीकीय परिसचरण अशत चूषण और अशत दवाव के द्वारा बना रहता है। चूषण बहुत महत्वपूर्ण पहलू है। लसिकाएँ हृदय तक जाने वाली बडी शिराओ मे खाली होती है और जैसे ही हृदय फैलता है, चूषण के कारण यहाँ निगेटिव दवाव हो जाता है। प्रश्वसन की क्रिया के दौरान वक्ष की तरफ भी चूषण होता है।

पेशियो के सकुचन द्वारा लसिकाओ पर भी उसी प्रकार दवाव पडता है जैसा शिराओ पर। यह वाहरी दवाव लिम्फ को ऊपर की ओर प्रवाहित करता है क्योकि वाल्व्स विपरीत बहाव को रोक देते है। केशिकाओ मे ताजे द्रव के निरतर प्रवाह के कारण ऊतको मे उपस्थित द्रव मे भी मामूली दवाव पडता है। यदि लसीकीय तत्र मे से लिम्फ के बहाव मे अवरोधन है तो ईडीमा हो जाता है, अर्थात ऊतको मे अधिक द्रव एकत्रित हो जाने के कारण ऊतको की सूजन होना। यह स्थिति शिराओ के किसी अवरोधन के फलस्वरूप भी हो सकती है, क्योकि शिराएँ भी ऊतको से द्रव का निकास करती है।

प्लीहा (Spleen)

प्लीहा लसीकीय ऊतक की एक बडी नोड्यूल है। कार्य के मान मे यह रक्त-परिसचरण तत्र का ही भाग है, जिस प्रकार कि लसीकीय नोड्स। यह गहरे बैगनी-लाल रग की होती है तथा आमाशय के पीछे उदर के पिछले भाग मे बायी तरफ कुछ

ऊँचे स्थित रहती है। यह तन्तुमय कैप्स्यूल मे बन्द रहती है, तथा तन्तुमय डोरियाँ सपूर्ण ग्रन्थि के आसपास सहारेयुक्त जाल बनाती है। इस जाल के बीच की जगह लुगदी जैसे पदार्थ (Pulp) से भरी रहती है जिसे स्प्लीनिक पल्प कहते हैं। यह इस अग का मुख्य पदार्थ है जिसमे विभिन्न प्रकार की कोशिकाएँ रहती है। इनमे से कई रक्त और लिम्फ नोड्स के लिम्फोसाइट्स के समान होती है, और ये रक्त प्रवाह के लिये ताजे सफेद रक्ताणुओ के निर्माण मे सहायता करती है। अन्य कोशिकाएँ फैगोसाइट्स या भक्षक कोशिकाएँ होती है जो टूटने वाले लाल रक्ताणुओ का भक्षण करके उन्हें विघटित कर देती है।

प्लीहा के कार्य पूर्ण रूप मे ज्ञात नही है, लेकिन इसके कार्य निम्न माने जाते हैं

1 यह रक्त प्रवाह के लिये ताजे लिम्फोसाइट्स का स्रोत है।

2 यह लाल रक्ताणुओ के क्षयकरण का एक स्थान है।
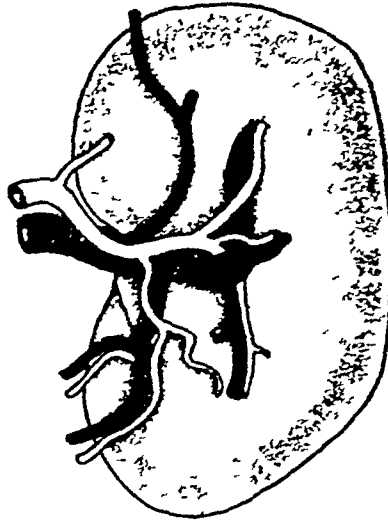
चित्र 119—प्लीहा और उसकी रक्तवाहिकाएँ।

ऐसा भी सोचा जाता है कि सक्रमण के विरुद्ध लडने मे प्लीहा सहायता करती है, क्योकि जब कुछ बीमारियो, जैसे मलेरिया एव टाइफॉइड बुखार मे रक्त सक्रमित हो जाता है, तब यह बढ जाती है। सभवत यह सक्रमण के विरुद्ध लडने के लिये एन्टिबॉडीज के निर्माण मे सहायता करती है। जीवन के लिए यह अत्यावश्यक नही है और जब इसकी वजह से अस्वस्थता रहती है, उदाहरणार्थ हीमोलाइटिक एनीमिआ मे तब इसे ऑपरेशन द्वारा निकाला जा सकता है।

16. श्वसनीय तंत्र
The Respiratory System

सभी जीवित कोशिकाओं को चयापचय के लिये ऑक्सीजन की निरंतर पूर्ति की आवश्यकता होती है। ऑक्सीजन वायु में रहती है, और श्वसनीय तन्त्र इस प्रकार से बना होता है कि वायु को फुप्फुसों में लिया जा सके, जहाँ कि कुछ ऑक्सीजन शरीर में उपयोग के लिये ले ली जाती है और उसी समय कार्बन डाइऑक्साइड व पानी की वाष्प छोड़ दी जाती है। श्वसनीय तन्त्र के अंग निम्नलिखित हैं

1	नासिका	फुप्फुसों तक जाते हैं
2	ग्रसनी	
3	कंठ (स्वर-यंत्र)	
4	श्वास नाल	
5.	श्वास नलिकाएँ	फुप्फुसों में रहते हैं
6.	ब्रॉन्किओल्स	
7.	एल्विओलर नलिकाएँ व एल्विओलाइ	
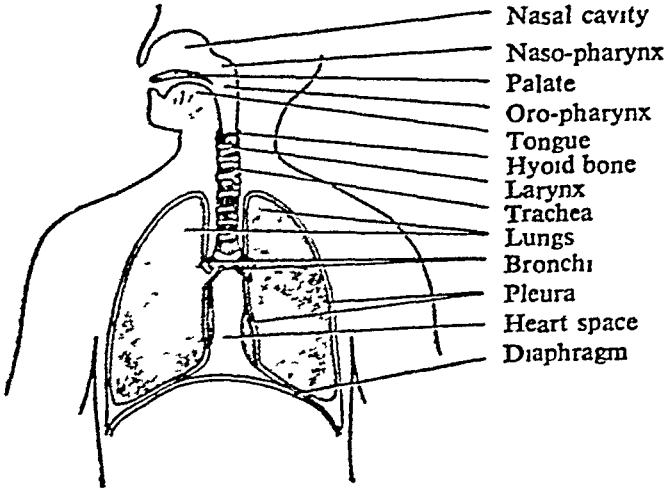
चित्र 120—श्वसनीय मार्ग का रेखाचित्र।

नासिका (Nose)

बाह्य नासिका, नाक का दृश्य भाग है जो दो नासिका अस्थियों और उपास्थि द्वारा बनती है। यह दोनों तरफ से त्वचा द्वारा ढँकी रहती है तथा अन्दर की तरफ

बाल रहते है जो बाह्य पदार्थों को नासिका के अन्दर जाने से रोकने मे सहायता करते हैं। नासिका गुहिका पट द्वारा विभक्त एक बड़ी गुहिका है। अग्र नासिका-छिद्र वे छिद्र हैं जो बाहर से अन्दर की ओर हवा ले जाते है तथा पश्च नासिका-छिद्र पीछे की ओर स्थित रहते है एव फैरिन्क्स तक हवा ले जाते हैं। नासिका का ऊपरी भाग खोपड़ी के आधार पर स्थित एथ्मॉइड अस्थि द्वारा बनता है और निचला भाग मुँह के ऊपरी भाग पर स्थित कड़े एव नरम तालुओ द्वारा बनता है। गुहिका की पार्श्वीय दीवारें मेक्जिला, एथ्मॉइड अस्थि के ऊपरी एवं मध्य नेज़ल कोन्की और निचले कोन्का द्वारा बनती हैं। गुहिका को विभक्त करने वाले पट का पिछला भाग एथ्मॉइड अस्थि की समकोणिक पट्टी एव वोमर अस्थि के द्वारा बनता है जबकि अगला भाग उपास्थि का बना होता है।

तीनो नेज़ल कोन्की नासिका गुहिका मे दोनो तरफ उभरे रहते हैं और नासिका के अन्दर सतह क्षेत्र को बहुत बड़ा देते हैं। पूरी नासिका गुहिका रोमयुक्त श्लेष्मिक झिल्ली से ढँकी रहती है। इसको काफी रक्त मिलता है क्योंकि इसमे बहुत ज्यादा केशिकाओ होती हैं। जैसे ही वायुमण्डलीय हवा एपिथीलिअम पर से गुजरती है वैसे ही वह गरम हो जाती है। श्लेष्मा वायु को नम करके धूल के कुछ कणो को रोक लेता है तथा रोम जैसी रचनाएँ श्लेष्मा को निगलने या खाँसी के साथ बाहर निकालने के लिये ग्रसनी में पहुँचा देती हैं। गंध के सवेदन के स्नायु-अतसिरे एथ्मॉइड अस्थि की छलनीयुक्त पट्टी (Cribriform plate) के चारो ओर नासिका गुहिका मे सबसे अधिक ऊँचाई पर स्थित रहते हैं।

नासिका गुहिका के आसपास की कुछ अस्थियाँ खोखली होती हैं। अस्थियो के इन खोखले स्थानो को **पैरानेजल साइनसस** कहते है, जो अस्थियो को हलका करते हैं और आवाज़ को गुंजाने के लिये ध्वनि कोष्ठो का कार्य करते है। मेक्जिलरी साइनस नेत्रगुहिका के नीचे स्थित रहता है और नाक की पार्श्वीय दीवार मे से खुलता है। फ्रन्टल साइनस नेत्रगुहिका के ऊपर फ्रन्टल अस्थि की मध्यरेखा की तरफ स्थित रहता है। एथ्मॉइड साइनसेस कई होते है और नाक से नेत्रगुहिका को पृथक करने वाले एथ्मॉइड अस्थि के भाग मे स्थित रहते हैं। स्फीनॉइडल साइनस स्फीनॉइड अस्थि के मुख्य भाग मे स्थित रहता है। सभी पैरानेजल साइनसस श्लेष्मिक झिल्ली से ढँके रहते हैं और सभी नासिका गुहिका मे खुलते है, जिनके द्वारा ये सक्रमित हो सकते है।

ग्रसनी (Pharynx)

ग्रसनी का ऊपरी भाग स्फीनॉइड अस्थि के मुख्य भाग द्वारा बनता है तथा नीचे का भाग आहार नलिका के साथ मिला रहता है। ग्रसनी के पीछे की ओर ढीला सयोजी ऊतक होता है जो इसे सर्वाइकल कशेरुकाओं से अलग रखता है। ग्रसनी के सामने की दीवार अपूर्ण रहती है तथा ग्रसनी, नासिका, मुह एव कठ से सबधित रहती है। ग्रसनी तीन भागों मे विभाजित रहती है नेज़ो-फैरिन्क्स, जो नाक के पीछे स्थित रहता है

ओरो-फैरिन्क्स जो मुंह के पीछे स्थित रहता है, तथा लैरिन्जिअल फैरिन्क्स जो कंठ के पीछे स्थित रहता है।

चित्र 121—नासिका, मुंह, ग्रसनी एवं कंठ का सजिटल काट।
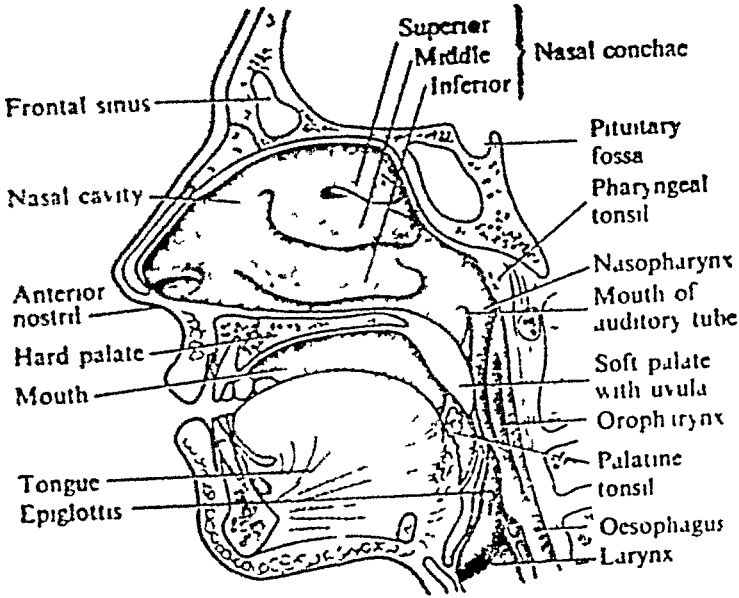
नेज़ो-फैरिन्क्स (Naso pharynx) ग्रसनी का वह भाग है जो नरम तालु की रेखा से ऊपर नासिका के पीछे स्थित रहता है। इसकी पिछली दीवार पर लिम्फॉइड ऊतक के उभार होते है जिन्हे फैरिन्जिअल टॉन्सिल्स या सामान्यत **एडीनॉइड्स** कहा जाता है। कभी-कभी यह ऊतक बढकर ग्रसनी मे रुकावट पैदा कर देता है जिससे बच्चे मुंह से सास लेने लगते है। श्रवण-नलियाँ (Auditory tubes) नेजो-फैरिन्क्स की पार्श्वीय दीवारो मे खुलती है और इनमे से वायु मध्य कान तक पहुँचती है। नेजो-फैरिन्क्स रोमयुक्त श्लेष्मिक झिल्ली मे ढँका रहता है जो नाक के अन्तर के साथ मिली रहती है।

ओरो-फैरिन्क्स (Oro-pharynx) मुंह के पीछे नरम तालु की रेखा से नीचे स्थित रहता है, इसकी पार्श्वीय दीवारें नरम तालु के साथ मिली रहती है। इन दीवारो की तहो (Folds) के बीच (जिन्हें पैलेटो-ग्लॉसल आर्चेस कहते हैं) लिम्फॉइड ऊतक के उभार रहते है, इन्हें पैलेटाइन टॉन्सिल्स कहा जाता है। ओरो-फैरिन्क्स श्वसनीय एव आहार मार्ग दोनो का ही भाग है, लेकिन निगलने और श्वसन के लिये एकसाथ इसका उपयोग नही किया जा सकता। निगलने की क्रिया के दौरान श्वसन-क्रिया क्षणिक रूप से बद हो जाती है क्योंकि नरम तालु के उठने से नेजो-फैरिन्क्स का सबध ओरो-फैरिन्क्स से नही रह जाता। ओरो-फैरिन्क्स स्ट्रेटिफाइड एपिथीलिअम द्वारा ढँका रहता है।

कंठ (स्वर-यंत्र) (The Larynx)

कंठ ऊपर की ओर ओरो-फैरिन्क्स एवं नीचे की ओर श्वास-नाल के साथ मिला रहता है। इसके ऊपर हाइऑएड अस्थि एवं जबान का निचला भाग रहता है। लैरिन्क्स के सामने गर्दन की पेशियाँ तथा पीछे लेरिन्गो-फैरिन्क्स एव सर्वाइकल वर्टिब्री रहते हैं। इसके दोनो तरफ थाइरॉइड ग्रन्थि के खड रहते हैं। यह कई असमाकृति उपास्थियो का बना होता है जो आपस मे लिगेमिन्टस एव झिल्लियो के द्वारा जुड़ी रहती है।

थाइरॉइड उपास्थि (Thyroid cartilage) उपास्थि के दो चपटे टुकडो की बनी होती है जो सामने की ओर आपस मे जुडकर लैरिन्जिअल उभार या एडम्स एपल बनाती है। इस उभार के ऊपर एक गड्ढा (Notch) होता है जिसे थाइरॉइड नॉच कहते हैं। थाइरॉइड उपास्थि स्त्रियो की अपेक्षा पुरुषो मे बडी होती है। ऊपरी भाग स्ट्रेटिफाइड एपिथीलिअम और निचला भाग सिलिएटेड एपिथीलिअम से ढँका रहता है।
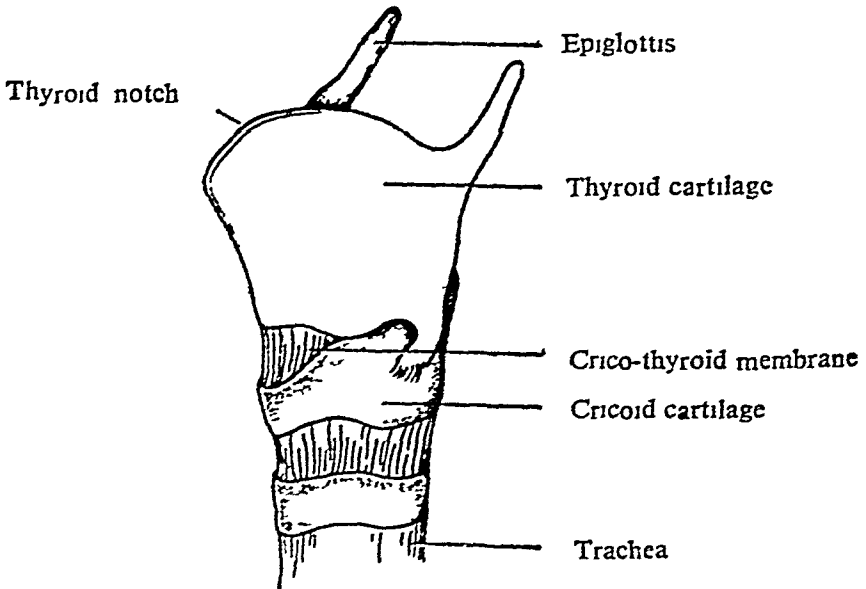
चित्र 122—लैरिन्जिअल उपास्थियाँ।

क्रिकॉइड उपास्थि (Cricoid cartilage), यह थाइरॉइड उपास्थि के नीचे स्थित रहती है तथा इसकी आकृति मुहरवाली अगूठी के समान होती है जिसका चौडा भाग पीछे की ओर रहता है। यह कठ की बाजू की एव पिछली दीवारें बनाती है तथा सिलिएटेड (रोमयुक्त) एपिथीलिअम के द्वारा ढँकी रहती है।

एपिग्लॉटिस (Epiglottis) पत्ती के आकार की उपास्थि है जो थाइरॉइड नॉच के ठीक नीचे थाइरॉइड उपास्थि की अग्र दीवार के अन्दर की तरफ से जुडी रहती है। निगलने की क्रिया के दौरान कठ ऊपर एव आगे की ओर घूमता है जिससे इसका छिद्र एपिग्लॉटिस द्वारा अवरुद्ध हो जाता है।

Vocal ligaments resting
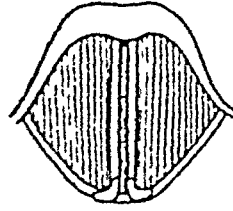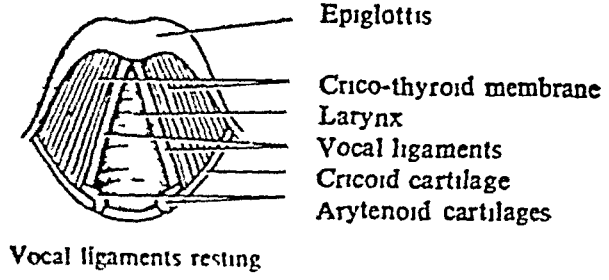
Vocal ligaments during speech

चित्र 123–वोकल लिगमेन्ट्स का रेखाचित्र।

ऐरिटीनॉइड उपास्थियां (Arytenoid cartilages) छोटे-छोटे पिरामिड्स के जोड हैं जो हाएलिन उपास्थि के बने होते हैं। ये क्रिकॉइड उपास्थि के चौडे भाग के ऊपर स्थित रहती हैं तथा इनसे वोकल लिगॅमेन्टस जुडे रहते हैं। ये कंठ की पिछली दीवार बनाती हैं।

हाइऑएड अस्थि और लैरिन्जिअल उपास्थियाँ आपस मे लिगॅमेन्ट्स एव झिल्लियो द्वारा जुडी रहती हैं। इनमे से एक, *क्रिकोथाइरॉइड झिल्ली* क्रिकॉइड उपास्थि के ऊपरी किनार के चारो ओर जुडी होती है तथा इसकी ऊपरी किनार स्वतत्र होती है। यह निचली किनार के समान गोलाकार नही होती, लेकिन दो समानान्तर रेखाएँ बनाती हैं जो सामने से पीछे की ओर फैली रहती हैं। ये दो समानान्तर किनारे *वोकल लिगॅमेन्ट्स* है। ये सामने की ओर थाइरॉइड उपास्थि के मध्य भाग से तथा पीछे की ओर एरिटीनॉइड उपास्थि से जुडे होते है, इनमे लचीले ऊतक अधिक रहते है। जब कंठ की अन्तःस्थ पेशियाँ एरिटीनॉइड उपास्थियो की स्थिति परिवर्तित करती है तब वोकल लिगॅमेन्टस पास-पास खिचते हैं और इनके बीच की जगह सकरी हो जाती हैं। यदि निःश्वसन के दौरान इस सकरी जगह (जिसे दरार कहते हैं) मे से वायु वेगपूर्वक निकलती है तो वोकल लिगॅमेन्ट्स कम्पित होते है और आवाज पैदा करते है। निर्मित आवाज का तारत्व (स्वरमान-Pitch) लिगॅमेन्ट्स की लम्बाई और तनाव पर निर्भर रहता है, बढ़ा हुआ तनाव ऊँचा स्वर, तथा कम तनाव हलका स्वर पैदा करता है। जोर की आवाज इस बात पर निर्भर करती है कि हवा कितनी ताकत से निःश्वसित की गई है। विभिन्न शब्दो के रूप मे आवाज का परिवर्तन मुँह, जबान, ओठ एव चेहरे की पेशियो की हलचलो पर निर्भर रहता है।

श्वास-नाल (Trachea)

श्वास-नाल कंठ के नीचे से आरम्भ होकर गर्दन के सामने से वक्ष में जाता है। यह पाँचवें थॉरेसिक वर्टिब्रा की रेखा में दाहिनी और बायीं श्वास-नलिकाओं में विभाजित होता है। यह करीब 12 सेमी लम्बा होता है। श्वास-नाल के ऊपरी भाग के सामने से थाइरॉइड ग्रन्थि का इस्थ्मस क्रॉस होता है, और महाधमनी का आर्च निचले भाग के सामने स्थित रहता है, इसके साथ स्टर्नम का मैन्यूब्रिअम भी सामने की ओर रहता है। आहार नलिका श्वास-नाल के पीछे स्थित रहती है जो इसे थॉरेसिक वर्टिब्री के मुख्य भाग से पृथक् रखती है। श्वास-नाल के दोनों तरफ फुप्फुस रहते हैं जिनके ऊपर थाइरॉइड ग्रंथि के खंड स्थित रहते हैं। श्वास-नाल की दीवार अनैच्छिक पेशी एवं तन्तुमय ऊतक की बनी होती है और इसे हाएलिन उपास्थि के अपूर्ण छल्ले सहारा देते हैं। हाएलिन उपास्थि के छल्लों की यह अपूर्णता पीछे की ओर होती है जहाँ श्वास-नाल आहार नलिका के सम्पर्क में रहता है। जब भोजन का कौर निगला जाता है तब आहार नलिका बिना किसी बाधा के फैलने में सक्षम रहती है, लेकिन उपास्थि वायुमार्ग को खुला रखती है। श्वास-नाल में सिलिएटेड एपिथीलिअम का अस्तर रहता है जिसमें गॉब्लेट कोशिकाएँ रहती हैं जो श्लेष्मा स्रावित करती हैं। एपिथीलिअम के सिलिया श्लेष्मा एवं बाहरी कणों को ऊपर कंठ की ओर पहुँचाते हैं।

फुप्फुस (The Lungs)

फुप्फुस दो बड़े, स्पंजी अंग हैं जो हृदय एवं बड़ी रक्तवाहिकाओं के दोनों तरफ वक्ष में स्थित रहते हैं। ये गर्दन के निचले भाग से डायफ्राम तक फैले होते हैं तथा मोटे रूप से शंकु-आकार होते हैं जिनका शिखर ऊपर एवं आधार नीचे की ओर रहता है। फुप्फुसों के सामने पसलियाँ, कॉस्टल उपास्थियाँ एवं इन्टरकॉस्टल पेशियाँ तथा पीछे की ओर पसलियाँ, इन्टरकॉस्टल पेशियाँ एवं थॉरेसिक वर्टिब्री की ट्रान्सवर्स प्रोसेसेस रहती हैं। फुप्फुसों के बीच *मीडिएस्टाइनम* (मध्यस्थानिका) रहता है, यह ऊतक का एक ब्लॉक है जो वक्षीय गुहिका के एक हिस्से को दूसरे से पूर्णतः पृथक रखता है तथा पीछे की ओर वर्टिब्री से सामने की ओर स्टर्नम तक फैला रहता है। मीडिएस्टाइनम के अन्दर हृदय एवं बड़ी रक्तवाहिकाएँ, श्वास-नाल एवं आहार नलिका, थॉरेसिक डक्ट (वक्षीय नलिका) तथा थाइमस ग्रन्थि रहती है। फुप्फुस खंडों में विभाजित रहते हैं। बायें फुप्फुस में दो खंड होते हैं जो तिरछी दरार द्वारा पृथक रहते हैं। ऊपरी खंड निचले खंड के ऊपर एवं सामने की ओर रहता है। निचला खंड शंकु-आकार होता है। दाहिने फुप्फुस में तीन खंड रहते हैं। बायें निचले खंड के समान ही इसका निचला खंड भी तिरछी दरार द्वारा पृथक रहता है। फुप्फुस का बाकी बचा हुआ भाग आड़ी दरार के द्वारा ऊपरी एवं मध्य खंड में विभक्त रहता है। प्रत्येक खंड फिर छोटे-छोटे खंडों में विभाजित रहता है जिन्हें ब्रॉन्को-पल्मोनरि खंड कहा जाता है और जिनके अलग अलग नाम हैं। ये खंड संयोजी ऊतक की दीवार द्वारा

एक दूसरे से पृथक रहते हैं, और प्रत्येक मे धमनी तथा शिरा होती है। प्रत्येक छोटा खंड भी कई छोटी-छोटी इकाइयो मे विभक्त रहता है जिन्हे लोब्यूल्म कहते हैं।
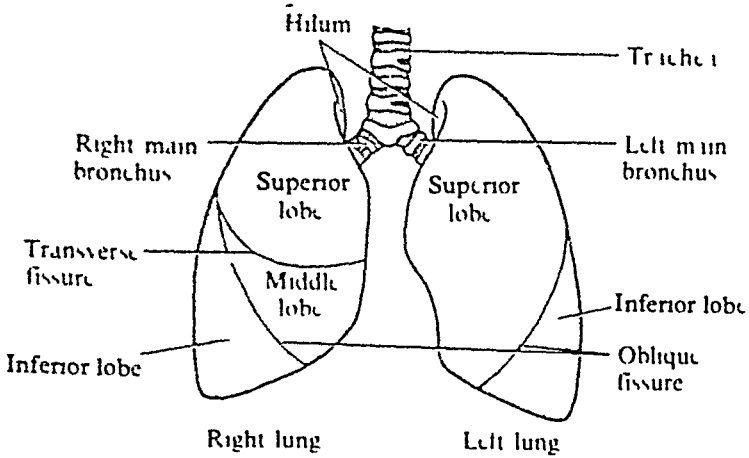
चित्र 124–फुप्फुमो के खड दर्शाते हुए रेखाचित्र।

श्वास नलिकाएँ (The Bronchi)

दो मुख्य श्वास नलिकाएँ श्वास-नाल के विभाजन के स्थान से आरभ होती हैं तथा एक-एक प्रत्येक फुप्फुस में जाती है। बायीं मुख्य श्वास नलिका दाहिनी मुख्य श्वास नलिका की अपेक्षा सकरी, लम्बी एव अधिक आडी रहती है क्योकि हृदय मध्य रेखा के कुछ बायी ओर स्थित रहता है। प्रत्येक मुख्य श्वास नलिका कई शाखाओ मे विभाजित होती है और प्रत्येक खड में एक-एक शाखा पहुँचती है। बाद मे हरेक शाखा खड के प्रत्येक छोटे-छोटे ब्रॉन्को-पल्मोनरी खड में पहुँचने के लिए छोटी-छोटी शाखाओ में विभाजित होती है और पुन छोटी नलिकाओं में विभाजित होकर फुप्फुस के पदार्थ में पहुँचती है। इन श्वास नलिकाओं की रचना श्वास नाल के समान ही होती है लेकिन इसमें उपास्थि श्वासनाल के तुल्य नही होती।

ब्रॉन्किओल्स (Bronchioles)

बहुत पतली श्वास-नलिकाओं को ब्रॉन्किओल्स कहते है। इनमें उपास्थि नही रहती है लेकिन ये पेशीय, तन्तुमय एव लचीले ऊतक की बनी होती है। इनमे क्यूबॉइड एपिथीलिअम का अस्तर रहता है। जैसे-जैसे ब्रॉन्किओल्स छोटे होते जाते है वैसे-वैसे पेशीय एव तन्तुमय ऊतक समाप्त होते जाते हैं और बहुत ही छोटी नलिकाएँ, जिन्हें टर्मिनल ब्रॉन्किओल्स कहते है, बन जाती हैं। ये चपटी एपिथीलिअल कोशिकाओ की एक तह की बनी होती हैं।

एल्विओलर नलिकाएँ और एल्विओलाइ (Alveolar ducts and Alveoli) :

टर्मिनल ब्रॉन्किओल्स कई बार कई शाखाओ मे विभाजित होकर छोटे-छोटे मार्ग वनाती है जिन्हें एल्विओलर नलिकाएँ कहते हैं जिनसे एल्विओलर थैलिया एव एल्विओलाइ वनते है। एल्विओलाइ केशिकाओ के जाल से घिरे रहते है। अ-आक्सीजनीकृत रक्त फुप्फुमीय धमनी से केशिकीय जाल मे प्रविष्ट होता है तथा आक्सीजिनेटेड रक्त इसमे निकलकर फुप्फुसीय शिराओ मे प्रविष्ट होता है। यह केशिकीय जाल ही है जहाँ एल्विओलाइ मे उपस्थित वायु और वाहिकाओ मे उपस्थित रक्त के वीच गैसो का आदान-प्रदान होता है।
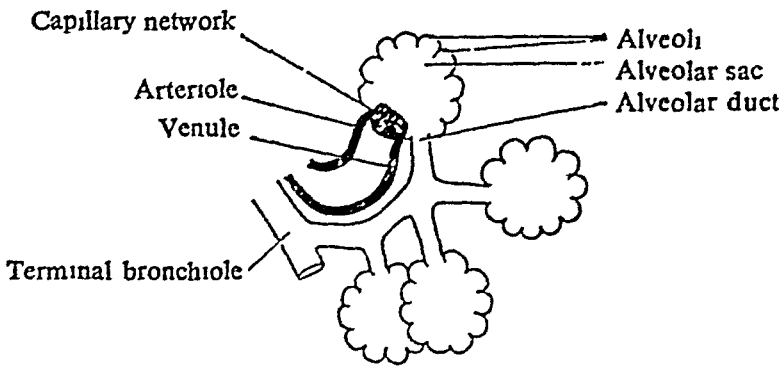
चित्र 125–एल्विओलाइ का रेखाचित्र।

फुप्फुस का हाइलम् (The Hilum of the Lung)

हाइलम् फुप्फुस की अवतल मीडिअल सतह पर त्रिकोणाकार गड्ढे को कहते हैं। जो रचनाएँ फुप्फुस की जड वनाती हैं वे हाइलम से प्रविष्ट होती और वाहर नकलती है। हाइलम् पाँचवें से सातवें थॉरेसिक वर्टिब्री के स्तर पर रहता है। हाइलम् से प्रविष्ट होने वाली रचनाओ के अन्तर्गत मुख्य श्वास नलिका, फुप्फुसीय धमनी, ब्रॉन्किअल धमनी एव वेगस स्नायु की शाखाएँ जो इस स्थान पर प्रविष्ट होती है, दो फुप्फुसीय शिराएँ, ब्रॉन्किअल शिराएँ, एव लसीकीय वाहिकाएँ फुप्फुस की जड के स्थान मे निकलती हैं, सम्मिलित है। फुप्फुस की जड के आसपास कई लिम्फ नोड्स भी रहते हैं।

प्लुरा (The Pleura)

प्लुरा एक सीरम झिल्ली है जो प्रत्येक फुप्फुस को घेरे रहती है। यह आधारीय झिल्ली पर स्थित चपटी एपिथीलिअम कोशिकाओ की वनी होती है तथा इसमें दो तहें रहती हैं। विसरल (Visceral) प्लुरा फुप्फुसो से पक्का जुडा होता है और फुप्फुसो की सतहो को ढँके रखता है और अन्तखण्डीय दरारो के अन्दर तक स्थित रहता है। फुप्फुसो की जड के स्थान से विसरल तह पुन परावर्तित होकर पॅराइटल (Parietal) तह वन जाती है। यह तह वक्षीय दीवार

का अस्तर बनाती है और डायफ्राम की ऊपरी सतह को ढके रखती है । सामान्यत प्लुरा की दोनो तहें एक दूसरे के सम्पर्क मे रहती है तथा सिर्फ सीरस द्रव की पतली फिल्म द्वारा पृथक् रहती है जिससे ये एक दूसरे के ऊपर बिना किसी घर्षण के फिसलती है । दोनो तहो के बीच की इस कार्यक्षम जगह को प्लुरल गुहिका कहते है ।
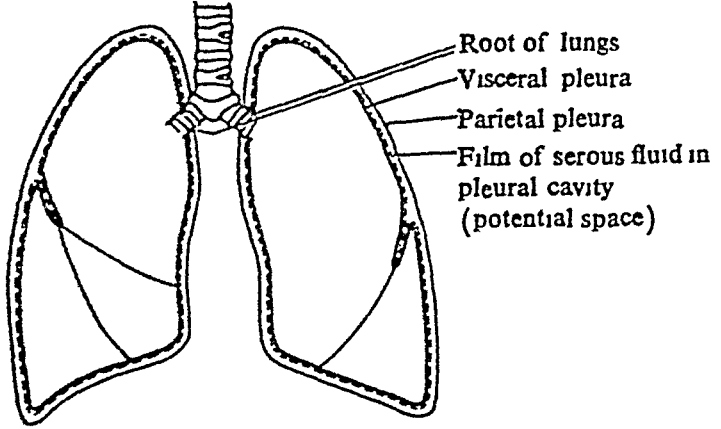
चित्र 126—प्लुरा का रेखाचित्र ।

गैसिअँस आदान-प्रदान (Gaeous Exchange)

शरीर के अन्दर गैसो का आदान-प्रदान फुप्फुमो मे, जिसे वाह्य श्वसन कहते हैं, तथा ऊतको मे, जिसे आन्तरिक श्वसन कहते हैं, दोनो स्थानो पर होता है। गैसो के सबंध मे भौतिकी के प्रारम्भिक नियम के अनुसार गैसें उच्च दवाव से कम दवाव की ओर विसरित होती हैं । श्वास के साथ अन्दर ली हुई वायु मे कई गैसें रहती हैं । प्रश्वसित वायु की संरचना निम्न है

नाइट्रोजन, 79 प्रतिशत
ऑक्सीजन, 21 प्रतिशत
कार्बन डाइऑक्साइड, 0 04 प्रतिशत
पानी की वाष्प
अन्य गैसें, बहुत कम मात्रा मे ।

बाह्य श्वसन (External respiration) जव प्रश्वसित वायु एल्विओलाइ मे पहुंचती है तव यह आसपास के केशिकीय जाल मे उपस्थित रक्त के नजदीकी सम्पर्क मे रहती है । 100 मि मी मरक्यूरी के दवाव पर एल्विओलाई मे उपस्थित ऑक्सीजन 40 मि. मी मरक्यूरी के दवाव पर शिरीय रक्त मे उपस्थित ऑक्सीजन के सम्पर्क मे आती है । इसलिये जव तक दोनो दवाव वरावर नही हो जाते, गैस रक्त मे विसरित होती है । इसी समय रक्त मे उपस्थित कार्वन-डाइऑक्साइड 46 मि मी मरक्यूरी के दवाव पर एल्विओलर-कार्वन-डाइऑक्साइड के सम्पर्क मे

40 मि मी मरक्यूरी के दबाव पर आती है और इसलिए गैस रक्त के बाहर विसरित होकर एल्विओलाइ में आ जाती है। इसलिये नि श्वसित वायु की गैसीय संरचना परिवर्तित हो जाती है, अर्थात् इसमें ऑक्सीजन कम और कार्बन डाइआक्साइड ज्यादा रहती है। नाइट्रोजन मात्रा बराबर रहती है। नि श्वसित वायु की संरचना निम्न है

नाइट्रोजन, 79 प्रतिशत
ऑक्सीजन, 16 प्रतिशत
कार्बन डाइऑक्साइड, 4 5 प्रतिशत
पानी की वाष्प
अन्य गैसें बहुत कम मात्रा में।

आन्तरिक श्वसन (Internal respiration) जो ऑक्सीजन रक्त में विसरित हो चुकी है वह हीमोग्लोबिन द्वारा, जिसे अब ऑक्सीहीमोग्लोबिन कहते हैं, ऊतकों तक चली जाती है। यहाँ ऑक्सीजन का दबाव कम रहता है, इसलिये गैस रक्त के बाहर विसरित होकर ऊतकों में चली जाती है, इसकी मात्रा ऊतकों की सक्रियता पर निर्भर रहती है। इसी समय, ऊतकों में निर्मित कार्बन डाइऑक्साइड रक्त में पहुँच कर इसके द्वारा ऊतक से दूर ले जाई जाती है।
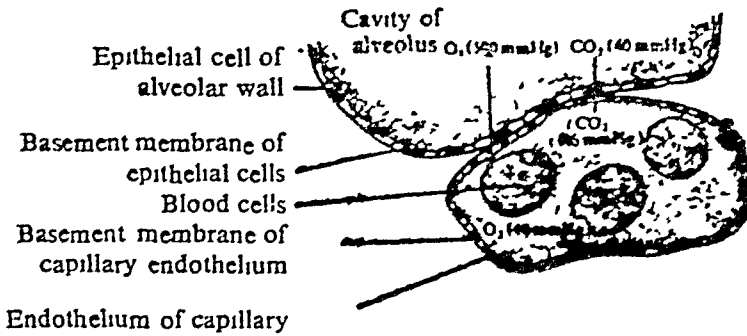
चित्र 127—फुफ्फुसों में गैसीय आदान-प्रदान का रेखाचित्र।

श्वसन की क्रिया-विधि (Mechanism of Respiration)

श्वसन क्रिया दो भागों में होती है—अन्त श्वसन और नि श्वसन। अन्त श्वसन के दौरान डायफ्राम एवं इन्टरकॉस्टल पेशियों की गति के कारण वक्ष फैलता है। जब अन्त श्वसन के दौरान डायफ्राम सकुचित होता है तब वह चपटा होकर नीचे की ओर खिसक जाता है तथा वक्षीय गुहिका की लम्बाई बढ जाती है। एक्सटरनल इन्टरकॉस्टल पेशियाँ सिकुडकर पसलियों को ऊपर उठाकर उन्हें बाहर की ओर खींचती है, इस प्रकार वक्षीय गुहिका की गहराई बढ जाती है। जैसे ही वक्षीय दीवार ऊपर एवं बाहर की ओर उठती है, पॅराइटल प्लुरा जो कि इससे जुडा रहता है, इसके साथ उठता है। विसरल प्लुरा भी पॅराइटल प्लुरा के साथ खिंचता

है और इस प्रकार वक्ष के अन्दर का आयतन बढ़ जाता है । इस खाली स्थान को भरने के लिये फुप्फुस फैलते हैं और वायु श्वास नलिकाओ में चूषित होती है।

शांत श्वसन-क्रिया के दौरान नि श्वसन निष्क्रिय होता है। डायफ्राम शिथिल होकर अपनी सामान्य गुम्दज की आकृति ग्रहण कर लेता है। इन्टरकॉस्टल पेशिया शिथिल हो जाती हैं और पसलियाँ पुन अपनी स्थिति मे आ जाती हैं । फुप्फुस सिकुड जाते है। और वायु श्वास नलिकाओ के द्वारा बाहर निकल जाती है । शक्तिपूर्वक किये गये नि श्वसन के दौरान पसलियो को नीचे की ओर लाने के लिये आन्तरिक इन्टरकॉस्टल पेशियाँ सक्रिय रूप से सकुचित होती है। गहरी श्वसन-क्रिया के दौरान या जब वायुमार्ग अवरुद्ध हो जाता है तब श्वसन-क्रिया की सहायक पेशियाँ उपयोग मे आ सकती है । ऐसे अन्त श्वसन के दौरान स्टरनोक्लीडोमैस्टॉइड पेशियाँ स्टर्नम को उठाकर सामने से पीछे तक वक्ष-स्थल का डाइमीटर बढा देती हैं । जब भुजा स्थिर रहती है तब सीरेटस एन्टीरिअर एव पेक्टोरेलिस मेजर पेशिया पसलियो को बाहर की ओर खींचती है । लैटिसिमस डॉर्सी एव अग्र उदरीय दीवार की पेशियाँ शक्तिपूर्वक किये गये नि श्वसन के दौरान वक्ष-स्थल को दबाने मे सहायता करती हैं ।

श्वसन-क्रिया का नियंत्रण (Control of respiration) :

मेड्यूला ऑब्लॉन्गैटा मे स्थित श्वसनीय केन्द्र द्वारा श्वसन-क्रिया नियंत्रित रहती है । रक्त मे कार्बन डाइऑक्साइड के सचित हो जाने पर बडी धमनियो की विशिष्ट कोशिकाएँ उत्तेजित होती हैं। वैगस एव ग्लॉसोफैरिन्जिअल स्नायुओ द्वारा आवेग श्वसनीय केन्द्र तक जाते हैं। फ्रेनिक स्नायुओ द्वारा आवश्यक आवेग श्वसनीय केन्द्र से डायफ्राम तक आते हैं । तथा इन्टरकॉस्टल स्नायुओ द्वारा श्वसनीय केन्द्र से इन्टरकॉस्टल पेशियो तक जाते है । ये स्नायु पेशियो को सकुचित करते हैं और इस प्रकार प्रश्वसन होता है।

फुप्फुसों की धारिता (The Capacity of the Lungs)

श्वास आयतन (*Tidal volume*) वायु की वह मात्रा है जो सामान्य शात श्वसन-क्रिया के दौरान अन्दर ली जाती है और बाहर निकाली जाती है (करीब 500 मि लि) । सामान्य नि श्वसन के बाद वेगपूर्वक अन्त श्वसन के दौरान अन्दर ली हुई वायु की मात्रा को *प्रश्वसनीय धारिता* (*Inspiratory capacity*) (करीब 3000 मि ली) कहते हैं। इसमे श्वास आयतन शामिल है । शात नि श्वसन के बाद फुप्फुसो से करीब 1000 मि लि और वायु वेगपूर्वक निकालने की सभावना रहती है । इसे *नि-श्वसनीय आरक्षित आयतन* (*Expiratory reserve volume*) कहते हैं।

गहरे से गहरे नि श्वसन के बाद भी श्वसनीय मार्गो मे वायु का अवशेष आयतन बचा रहता है। इसे *अवशेषीय आयतन* (*Residual volume*) (करीब 1100 मि लि) कहते हैं।

तालिका 12
फुप्फुस की धारिता

<table>
<tr><td>प्रश्वसनीय आरक्षित आयतन 2500 मि. ली.</td><td rowspan="2">प्रश्वसनीय धारिता (3000 मि लि.)</td><td rowspan="3">जीवन-धारिता (4000 मि लि)</td></tr>
<tr><td>श्वास आयतन (500 मि. लि.)</td></tr>
<tr><td>निःश्वसनीय आरक्षित आयतन (1000 मि लि)</td><td></td></tr>
<tr><td>अवशेषीय आयतन (1100 मि लि.)</td><td></td><td></td></tr>
</table>

जीवन-धारिता (Vital capacity) गहरे से गहरे प्रश्वसन के बाद गहरे से गहरा निःश्वसन करने पर निकाला जाने वाला वायु का आयतन है (करीब 4000 मि लि)। श्वसनीय कार्य का महत्वपूर्ण नाप एक सेकण्ड मे शक्तिपूर्वक निःश्वसन द्वारा निःश्वसित वायु की मात्रा है। इसे शक्तिपूर्वक *निःश्वसित आयतन (Forced expiratory Volume)* कहते हैं तथा यह जीवन-धारिता का 75 से 80 प्रतिशत होना चाहिये।

17. पाचन तंत्र
The Digestive System

पाचनतत्र मे वे सभी अंग सम्मिलित हैं जो भोजन को चवाने, निगलने, पचाने और अवशोषित करने के अलावा अधपचे और अनपचे भोजन को वाहर निकालने का भी कार्य करते हैं।

इसमे पाचन नली या आहार नाल और पाचन के सहायक अग होते हैं।

पाचन नली करीव 9 मीटर लम्बी होती है और इसके निम्न भाग हैं.

1 मुह (The mouth)।
2. ग्रसनी (The pharynx)।
3. ग्रास नली (The oesophagus)।
4. आमाशय (The stomach)।
5. छोटी आत (The small intestine)।
6. बडी आत (The large intestine), जो शरीर की सतह पर गुदा (Anus) तक पहुँचती है।

सहायक अग (Accessary organs) हैं :

1 दात (The Teeth)
2 तीन जोडी लार ग्रथियाँ (Salivary glands)
3 यकृत और पित्तनली (Liver & Bile duct) (अध्याय 18 देखिए)
4. अग्न्याशय (Pancreas) (अध्याय 18 देखिए)।

मुँह (The Mouth)

मुह एक गुहा है जो वाह्यरूप से ओठ और गालो से घिरी रहती है तथा ग्रसनी मे जाती है। इसकी छत (ऊपरी भाग) कठोर और कोमल तालू (Hard and soft palate) की वनी होती है। आगे की दो-तिहाई जीभ मुह का तल (निचला भाग) घेरे रहती है। दीवारें गालो की पेशियो से मिलकर वनती हैं। मुह का अस्तर वनाने वाली श्लेष्मिक झिल्ली ओठो की त्वचा और ग्रसनी की श्लेष्मिक झिल्ली से जुडी रहती है। ओठो मे आर्विक्यूलेरिस ऑरिस (Orbicularis oris) पेशिया होती हैं जो मुह को वन्द रखती हैं।

कठोर तालू (*Hard Palate*) पेलेटाइन अस्थियों के भाग और मैक्जिली से मिलकर बनता है। इसकी ऊपरी सतह नासिका गुहा का तल बनाती है। कोमल तालू (*Soft Palate*) कठोर तालू के पिछले किनारे से लटका रहता है और नीचे की ओर मुह और ग्रसनी के नासिका भाग के बीच बढा रहता है। इसका निचला किनारा एक पर्दे की तरह मुह और ग्रसनी के बीच लटका रहता है।
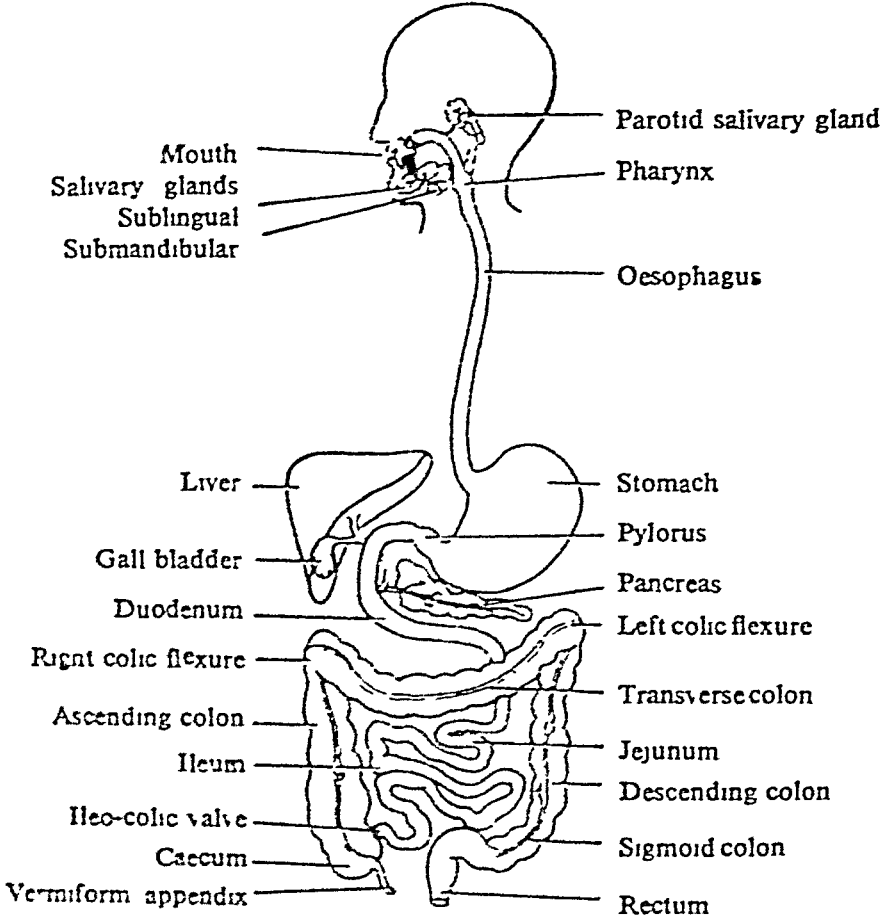
चित्र 128—पाचन तंत्र का रेखाचित्र।

उसमें एक शंकुनुमा उभार यूवुला (*Uvula*) नीचे को लटकता है। श्लेष्मिक झिल्ली की दो मुड़ी हुई पर्तें यूवुला के दोनो ओर नीचे को जाती है जिन्हें पैलेटोग्लॉसल (*Palatoglossal*) और पैलेटोफैरेन्जियल आर्चेस कहते हैं। उनके बीच लसीकाभ ऊतकों के गुच्छे पैलेटाइन टॉन्सिल्स रहते है।

जिव्हा जीभ (The Tongue)

जिव्हा एक पेशीय अंग है जो हाइऑएड अस्थि और मेंडिबल से जुडी रहती है। यह कुछ हिस्सों में परिवर्तित श्लेष्मिक झिल्ली से ढंकी रहती है जिस पर उभार
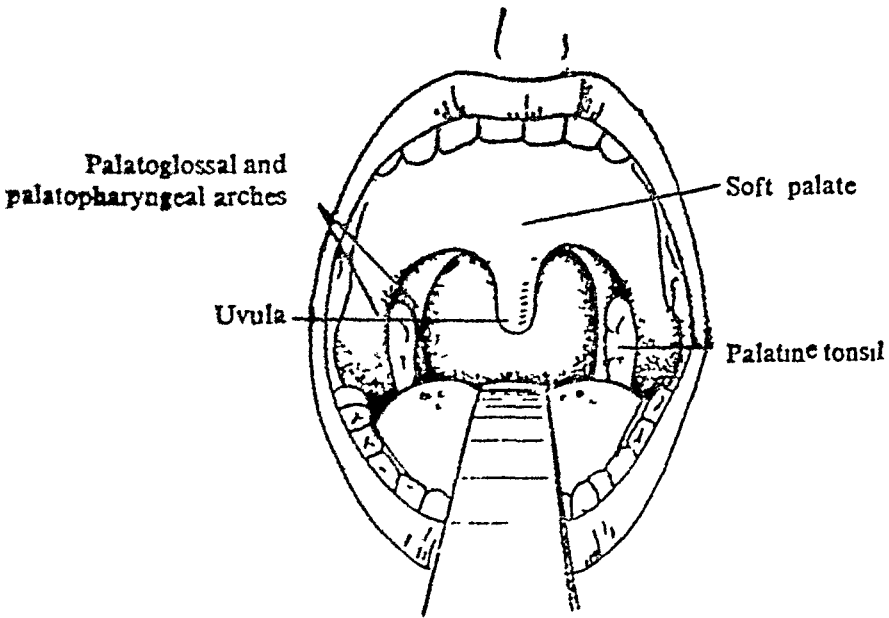
चित्र 129—जीभ को दबाने पर खुले हुए मुंह के अंदर का दृश्य।
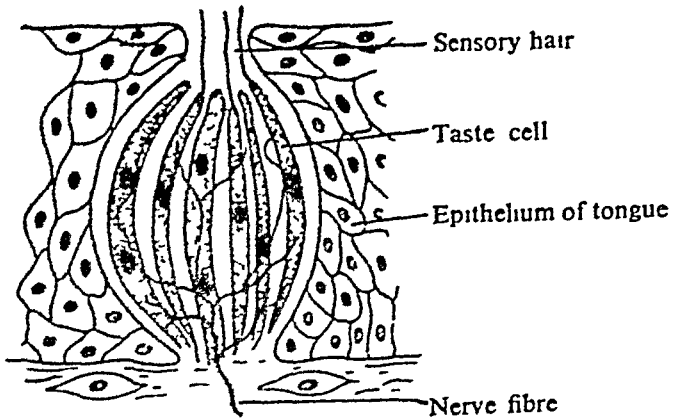
चित्र 130—जीभ की एक स्वाद कलिका।

होते है जिन्हें पैपिली (Papillae) कहते है। इसके अतिरिक्त विशेष क्षेत्र जिन्हे स्वाद कलिकाएं (*Tasti Buds*) कहते हैं पूरी जिन्हा पर काफी मात्रा मे फैले रहते है। जिन्हा के मुक्त भाग के नीचे एक अर्द्धचन्द्राकार श्लेष्मिक झिल्ली होती है। यह जिन्हा की निचली परत से मुह के तल तक फैली होती है और फ्रेनुलम (Frenulum) कहलाती है। जिन्हा के कार्य निम्नानुसार है

1. यह स्वाद का अग है
2. यह भोजन को चबाने मे मदद करती है

3. यह निगलने में मदद करती है।

4 यह बोलने में मदद करती है

दांत (The Teeth)

मनुष्य मे दातों के दो सेट्स होते हैं जो जीवनकाल में विभिन्न अवसरों पर निकलते हैं। पहला सेट दूध के दांत (Deciduous) या प्राथमिक (Primary) दातो का होना है। ये जीवन के पहले या दूसरे वर्ष मे निकलते हैं। दूसरा सेट पहले का स्थान छठवें वर्ष के शुरू मे लेना आरम्भ करता है और यह प्रक्रिया पच्चीसवें वर्ष तक चलती है। चूंकि इन्हें पुन स्थापित नहीं किया जा सकता और यह बुढापे तक रहते हैं इसलिए इन्हें स्थायी (Permanent) दांत कहते हैं।
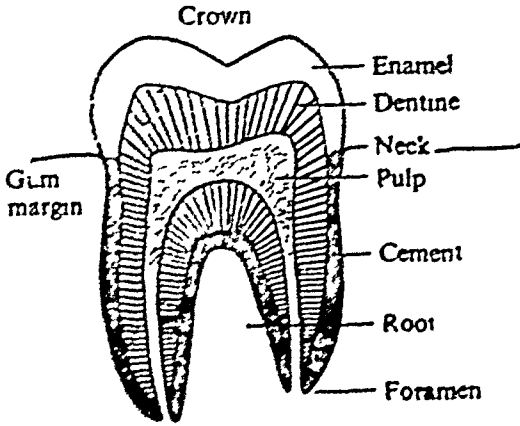
चित्र 131–दांत की रचना दर्शाते हुए खडी काट।

प्रत्येक दात निम्न भागों का बना होता है:

1. क्राउन (*Crown*–दन्तशिखर) जो मसूडो के बाहर निकला होता है।

2. रूट (*Root*–दन्तमूल) जो एक या अधिक शाखाओं मे होते है और जबडे की एलविओलर प्रोसेस मे स्थापित होते हैं।

3. नेक (*Neck*) जहाँ क्राउन तथा रूट मिलते हैं।

दात के बीच का हिस्सा पल्प (*Pulp*) कहलाता है। पल्प के तुरन्त बाद बाहर की ओर पीली-सफेद तह डेन्टीन (*Dentine*) होती है जो दात का मुख्य भाग बनाती है। दात की बाहरी तह दो पर्तों मे बनती है, क्राउन को ढँकने वाला भाग इनेमल कहलाता है। यह कडा होता है। रूट को ढँकने वाली सफेद पर्त सीमेंट (*Cement*) कहलाती है। यह पतली होती है और रचना में अस्थि से मिलती है। पल्प मे रक्तवाहिनियाँ और स्नायु काफी होते हैं जो दात की रूट के सिरे पर मौजूद छिद्र मे से अंदर जाते हैं।

दांत चार प्रकार के होते हैं :

1. इनसाइजर्स (Incisors) दांत जिनके ऊपरी सिरे (क्राउन) छेनी के आकार के होते हैं और भोज्य पदार्थ को काट सकते हैं।
2. कैनाइन्स (Canine) दात जिनके ऊपरी सिरे (क्राउन) नुकीले होते हैं।
3. प्रीमोलर्स (Premolars) या बाइकस्पिड्स (Bicuspids) दात जिसमें खाना चबाने के लिए दो हिस्से (Cusps-दताग्र) होते हैं।
4. मोलर्स (Molars) दात जिनमें भोजन को चबाने के लिए चार या पाच हिस्से (Cusps-दंताग्र) होते हैं।

प्राथमिक या दूध के दात बीस और स्थायी दात बत्तीस होते हैं।

तालिका 13

प्राथमिक दांत (Deciduous Teeth)

	मोलर	कैनाइन	इनसाजर	कैनाइन	मोलर
ऊपरी जबडा	2	1	2 2	1	2
निचला जबडा	2	1	2 2	1	2

स्थायी दांत (Permanent Teeth)

	मोलर	प्रीमोलर	कैनाइन	इनसाइजर	कैनाइन	प्रीमोलर	मोलर
ऊपरी जबडा	3	2	1	2 2	1	2	3
निचला जबडा	3	2	1	2 2	1	2	3

सबसे पहले निकलने वाले दांत निचले बीच के इनसाइजर होते हैं जो आम तौर से 6 से 8 महीने की उम्र मे बाहर आते हैं हालाकि कभी-कभी जन्म के समय भी दिखाई देते हैं। इसके बाद ऊपर के और बगल के इनसाइजर्स निकलते हैं तथा सभी इनसाइजर्स 1 वर्ष की उम्र मे निकल आने चाहिये। दांतो की पूरी सख्या 2 से $2\frac{1}{2}$ वर्ष की उम्र के बच्चो मे दिखाई देती है।

छ वर्ष की उम्र तक प्राय पहला मोलर दांत निकलता है और सब मिलाकर कुल 24 दांत हो जाते हैं। इसके बाद अस्थायी इनसाइजर्स गिर जाते हैं क्योकि उनकी रूट्स सोख ली जाती हैं। उनके नीचे शैशवावस्था और बाल्यावस्था में जबड़े मे धीरे-धीरे बढ रहे स्थायी दांत अब बाहर आते हैं। स्थायी दांतो का

समूह साधारणतया 14 वर्ष की आयु तक पूरा निकल आना चाहिये; इसमें एक दांत अपवाद होता है—तीसरा मोलर (या अकल दाढ़) जो आम तौर से 18 से 25 वर्ष की आयु तक बाहर नहीं आता है। साधारणतया ऊपरी और निचले जबड़े में चबाने वाले दांत बिलकुल आमने सामने नहीं होते। इनमें एक समूह के उभार दूसरे समूह के उभारों के बीच में आते हैं और चबाने की क्रिया अच्छी प्रकार करने में मदद देते हैं। निचले जबड़े के दांत ऊपरी जबड़े के दांतों से थोड़ा सा पीछे होते हैं।

अच्छे दांत के विकास के लिए आवश्यक है कि गर्भावस्था में भावी माताओं और बढ़ती उम्र के बच्चों को ऐसे भोज्य पदार्थ काफी मात्रा में दिये जाने चाहिये जिनमें कैल्सियम तथा विटामिन D अच्छी मात्रा में हो। ये अस्थि निर्माण को प्रभावित करते हैं तथा दूध, अण्डा आदि भोज्य पदार्थों में मिलता है। यह भी आवश्यक है कि शिशु के जबड़ों को स्तन पान द्वारा व्यायाम मिलना चाहिये। इसके बाद उसे थोड़े कड़े पदार्थ खिलाने चाहिये जिससे उसके मसूढ़ों तथा दांतों को पर्याप्त रक्त मिले। विटामिन D अथवा कैल्सियम के अभाव में डेंटाइन ठीक से विकसित नहीं होता और दांत जल्दी सड़ता है। इसी तरह खाने के बाद, माड़ या शर्करा वाले भोज्य पदार्थ दांत में लगे रह जाने के कारण भी दांत जल्दी सड़ सकते हैं। दांत में चिपके अन्न के ये कण जब सड़ते हैं तब वे एक अम्ल बनाते हैं। यह अम्ल दांत के कैल्सियम को घोल देता है और दांत नरम बन जाता है जिससे जीवाणु उसमें प्रवेश कर जाते हैं। व्यायाम की कमी के कारण जब जबड़े ठीक से नहीं बनते तब दांत बहुत पास-पास या अपने स्थान से अलग या एक के ऊपर दूसरा इस तरह निकलते हैं। ऐसा भी हो सकता है कि तीसरे मोलर को निकलने के लिए जगह ही न बचे और वह वहीं अवरुद्ध (Impacted) रह जाय।

सैलिवरी ग्रंथियां (The Salivary Glands)

सैलिवरी ग्रंथियों के तीन जोड़े होते हैं। *पैरोटिड ग्रंथि* सब से बड़ी होती है और कान के ठीक नीचे रहती है। इसकी नलिका करीब 5 से मी लम्बी होती है और मुह में दूसरे ऊपरी मोलर दांत के पास खुलती है। यही वह ग्रन्थि है जोकि आमतौर से मम्प्स नामक बीमारी से प्रभावित होती है। *सबमैंडिबुलर ग्रंथि* और *सबलिंग्वल ग्रंथि* दोनों ही मुह के तल में खुलती हैं। सैलाइवा (लार) का स्रावण प्रतिवर्ती क्रिया के रूप में होता है। मुह में भोजन आते ही या भोजन की अनुभूति होने पर जोकि देखने या गंध से हो सकती है, सैलाइवा स्रावित होने लगता है। सैलाइवा में काफी मात्रा में पानी होता है जो भोजन को नम और मुलायम बनाता है। म्यूकस (Mucus), भोजन में मिलकर उसे चिकना बनाता है ताकि वह ग्रासनली में नीचे जा सके। एंजाइम टायलिन (*Ptyalin*) पके हुए

स्टार्च या कार्बोहाइड्रेट पर क्रिया करता है और उसे माल्टोज और डेक्सट्रिन मे विभाजित करता है। लालाग्रंथि मुह और दांतो को भी साफ करता है और कोमल अगों को चिकना रखता है।

ग्रसनी (The Pharynx)

अच्छी तरह चबाया हुआ और लालाग्रंथि मिला हुआ भोजन जीभ द्वारा पिण्ड के रूप मे बनाया जा कर ओरो-फैरिक्स मे धकेला जाता है। मुलायम तालू ऊपर उठ कर नेजोफैरिक्स को बन्द कर देता है और कंठ (Larynx) ऊपर उठ कर एपिग्लॉटिस से इस तरह मिल जाता है कि एपिग्लॉटिस उसे बन्द कर देती है ताकि अन्न का पिण्ड (Bolus) लैरिंजोफैरिक्स मे से आगे बढकर ग्रासनली मे पहुँच जाता है। निगलने की क्रिया पेशीय समन्वय का बहुत जटिल पर उपयुक्त उदाहरण है और यदि यह समन्वय ठीक नहीं हुआ तो 'दम घुटने' लगेगा।

ग्रासनली (The Oesophagus)

ग्रासनली, ग्रसनी से आमाशय तक पहुँचने वाली 25 से मी लबी पेशीय नली है। यह छठवें सर्विकल वर्टीब्रा के स्तर से शुरू होती है और नीचे को मीडिऐस्टाइनम मे से रीढ के आगे और श्वासनली के पीछे जाती है। यह दसवें थोरेसिक वर्टिब्रा के स्तर पर डायफ्राम को छिद्रित करती है और ग्यारहवें थोरेसिक वर्टिब्रा
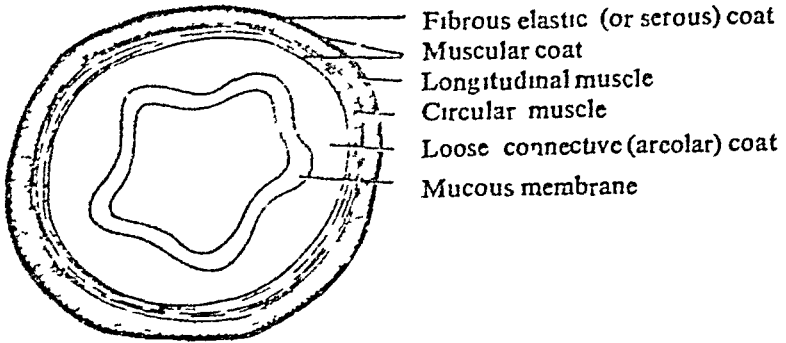
चित्र 132–आहार नाल की आडी काट।

के स्तर पर आमाशय के कार्डिअक सिरे तक पहुँच जाती है। ग्रासनली के ऊपरी सिरे के दोनो ओर उभय कैरोटिड धमनियाँ और थॉयराइड ग्रंथि का कुछ भाग रहता है। ग्रासनली शेष आहार नाल की तरह चार तहो की बनी होती है

1. बाह्य ततुमय तह विरल सयोजी ऊतको की होती है जिसमे कई लचीले ततु भी होते हैं।

2. पेशीय तह की दो परतें होती हैं। वाह्य ततु लम्बाकार होते हैं और भीतरी गोलाकार पेशियो की पर्त होती है।

3. एरिओलर या सबम्यूकस तह म्यूकस और पेशीय तह को जोडती है। उसमे रक्त वाहिकाएँ और स्नायु के साथ-साथ म्यूकस ग्रंथियाँ भी होती हैं।

4. भीतरी अस्तर या म्यूकस मेम्ब्रेन (श्लेष्मिक झिल्ली) जो म्यूकस स्रावित करती है।

ग्रासनली की पेशीय तह का ऊपरी दो तिहाई भाग स्ट्राइप्ड ऐच्छिक पेशियो का बना होता है और निचला एक तिहाई भाग अनस्ट्राइप्ड अनैच्छिक पेशियो का बना होता है। ग्रासनली की स्नायु सपूर्ति वेगस स्नायु से होती है। ग्रासनली से भोजन पेरिस्टॅल्टिक क्रिया द्वारा आगे बढ़ता है। पैरिस्टैलूसिस का अर्थ है पेशीय दीवार मे उत्पन्न सकुचन की लहर जिसके पहले विस्तारण की लहर गई हो। इससे करीब 9 सेकंड मे भोजन ग्रसनी से अमाशय तक पहुँच जाता है।

आमाशय (The Stomach)

आमाशय आहरनाल का सबसे चौडा भाग है। यह ग्रासनलो के अंत और छोटी आँत के शुरु वाले भाग के बीच रहता है। इसका आकार और स्थान उदरगुहा मे होने वाले परिवर्तनो और भोजन के अनुसार बदलता रहता है लेकिन यह डायफ्राम के नीचे ही रहता है, मध्य रेखा से कुछ बाएँ हटकर।
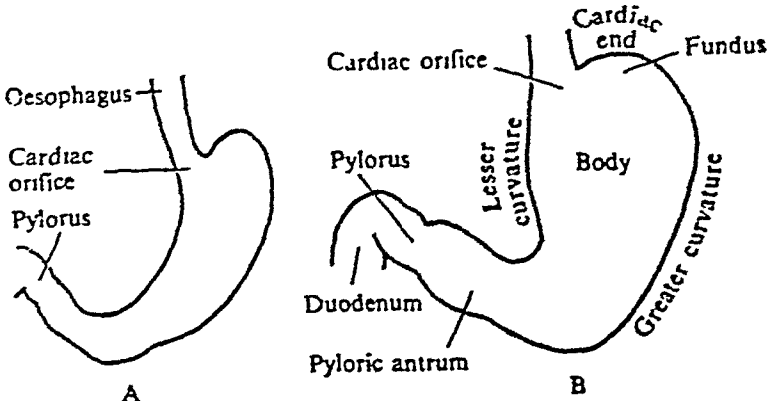
चित्र 132–आमाशय (A) खाली, (B) भरा हुआ।

आमाशय लगभग अंग्रेजी अक्षर 'जे' (J) के आकार का होता है। उसमे दो मोड होते हैं। *छोटा मोड* (*Lesser curvature*) आमाशय का दाहिना या पिछला किनारा बनाता है। *बडा मोड* (*greatre curvature*) आगे को चलता है तथा एक आर्च ऊपर की ओर बनाता है। यह आगे चलकर बायीं ओर आमाशय

का फंड्स (Fundus) भाग बनाता है। नीचे चलकर यह अतत दाहिनी ओर मुड़कर ड्यूडीनम से जुड़ता है। वयस्को मे आमाशय की कुल क्षमता 1500 मि लि होती है।

ग्रासनली की ओर का छिद्र *कार्डिअक ऑरिफिस* कहलाता है। यहाँ ग्रासनली के गोलाकार ततु कुछ मोटे हो जाते हैं और एक कमजोर स्फिक्टर पेशी का निर्माण करते हैं।

ड्यूडीनम का निचला छिद्र *पॉयलोरिक ऑरिफिस* कहलाता है और यह मजबूत पॉयलोरिक स्फिक्टर से सुरक्षित रहता है, यह ड्यूडीनम से भोजन को आमाशय मे नही लौटने देता।

आमाशय की दीवार चार तहो की वनी होती है

1. **वाह्य** *सीरस* तह, विसरल तह है जो पेरिटोनिअम की वनी होती है **(देखिये पृष्ठ 201)**

2. *पेशीय* तह अनैच्छिक पेशियो की तीन तहो की वनी होती है : वाह्य लम्बाकार, मध्य गोलाकार और आतरिक तिरछी पेशियो की।

3 सबम्यूकस तह ढीले संयोजी ऊतको का वनी हुई।

4 *श्लेष्मिक झिल्ली* का अस्तर जो कि पाचक ग्रथियो और उनके छिद्रो के कारण मधुमक्खी के छत्ते की तरह दिखाई देता है। श्लेष्मिक झिल्ली मे कई मोड (Folds) होते हैं जिन्हें *वलि (Rugae)* कहते हैं। ये लम्बाकार होती हैं और आमाशय के भरने पर फैल जाती हैं। ग्लोवलेट कोशिकाओ से स्रावित होने वाला म्यूकस भोजन को चिकना बनाने मे सहायता करता है।

आमाशय के कार्य (The Functions of the Stomach)

1 भोजन को मथना ताकि वह छोटे-छोटे कणो मे टूट जाए और उसमे पाचक रस अच्छी तरह मिल सकें। पाइलोरिक स्फिक्टर के पहले का आमाशयी भाग *पाइलोरिक एन्ट्रम* इस हलचल मे मुख्य भूमिका अदा करता है। इसमे पेशियाँ सकुचित और विस्तारित होती हैं और भोजन को जो कि द्रव मे वदल चुका होता है स्फिक्टर से छोटी आँत मे भेज देती हैं, कुछ द्रव वापस आमाशय मे लौट आता है ताकि वह अच्छी तरह मथा जा सके।

2. भोजन को गैस्ट्रिक रसो की सहायता से पचाना।

3. अत:स्थ पदार्थ (Intrinsic factor) का स्रावण।

आमाशय की म्यूकोसा मे तीन प्रकार की कोशिकाएँ होती हैं। *म्यूकस कोशिकाएँ* म्यूकस स्रावित करती हैं और श्लेष्मिक झिल्ली को पाचक रसो के प्रभाव से बचाती हैं। *चीफ कोशिकाएँ (Chief cells)* एक एन्जाइम पेप्सिनोजन, और वच्चो मे एक अन्य जिसे रैनिन (Rennin) कहते हैं स्रावित करती हैं। *आक्जिटिक कोशिकाएँ*

(*Oxyntic cells*) हाइड्रोक्लोरिक अम्ल स्रावित करती है। पाचक रसों का स्रावण [illegible] की तरह प्रतिवर्ती प्रक्रिया है, जो भोजन के पहले और दौरान काफी द्रव बहा देती है। पाचक ग्रंथियाँ एक आन्तरिक स्रावण या हारमोन जो कि आमाशय में पैदा होता है और गेस्ट्रिन कहलाता है, से भी उत्तेजित होती हैं। यह परिसंचरण में मिलता रहता है और जब पाचक ग्रंथियों तक पहुँचता है तो वह पाचक रसों का स्रावण बढ़ा देता है।
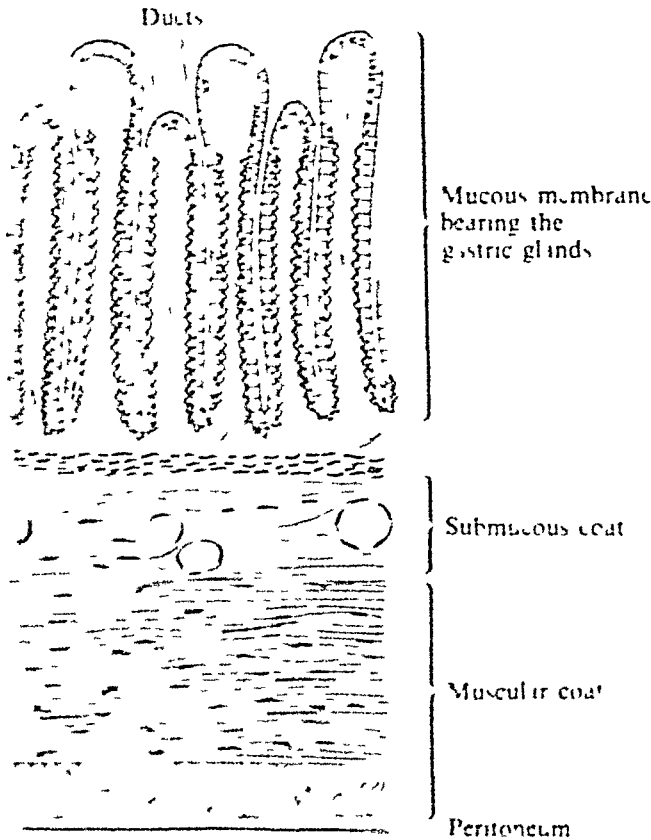
चित्र 124—गैस्ट्रिक [illegible] का खण्ड, गैस्ट्रिक ग्रंथियाँ दर्शाने के लिए परिवर्धित चित्र।

गैस्ट्रिक रस निम्न पदार्थों का बना होता है

1. पानी, खनिज लवण तथा म्यूकस।
2. हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCL)।
3. पेप्सिनोजन (Pepsinogen), जो हाइड्रोक्लोरिक अम्ल द्वारा क्रियाशील पेप्सिन में परिवर्तित हो जाता है। पेप्सिन प्रोटीन्स को पेप्टोन्स में बदलती है।
4. रेनिन (Rennin) जो कैसीनोजन को जमा कर देती है और इसको केसीन में बदल [illegible] है। अब इस पर पेप्सिन की क्रिया हो सकती है।

गैस्ट्रिक रस से भोजन अधिक पतला तथा अम्लीय हो जाता है । भोजन के अम्लीय होने मे और इस क्रिया मे 15 से 30 मिनट लगते हैं, भोजन आमाशय के कार्डिअॅक सिरे मे जो भडार का भी काम करता है सग्रहित रहता है और मैलाइवा का टायलीन पके हुए स्टार्च पर क्रिया करता रहता है । जब भोजन अम्लीय बन जाता है तो पेप्सीन तथा रेनिन प्रोटीन्स तथा केसिनोजन पर क्रिया करना आरम्भ कर देती हैं । आमाशय के पाइलोरिक सिरे मे भोजन बहुत तेजी से अम्लीय बनता है। इस सिरे मे पैरिस्टैल्सिस क्रिया अच्छी गति से होती है जिससे भोजन मे गैस्ट्रिक रस मिलता हे और भोजन मया जाता है। भोजन आमाशय मे ½ घटे से 3 घटे तक रहता हैं । यह भोजन के प्रकार पर और किसी व्यक्ति के आमाशय की पेशीयता पर निर्भर करता है । कार्बोहाइड्रेट की अधिकता वाला भोजन जिसमे प्रोटीन बहुत कम हो, उदाहरणार्थ चाय, टोस्ट, केक आदि आमाशय से ½ घटे मे ही बाहर निकल जायेगा। अच्छा मिश्रित आहार जो सामान्य भोजन मे लिया जाता हे, आमाशय मे 2½ से 3 घटे या उससे भी अधिक, देर तक रहेगा। यद्यपि यह अवधि पेशीय परत की शक्ति तथा क्रियाशीलता पर निर्भर रहेगी।

गैस्ट्रिक रस मे उपस्थित हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के कई उपयोग हैं :

1 यह अम्लीय माध्यम तैयार करता है जो गैस्ट्रिक एन्जाइम्स के लिए जरूरी है

2 यह बेक्टीरिआ को मारता है

3 यह पाइलोरस को नियत्रित करता है

4 यह टायलीन की क्रिया को रोकता है

5 यह पेप्सिनोजन को पेप्सिन मे बदलता है

पाइलोरस सामान्यतया सकुचित अवस्था मे रहता है । जब भोजन आमाशय मे आता है तो गैस्ट्रिक रस उसे पाइलोरिक सिरे पर ज्यादा और ज्यादा अम्लीय बनाता है । जब भोजन एक निश्चित मात्रा मे अम्लीय हो जाता है तो पाइलोरस विस्तारित हो जाता है और थोडा भोजन ड्यूअॅडीनम मे चला जाता है । यहाँ का अम्लीय भोजन अब पाइलोरस को बन्द कर देता है और आमाशयी दीवार की शक्ति के कारण भोजन कार्डियक भडार से नीचे आकर पाइलोरिक सिरे के भोजन से मिलता है तथा उसे कम अम्लीय बनाता है । धीरे-धीरे ड्यूअॅडीनम् मे पहुँचा हुआ भोजन क्षारीय हो जाता है, और आमाशय के पाइलोरिक सिरे पर भोजन अधिक अम्लीय हो जाता है इस अवस्था मे पाइलोरस पुन खुल जाता है ।

आमाशय की इस मथने की क्रिया से जो वसा वहाँ मौजूद होता है या जो शरीर के ताप के कारण पिघली अवस्था मे होता है, कुछ छोटे कणो मे टूट जाता है, इसके कारण अब अन्न एक भूरे-सफेद द्रव, जिसे काइम (Chyme : अम्लान्न) कहते हैं, दिखाई देता है।
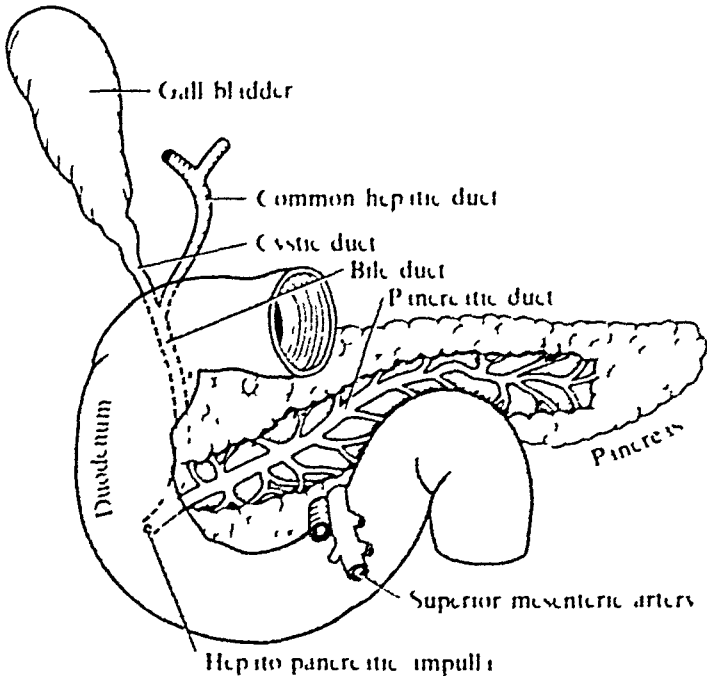
चित्र 135–ड्यूअडीनॅम, अग्न्याशय तथा पित्ताशय।

छोटी आंत (The small intestine)

छोटी आंत एक कुडलित नली है जो पाइलोरिक स्फिक्टर से बडी आंत के ऊपरी सिरे तक, जहाँ कि इलिओ-सीकल वाल्व होता है, फैली रहती है। यह लगभग 6 मीटर लम्बी होती है और उदरगुहा के निचले मध्य भाग मे सामान्यत बडी आत के मोड मे रहती है (देखिए चित्र 127)। छोटी आत के ड्यूअॅडीनॅम, जेज्यूनॅम और इलिअम नामक भाग होते हैं।

ड्यूअॅडीनॅम (*Duodenum*) एक छोटा और मुडा हुआ करीव 25 से मी लम्बा भाग है जो छोटी आत का सव से चौडा और स्थिर भाग है। यह मोटे तौर पर अंग्रेजी के C अक्षर के आकार का होता है और अन्याशय के शीर्ष को घेरे रहता है। पित्ताशय, यकृत और अन्याशय की नलिया एक उभय छिद्र जिसे *हिपेटो–पैन्क्रिऐटिक एम्पुला* कहते है, खुलती है। यह स्फिक्टर जैसी पेशियो से घिरा रहता है।

जेज्यूनॅम (*Jejunum*) छोटी आत के वाकी वचे हुए ऊपरी दो वटे पाच भाग को कहते हैं। वाकी बचा हुआ तीन वटे पाचवा भाग इलिअॅम कहलाता है। दोनो ही आमाशय की पिछली दीवार से पेरिटोनिअम की एक मुडी हुई तह जिसे *मेसेन्टरि* कहते हैं जुडी रहती है (देखिए चित्र 141)।

चित्र 136–छोटी आंत की काट, झुर्रीदार अस्तर (छल्ले जैसी सिकुटने) दर्शाते हुए।

छोटी आत की दीवार भी उन्ही चार परतो की वनी होती है जिनसे आमाशय की दीवार बनती है।

1. सीरस परत जो पेरिटोनिअम से बनी होती है ।
2. पेशीय परत जो लाँजिट्यूडिनल सर्क्यूलर तन्तुओ से वनी होती है।
3 मयोजी ऊतक की एक परत जिसमे बहुत रक्त वाहिकाएँ होती है।
4 म्यूकस झिल्ली का अस्तर।

इस म्यूकस झिल्ली के अस्तर की तीन विशेषताएँ होती है

1 इसमे गोल सिकुडने होती है जो आत मे छल्लो के समान चारो ओर होती है । आमाशय के वलि के विपरीत ये स्थायी होती हैं और आत के फैलने पर नही फैलती । वे अवशोषण का क्षेत्र बढाने मे मदद करती हैं।

2 अस्तर बालो जैसे उभारो से ढँका रहता । इन्हे विलि (Villi) कहते है। इनके कारण यह मखमल जैसा दिखाई देता है। प्रत्येक विलस कोशिकाओ से ढँका रहता है और इसमे रक्त केशिकाएँ तथा लैक्टिअल अथवा लिम्फैटिक केशिका होती है ।
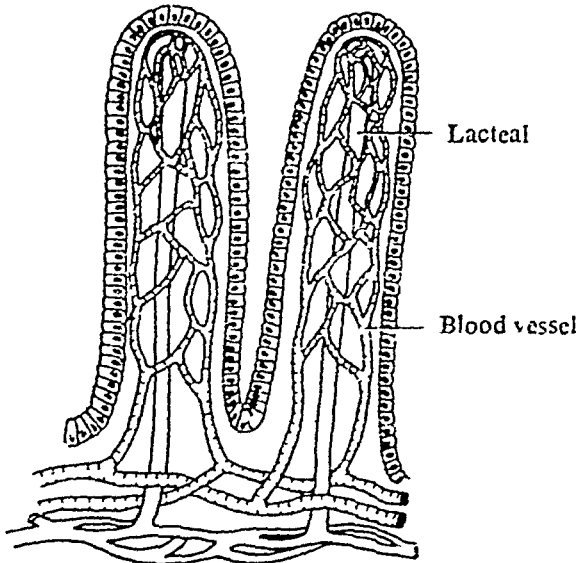
चित्र 137– विलि, रक्त वाहिकाएँ तथा लैक्टिअल दर्शाते हुए।

3 इसमे साधारण, नलीदार प्रकार की ग्रंथियाँ रहती है जो आन्त्रिक रस स्रावित करती है।
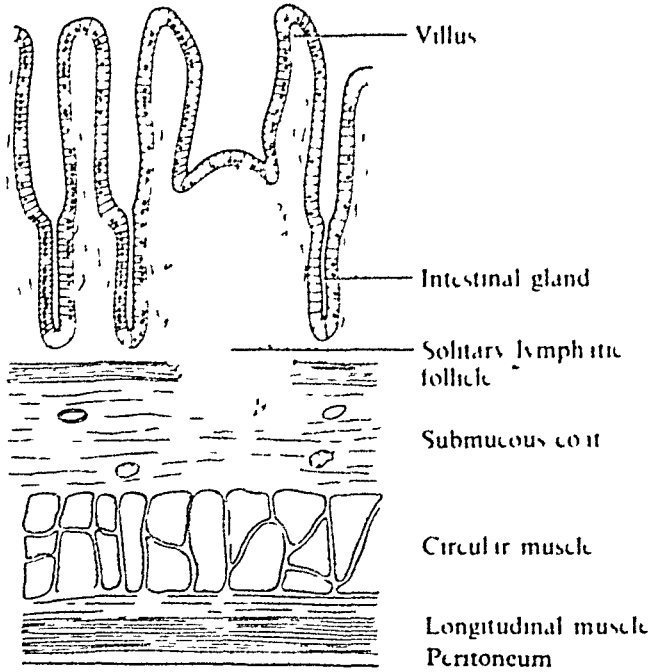
चित्र 138–छोटी आँत की दीवार की काट, अत्यधिक वर्धित (Magnified)।

छोटी आत मे श्लेष्मिक झिल्ली के नीचे छोटी-छोटी लिम्फ की गाँठें होती हैं जो सॉलिटरी लिम्फेटिक फॉलिकल्स (*Solitary lymphatic follicles*) कहलाती है। इलिअम मे ये गाठें बडे समूहो मे होती हैं तथा एग्रिगेटेड लिम्फेटिक फॉलिकल्स (*Aggregated lymphatic follicles*) कहलाती है। ये गोलाकार अथवा अण्डाकार होती है और आँखो से देखी जा सकती हैं। टाइफॉइड मे ये प्रदाहित हो जाती हैं। ये लिम्फॉइड गाँठे उन जीवाणुओ का मुकाबला करती है जो आँत मे के भोजन मे शोषित कर लिये जाते हैं।

छोटी आत के कार्य (Functions of Small Intestine)

छोटी आत का कार्य भोजन को पचाना और उसका शोषण करना है।

पाचन (Digestion) अग्न्याशय रस, पित्त और आन्त्रिक रस से होता है।

अग्न्याशयी रस तथा आन्त्र रस भोजन से सम्बन्धित संवेगो के कारण सहज क्रिया मे स्रावित होते है तथा आत के अस्तर द्वारा स्रावित हार्मोन 'सिक्रिटिन' (Secretin) के कारण भी स्रावित होते है। जिस तरह गैस्ट्रीन आमाशय के अस्तर मे स्रावित होता है उसी तरह सिक्रिटिन आंत के अस्तर से स्रावित होता है।

तालिका 14
पाचन प्रक्रियाएँ

स्रोत	स्रावण	परिवर्तन
लार	टायलीन	पके हुए माँड (Starch) को माल्टोज और डेक्सट्रिन में
आमाशयिक रस	पेप्सिन	प्रोटीन को पेप्टोन्स में
	रेनिन	दूध को जमाना है
	हाइड्रोक्लोरिक अम्ल	टायलीन की क्रिया रोकता है पेप्सिनोजन को पेप्सिन में बदलना
अग्न्याशय रस	ट्रिप्सिन	प्रोटीन को पॉलीपेप्टाइड्स में
	एमाइलेज	सभी माँड को माल्टोज और डेक्सट्रिन में
	लाइपेज़	वसा को वसीय अम्लों और ग्लिसरॉल में
यकृत	पित्त	वसा का पायसीकरण (Emulsifies fats),
आंत्रिक रस	एन्टरोकाइनेज	अग्न्याशय के ट्रिप्सिनोजन को क्रियाशील ट्रिप्सिन में
	पेप्टिडेज़	पॉलीपेप्टाइड्स को अमिनो अम्ल में
	माल्टेज	माल्टोज } को ग्लूकोज में
	सूक्रेज़	सूक्रोज } को ग्लूकोज में
	लैक्टेज़	लैक्टोज } को ग्लूकोज में
	लाइपेज़	वसा को वसीय अम्ल और ग्लिसरॉल में

ये रस क्षारीय होते हैं और भोजन को क्षारीय बना देते हैं। इससे वसा का पायसीकरण हो जाता है।

अग्न्याशयी रस में पानी, क्षारीय लवण तथा तीन विभिन्न भोज्य पदार्थों पर क्रिया करने वाले तीन एन्जाइम्स होते हैं

1 *ट्रिप्सिनोजन (Trypsinogen)* जो एन्टरोकाइनेज द्वारा क्रियाशील ट्रिप्सिन में बदला जाने पर, पेप्टोन्स तथा प्रोटीन्स को एमिनो एसिड्स में बदलता है। यदि अग्न्याशय क्रियाशील ट्रिप्सिन स्रावित करता है तो इससे ग्रन्थियों तथा उनकी नलियों की कोशिकाओं के प्रोटीन्स का पाचन हो जाता है। ट्रिप्सिन उसी समय क्रियाशील बनता है जब यह आँत में भोजन तथा आन्त्र रस से मिलता है।

2 *एमिलेज (Amylase)* जो पकाई हुई या कच्ची स्टॉर्च को माल्ट शर्करा (Maltose) में बदल देता है।

3. *लाइपेज (Lipase)* जो, पित्त द्वारा वसा का पायसीकरण करके उसकी सतह बहुत बढ़ा देने के बाद, वसा को वसीय अम्लों तथा ग्लिसरॉल में बदल देता है।

पित्त मे कोई एन्ज़ाइम नहीं होता लेकिन इसमे क्षारीय लवण होते है जो वसा का पायसीकरण करने तथा सावुन बनाने की क्रिया करते है।

आन्त्रिक रस मे पानी, लवण तथा एन्जाइम होते हैं। ये एन्जाइमस् निम्न है।

1 एन्टरोकाइनेज़ (*Enterokinase*) जो अग्न्याशय द्वारा स्रावित ट्रिप्सिनोजन को क्रियाशील ट्रिप्सिन मे बदलता है।

2 पेप्टिडेज़ (*Peptidase*) जो पेप्टोन्स पर क्रिया कर उन्हें एमिनो एसीड्स मे बदलता है।

3. माल्टेज़ (*Maltase*) जो माल्टोज़ पर क्रिया कर उसे ग्लूकोज़ जैसी साधारण शर्करा मे बदलता है।

4 सुक्रेज़ (*Sucrase*) जो गन्ने से उत्पन्न शकर सूक्रोज़ को साधारण शर्करा मे बदलता है।

5 लैक्टेज (*Lactase*) जो लैक्टोज़ (दुग्ध शर्करा) को साधारण शर्करा मे बदलता है।

6 लाइपेज (*Lipase*) जो वसा को वसीय अम्लो तथा ग्लिसरॉल मे बदलने की क्रिया पूरी करता है।

ये रस छोटी आँत की दीवार की पेशीय क्रिया द्वारा भोजन के साथ मिलते है। पैरिस्टैलसिस की क्रिया के अलावा, जो आँत की पूरी लबाई मे होती है, आत मे स्थान-स्थान पर सकुचन भी होते है और आत उस क्षण ऐसी दिखाई देती है जैसे गुलमाओ (Sausages) की माला। उदर की दीवार चीर कर आत को अनावृत्त कर उसकी फिलम ली जाये तो ये गतियाँ देखी जा सकती है। ये सकुचन कुछ विन्दुओ के समूह पर पहले शुरु होते है, फिर दूसरे समूह पर शुरु होते है और फिर उनका शिथिलन हो जाता है। इन क्रियाओ से भोजन मथा जाता है और श्लेष्मिक अस्तर आत के भोजन से निकट सपर्क मे आता है।

शोषण (**Absorption**) प्रोटीन्स, कार्वोहाइड्रेट्स तथा वसा के शोषण की लगभग पूरी क्रिया छोटी आत की विलाई द्वारा की जाती है। आमाशय मे भोजन की वहुत थोडी मात्रा शोपित होती है क्योकि भोजन तव तक या वो पर्याप्त रूप से पचा हुआ नही होता या अगर ग्लूकोज और पानी जैसे पदार्थ शोषण योग्य होते है तो वे वहा रुकते नहीं है और आगे वढ जाते है। प्रोटीन्स को एमिनो एसिड्स के रूप मे तथा कार्वोहाइड्रेट्स को साधारण शर्करा के रूप मे शोषित करने का काम विलाई की सतह की कोशिकाओ द्वारा किया जाता है, जहाँ से ये शोषित पदार्थ रक्त केशिकाओ मे पहुँचकर पोर्टल शिराओ द्वारा यकृत तक पहुँचाये जाते है। वसा को वसीय अम्ल तथा ग्लिसरॉल के रूप मे शोषित करने का काम विलाइ के वाहर की कोशिकाएँ करती हैं, जो इन्हें पुन.

वसा के विन्दुको के रूप मे ले आती है । ये विन्दुक विलाइ के लिम्फ मे पहुच जाते है और वहाँ से लिम्फेटिक केशिकाओ अथवा लेक्टिअल्स द्वारा ले जाये जाते हैं। इनमे उपस्थित लिम्फ वसा के छोटे-छोटे विन्दुओ के कारण दूध जैसा दिखाई देता है, इसलिये ये वाहिकाएँ लेक्टिअल्स कहलाती हैं। वसा लिम्फेटिक नलियों से होते हुए सिस्टर्ना काइलि (Cisterna chyli) मे पहुँचता है और वहाँ से वक्षीय वाहिका द्वारा रक्त प्रवाह मे पहुँच जाता है ।

बड़ी आँत (The Large Intestine)

बडी आत इलिअम के अत से गुदा तक फैली रहती है और करीव 1 5 मीटर लम्बी होती है । यह एक आर्च वनाती है जिसमे छोटी आत घिरी रहती है । यह सात भागो मे विभाजित की जाती है।

1. सीकम (Caecum)
2. एसेन्डिन्ग (आरोही) कोलन (Ascending colon)
3. आडी कोलन (Transverse colon)
4. डिसेन्डिन्ग (अवरोही) कोलन (Descending colon)
5. सिग्मॉइड कोलन (Sigmoid colon)
6. मलाशय (Rectum)
7. गुदा (Anus)

सीकम (*Caecum*) दाहिने इलिअक फोसा मे रहती है। यह चौडी होती है तथा निचला सिरा अधसिरा (वन्द) कहलाता है। ऊपर की ओर यह एसेन्डिन्ग कोलन से जुडी रहती है । इलिअम का प्रवेश इसमे एक ओर से होता है और यह प्रवेश द्वार *इलिओ-सीकल* वाल्व कहलाता है। यह वाल्व कमजोर अवरोधी (Sphincter) पेशीयो का वना होता है । और सिकम की अन्तर्वस्तु को इलियम मे लोटने से रोकता है । आमाशय मे भोजन पहुँचते ही ड्यूअॅडीनॅम और वाकी छोटी आत मे सकुचन होता है इससे भोजन इलिअम मे होता हुआ इलिओ सीकल वाल्व के माध्यम से सीकम मे पहुँच जाता है। इसे *गेस्ट्रो-इलिअल रिफ्लेक्स* कहते हे।

वर्मीफार्म एपेन्डिक्स (*Vermiform Appendix*) एक सकरी अधनली है जो सीकम मे इलिओसीकल वाल्व के 2 से मी नीचे निकलती है । यह सामान्यत 9 से मी लम्बी होती है हालाकि लम्बाई 2 से 20 से मी के वीच तक हो सकती है । यह उदर मे कई स्थितियो मे रह सकती है । एपेन्डिक्स की सवम्यूकम पर्त मे कई लिम्फाइड ऊतक रहते हैं।

एसेन्डिन्ग (आरोही) कोलन (*Ascending Colon*) करीव 15 से मी लम्बी और सीकम से सकरी होती है । दाहिनी ओर उदर मे ऊपर चढती हुई यह यकृत

के नीचे रहती है जहाँ यह आगे को मुड़कर बायीं ओर दाहिने कोलिक फ्लेक्सर (*Right colic flexure*) पर मुड़ जाती है।

ट्रांसवर्स कोलन (*Transverse colon*) करीब 50 से मी लम्बी होती है उदर में चलती हुई यह प्लीहा की निचली सतह में एक उल्टे आर्च में जाती है। यहाँ यह एकदम नीचे को *बायें कोलिक फ्लेक्सर* (*Left colic flexure*) पर मुड़ जाती है।

डिसेन्डिंग (अवरोही) कोलन (*Descending colon*) करीब 25 से मी लम्बी होती है और उदर में बायीं ओर से नीचे की ओर बढ़कर छोटी श्रोणि (लेसर पेल्विस) में जाती है और *सिग्मॉइड कोलन* कहलाती है।
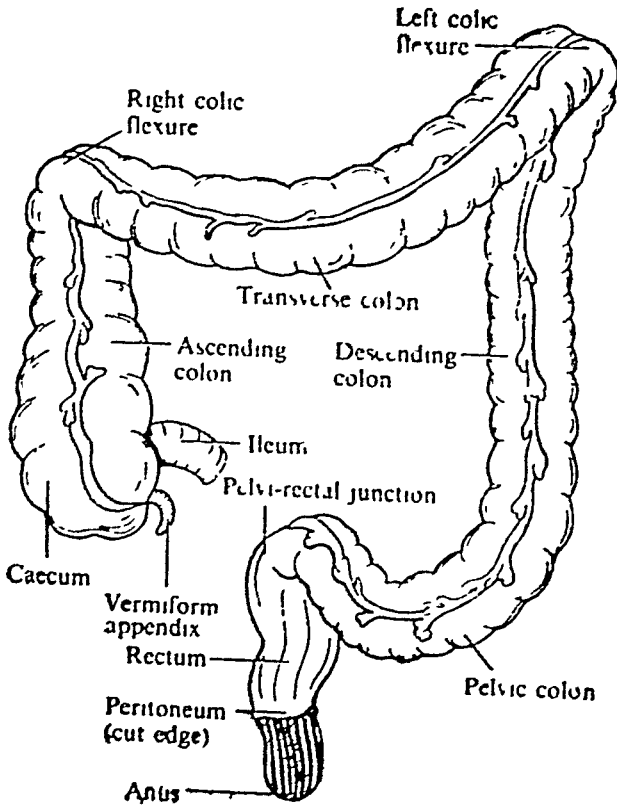
चित्र 139—बड़ी आँत।

सिग्मॉइड कोलन (*Sigmoid colon*) एक लूप बनाता है जो कि 40 से मी लम्बा है और छोटी श्रोणि में रहता है।

मलाशय (*Rectum*) सिग्मॉइड कोलन से ऊपर की ओर जुटा रहता है। यह लगभग 12 से मी लम्बा होता है और श्रोणिय डायफ्राम से गुजरकर गुदानली बनाता है।

गुदानली (*Anal canal*) नीचे और पीछे को चलती है और गुदाद्वार (Anus) पर समाप्त होती है। गुदाद्वार और मलाशय के जोड पर अनैच्छिक गोलाकार पेशियाँ मोटी हो जाती है और आतरिक गुदा अवरोधी (*Sphincter*) पेशियाँ बनाती हैं जो गुदानली की तीन चौथाई ऊपरी भाग घेरे रहती हैं। वाह्य गुदा अवरोधी पेशियाँ गुदानली की पूरी लम्बाई मे फैली रहती है। ये ही अवरोधी पेशियाँ गुदानली और गुदाद्वार को वद रखती है। वाह्य अवरोधी पेशिया स्वैच्छिक रूप से सकुचित हो सकती है और गुदाद्वार को मजबूती से वद रखती है।
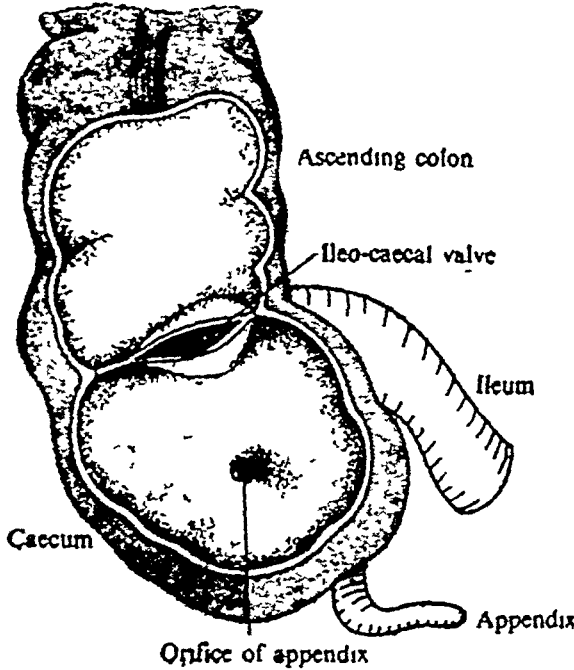
चित्र 140—सीकम, एपेडिक्स के साथ।

बडी आत की दीवार भी शेष आहार नाल की तरह चार पर्तों की वनी होती है।

1 पेरिटोनिअम की वाह्य सीरस झिल्ली।

2 पेशीय पर्त वाह्य लम्वाकार और आतरिक गोलाकार पेशियो की वनी हुई। लम्वाकार ततु पूरी पर्त वनाते हैं लेकिन कुछ स्थानो पर यह तीन पट्टो मे *टिनिआई कोलि* (*Taeniae coli*) वनाती है। ये पट्टे वड़ी आत की अन्य पर्तों से छोटे होते हैं और सामान्य सिकुडन या लघुकोशीय (*Saculated*) सतह वनाते हैं। इन लघुकोशो को हॉस्ट्रेशन्स (*Haustrations*) कहते हैं।

3. सवम्यूकस पर्त

4. म्यूकस झिल्ली का अस्तर

बड़ी आंत के कार्य (Functions of the Large Intestine)

1 पानी तथा लवणों का शोषण

2 मल का विसर्जन

बड़ी आंत में पहुँचने वाले पदार्थ हैं पानी, लवण, बहुत थोड़े भोज्य पदार्थ क्योंकि ये छोटी आंत में पचाये और शोषित किये जा चुके हैं, सेल्युलोज़ जो पचाया नहीं जा सकता तथा जीवाणु। जीवाणुओं की संख्या अधिक रहती है, क्योंकि आमाशय में काफी मात्रा में मार डाले जाने के बाद भी छोटी आंत में क्षारीय माध्यम, भोजन, ताप और पानी मिलने के कारण इनकी वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है; यहाँ पर वस्तुएँ द्रव अवस्था में होती है। कोलन में पानी और लवण शीघ्र शोषित कर लिए जाते हैं जिससे ये अनपचे पदार्थ, द्रव अवस्था से गाढ़ी (लेई जैसी) स्थिति में आ जाते हैं और इसमें सेल्युलोज़ तथा जीवाणु होते हैं लेकिन
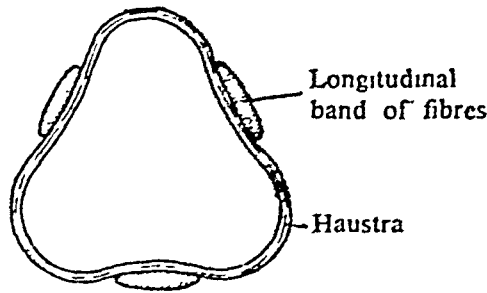
चित्र 141—बड़ी आंत (बृहदान्त्र) की आड़ी काट।

बहुत से जीवाणु पानी और भोजन के अभाव में मर जाते हैं। इसी लेई जैसे पदार्थ से मल बनता है। मल में द्रव और ठोस भाग होते हैं और ठोस भाग का 50 प्रतिशत सेल्युलोज़ का तथा 50 प्रतिशत मृत जीवाणुओं का बना होता है। निश्चित अन्तराल के बाद एक साथ गति के कारण मल को मलाशय में पहुँचा दिया जाता है जिसके द्वारा मलत्याग किया जाता है।

कोलन की हलचलें भी वैसी ही हैं जैसी कि छोटी आंत में होती है लेकिन इसमें पेरिस्टैल्सिस की क्रिया कम होती है। पेरिस्टेल्सिस की एक तेज लहर दिन में तीन-चार बार उठती है जो अन्तर्वस्तु को पेल्विक कोलन में खिसका देती है।

मल त्याग या मल विसर्जन (Defaecation) भोजन अवशेषों के पेलविक कोलन से मलाशय में पहुँचने के बाद होता है क्योंकि वह फैल जाता है। यह विस्तारण मलाशयी पेशियों में प्रतिवर्ती संकुचन पैदा करता है जो मल को बाहर निकालने की प्रवृत्ति रखती है। यद्यपि यह बाह्य गुदा अवरोधी पेशियों के शिथिल होने पर निर्भर है। मल त्याग, इस प्रकार एक प्रतिवर्ती क्रिया है लेकिन उस पर ऐच्छिक नियंत्रण हो सकता है। गेस्ट्रो-इलिअल रिफ्लेक्स भी मलाशय को खाली कर देता

है (देखिए पृष्ठ 197)। यदि मलत्याग मे देरी होती है तो मलाशय के भरे होने की अनुभूति समाप्त हो जाती है, मलाशय की दीवार मल मे उपस्थित पानी और अधिक शोषित करती है, इस प्रकार कब्जियत हो सकती है।

पेरिटोनिअँम (The Peritonium) :

पेरिटोनिअँम सीरस झिल्ली है और पुरुषो मे उदर का अस्तर बनाने वाली बंद थैली है। स्त्रियो मे गर्भाशयी नलियो (Uterine tubes) के स्वतंत्र सिरे पेरिटोनिअल गुहा मे खुलते है। वह हिस्सा जो उदर की दीवार का अस्तर बनाता है पेराइटल भाग (*Parietal portion*) कहलाता है। जो भाग अन्य अगो पर मुडा रहता है उसे विसरल भाग (*Visceral portion*) कहते है। इस गुहा मे तीन बडे पेरिटोनिअँल और एक छोटा पेरिटोनिअल सेक होता है।

विशिष्ट नाम वाले अन्य क्षेत्र हैं बडा ओमेन्टम (*Great omentum*) जो पेरिटोनिअम की दुहरी तह है और आमाशय के निचले किनारे से नीचे की ओर लटकती है और फिर मुडकर आडी कोलन तक पहुँच जाती है। यह अगो का सक्रमण
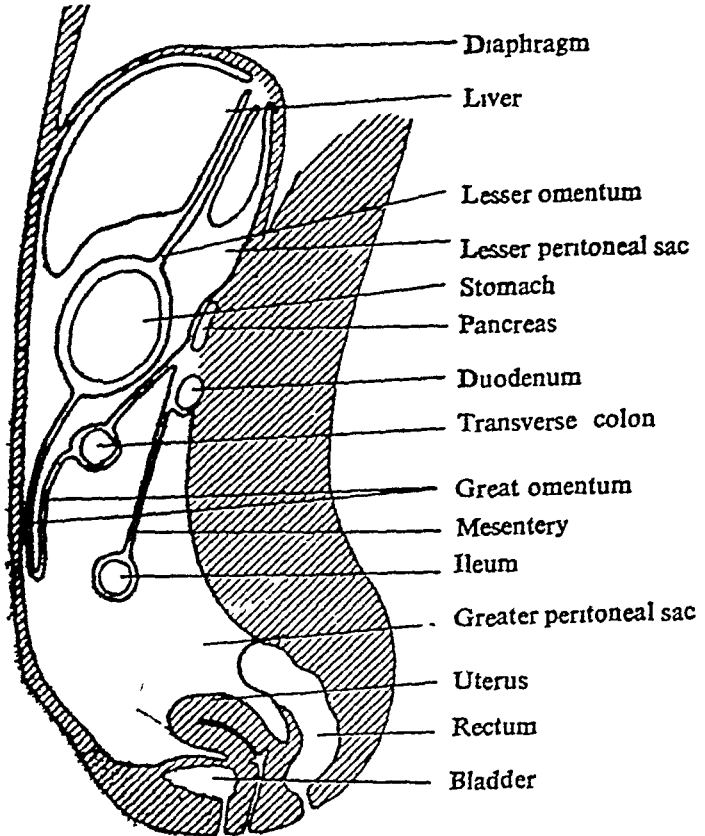
चित्र 142—पेरिटोनिअम।

पेरिटोनिअम तक पहुँचने में रोकने में सहायता करती है। छोटा ओमेन्टम (*lessor omentum*) आमाशय के छोटे मोड़ और ड्यूअडीनम से यकृत तक फैली रहने वाली तह है। मेसेन्टरी (*Mesentery*) एक चौड़ी पत्रेनुमा पेरिटोनिअॅम की तह है जो छोटी आंत की कायल को उदर की पृष्ठ दीवार से जोड़ती है।

पेरिटोनिअम के कार्य (Functions of Peritoneum) :

1 जब उदरीय अंग एक दूसरे से सटे हुए या उदरीय दीवार से सटे हुए हिलते हैं तो उनके ऊपर की पेरिटोनिअम की परतें सीरम से ढंकी होने के कारण चिकनी और चमकदार होती हैं और घर्षण से बचाती है।

2 विभिन्न उदरीय अंगों को, कुछ अपवाद छोड़कर, उदरीय दीवार से जोड़ती है। अपवाद हैं—गुर्दे, ड्यूॲडीनम तथा अग्न्याशय जो इसके पीछे होती है। आरोही और अवरोही कोलन अपनी अग्र सतह पर ही पेरिटोनिअम से ढंकी होती है। इसका
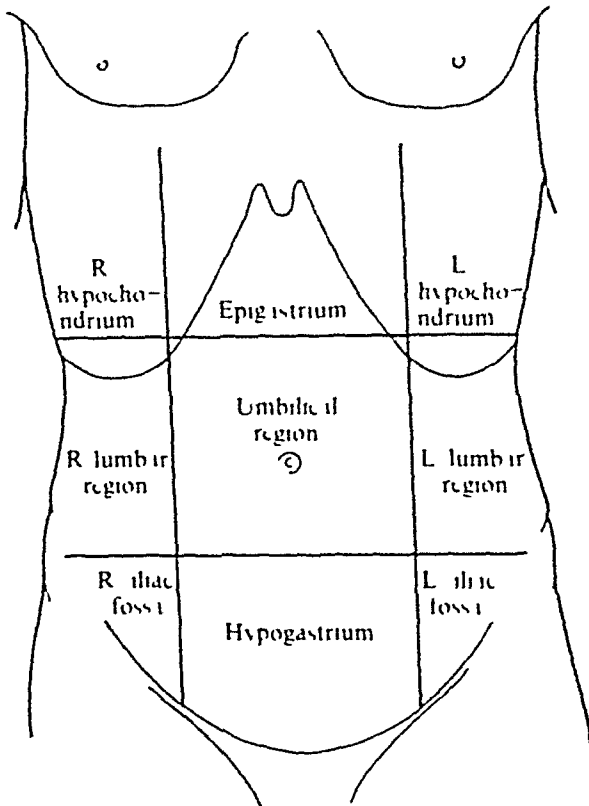
चित्र 143—उदर के क्षेत्र।

मतलब यह हुआ कि कोलोरटॉमी ऑपरेशन के समय केवल आडी या सिग्मॉइड कोलन ही आगे की उदरीय दीवार तक लाई जा सकती है।

3 रक्त वाहिकाओ, लिम्फ वाहिकाओं तथा स्नायुओं को अगों तक पहुँचाने का काम इसी के द्वारा किया जाता है क्योकि ये पेरिटोनिअम की दोनो परतो के बीच मे से अगों तक पहुँचती हैं।

4 सक्रमण का मुकावला करने का काम भी इसके द्वारा होता हे क्योकि इसमे कई लिम्फेटिक नोड्स होती हे।

उदर के क्षेत्र (Regions of the Abdomen)

उदर को वर्णन करने की दृष्टि से नौ भागो मे, दो खडी और दो आडी रेखाओ से विभाजित किया जाता है (चित्र 143)। किसी अग की स्थिति बताने के लिए, जिस क्षेत्र मे वह स्थित है उस क्षेत्र के नाम का उपयोग किया जाता है, उदाहरणार्थ आमाशय बायें हाइपोकॉन्ड्रिअक, एपिगेस्ट्रिक तथा अबिलिकल क्षेत्र मे होता है। गुर्दे क्रमश बायें और दाये लम्बर क्षेत्रो मे होते है। सीकम दाहिने इलिअक फोसा मे होता है। मूत्राशय पूरा भरने के बाद हाइपोगैस्ट्रिक क्षेत्र मे पहुँच जाता है।

18. यकृत, पित्तीय तंत्र एवं अग्न्याशय
The Liver, Biliary System and Pancreas

यकृत शरीर की सबसे बडी ग्रन्थि है। यह उदरीय गुहा के ऊपरी दाहिने भाग मे स्थित रहती है, करीब-करीब पूरे हाइपोकॉन्ड्रिअम को घेरे रहती है और डायफ्राम के नीचे स्थित रहती है। इसके दो मुख्य खण्ड (Lobes) होते हैं, दाहिना खण्ड बाये की अपेक्षा कुछ अधिक बडा रहता है। दाहिना खण्ड दाहिने कोलिक फ्लेक्सर और दाहिने गुर्दे पर तथा बाया खण्ड आमाशय पर स्थित रहता है।
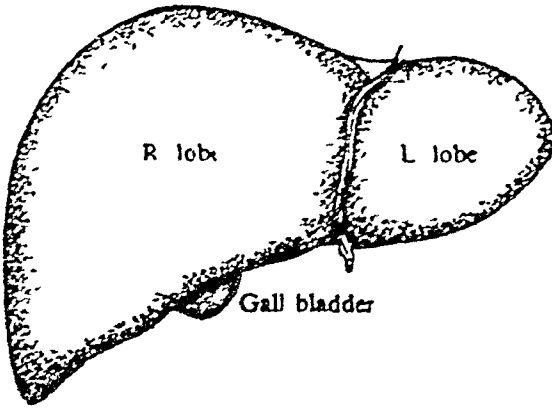
चित्र 144—यकृत, सामान्य रूप।

यकृत की रचना (Structure of the Liver)

यकृत कई हेपॅटिक लोब्यूल्स का बना होता है जो षट्कोणीय आकृति के दिखाई देते हैं, प्रत्येक लोब्यूल करीब 1 मि मी डाइमीटर का होता है और उसमे छोटी मध्य इन्ट्रालोब्यूलर शिरा (यकृतीय शिराओ की एक शाखा) रहती है। लोब्यूल्स के किनारो के आसपास पोर्टल कॅनॅल्स होती है जिनमे प्रत्येक मे पोर्टल शिरा की शाखा (इन्ट्रालोब्यूलर शिरा), यकृतीय धमनी की शाखा और छोटी पित्त वाहिका होती है। इन तीनो रचनाओ को एक साथ मिलाकर पोर्टल ट्राएड (*Portal triad*) कहते हैं।

लोब्यूल्स *यकृत कोशिकाओं* के बने होते हैं जो एक या दो न्यूक्लियाइ एव पतले ग्रेन्यूलर साइटोप्लाज्म सहित बडी कोशिकाएँ हैं। यकृत कोशिकाएँ एक कोशिका मोटाई वाली परतो के रूप मे जमी रहती है, जिन्हें हेपॅटिक लेमिनी (Hepatic laminae) कहते हैं। ये लेमिनी असमान रूप से जुडी रहती है और यकृत

कोशिकाओं के बन्धनो से मिलकर दीवार बनाकर समीप की लेमिनी को जोडती हैं। लेमिनी के मध्य कुछ खाली स्थान रहते हैं जिनमे कई सम्मिलनो के साथ छोटी शिराएँ और छोटी पित्त वाहिकाएँ रहती है, इन्हे केनालिक्यूलाइ (*Canaliculi*) कहते हैं।

यकृत मे पोर्टल शिरा आहार मार्ग से भोज्य-पदार्थों से परिपूरित रक्त लाती है और यकृतीय धमनी धमनीय तत्र से ऑक्सीजन से परिपूरित रक्त लाती है। ये छोटी-छोटी रक्तवाहिकाओ मे विभाजित होकर यकृत कोशिकाओ के बीच केशिकीय जाल (Capillary network) बनाती है, इस प्रकार हेपॅटिक लेमिनी बनती हैं। इसके बाद यह केशिकीय जाल प्रत्येक लोब्यूल के मध्य स्थित छोटी
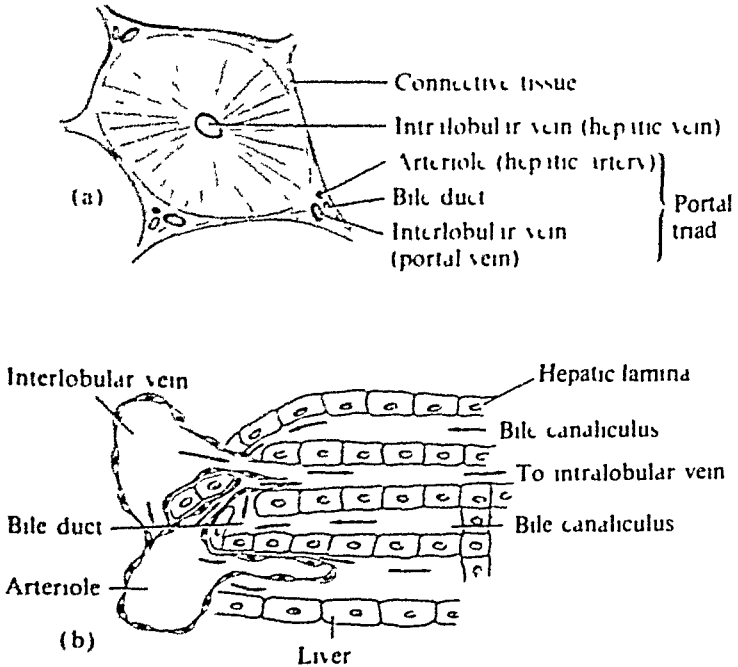
चित्र 145–(a) यकृत का लोब्यल, और (b) रक्तवाहिकाओ और पित्तवाहिकाओ की जमावट।

शिराओ मे विकास करता है जो यकृतीय शिरा को पूर्ति करती है। ये रक्त-वाहिकाएँ पोर्टल केशिकाओ से और यकृतीय धमनीयो द्वारा यकृत मे लाये गये ऑक्सीजेनेटेड रक्त जो अब डीऑक्सीजेनेटेड हो चुका है, को ले जाती हैं।

यकृत के कार्य (Functions of the Liver)

यकृत के कार्यों को तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है चयापचयी, संग्रही एव स्रावी।

चयापचयी कार्य (Metabolic Functions) :

1 उर्जा प्रदान करने के लिये सग्रहित वसा विभाजित होता है। इस प्रक्रिया को डीसेचुरेशॅन कहते हैं।

2 अधिक एमिनो एसिड्स विभाजित होकर यूरीआ मे परिवर्तित हो जाते हैं।

3 दवाइयो और विष का निर्विषीकरण (de-toxication) होना है।

4 कैरोटीन मे विटामिन A संश्लेषित होना है।

5 यकृत शरीर का ऊष्मा-प्रदान करने वाला मुख्य अग है।

6 प्लाज्मा प्रोटीन्स संश्लेषित होते हैं।

7 टूटी हुई ऊतक कोशिकाएँ विभाजित होकर यूरिक एसिड एवं यूरीआ बनाती हैं।

8 अधिक कार्बोहाइड्रेट वसा संग्रहो मे संग्रहित होने के लिये वसा मे परिवर्तित होते हैं।

9 प्रोथ्रॉम्बिन एव फिब्रिनोजन एमिनो एसिड्स से संश्लेषित होते हैं।

10 एन्टिबॉडीज एव एन्टिटाक्सिन्स का निर्माण होना है।

11 हेपरिन का निर्माण होना है।

संग्रही कार्य (Storage Functions) :

1 विटामिन A और D

2 एन्टि-एनीमिक फैक्टर।

3 आहार एव टूटी हुई रक्त कोशिकाओं मे प्राप्त आयर्न।

4 ग्लूकोज ग्लाइकोजन के रूप मे संग्रह होता है और आवश्यकतानुसार इन्सुलिन की उपस्थिति मे पुन ग्लूकोज मे परिवर्तित हो जाता है।

स्रावी कार्य (Secretory Functions) :

रक्त के द्वारा लाये गये अवयवो मे पित्त बनता है।

यूरिआ बनाना (The formation of urea)—हमारे द्वारा ग्रहण किये गये प्रोटीन आहार के पाचन मे बनने वाले एमिनो एसिड्स का शोषण छोटी आँत की विलाई द्वारा किया जाता है और ये पोर्टल शिरा द्वारा यकृत तक लाये जाते हैं। शरीर के ऊतकों की टूट-फूट मे सुधार तथा वृद्धि के लिये आवश्यक एमिनो एसिड्स यकृत से सीधे रक्त प्रवाह मे चले जाते हैं। कुछ रक्त-प्रोटीन बनाने के काम आते हैं। अधिक प्रोटीन या द्वितीय श्रेणी के प्रोटीन जो ऊतक बनाने के काम के नही होते यकृत मे विभाजित होते हैं और उनसे निम्न पदार्थ बनते हैं—

(अ) शरीर के लिए ईंधन जो कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन का बना होता है तथा

(ब) यूरिआ, जो प्रोटीन्स के नाइट्रोजन से युक्त पदार्थ है तथा अज्वलनशील होने के साथ ही शरीर निर्माण के लिये उपयोगी नही होने से व्यर्थ रहता है। यूरिआ घुलनशील पदार्थ होता है तथा रक्त इसे यकृत से गुर्दे तक उत्सर्जन के लिए ले जाता है।

पित्त का स्रावण (The secretion of bile)—पित्त यकृत कोशिकाओं द्वारा स्रावित एक गाढ़ा पीला हरा द्रव है। यह क्षारीय होता है। यकृत प्रतिदिन औसत 1 लिटर पित्त स्रावित करता है। पित्त में पानी, पित्त लवण, पित्त रजक (bile pigments) होते हैं, पित्त लवणों के कारण पित्त क्षारीय होता है। इसमें अकार्बनिक तथा कार्बनिक दोनों तरह के लवण होते हैं। कार्बनिक लवणों में कोलेस्टेरॉल होता है जो विशिष्ट प्रकार की पित्त पथरी का मुख्य घटक होता है। पित्तरजक नष्ट हुए लाल रक्ताणुओं के हीमोग्लोबिन से उत्पन्न होते हैं और आहार-नाल के मार्ग से ही शरीर के बाहर उत्सर्जित होते हैं, इन्हीं के कारण मल उसके विशिष्ट रंग का दिखाई देता है। पित्तरजक रक्त में भी होते हैं और मूत्र का रंग भी इन्हीं के कारण होता है।

पित्त के उपयोग निम्न हैं

1. यह क्षारयुक्त होने के कारण छोटी आँत में वसा का पायसीकरण करने तथा साबुनीकरण करने में सहायता करता है। इस तरह वसा की कुल सतह का क्षेत्रफल बढ़ जाता है तथा इन्जाइम्स की उन पर होने वाली क्रिया बढ़ जाती है।

2 यह आँतों में पैरिस्टेल्सिस की क्रिया को उत्तेजित करता है। इस तरह यह एक प्राकृतिक मृदु विरेचक (Aperient) है।

3 यह रक्त प्रवाह से रजक तथा विषाक्त पदार्थों, जैसे अल्कोहॅल और अन्य दवाइयों के उत्सर्जन का माध्यम है।

4 यह मल के लिए गन्धहर (Deodorant) का कार्य करता है तथा मल की दुर्गन्ध कम करता है। कहा जाता है कि यह केवल इसलिए होता है कि पित्त की कमी के कारण वसा का पाचन ठीक से नहीं होता, परिणाम स्वरूप वसा आँत में काफी मात्रा में रहता है और दूसरे अन्न पर तह जमा लेता है और उनका पाचन एवं शोषण नहीं होने देता। फलस्वरूप न पचे हुए प्रोटीन जीवाणु की क्रिया से सड़ने लगते हैं और काफी मात्रा में सल्फ्यूरेटेड हाइड्रोजन गैस बनाते हैं जिससे वैसी ही दुर्गंध आती है जैसी असामान्य मल, गंदी नालियों और सड़े हुए अंडों से आती है।

पित्तीय तंत्र (The Biliary System)

यह निम्नलिखित भागों का बना होता है

1. यकृत से आने वाली दाहिनी और बायीं यकृतीय वाहिकाएँ जो जुड़कर *उभय यकृतीय वाहिका (Common hepatic) duct* बनाती है।
2 *पित्ताशय (Gall bladder)*, जो पित्त के लिये संग्रहक का कार्य करता है।
3 *सिस्टिक वाहिका (Cystic duct)*, जो पित्ताशय से निकलती है।

4. *पित्त वाहिका (Bile duct)*, उभय यकृतीय एव सिस्टिक वाहिकाओ के जुड़ने से बनती है।

पित्ताशय नाशपाती के आकार वाला अग है जो यकृत के दाहिने खण्ड की निचली सतह पर स्थित रहता है। इससे *सिस्टिक वाहिका*, जो करीब 3 से 4 से मी लम्बी होती है, पीछे एव नीचे की ओर गुजरकर *उभय यकृतीय वाहिका* से जुडकर *पित्त वाहिका* बनाती है। यकृत के द्वारा स्रावित पित्त की यदि पाचन के लिये तुरत आवश्यकता नही होती है तो यह सिस्टिक वाहिका से होकर पित्ताशय मे पहुँच जाता है जहाँ यह सग्रह एव सान्द्रित होता है। पित्ताशय की क्षमता 30 एव 60 मि ली के बीच है लेकिन पानी के शोषण होने की इसकी क्षमता के कारण इसमे उपस्थित पित्त अत्यधिक सान्द्र हो जाता है। जब वसायुक्त भोज्य-पदार्थ ड्यूओडीनम मे प्रविष्ट होता है तब पित्त वाहिका के प्रवेश के स्थान की अवरोधिनी पेशी शिथिल हो जाती है और पित्ताशय मे सग्रहित पित्त पित्ताशय की दीवारो के सकुचन द्वारा आँत मे आता है।
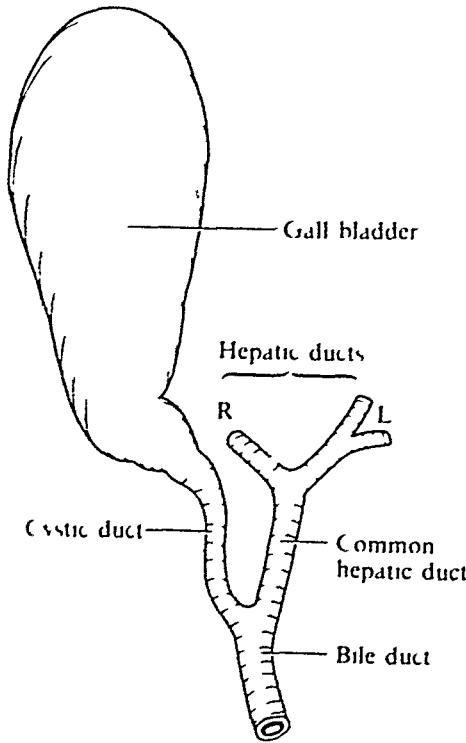
चित्र 146–पित्ताशय एव उसकी वाहिकाएँ।

यकृत के कार्यों की सूची देखने से यह ज्ञात होगा कि यकृत जीवन के लिये आवश्यक अग है। तथापि, यह अपने सामान्य कार्यों के अलावा कुछ अधिक कार्य

करने मे भी सक्षम है, तथा यकृतीय विफलता से मृत्यु होने के पूर्व बीमारी द्वारा इसका अधिकाश भाग नष्ट हो सकता है।

अग्न्याशय (The Pancreas)

अग्न्याशय मुलायम, भूरी-गुलाबी, 12 से 15 से मी लम्बी ग्रन्थि है जो पिछली उदरीय दीवार के सहारे आमाशय के पीछे आडे रूप मे स्थित रहती है (देखिये चित्र 134) ग्रन्थि का *शीर्ष या अग्र भाग (Head)* ड्यूअॅडीनम के मोड मे स्थित रहता है तथा *पिछला सकरा भाग (Tail)* प्लीहा तक फैला रहता है। ग्रन्थि का *मुख्य भाग (Body)* इन दोनो के बीच स्थित रहता है। *अग्न्याशयी वाहिका (Pancreatic duct)* इसी ग्रन्थि मे स्थित रहती है। यह वाहिका अग्न्याशय के पिछले सँकरे भाग मे स्थित पेन्क्रिऍटिक लोब्यूलस से निकलने वाली छोटी वाहिकाओ के जुडने के स्थान मे आरभ होती है और बायी से दाहिनी तरफ ग्रथि मे फैली रहती है जहाँ इसमे सभी छोटी वाहिकाएँ मिलती है। अग्न्याशय के अग्र-भाग पर अग्न्याशयी वाहिका पित्त वाहिका से जुडती है और प्राय ये दोनो एक साथ हेपॅटो-पेन्क्रिऍटिक एम्प्यूला के स्थान पर ड्यूअॅडीनम मे खुलती है, हालाकि कभी-कभी दो पृथक वाहिकाएँ भी रहती है।

अन्याशय लोब्यूल्स का बना होता है, प्रत्येक लोब्यूल छोटी वाहिकाओ का बना होता है जो मुख्य वाहिका मे खुलती है और कई एल्विओलाइ (वायुकोष्ठो) मे समाप्त होती है। इन एल्विओलाइ पर कोशिकाओ का अस्तर रहता है जो *ट्रिप्सिनोजन, एमिलेज* एव *लाइपेज* नामक एन्जाइम्स स्रावित करते हैं।

ट्रिप्सिनोजन एन्टेरोकाइनेज द्वारा सक्रिय ट्रिप्सिन मे परिवर्तित होता है, एन्टेरो-काइनेज छोटी आँत द्वारा स्रावित एन्ज़ाइम है, ट्रिप्सिन अपने सक्रिय रूप मे पेप्टोन्स और प्रोटीन्स को एमिनो एसिड्स मे परिवर्तित करते हैं।

एमिलेज़ पके एव अनपके स्टार्चेस को माल्टोज मे परिवर्तित करता है, माल्टोज़ माल्ट-शकर है।

लाइपेज़ पित्त के द्वारा वसा के पायसीकरण, जिससे वसा का सतह क्षेत्र बढ जाता है, के बाद वसा को वसीय अम्लो और ग्लिसेराल मे विभाजित करता है।

एल्विओलाइ के बीच मे कोशिकाओ के समूह पाये जाते है जो एक जालनुमा रचना बनाते हैं जिसमे कई केशिकाएँ होती हैं। इन कोशिकाओ के समूह को इन्टरएल्विओलर सेल *आइलेट्स (Interalveolar cell islets)* कहते हैं, और ये एक प्रकार का हार्मोन स्रावित करती है जो सीधे रक्त प्रवाह मे जाता है। इसलिये अग्न्याशय का कार्य पाचक एव अत स्रावी दोनो ही है। प्रत्येक आइलेट दो प्रकार की कोशिकाओ का बना होता है जिन्हे एल्फा एव बीटा कोशिकाएँ कहते हैं। एल्फा कोशिकाएँ आइलेट्स की कुल सख्या का करीब 25 प्रतिशत भाग बनाती

है और ये ग्लूकेगॉन (*Glucagon*) नामक हॉर्मोन बनाती हैं जो रक्त शर्करा में कमी की प्रतिक्रिया स्वरूप स्रावित होता है। ग्लूकेगॉन ग्लाइकोजन के ग्लूकोज में परिवर्तन होने की प्रक्रिया को उत्तेजित करता है, इस प्रकार रक्त शर्करा स्तर बढ़ जाता है। बीटा कोशिकाएँ आइलेट्स का बाकी बचा 75 प्रतिशत भाग बनाती है और ये रक्तशर्करा स्तर मे वृद्धि की प्रतिक्रिया स्वरूप *इन्सुलिन* हॉर्मोन स्रावित करती हैं, उदाहरणार्थ भोजन के बाद। इन्सुलिन सग्रह के लिये ग्लूकोज के ग्लाइकोजन में परिवर्तन को उत्तेजित करके और ग्लूकोज का कोशिकीय अन्तंग्रहण बढाकर रक्त शर्करा स्तर कम करती है। इसलिये यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि रक्त शर्करा स्तर इन दो हॉर्मोन्स के मध्य सतुलन द्वारा बना रहता है क्योंकि वे दोनो ही कार्बोहाइड्रेट के चयापचय को प्रभावित करते हैं। चूंकि प्रोटीन एव बसा का चयापचय कार्बोहाइड्रेट के चयापचय मे नजदीकी रूप से सम्बन्धित है इसलिये किसी एक की गडबडी मे दूसरा भी प्रभावित होगा।
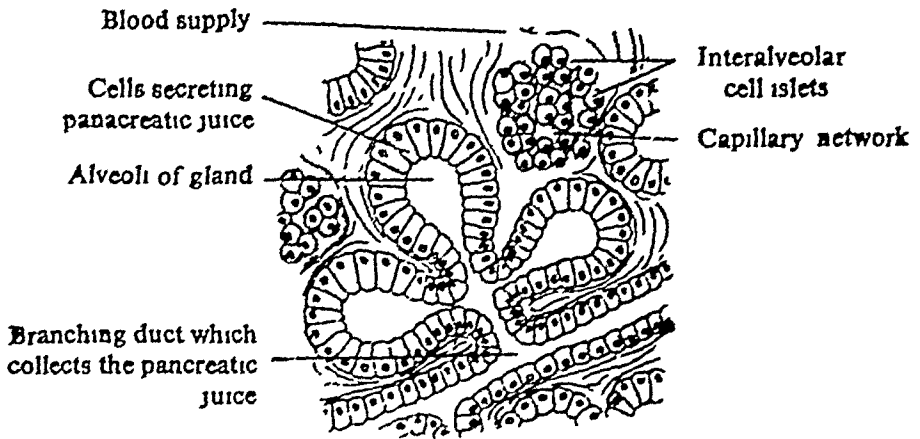
चित्र 147–अग्न्याशय की सूक्ष्म रचना, अग्न्याशयी रस स्रावित करने वाले छोटे कोश और इन्सुलिन स्रावित करने वाली आइलेट्स कोशिकाएँ दर्शाते हुए।

इन्सुलिन की कमी के फलस्वरूप मधुमेह नामक बीमारी हो जाती है। रक्त शर्करा स्तर गुर्दीय अव-सीमा (Renal threshold) से अधिक बढ जाता है तथा ग्लूकोज मूत्र मे नष्ट होने लगता है। चूंकि कोशिकाएँ ग्लूकोज का उपयोग नही कर सकती हैं इसलिये वसीय अम्लो के विभाजन के परिणामस्वरूप कीटोन बॉडीज एकत्रित होने लगती हैं जो रक्त अम्लता पैदा कर देती हैं और यदि उपचार नही किया गया तो मूर्छा होकर मृत्यु हो सकती है।

19. पोषण एवं चयापचय
Nutrition and Metabolism

अच्छा स्वास्थ्य सतोषजनक पोषण पर, और सतोषजनक पोषण भोज्य-पदार्थों की भरपूर पूर्ति पर निर्भर रहता है, ये भोज्य-पदार्थ स्वस्थ जीवन के लिये आवश्यक होते हैं। भोजन शरीर की प्रमुख आवश्यकताओ मे से एक है । जो पदार्थ शरीर के लिये भोजन का कार्य कर सकते हैं, वे ऐसे पदार्थ हैं जिन्हें शरीर दहन के लिए ईंधन के रूप मे, या ऊतको की टूट-फूट की मरम्मत के लिये या वृद्धि के लिये निर्माण-पदार्थ के रूप मे उपयोग कर सकता है । प्रत्येक जीवित कोशिका को अपनी क्रियाओ के लिए और जितनी ऊष्मा व्यक्ति को जीवित रहने के लिये चाहिये उसे बनाये रखने के लिये ऊर्जा की आवश्यकता और ऊर्जा के निर्माण हेतु ईंधन की आवश्यकता होती है । शरीर के ऊतको की मरम्मत के लिये निर्माण-पदार्थ आवश्यक होते हैं, क्योंकि ये ऊतक निरतर सक्रिय रहते हैं और अपनी इन क्रियाओ द्वारा टूटते रहते है । इसके अलावा शिशुओ एव बालको मे वृद्धि के लिये आवश्यक नये ऊतको के निर्माण हेतु अतिरिक्त निर्माण-पदार्थ की आवश्यकता होती है । किन्तु ईंधन पूर्ति करना और निर्माण-पदार्थ देना ही काफी नही होगा। निर्माण-पदार्थ एव ईंधन को उपयोग मे लाने के लिये ऊतको को कुछ अन्य पदार्थ भी आवश्यक होते हैं, इन पदार्थों को विटामिन कहते हैं।

छ प्रमुख भोज्य-पदार्थ ऐसे हैं जिनकी निरतर पूर्ति हमारे खाए हुए भोजन द्वारा होना जरूरी है । ये भोज्य-पदार्थ निम्नलिखित हैं

1 प्रोटीन्स
2 कार्बोहाइड्रेट्स
3 वसा
4 पानी
5 खनिज लवण
6 विटामिन्स ।

भोजन के प्रत्येक पदार्थ मे इन भोज्य-पदार्थों मे से एक या अधिक पदार्थ रहते हैं । कोई पदार्थ भोजन के रूप मे इसीलिए उपयोगी होता है क्योंकि इसमे ये भोज्य-पदार्थ रहते है। प्रोटीन्स, पानी एव लवण शरीर-निर्माण करने वाले भोज्य-पदार्थ हैं। कार्बोहाइड्रेट्स एव वसा मुख्य रूप से ईंधन रूपी भोज्य-पदार्थ हैं, हालाकि शरीर प्रोटीन को भी ईंधन के रूप मे उपयोग कर सकता है और करता भी है

लेकिन जब प्रोटीन शरीर-निर्माण की आवश्यकता से अधिक लिया गया हो या अन्य ईंधन की कमी हो जैसे आहारहीनता मे तो विटामिन्स एव कुछ लवण ऊतक-क्रिया के नियत्रक के रूप मे कार्य करते है। हालाकि विटामिन्स ईंधन या शरीर-निर्माण पदार्थो के रूप मे उपयोगी नही होते हैं, फिर भी यदि ये भोजन मे पर्याप्त मात्रा मे उपस्थित नही होते है तो ऊतको का पोषण गडवडा जाता है, और बीमारिया पैदा हो जाती हैं । इन बीमारियो को आहार मे विटामिन्स की पर्याप्त मात्रा देकर रोका या ठीक किया जा सकता है ।

शरीर के लिये उपयोगी होने के लिये इन भोज्य पदार्थों का पाचन एव शोषण होना जरूरी है । इसलिये भोजन इस प्रकार का होना चाहिये कि वह पच सके, अर्थात् पाचक रसो द्वारा ऐसे पदार्थों मे विभाजित हो सके जो रक्त प्रवाह मे जा सकें, और विभिन्न ऊतकों के उपयोग के लिये उन तक पहुँच सकें। प्रोटीन्स, कार्बोहाइड्रेट्स एव वसा जटिल यौगिक हैं जो पौधे और प्राणीय पदार्थ मे पाये जाते हैं, तथा इनके पाचन की आवश्यकता होती है । पानी एव खनिज लवण सरल अकार्बनिक पदार्थ हैं, इसलिये ये बिना पाचन के शोषित हो सकते हैं और सभी वनस्पतीय और प्राणीय पदार्थ की सरचना मे भाग ले सकते है । वस्तुत सभी जीवित पदार्थो का बडा भाग पानी होता है । जमीन या पानी मे शोषित अकार्बनिक लवणो को जीवित कोशिकाओ द्वारा कार्बनिक लवणो मे बदल दिया जाता है जो सभी पौधो और प्राणियो का प्रमुख भाग है।

चयापचय (Metabolism)

चयापचय शरीर मे भोजन के उपयोग से सबधित सभी परिवर्तनो को कहते हैं। मेटाबॉलिज्म शब्द मूल ग्रीक शब्द मेटाबोल (Metabole) से बना है जिसका अर्थ है परिवर्तन। चयापचय मे भोजन का शरीर के ऊतको द्वारा उपयोग करने की, भोजन के उपयोग से व्यर्थ-पदार्थ बनने की, तथा इन व्यर्थ-पदार्थो को उत्सर्जित करने की सभी क्रियाएँ सम्मिलित हैं।

चयापचय मे दो बिल्कुल भिन्न क्रियाएँ सम्मिलित हैं—

1 निर्माण के परिवर्तन जो उपचय (Anabolism) या उपचय सम्बन्धी परिवर्तन कहलाते है, उदाहरणार्थ प्रोटीन्स से प्राप्त एमिनो एसिड्स से पेशिया बनती हैं या वसीय अम्ल तथा ग्लिसरॉल से वसा निर्मित होता है।

2 विखण्डन के परिवर्तन जो अपचय (Catabolism) या अपचय सम्बन्धी परिवर्तन कहलाते है, उदाहरणार्थ शरीर की सक्रियता के लिये ऊर्जा प्रदान करने हेतु ग्लूकोज या वसा का कार्बन डाइऑक्साइड मे विभाजन।

अब क्रियाओ का यह विभाजन कुछ कृत्रिम माना जाता है क्योकि चयापचय के परिवर्तन शरीर की कोशिकाओ मे एन्जाइम्स की क्रिया द्वारा दोनो साथ-साथ तथा लगातार होते हैं, उदाहरणार्थ पेशीय कोशिका रक्त प्रवाह से प्राप्त एमिनो एसिड्स

से लगातार नया प्रोटोप्लाज्म बनाती है मगर साथ ही साथ इस क्रिया के लिए तथा सकुचन के लिए आवश्यक ऊर्जा को प्राप्त करने के लिए इसे ग्लूकोज़ जैसे ईंधन को जला कर ऊर्जा तैयार करनी पडती है तथा पुराने प्रोटोप्लाज्म को यूरिआ जैसे व्यर्थ-पदार्थो मे बदलना पडता है, जो उत्सर्जित हो जाते है।

चयापचयी परिवर्तन प्रत्येक जीव मे हर समय होते है लेकिन ये चलते-फिरते या पाचन जैसी क्रियाओ के दौरान बढ जाते है और आराम के समय कम हो जाते है। शरीर की पूर्ण विश्राम की अवस्था मे होने वाले चयापचयी परिवर्तन आधारभूत चयापचय (Basal metabolism) कहलाते है। आधारभूत चयापचय दर (BMR) का हिसाब लगाने से कई बार यह सकेत मिलता है कि किसी व्यक्ति को कोई रोग है अथवा नही है क्योकि थाइरॉइड ग्रन्थि की अतिक्रियाशीलता इस दर को बढा देती है जबकि निम्न-क्रियाशीलता इस दर को कम करती है।

प्रोटीन्स (Proteins)

प्रोटीन सभी भोज्य-पदार्थो मे सबसे जटिल पदार्थ हैं। ये कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन एव सल्फर तथा प्राय फॉस्फोरस के बने होते हैं। इन्हें बहुधा नाइट्रोजनयुक्त भोज्य-पदार्थ कहा जाता है क्योकि ये ही सिर्फ ऐसे भोज्य पदार्थ हैं जिनमे नाइट्रोजन तत्त्व रहता है। ये जीवित प्रोटोप्लाज्म के निर्माण हेतु आवश्यक होते हैं, क्योकि प्रोटोप्लाज्म भी कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन एव सल्फर तत्वो का बना होता है। ये प्राणीय एव वनस्पतीय पदार्थो मे पाये जाते है, लेकिन निर्माण पदार्थ के रूप मे मानव शरीर के लिये प्राणीय प्रोटीन्स अधिक उपयोगी होते हैं, क्योकि सरचना मे ये मानव प्रोटीन्स के समान होते हैं। इसके विपरीत वनस्पतीय प्रोटीन्स सस्ते होते है, ये शरीर-निर्माण की अपेक्षा शरीर-ईंधन के रूप मे अधिक उपयोगी होते है। लेकिन कुछ एमिनो-एसिड्स जो ऊनक निर्माण के लिये शरीर को आवश्यक होते हैं, इनसे कम खर्च पर प्राप्त हो जाते है।

प्रोटीन के स्रोत निम्नलिखित है

1 प्राणीय—

(अ) अडे, जिनमे एल्ब्यूमिन रहता है।
(ब) बिना चर्बी का माँस, जिसमे मायोमीन रहता है।
(स) दूध, जिसमे कैजिनोजन एव लैक्टएल्ब्यूमिन रहता है।
(द) पनीर जिसमे कैजिन रहता है।

2 वनस्पतीय—

(अ) गेहूँ एव राई, जिनमे ग्लूटीन रहता है।
(ब) दालें (मटर, सेम आदि) जिनमे लेग्यूमिन रहता है।

सभी प्रोटीन्स कुछ सरल पदार्थों के बने होते हैं जिन्हें *एमिनो एमिड्स* कहा जाता है। इन एमिनो एमिट्स की सख्या करीब बीस होती है, लेकिन प्रत्येक प्रोटीन मे इनमे मे सिर्फ कुछ ही एमिनो-एमिड्स होते हैं। एमिनो-एमिड्स की तुलना अक्षरो से की जा सकती है जिनमे कई शब्द बनाये जा सकते है। प्रत्येक शब्द अक्षरो के विभिन्न समूह से बनता है। प्राणीय या वनस्पतीय प्रोटीन का प्रत्येक प्रकार एमिनो एसिड्स का एक विभिन्न मिश्रण है। मानव प्रोटीन मे दस प्रमुख एमिनो-एमिड्स पाये जाते हैं। ये एमिनो एमिड्स शरीर स्वय अपने लिए नहीं बना सकता है। जिन प्रोटीन्स मे सभी दस एमिनो एसिड्स होते है उन्हें *पूर्ण प्रोटीन्स* कहते है, उदाहरणार्थ एल्ब्यूमिन, मायोसिन, कैज़िन। जिन प्रोटीन्स मे सभी दस एमिनो एमिड्स नही होते है उन्हें *अपूर्ण प्रोटीन्स* कहते हैं, उदाहरणार्थ जीलेटिन, जो सभी तन्तुमय ऊतको मे रहता है और सूप एव जेली बनाने के लिये अस्थियो व जानवरो के पैरो से निकाला जाता है। प्राणीय प्रोटीन्स (अडे, दूध एव मास के) मे शरीर की आवश्यकताओं के लिये सभी दस एमिनो एमिड्स होते ही नही बल्कि ये सभी उनमें अच्छे अनुपात मे रहते हैं, इन्हें *प्रथम वर्ग के प्रोटीन्स* (First class proteins) कहा जाता है, और शरीर के ऊतको के लिये सब से अच्छे निर्माण-पदार्थ हैं। वनस्पति प्रोटीन्स जैसे कि ग्लूटीन एव लेग्यूमिन मे शरीर के लिये आवश्यक दस एमिनो एमिट्स मे सिर्फ एक या कुछ अधिक एमिनो एसिड्स होते हैं और वे भी कम मात्रा मे होते हैं इसलिये इन्हें *द्वितीय-वर्ग के प्रोटीन्स* (Second class proteins) कहा जाता है, क्योकि ये उतने अच्छे निर्माण पदार्थ नही है। प्रथम-वर्ग के कुछ प्राणीय प्रोटीन हमेशा आहार मे होना चाहिये।

प्रोटीन चयापचय (Protein Metabolism) :

प्रोटीन्स को आमाशयी रस, अग्न्याशयी रस तथा आन्त्रिक रस के एन्ज़ाइम्स द्वारा एमिनो एसिड्स मे बदला जाता है। एमिनो एसिड्स आँत की विलाइ द्वारा शोषित कर पोर्टल शिरा द्वारा यकृत मे पहुँचाये जाते है।

प्रोटीन का मुख्य कार्य शरीर निर्माण के लिये पदार्थ प्रदान करना है। वृद्धि तथा टूट-फूट की मरम्मत के कार्यो के लिए लगने वाले नये ऊतक का निर्माण इसी भोज्य-पदार्थ से हो सकता है, क्योकि किसी भी अन्य भोज्य-पदार्थ मे जीवित कोशिका बनाने के लिए आवश्यक नाइट्रोजन नही होती। ऊतक निर्माण के लिए आवश्यक एमिनो एसिड्स यकृत मे से गुजर कर रक्त प्रवाह द्वारा शरीर के सभी भागो मे इस काम के लिए पहुँचाए जाते है।

प्रोटीन, शरीर ईंधन के रूप मे भी उपयोग मे लिये जा सकते हैं। अधिक प्रोटीन्स तथा वे प्रोटीन्स जो शरीर निर्माण के लिए अनुपयुक्त होते है, जैसे पौधो से प्राप्त द्वितीय श्रेणी प्रोटीन्स यकृत मे विभाजित होते हैं और उनसे निम्न पदार्थ बनते हैं

1 शरीर ईंधन ग्लूकोज़ के रूप मे (इसमे कार्बन, हाइड्रोजन तथा ऑक्सीजन होते हैं)।

2. यूरिआ या नाइट्रोजनयुक्त व्यर्थ-पदार्थ (इसमे नाइट्रोजन जो अज्वलनशील है तथा हाइड्रोजन होते है)।

इस क्रिया को एमिनो एसिड्स का डीएमिनेशन (Deamenation) कहते है। एमिनो एसिड्स का वह नाइट्रोजन युक्त भाग जो शरीर निर्माण के लिए आवश्यक नही होता पहले अमोनिया मे बदला जाता है, जिसका अधिकतर भाग यकृत मे कार्बोनिक एसिड से मिलकर यूरिआ तथा पानी मे विभाजित हो जाता है।

ग्लूकोज़ आवश्यकतानुसार या तो जल जाता है या सग्रहित हो जाता है। यूरिआ घुलनशील होने के कारण तथा ईंधन के रूप मे निरुपयोगी होने के कारण वहाँ से रक्त परिसचरण द्वारा ले जाया जाता है तथा गुर्दो द्वारा रक्त से उत्सर्जित कर दिया जाता है।

आहारहीनता की स्थिति मे भी प्रोटीन ईंधन का काम देते हैं। जीवित रहने के लिए दहन की क्रिया लगातार होनी चाहिए। दूसरे ईंधन की कमी होने पर प्रोटीन को ईंधन के रूप मे खर्च कर दिया जायेगा, चाहे उसकी जरूरत वृद्धि या मरम्मत के कार्यों के लिए हो। परिणामस्वरूप जब शरीर को भोजन नही मिलता, जैसे अकाल के समय मे या जब शरीर भोजन का पाचन या शोषण नही कर पाता जैसे बीमारी मे, तो कमजोरी आ जाती है और वजन कम हो जाता है।

प्रोटीन चयापचय के व्यर्थ पदार्थ यूरिआ और कुछ कम मात्रा मे यूरिक एसिड तथा क्रिएटिनिन होते हैं। यूरिक एसिड, यूरिआ की तुलना मे कम घुलनशील होता है। यह हमारे भोजन मे नाभिकीय पदार्थों से बनता है। हमारे अपने शरीर के प्रोटीन्स के टूटने से बनने वाला पदार्थ क्रिएटिनिन है। प्रोटीन के ये सभी व्यर्थ-पदार्थ गुर्दो द्वारा मूत्र मे विसर्जित किये जाते हैं। इस प्रकार हमारे शरीर से प्रतिदिन लगभग 30 ग्राम यूरिआ तथा बहुत थोडी मात्रा मे यूरिक एसिड तथा क्रिएटिनिन निकल जाता है।

कार्बोहाइड्रेट्स (Carbohydrates)

कार्बोहाइड्रेट्स के अन्तर्गत शर्करा एव स्टार्च (माड) आते है। ये कार्बन, हाइड्रोजन, एव ऑक्सीजन के बने होते हैं, तथा इनमे हाइड्रोजन एव ऑक्सीजन पानी के समान अनुपात मे रहती है, अर्थात् जितनी ऑक्सीजन उससे दुगुनी हाइड्रोजन। शरीर के लिये ईंधन के ये मुख्य स्रोत हैं, क्योकि ये आसानी से पचकर शोषित हो जाते हैं। ऊतको मे ये अधिक आसानी से दहन होते हैं तथा कार्बन डाइऑक्साइड एव पानी मे विभाजित हो जाते हैं। ये मुख्यतया वनस्पतीय भोज्य-पदार्थों से प्राप्त होते हैं।

स्टार्च के स्रोत निम्नलिखित हैं

1 अनाज, उदाहरणार्थ गेहूँ, चावल, जौ

2 ट्यूबर्स एव जडें, उदाहरणार्थ आलू, चुकन्दर

3 दालें, उदाहरणार्थ मटर, सेम, मसूर

शर्करा के स्रोत निम्नलिखित हैं

1 गन्ना (सूक्रोज़)

2 चुकन्दर एव सभी मीठी सब्जियाँ और फल, उदाहरणार्थ अगूर की शकर या ग्लूकोज़

3 शहद

4 दूध, जिसमे लैक्टोज़ या दूध-शकर रहती है ।

शर्कराएँ तीन प्रकार की होती हैं

1 **साधारण शर्करा** (मोनोसैकेराइड्स), जैसे ग्लूकोज़ या अगूर-शकर (सूत्र $C_6 H_{12} O_6$)

2 **जटिल शर्करा** (डाइसैकेराइड्स), जैसे गन्ने की शकर या सूक्रोज़ तथा दूध-शकर या लैक्टोज (सूत्र–$C_{12} H_{22} O_{11}$)

3 **पॉलिसैकेराइड्स**, सबसे अधिक जटिल कार्बोहाइड्रेट्स; स्टार्चेस जैसे आलू, अनाज एव जडो वाली सब्जियाँ ।

स्टार्च शर्करा से इस बात मे भिन्न होती है कि यह पानी मे घुलनशील नही है। पौधे शर्करा को स्टार्च के रूप मे सचित रखते है ताकि जिस जमीन मे वे रहते हैं उसके पानी मे शर्करा घुलकर न चली जाये ।(स्टार्च का सूत्र $n(C_6H_{10}O_5)$, एक पॉलिसैकेराइड, n वह सख्या है जो विभिन्न पौधो की भिन्न-भिन्न स्टार्चों मे अलग-अलग होती है ।) पाचन मार्ग से शोषित होने के पूर्व सभी कार्बोहाइड्रेट्स मोनोसैकेराइड्स मे परिवर्तित हो जाते है ।

कार्बोहाइड्रेट्स चयापचय (Carbohydrate Metabolism) :

माड और शकर के रूप मे खाये जाने वाले कार्बोहाइड्रेट्स पर सैलाइवा (लार) अग्न्याशय रस तथा आन्त्रिक रस मे मौजूद एन्ज़ाइम्स क्रिया करके उन्हें ग्लूकोज़ ($C_6 H_{12} O_6$) जैसी साधारण शर्करा मे बदल देते हैं। यह साधारण शर्करा छोटी आँत की विलाइ द्वारा शोषित होकर रक्त केशिकाओ मे पहुँचाई जाती है। पोर्टल शिरा इसको यकृत तक ले जाती है जहाँ अधिक शर्करा ग्लाइकोजन के रूप मे सग्रह कर ली जाती है।

ग्लूकोज मुख्य शरीर ईंधन के रूप मे कार्य करता है तथा काम करने एव शरीर को गर्म रखने के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान करता है । तुरन्त उपयोग के लिये आवश्यक ग्लूकोज़ यकृत मे सीधे यकृतीय शिराओ तथा निचली महाशिरा द्वारा रक्त परिसचरण मे पहुँच जाता है । शरीर की तुरन्त आवश्यकता से अधिक ग्लूकोज़ यकृत की कोशिकाओ द्वारा ग्लाइकोजन मे बदल दिया जाता है । ग्लाइको-जन अघुलनशील होता है तथा यकृत मे तब तक जमा रहता है जब तक उसकी आवश्यकता न हो । प्राणियो मे ग्लाइकोजन वैसा ही पदार्थ होता है जैसा पौधो

मे स्टार्च होता है । दोनो अघुलनशील होते हैं तथा शर्करा से पानी को अलग कर देने की क्रिया से बनते हैं । जब शरीर को शर्करा की आवश्यकता होती है तब ग्लाइकोजन को शर्करा मे पुन बदल दिया जाता है । यह शरीर द्रव मे घुलकर रक्त प्रवाह मे पहुँच जाती है । ग्लूकोज़ के ग्लाइकोज़न मे तथा ग्लाइकोज़न के ग्लूकोज़ मे परिवर्तन की क्रियाएँ यकृत के कोशो द्वारा स्रावित एन्जाइम्स द्वारा की जाती है ।

ग्लूकोज शर्करा पेशियो तथा ग्रन्थियो जैसे अधिक क्रियाशील ऊतको के लिए विशेष रूप से आवश्यक होती हैं, लेकिन सभी ऊतको को इसकी कुछ मात्रा मे आवश्यकता होती है । यकृत के समान पेशियाँ भी इसे बहुत थोडी मात्रा मे ग्लाइकोजन के रूप मे जमा रख सकती हैं । शरीर के ऊतक अपना ईंधन काफी किफायत से खर्च करते हैं । पेशियो के सकुचन के लिए आवश्यक ऊर्जा ग्लूकोज़ जलाकर उत्पन्न की जाती है लेकिन ग्लूकोज के सपूर्ण दहन से पेशी सकुचन के लिए आवश्यकता से अधिक ऊर्जा उत्पन्न होती है और यह अतिरिक्त ऊर्जा अधजले ईंधन से पुन ग्लाइकोजन बनाने के काम मे उपयोग मे ली जाती है । यह हिसाब लगाया गया है कि ईंधन के एक बटा पांच भाग का ही सपूर्ण दहन हो कर उससे कार्बन डाइऑक्साइड तथा पानी के रूप मे उत्सर्जन योग्य पदार्थ बनते हैं । बचा हुआ चार बटा पांच भाग, अपूर्ण दहन के बाद, पुन ग्लाइकोज़न के रूप मे बदल दिया जाता है जो पेशियो द्वारा जरूरत के समय उपयोग मे लिया जाता है । इस निर्माण-कार्य के लिए आवश्यक ऊर्जा का एक बटा पाँच भाग ईंधन के सपूर्ण दहन से मिलता है।

कार्बोहाइड्रेट दहन के **व्यर्थ-पदार्थ कार्बन डाइआक्साइड तथा पानी** होते हैं जो रक्त-प्रवाह द्वारा ले जाये जाते हैं तथा शरीर से उत्सर्जित हो जाते हैं । फुफ्फुस कार्बन डाइआक्साइड तथा पानी का उत्सर्जन करते हैं, पानी का उत्सर्जन त्वचा तथा गुर्दों द्वारा भी होता है । ऑक्सीजन कम मात्रा मे उपलब्ध होने पर ग्लूकोज़ का दहन अपूर्ण रहता है । इससे कुछ अम्लीय पिण्ड बनते हैं जिनके कारण तेज़ ऐंठन (Acute cramp) का दर्द शुरू होता है । यह ऐंठन तीव्र व्यायाम के कारण पेशियो मे या हृदय की दीवार मे हो सकती है । अम्लो के कारण वाहिकाएँ फैल जाती हैं जिससे उनमे रक्तपूर्ति बढ जाती है । रक्तपूर्ति बढते ही ऑक्सीजन मिलती है, दहन पूर्ण होता है और दर्द समाप्त हो जाता है ।

कार्बोहाइड्रेट्स का चयापचय इन्सुलिन द्वारा नियत्रित होता है, जो पेन्क्रिऍस का आन्तरिक स्रावण है । इन्सुलिन के अभाव मे न तो ऊतक ग्लूकोज़ का दहन कर पाते हे न ही यकृत इसे ग्लाइकोजन के रूप मे जमा कर पाता है । यदि इन्सुलिन सामान्य मात्रा मे तैयार होती है तो रक्त मे ग्लूकोज़ की मात्रा मे अधिक परिवर्तन नही होता और इसकी मात्रा सामान्यतया 100 मि ली रक्त मे 80 से

120 मि ग्रा होती है । भोजन के वाद यह मात्रा थोडी बढ जाती है, अतिरिक्त इन्सुलिन अग्न्याशय को उत्तेजित कर अधिक इन्सुलिन का स्राव कराती है । अधिक इन्सुलिन से यकृत तथा पेशियाँ तुरन्त अधिक ग्लूकोज़ शोषित कर लेती है और रक्त मे ग्लूकोज़ की मात्रा कम होकर फिर से सामान्य हो जाती है । इन्सुलिन का अभाव होने पर रक्त शर्करा बहुत बढ जाती है तथा न तो यकृत न पेशियाँ इसे सामान्य मात्रा मे शोषित और सग्रहित कर पाती हैं । मधुमेह मे यही होता है, इसमे अग्न्याशय रोगग्रस्त होता है तथा सामान्य मात्रा मे इन्सुलिन नही बना पाता । इससे रक्त मे शर्करा की मात्रा बढ जाती है और यह शर्करा गुर्दों द्वारा मूत्र मे उत्सर्जित कर दी जाती है । शर्करा के स्थान पर वसा का दहन होता है और यह स्थिति खतरनाक है इसके विपरीत यदि और इन्सुलिन रक्त मे मौजूद हो तो अधिक ग्लूकोज़ सग्रहित हो जायेगा और रक्त प्रवाह मे यह बहुत कम मात्रा मे रहेगा । यह अवस्था बहुत गभीर है क्योकि इससे ऐंठन, मूर्च्छा और मृत्यु भी हो सकती है । यह अवस्था इन्सुलिन की बहुत अधिक मात्रा देने पर होती है ।

वसा (Fats)

कार्बोहाइड्रेट्स के समान वसा भी कार्बन, हाइड्रोजन एव ऑक्सीजन के बने होते हैं, लेकिन इनमे हाइड्रोजन के अनुपात मे उतनी अधिक ऑक्सीजन नहीं होती है । ये भी शरीर के लिए ईंधन का कार्य करते हैं । इस दृष्टिकोण से कि 1 ग्राम शर्करा से प्राप्त ऊर्जा की अपेक्षा 1 ग्राम वसा से दुगुनी ऊर्जा निर्मित होती है, ये ईंधन के सब से अच्छे स्रोत हैं । इसके विपरीत ये इतनी अधिक आसानी से पचकर शोषित नही होते हैं और न ही उतनी आसानी से ऊतको मे दहन होते हैं। वसा पूर्णतया जलकर दहन के अत-पदार्थ के रूप मे कार्बन डाइऑक्साइड एव पानी तभी बनाते है जब ये शकर के साथ जलते हैं । यदि इनके साथ पर्याप्त शकर नही जलती है तो वसा का दहन अपूर्ण रहता है और ऊतको मे एसीटोन या एसिड बन जाते हैं । ये एसिटोन बाडीज पेशियो मे थकावट पैदा कर देती है, और यदि ये अधिक मात्रा मे उपस्थित हो तो रक्त की प्रतिक्रिया बदलकर ऐसी स्थिति पैदा कर देती है जिसे **रक्तअम्लता** (Acidosis) कहते हैं, जो मूर्च्छा और मृत्यु दायक हो सकती है । गभीर रक्तअम्लता होने की सभावना सिर्फ मधु-मेही रोगियों मे ही अधिक रहती है जो शकर का दहन करने मे असमर्थ रहते हैं तथा यह आहारहीनता मे भी हो सकती है, जिसमे शकर की वह मामूली मात्रा जो शरीर मे सचित थी उपयोग मे आ चुकी होती है और शरीर मे सचित वसा की बडी मात्रा शरीर-ईंधन का मुख्य स्रोत बनाती हैं।

वसा प्राणीय एव वनस्पतीय दोनो ही पदार्थों से प्राप्त होता है । **वसा के मुख्य स्रोत** निम्न है

1 प्राणीय

(अ) वसायुक्त मास एव मछली के तेल

(ब) मक्खन

(स) दूध एव क्रीम

2 वनस्पतीय

(अ) गिरी का तेल, जो मर्गरिन मे होता है

(ब) जैतून का तेल

वसा ग्लिसरिन एव वसीय अम्लो के यौगिक है। विभिन्न वसा मे भिन्न-भिन्न अम्ल रहते है, उदाहरणार्थ, वसायुक्त मास मे स्टीएरिक अम्ल, मक्खन मे ब्यूटिरिक अम्ल, जैतून के तेल मे ऑलीइक अम्ल रहते है।

वनस्पतीय वसा की अपेक्षा प्राणीय वसा अधिक महँगे होते है लेकिन भोज्य-पदार्थो के रूप मे वे अधिक उपयोगी होते है क्योकि इनमे विटामिन A और D रहते है जो वसा मे घुले होते है, बशर्ते कि वे प्राणी धूप मे खुले रहे हो न कि बाडो मे बन्द। किन्तु वनस्पतीय वसा को अल्ट्रावॉइलेट किरणो की क्रिया द्वारा उतना ही उपयोगी बनाया जा सकता है, और सभी प्रकार के मर्गरिन चाहे वे मछली या पौधे के तेल से बनाये गये हो, आजकल इसी प्रकार निर्मित किये जाते है ताकि इन विटामिन्स की पूर्ति हो सके। वसा मे घुलनशील इन विटामिन्स की कमी के कारण होने वाली बीमारियो की रोकथाम इसी विधि से की गई है।

वसा चयापचय (Fat Metabolism) :

वसा का पायसीकरण क्षार द्वारा होता है और लाइपेज़ तथा अग्न्याशय रस द्वारा इसे वसीय अम्लो व ग्लिसरॉल मे बदला जाता है। ये पदार्थ लैक्टिअल्स द्वारा शोषित किये जाकर लिम्फेटिक सम्यान की थॉरेसिक वाहिका द्वारा रक्त प्रवाह मे पहुँचाये जाते हैं।

वसा का कार्य ईंधन के रूप मे जलकर ताप उत्पन्न करना तथा ऊतको मे ऊर्जा उत्पन्न करना है। वसा ग्लूकोज़ से ज्यादा अच्छा ईंधन है क्योकि एक ग्राम वसा से उत्पन्न होने वाली उष्मा एक ग्राम ग्लूकोज़ ईंधन से उत्पन्न होने वाली उष्मा से दुगुना होता है। लेकिन दूसरी ओर, वसा का पाचन और शोषण आसान नही होता, न ही इसका दहन उतना सतोषप्रद होता है।

वसा शरीर द्वारा ईंधन के रूप मे तब ही उपयोग मे लिये जा सकते है जब वे पहले यकृत द्वारा दहन के लिए तैयार किये गये हो। यह यकृत की कोशिकाओ द्वारा की जाने वाली एक रासायनिक क्रिया है, इसे वसा का डीसेचुरेशन (Desaturation) कहते है।

वसा की आवश्यकता शरीर के कुछ ऊतक बनाने में भी होती है उदाहरणार्थ, स्नायविक ऊतक, वसीय ऊतक तथा मेरु। कुछ ग्रन्थियो के स्रावो में भी वसा के घटक पाये जाते हैं।

शरीर के लिए तुरन्त आवश्यक न होने वाला वसा, वसीय ऊतक के रूप में संग्रह किया जा सकता है। यह विशेष रूप से त्वचा के नीचे के ऊतक में तथा शरीर की गुहिकाओ में पाया जाता है। शर्करा तो बहुत कम मात्रा में, यकृत तथा पेशियो में मिलाकर 225 ग्राम, संग्रह हो सकती है परन्तु वसा बहुत अधिक मात्रा में संग्रह किया जा सकता है तथा पेशियो में भी संग्रह होता है तथापि, वसा का अधिक संग्रह नहीं होना चाहिये क्योंकि इससे शरीर का भार बढ़ता है जिससे क्रियाशीलता कम होती है और भार बढ़ता है, इस तरह एक दुष्चक्र बन जाता है।

शरीर पर वसा बढ़ने का यह मतलब नहीं है कि अधिक वसा खाया जा रहा है क्योंकि शरीर आवश्यकता से अधिक ग्लूकोज को संग्रहित करने के लिए वसा में बदल सकता है तथा शरीर निर्माण की आवश्यकता से अधिक प्रोटीन को ग्लूकोज में बदल सकता है। इसलिए तीनो भोज्य पदार्थों का चयापचय एक दूसरे से घनिष्ट रूप से जुड़ा हुआ है, अतः किसी भी प्रकार भोजन अधिक मात्रा में लेने पर शरीर का वजन बढ़ सकता है।

वसा के चयापचय के व्यर्थ-पदार्थ यदि दहन पूर्ण हुआ हो तो कार्बन डाइआक्साइड तथा पानी होते हैं। ये पदार्थ कार्बोहाइड्रेट्स द्वारा उत्पन्न इन्हीं व्यर्थ पदार्थों के समान, फुफ्फुसो, त्वचा तथा गुर्दों द्वारा उत्सर्जित किये जाते हैं। यदि दहन अपूर्ण हुआ हो तो एसिटोन बॉडीज बनती है जो इन्ही मार्गों से उत्सर्जित होती है। वाष्पशील एसिटोन की गंध ऐसे व्यक्ति की श्वास में आती है जिसमें यह दहन अपूर्ण हुआ हो, तथा मूत्र में भी एसिटोन तथा डाइएसिटिक एसिड मिलते हैं।

पानी (Water)

पानी दो भाग हाइड्रोजन एवं एक भाग ऑक्सीजन का बना हुआ साधारण यौगिक है। यह शरीर का दो-तिहाई भाग बनाता है और हमारे खाये हुए कई भोज्य-पदार्थों में मौजूद रहता है। बिना चर्बी का मांस तीन-चौथाई पानी ही है, दूध में 87 प्रतिशत पानी रहता है, पत्तागोभी में 92 प्रतिशत पानी होता है। भोज्य-पदार्थों में मिलने वाले पानी के अलावा शरीर को प्रति दिन 2 से 3 लिटर्स पानी की आवश्यकता होती है। पानी की आवश्यकता कई कामो के लिए होती है। इनमें मुख्य काम है

1. शरीर के ऊतक और शरीर द्रव बनाना।
2. व्यर्थ पदार्थों को उत्सर्जित करना।

3 पाचक द्रव तथा चिकनाने वाले (Lubricating) द्रव बनाना।
4 पसीने के वाष्पीकरण द्वारा शरीर को ठडा रखना।

जल संतुलन (Water Balance) :

पानी एक आवश्यक भोज्य पदार्थ है, पर यह एक तरल पदार्थ है और बिना किसी रासायनिक परिवर्तन के शरीर मे शोषित किया जाकर उपयोग मे लाया जा सकता है। यह शरीर मे होने वाले चयापचय के बहुत से परिवर्तनो मे भाग लेता है। पाचन की क्रिया मे पानी, प्रोटीन्स, कार्बोहाइड्रेट्स तथा वसा के साथ मिलता है जबकि उन पदार्थो के ईंधन के रूप मे काम आने पर यह उनसे टूट कर अलग हो जाता है। इसलिए आजकल हम पानी व लवणो के चयापचय पर विचार करने के बजाय पानी, लवणो व उनमे निर्मित इलेक्ट्रोलाइट्स के सतुलन पर विचार करते है।

पानी शरीर की कोशिकाओ तथा शरीर द्रवो का बहुत बडा भाग बनाता है। शरीर का लगभग दो तिहाई या अधिक सही कहे तो लगभग 60 प्रतिशत भार, पानी का बना होता है। इस अनुपात को बनाये रखना अत्यावश्यक है क्योकि
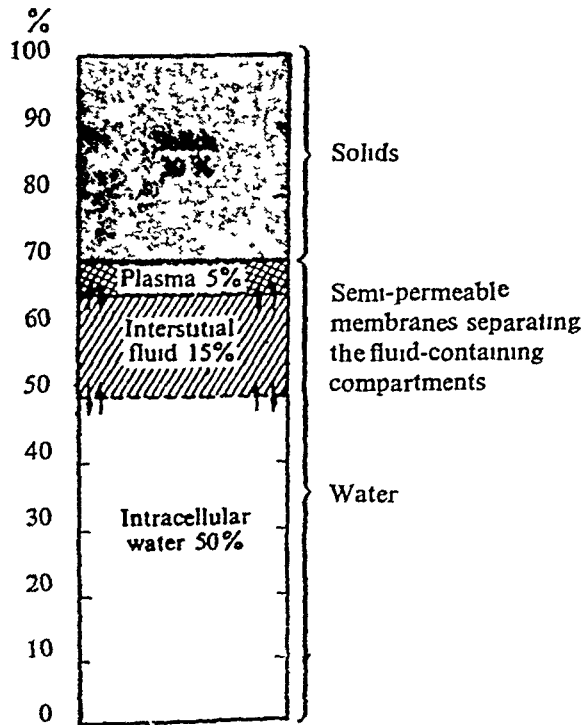
चित्र 148–ठोस तथा पानी के औसत प्रतिशत अनुपात को दर्शाने वाला, तथा शरीर मे पानी का वितरण दर्शाने वाला चित्र। तीरो द्वारा पानी तथा लवणो की एक खड से दूसरे खड मे होने वाली गति का मार्ग दर्शाया गया है।

जीवन की सारी जटिल प्रक्रियाओ के लिए पानी होना ही चाहिये । पानी का 70 प्रतिशत भाग कोशिकाओ के अदर (अत कोशिकीय-Intracellular) तथा बचा हुआ 30 प्रतिशत भाग शरीर द्रवो मे (बाह्यकोशिकीय–Extracellular) होता है, जिसमे 15 से 20 प्रतिशत ऊतको मे बीच के स्थानो मे सभी कोशिकाओ को (अस्थि कोशिकाओ सहित) गीला रखने का काम करना है तथा शेष 10 से 15 प्रतिशत रक्त का द्रव अर्थात् प्लाज्मा या लिम्फ बनाने का काम करता है । द्रव के ये तीनो प्रकार एक-दूसरे से एक पतली अर्द्ध-पारगम्य झिल्ली द्वारा अलग होते है, जैसे कोशिकाओ की दीवारें और केशिकाओ की दीवारें । पानी इनमे से होकर एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र मे लगातार जाता है, हालाकि स्वस्थ व्यक्ति मे इन सभी प्रकार के द्रवो का आयतन असाधारण रूप से स्थिर रहता है ।
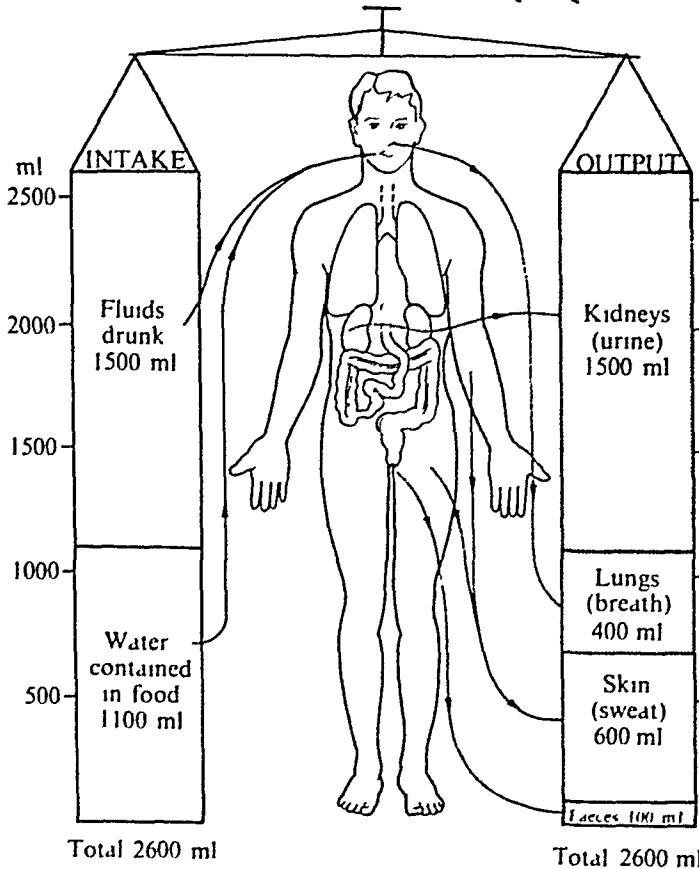
चित्र 149–विभिन्न अगो द्वारा पानी का सतुलन बनाये रखने की क्रिया दर्शाने वाला चित्र ।

हमारे शरीर का बहुत बडा भाग बनाने वाला पानी, शरीर मे स्थिर या गतिहीन नही होता । शरीर मे प्रतिदिन ताजा पानी लिया जाता है और विभिन्न मार्गों द्वारा यह शरीर से बाहर निकलता है । शरीर में ली जानी वाली मात्रा तथा बाहर निकलने वाली मात्रा एक-दूसरे के बराबर होनी चाहिए । पानी को

शरीर मे पानी के रूप मे, अन्य पेयो के माध्यम से तथा भोजन के रूप मे, जिनका बहुत बडा हिस्सा भी पानी होता है, लिया जाता है एक स्वस्थ मनुष्य प्रतिदिन औसतन 1 5 लीटर द्रव पानी तथा पेय पदार्थों के रूप मे तथा 1 लीटर से अधिक भोजन के रूप मे इस प्रकार कुल 2600 मे 2800 मि ली द्रव लेता है। इतनी ही मात्रा शरीर के बाहर भी निकाली जाती है। यह काम फुप्फुस जलवाष्प (400 से 500 मि ली) निकाल कर, त्वचा पसीना 500 से 600 मि ली नकाल कर, गुर्दे मूत्र (1000 से 1500 मि ली) उत्सर्जित कर पूरा करने हैं और मल मे भी थोडी मात्रा (100–150 मि ली) बाहर निकलती है।

मूत्र, पसीने और फुप्फुसो से जल वाष्प के रूप मे कितनी मात्रा मे पानी बाहर निकलता है, यह वातावरण पर निर्भर रहता है। गर्म मौसम मे या कडी मेहनत का काम करने पर शरीर को ठडा रखने के लिए अधिक पसीना निकलता है तथा कम मूत्र का उत्सर्जन होता है, साथ ही अधिक द्रव निकल जाने से प्यास लगती है तथा अधिक द्रव लिया जाता है। बुखार मे भी यही बात होती है, शरीर से अधिक द्रव बाहर निकलता है और उसको बराबर रखने के लिए अधिक द्रव लिया जाना चाहिये।

इलेक्ट्रोलाइट्स (Electrolytes)

शरीर मे पानी की मात्रा का सही सतुलन बने रहने के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि शरीर द्रवो की रासायनिक प्रतिक्रिया उचित रहे अर्थात् शरीर द्रवो मे इलेक्ट्रोलाइट्स का सही सतुलन बना रहे। ये इलेक्ट्रोलाइट्स विभिन्न लवणो के अणुओ से टूटे हुए व पानी मे घुले हुए, सूक्ष्म कण होते हैं, जो आॅयन कहलाते है (अध्याय 1)। आयन्स मे विद्युत आवेग होते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं ऋणायन (एनायन्स) तथा धनायन (केटआयन्स)। ऋणायन की सख्या इतनी होनी चाहिये कि वे धनायन को सतुलित कर सकें। मुख्य ऋणायन क्लोराइड (Cl) बाइकार्बोनेट (HCO_3) और फॉस्फेट (PO_4) होते हैं। क्लोराइड तथा बाइकार्बोनेट, प्लाज्मा मे तथा ऊतको के बीच द्रव मे काफी मात्रा मे होते हैं, जबकि अत कोशिकीय द्रव मे मुख्य रूप से फॉस्फेट होते हैं। मुख्य धनायन सोडियम (Na), पोटेशियम (K) होते है, कैल्सियम (Ca) तथा मैगनिशियम (Mg) भी धनायन होते हैं। प्लाज्मा तथा ऊतको के बीच के द्रव मे मुख्य धनायन सोडियम (Na) होता है जबकि अत कोशिकीय द्रव मे मुख्य धनायन पोटेशियम (K) होता है।

लवण तथा उनसे बनने वाले आॅयन्स लगातार रक्त मे पहुँचने हैं या उनसे बाहर निकलते हैं। लवण सभी भोज्य पदार्थों मे होते है फिर भी भोजन पकाते समय या खाते समय उसमे डाले गये लवण सामान्य इलेक्ट्रोलाइट सतुलन बनाये रखने के लिए तथा मूत्र और पसीने के रूप मे नष्ट होने वाले लवणो की कमी को पूरा करने के लिए आवश्यक होते हैं। हमे प्रतिदिन 3 से 4 ग्राम सोडियम क्लोराइड अर्थात् नमक की आवश्यकता होती है।

विभिन्न लवणों की मात्रा तथा उनके द्वारा बनाये जाने वाले आयन्स की मात्रा मिलि मोल्स प्रति लिटर (mmol/l) में नाप कर लिखी जाती है। प्लाज्मा में साधारणतया 155 mmol/l ऋणायन होते तथा 155 mmol/l धनायन इसे संतुलित करते हैं। इनमें अधिक संख्या क्लोराइड 102 mmol/l तथा सोडियम [illegible] mmol/l की होती है। ये आंकड़े संदर्भ के लिए दिये जा रहे हैं, क्योंकि नर्स या छात्र में सोडियम, पोटैशियम, क्लोराइड या बाइकार्बोनेट्स की कमी या अधिकता की जांच के लिए की गई जांच की रिपोर्ट में ये आंकड़े दिखाई देंगे। यह प्रायः भोजन के रूप में इन्हें कम मात्रा में लेने के कारण, या अधिक मात्रा में निकल जाने के कारण या कम मात्रा में निकलने के कारण जैसे गुर्दे को प्रभावित करने वाली असाधारण स्थिति में, या अत्यधिक पसीना निकलने के कारण या बुखार के कारण हो सकती है।

अम्ल-क्षार संतुलन (Acid-Base Balance) :

शरीर द्रवों का अम्ल-क्षार संतुलन उसकी रासायनिक प्रतिक्रिया को प्रभावित करता है। सामान्य रूप से शरीर द्रवों की प्रतिक्रिया किंचित क्षारीय होती है और यह जीवन भर बहुत कम बदलती है क्योंकि यही माध्यम या प्रतिक्रिया कोशिकाओं की क्रियाओं को प्रभावित करने वाले एन्जाइम्स के लिए उपयुक्त होती है। ये क्रियाएँ हैं : पाचन, भोज्य पदार्थों का वृद्धि के लिए या ऊर्जा तैयार करने के लिए उपयोग और व्यर्थ-पदार्थों को तैयार कर उनका उत्सर्जन। सामान्य रूप से शिराओं में बहने वाला रक्त, उसमें घुली हुई कार्बन डाइऑक्साइड तथा अन्य अम्लों के कारण धमनियों के रक्त से कुछ कम क्षारीय होता है। ऊतकों के बीच का द्रव तथा अन्तःकोशिकीय द्रव रक्त के समान ही होता है परन्तु कुछ अधिक क्षारीय होता है। यह संतुलन इनके द्रवों की कुछ प्रतिरोधक (Buffers) मात्रा में बनाया रखा जाता है। क्षार तथा प्रोटीन्स ऊतकों की गतिविधियों में बने हुए अम्लों को निष्प्रभावित करते हैं तथा रक्तअम्लता या कीटोसिस नहीं होने देते। इस अवस्था में यदि शरीर-द्रव सामान्य से कम क्षारीय हो जाता है तो मूर्च्छा और मृत्यु भी हो सकती है। (सामान्य औसत pH 7.4 होता है, देखिये अध्याय 1)। इसी प्रकार कार्बोनेट तथा क्लोराइड अम्ल शरीर द्रव के अधिक क्षारों को निष्प्रभावित कर देते हैं तथा रक्तक्षारता होने से बचाते हैं। यह रोग भी उपाय न करने पर घातक साबित हो सकता है। यह अवस्था सोडियम बाइ-कार्बोनेट जैसे लवण अधिक मात्रा में लेने से, या अधिक उल्टियों के कारण बहुत अम्ल निकल जाने से, या ऑपरेशन के बाद आमाशय में लगातार चूषण करने से, या श्वसनीय बीमारियों में, या गुर्दीय विफलता के कारण शरीर में क्षार जैसे पोटैशियम की सामान्य मात्रा रुक जाने से हो सकती है।

खनिज लवण (Mineral Salts)

खनिज पदार्थ पर किसी अम्ल की रासायनिक क्रिया द्वारा लवण बनते हैं, खनिज को लवण का क्षारक (Base) कहते हैं। सोडियम क्लोराइड या साधारण नमक

सोडियम पर हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की क्रिया से बनता है, कैल्सियम लैक्टेट कैल्सियम पर लैकटिक अम्ल की क्रिया से बनता है। विभिन्न लवण और उनसे निकले हुए आयन्स शरीर के लिए आवश्यक होते हैं। शरीर के प्रत्येक ऊतक और द्रव मे लवण होते हैं। सोडयिम, पोटेशियम तथा कैलसियम के क्लोराइड, कार्वोनेट और फॉसफेट शरीर के लिए विशेषरूप से महत्वपूर्ण होते हैं। लवण शरीर निर्माण के लिए आवश्यक होते है तथा वे ऊतको की क्रियाओ को नियन्त्रित करते हैं। इनसे ही शरीर को इलेक्ट्रोनाइट्स मिलते हैं जो शरीर द्रव मे धन तथा ऋण विद्युत आवेग प्रवाहित कराते है। शरीर के ऊतको व शरीर द्रवो मे सामान्य कार्य होने के लिए इलेक्ट्रोलाइट्स का सही सतुलन होना आवश्यक है। (देखिये अध्याय 1)

सोडियम (Sodium) सभी ऊतको मे होता है। शरीर मे यह सोडियम क्लोराइड के रूप मे रहता है और इसकी मात्रा 9 ग्राम प्रति लीटर तक हो सकती है (0 9 प्रतिशत)। सभी ऊतक द्रवो मे इसकी सान्द्रता इतनी ही होती है। सोडियम कार्बोनेट और सोडियम फॉस्फेट भी रक्त तथा ऊतको मे हमेशा विद्यमान होते हैं। कार्बोनेट्स के कारण रक्त क्षारीय होता है और ये कुछ क्षारीय सचय तैयार कर लेते हैं जो ईंधन के दहन से बनने वाले कार्बोनिक अम्ल को निष्प्रभावित कर देते हैं। फासफेट्स उन अम्लो को गुर्दो तक पहुँचाते हैं, जो शरीर बनाने वाले भोज्य पदार्थो के टूटने से बनते हैं। गुर्दे इन्हें उत्सर्जित कर देते हैं। ये हमे भोजन से मिलते हैं, विशेष रूप से प्राणीय भोज्य पदार्थों से और कुछ मात्रा मे खनिज-नमक से, यदि उसका उपयोग भोजन मे किया गया हो।

पोटेशियम (Potassium) सभी ऊतक कोशिकाओ मे होता है। रक्त और ऊतक-द्रव मे क्षार तथा ऋण आवेगयुक्त आॅयन बनाने वाले सोडियम का कार्य ऊतक कोशो मे पोटेशियम करता है। यह हमे भोजन से प्राप्त होता है, विशेषत वनस्पतीय भोजन से।

कैल्सियम (Calcium) सभी ऊतको मे होता है, विशेषत अस्थियो, दाँतो और रक्त मे। यह तन्तुओ के सामान्य कार्य के लिए भी आवश्यक होता है। यह दूध, अडे, पनीर और हरी सब्जियो से मिलता है। कुछ मात्रा मे यह भारी पानी से भी मिलता है, लेकिन यह अकार्बनिक प्रकार शरीर के लिए उतना उपयोगी नहीं होता जितने उपयोगी वनस्पतीय या प्राणीय भोज्य पदार्थों से मिलने वाले कार्बनिक लवण होते हैं। वयस्को को प्रतिदिन 400 से 500 मि ग्रा की आवश्यकता होती है।

लोह (Iron) लाल-रक्त-कणो मे हीमोग्लोबिन बनाने के लिए आवश्यक होता है। यह हरी सब्जियो से और विशेष रूप से पालक, पत्ता गोभी, अडे की जर्दी और लाल मास से मिलता है। पुरुषो को प्रतिदिन 10 मिलीग्राम और महिलाओ को 10 से 15 मि.ग्रा की आवश्यकता होती है।

फॉस्फोरस (*Phosphorus*) भी शरीर के ऊतकों को बनाने के लिए आवश्यक होता है, यह अंडे की जर्दी, दूध और हरी सब्जियों में मिलता है।

आयोडिन (*Iodine*) थाइरॉइड ग्रन्थि का स्रावण बनाने के लिए आवश्यक होता है। यह समुद्रीय भोज्य पदार्थों में मिलता है। उन हरी सब्जियों में भी होता है, जो इसे हवा में मौजूद समुद्री पानी की बारीक बूंदों में सोख लेती है, जिन्हें समुद्री हवाएँ अपने साथ जमीन की ओर लाती हैं।

कैल्सियम, लोहा और आयोडीन ही वे तत्व हैं जिनकी कमी हो सकती है। दूसरे लवण भोज्य-पदार्थों में पर्याप्त मात्रा में होते हैं।

विटामिन्स (Vitamins)

विटामिन्स वे पदार्थ हैं जो सामान्य स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं, यद्यपि ये शरीर के लिए ईंधन के रूप में या शरीर बनाने वाले तत्वों के रूप में बिलकुल उपयोगी नहीं होते। इनके अभाव में रोग उत्पन्न होते हैं, जो कमी से उत्पन्न बीमारियाँ (Deficiency diseases) कहलाते हैं। विटामिन्स जीवित भोज्य-पदार्थों में थोड़ी मात्रा में होते हैं। शरीर के लिए इनकी दैनिक आवश्यकता भी बहुत कम होती है। इनकी खोज सन् 1914 से 18 के विश्वयुद्ध के तुरन्त बाद की अवधि में हुई। चूंकि आरंभ में उनकी संरचना मालूम नहीं थी अतः उनके नाम वर्णमाला के अक्षरों पर रखे गये। आजकल विटामिन्स काफी मात्रा में संश्लेषित रूप से बनाये जा सकते हैं।

अधिकांश विटामिन्स अब पहचाने जा चुके हैं, लेकिन प्रायोगिक कार्य अब भी चल रहा है। विटामिन्स में मुख्य हैं विटामिन 'A', विटामिन 'B' कॉम्प्लैक्स, विटामिन 'C', विटामिन 'D', विटामिन 'E' तथा विटामिन 'K'।

विटामिन 'A' यह वसा में घुलनशील होने के कारण प्राणीय वसा में विद्यमान होता है। गाजर, हरी सब्जियों और पीले फलों में कैरोटिन नामक एक पदार्थ पाया जाता है जो उनमें सूर्य के प्रकाश की सहायता से उसी प्रकार तैयार होता है जिस प्रकार क्लोरोफिल। कैरोटिन विटामिन 'A' का पूर्वगामी रूप (Precursor) है और मनुष्य सहित सभी प्राणी अपने आहार में उपस्थित कैरोटिन को अपने शरीर में विटामिन A में बदल सकते हैं। इसकी कमी से वृद्धि अवरोध (Stunted growth) होता है तथा संक्रमण के प्रति प्रतिरोध की शक्ति कम हो जाती है। श्लैष्मिक झिल्लियाँ विशेषरूप से अस्वस्थ हो जाती हैं और जब आहार में विटामिन 'A' का अभाव होता है तो जीवाणु उन झिल्लियों को अपना शिकार बनाते हैं। आँख की बाहरी सतह कंजक्टिवा प्रभावित होकर कंजक्टिवाइटिस रोग का एक प्रकार **जीरॉपथेल्मिया** (Xeropthalmia) हो जाता है। इसके कारण कंजक्टिवा अपनी पारदर्शिता खो देता है और इसमें एक प्रकार का कड़कपन उत्पन्न हो जाता है।

रेटिना प्रभावित होकर रतौंधी (Night blindness) अर्थात् रात मे देख न पाने की बीमारी हो जाती है। बीमारी के इस लक्षण का पता विश्वयुद्ध मे 'ब्लैक आउट' की रातों मे तब कुछ लोगो को लगा, जब उन्होंने देखा कि वे अधेरे मे उतनी अच्छी तरह से नही देख पाते थे जितनी अच्छी तरह दूसरे देख लेते थे। यह लक्षण इसलिए पैदा हुआ था क्योंकि उनका आहार संतोपजनक नही था।

विटामिन B कॉम्प्लैक्स कई घटकों का बना होता है यद्यपि आरंभ मे लोग इसे एक ही पदार्थ समझते थे। ऐसा भ्रम इसलिए हुआ क्योंकि ये सभी घटक कुछ पदार्थों मे विशेषत अनाज की भूसी और अनाज के भ्रूण मे, दालो मे, खमीर (*Yeast*) और खमीर के सत्व मे पाये जाते थे। ये घटक कुछ कम मात्रा मे सब्जी, फल, दूध, अडा और मास मे भी पाये जाते हैं। सफेद आटे या उससे बनने वाली ब्रेड, केक या पेस्ट्री जैसे पदार्थों मे या पॉलिश किये हुए चावल या जौ मे ये तत्व नही होते है। इसलिए भूरी ब्रेड और दलिये (या बिना चोकर निकाले आटे) मे जो पोषक तत्व मौजूद होते है वे सफेद ब्रेड और छने हुए आटे (या मैदे) मे नही होते। इसलिए जब भोजन के रूप मे छने हुए आटे या मैदे या सफेद ब्रेड का ही प्रयोग होता है तब स्वास्थ्य गिर जाता है या कमी से उत्पन्न बीमारियाँ पैदा होती हैं। पिछले विश्व युद्ध मे कई युद्ध-बन्दी-शिविरो मे, विशेषत सुदूर-पूर्व के शिविरो मे ऐसी ही स्थिति हुई थी। विटामिन B कॉम्प्लेक्स के मुख्य घटक निम्नानुसार है

विटामिन B_1 (एन्यूरिन या थाइएमिन) यह कार्बोहाइड्रेट के चयापचय के लिए आवश्यक होता है और स्नायविक कोशिकाओं के पोषण पर नियत्रण रखता है। इसके स्पष्ट अभाव से बेरी-बेरी नामक रोग हो जाता है जिसमे स्नायुओं के प्रदाह के कारण *अगाघात* (*Paralysis*) हो सकता है तथा आतो की पेशियो की शक्ति और कार्य मे गिरावट आने के साथ कब्जियत होती है, जबकि रोगी भूख की कमी और पैरो मे जलन की शिकायत करता है।

विटामिन B_2 (राइबोफ्लैविन) यह कोशिका एन्जाइम्स के ठीक से काम करने के लिए आवश्यक होता है।

विटामिन B_3 (निकोटिनिक अम्ल) यह भी कार्बोहाइड्रेट के चयापचय के लिए आवश्यक होता है। इसकी कमी मे *पेलाग्रा* (*Pellagra*) नामक बीमारी हो जाती है जिसके कारण त्वचा पर दाने, आमाशय व आतो मे परिवर्तन तथा मानसिक परिवर्तन होते हैं।

विटामिन B_6 (पिरिडॉक्सिन) यह प्रोटीन चयापचय के लिए आवश्यक माना जाता है।

विटामिन B_{12} (सायनोकोबालामिन) यह एन्टि-एनीमिक पदार्थ या घटक है जो छोटी आँत मे विलाइ द्वारा सोखा जाता है और यकृत मे जमा होता है। इसका

सतोषजनक शोषण आमाशय के अस्तर द्वारा निर्मित इन्ट्रिन्सिक फैक्टर तथा हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की उपस्थिति मे ही होता है । विटामिन B_{12} लाल बोन मैरो मे लाल रक्तकणो की उचित वृद्धि के लिए आवश्यक होता है । इसके अभाव में या इसका ठीक प्रकार शोषण न होने पर प्राणघातक एनीमिआ होता है ।

फोलिक अम्ल (Folic acid) . यह भी विटामिन *B* कॉम्प्लेक्स का एक घटक है । यह भी लाल रक्त कणो की उचित वृद्धि के लिए आवश्यक होता है ।

विटामिन C विटामिन C या एस्कार्बिक एसिड पानी मे घुलनशील होता है । ताजे फलो मे, विशेषत नीबू वर्गीय फलो (सतरा, छोटा चकोतरा, नीबू), हरी सब्जियो तथा आलू मे पाया जाता है । यह ऊतको की श्वसनीय सक्रियता, घावो के ठीक होने तथा सक्रमण के प्रतिरोध के लिये आवश्यक होता है । इससे केशिकाओ की दीवारो की स्थिति भी प्रभावित होती है और आहार मे यह विटामिन पर्याप्त मात्रा मे न होने पर वे दीवारें असामान्य रूप से भुरभुरी हो जाती हैं । इसके अभाव से स्कर्वी नामक बीमारी हो जाती है । अत इसे स्कर्वी-निरोधक (Antiscorbutic) विटामिन कहते हैं । यह गर्म करने पर तुरन्त नष्ट हो जाता है इसलिए दैनिक आहार में कुछ ताजे फल और सलाद शामिल करना चाहिए । पत्तागोभी और दूसरी हरी सब्जियाँ विटामिन C का बहुत अच्छा स्रोत होने के साथ ही काफी सस्ती होती हैं । सलाद के रूप मे बारीक काट कर कच्ची खाने से वे स्वादिष्ट लगती हैं और उपयोगी भी बहुत होती हैं बशर्ते कि वे ताजी और खस्ता हो यह आवश्यक है । लम्बे समय तक पकाने से उनमे विटामिन C की मात्रा कम हो जाती है इसलिए पत्तागोभी को बारीक काटकर उबलते पानी मे सिर्फ तब तक पकाना चाहिए जब तक वह मुलायम न हो जाये, अर्थात् 10 से 15 मिनट ।

सामान्य स्थिति मे अच्छा मिश्रित भोजन करने पर, जिसमे ताजे फल और सब्जियाँ काफी मात्रा मे हो, विटामिन C को गोलियो के रूप मे लेना अनावश्यक ही नही अनुचित भी है ।

विटामिन D वसा मे घुलनशील होता है तथा विटामिन A के साथ प्राणीय वसा मे पाया जाता है, यदि वे प्राणी धूप मे रहे हो । कॉडलिवर ऑइल तथा हेलिबट लिवर ऑइल मे यह काफी मात्रा मे होता है । हेलिबट ऑइल कम मिलता है और महँगा होता है, लेकिन इसमे विटामिन 'D' की मात्रा अधिक रहती है । अत. यह उन लोगो के लिए उपयोगी होता है जो कॉडलिवर ऑइल नही पचा पाते । विटामिन 'D' त्वचा मे उपस्थित अर्गोस्टेरॉल (Ergesterol) पर अल्ट्रावाइलेट किरणो की क्रिया से भी बनता है । इसके अलावा वसा के स्टेरॉल पर अल्ट्रावाइलेट किरणो की क्रिया से भी इसे बनाया जा सकता है । इस क्रिया से तैयार होने वाले पदार्थ का नाम कैलसिफेरॉल है और यह गोलियो के रूप में

मिलता है, यह प्राणीय वसा से मिलने वाले विटामिन D जैसा ही होता है और बीमारी या संकटावस्था मे उपयोग मे लिया जा सकता है। यह अस्थियो और दांतो के विकास के लिए आवश्यक होता है क्योकि यह कैलसियम तथा फॉसफोरस के शोषण को प्रभावित करता है। विटामिन D के अभाव मे रिकेट्स नामक बीमारी होती है। अत इसे एन्टिरैकिटिक विटामिन कहते हैं। इग्लैण्ड जैसे देश के औद्योगिक क्षेत्र मे रहने वाले उन गरीबो मे यह बीमारी अक्सर पाई जाती थी जो मक्खन को जगह मार्गरीन खाया करते थे और जिन्हें धूप भी बहुत कम मिलती थी, उसके बाद से इस विटामिन को बनाने की आधुनिक पद्धति के कारण अब इसे मार्गरीन मे मिलाया जा सकता है। इसका परिणाम यह निकला है कि इन देशो में अब रिकेट्स नामक बीमारी पूर्णत समाप्त हो गई है क्योकि वहाँ मार्गरीन बनाने वाले सभी उत्पादकों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि मार्गरीन मे विटामिन D मिलायें।

विटामिन E. यह वनस्पतीय तेलो मे होता है। यह अन्न मे भी होता है। चूहो मे यह प्रजनन के लिए आवश्यक होता है यह बात प्रयोगो द्वारा दिखाई जा चुकी है। मनुष्य मे इसके महत्व के बारे मे बहुत कम ज्ञात है।

विटामिन K यह वसा मे घुलनशील होता है तथा हरी सब्जियो और लीवर मे भी मिलता है। जिन लोगो मे इस विटामिन का अभाव होता है उनमे रक्तस्राव की प्रवृति दिखाई पडती है क्योकि विटामिन K रक्त मे प्रोथ्रॉम्बीन बनाने मे मदद करने वाला तत्व है। यह आतो मे जीवाणुओ की क्रिया से सश्लेषित किया जाता है।

सामान्य भोजन मे विभिन्न विटामिन्स की मात्राओ की आवश्यकता मिलीग्राम्स मे नापी जाती है, और डॉक्टर के नुस्खे के अनुसार शुद्ध विटामिन्स उतनी मात्रा मे दिये जा सकते हैं।

भोजन का अपाच्य भाग (Roughage)

भोजन मे सेल्यूलोज भी होना चाहिये। यह अपाच्य होता है और इसलिए यह बडी आत मे रहता है और उसे खाली होने के लिए प्रेरित कर मल उत्सर्जन मे सहायता करता हे। इसको अपाच्य भाग या रफिज़ कहते हैं। सेल्यूलोज पौधो का रेशेदार भाग बनाता है और सभी हरी सब्जियो, फलो, मटर और सेम के आवरणो, मोटे आटे और रोटी मे होता है। इसलिए कब्जियत रोकने के लिए ये पदार्थ खाना आवश्यक है।

आहार (Diet)

किसी व्यक्ति के लिए प्रतिदिन आवश्यक खाद्य पदार्थों की मात्रा को आहार कहते हैं। मनुष्य को मिश्रित आहार की आवश्यकता होती हे अर्थात् ऐसे आहार

की जिसमे विभिन्न प्राणीय तथा वनस्पतीय भोज्य पदार्थ सम्मिलित हो क्योकि किसी भी एक भोज्य पदार्थ मे स्वास्थ्य के लिए जरूरी सभी पोषक तत्त्व आवश्यक अनुपात मे मौजूद नही होते । दूध और ऑइस्टर (समुद्र मे पायी जाने वाली बडी सीप मे रहने वाले प्राणी जिनकी एक जाति मोती बनाती है) मे सभी पोषक तत्त्व मौजूद होते हैं परन्तु वे उस अनुपात मे नही होते जिसमे हमे उनकी आवश्यकता होती है । गाय के दूध मे औसत रूप मे निम्न पदार्थ होते हैं

प्रोटीन (केसिनोजन, लेक्टैलबुमिन)	4 प्रतिशत
लैक्टोज़	4 से 5 प्रतिशत
वसा	3 5 प्रतिशत
खनिज लवण	0 7 प्रतिशत
पानी	87 से 88 प्रतिशत

उचित रूप से सतुलित आहार मे विभिन्न भोज्य-पदार्थ निम्न अनुपात मे होना चाहिये 1 भाग प्रोटीन, 1 भाग वसा व 4 भाग कार्बोहाइड्रेट । इसके अतिरिक्त आहार मे विभिन्न विटामिन्स भी अल्पमात्रा मे होने चाहिये । विशेषज्ञो द्वारा तय की गई प्रतिदिन की मानक आवश्यकताऍ निम्नानुसार है

प्रोटीन	46 से 56 ग्राम
वसा	66 से 80 ग्राम अथवा आहार की कुल कैलोरी का चौथाई
कार्बोहाइड्रेट	300 से 400 ग्राम अथवा आहार की कुल कैलोरी का 50 से 60 प्रतिशत

जब यह बात मान ली गई है कि 50 ग्राम प्रोटीन तथा 70 ग्राम वसा युक्त आहार लेकर स्वास्थ्य बनाये रखा जा सकता है । ये पदार्थ कम मिलते है और महगे है और अधिकतर प्राणियो से प्राप्त होते है । भारी कार्य करने वालो के लिए, फिर वे श्रम करने वाले मजदूर हो या कठिन श्रम करने वाले खिलाडी हो, प्रोटीन अधिक मात्रा मे आवश्यक होता है । गर्भवती स्त्रियो के लिए तथा बढते हुए बच्चो के लिए भी विशेषत किशोरावस्था के अतिम वर्षो मे, प्रोटीन की अधिक आवश्यकता होती है । गर्भवती स्त्रियो मे ऊतक तेजी से टूटते है जबकि किशोरो मे शरीर के सामान्य कार्यो मे होने वाली कोशिकाओ की टूट-फूट की मरम्मत के अलावा शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक ऊतको को बनाने के लिए भी प्रोटीनस की बहुत आवश्यकता होती है । ठडे प्रदेशो मे रहने वाले लोगो को अधिक वसा चाहिये और वसा तब भी अधिक चाहिये जब ज्यादा शक्ति की जरूरत हो क्योकि वसा का पाचन और शोषण धीरे होता है । जब भोजन के रूप मे अधिक कैलोरीज आवश्यक हो तो उनकी आधी मात्रा वसा से प्राप्त करनी चाहिये अन्यथा आहार बहुत भारी हो जायेगा । बहुत से अविकसित और घनी

आबादी वाले देशों में प्राणीय प्रोटीन तथा वसा अभाव मे लोगो के स्वास्थ्य का स्तर ही कम नही है, मृत्यु दर भी विशेषत छोटे आयु समूहो मे, काफी अधिक है।

आहार में कार्बोहाइड्रेट की मात्रा ऊर्जा उत्पादन पर निर्भर करती है। कठिन शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति को बैठक का कार्य करने वाले व्यक्ति से अधिक कार्बोहाइड्रेट्स की आवश्यकता होती है।

आहार का कैलोरी मूल्य (Caloric value of Diet) :

किसी भोज्य-पदार्थ का मूल्य उसके दहन होने पर उससे पैदा होने वाली उर्जा की मात्रा मे आँका जाता है। ऊर्जा को कैलोरीज़ मे, जिन्हें अब किलो-कैलोरीज कहा जाता है, नापा जाता है। एक कैलोरी (वास्तव मे किलो कैलोरी) उष्मा की वह मात्रा है जो 1 लिटर पानी का तापक्रम 1° सेंटिग्रेड बढाने के लिए आवश्यक होती है। हर भोज्य-पदार्थ का कैलोरी मूल्य हम जानते है और वह निम्नानुसार है ·

1 ग्राम प्रोटीन का उष्मा के हिसाब से मूल्य	4 कैलोरी होता है।
1 ग्राम कार्बोहाइड्रेट का उष्मा के हिसाब से मूल्य	4 कैलोरी होता है।
1 ग्राम वसा का उष्मा के हिसाब से मूल्य	9 कैलोरी होता है।

औसत आहार का कैलोरी मूल्य 2500 से 3000 कैलोरी प्रतिदिन होना चाहिये। मेहनत का काम करने वाले आदमी को 3300 कैलोरी की आवश्यकता होगी। बैठे हुए काम करने वाले व्यक्ति को लगभग 2850 कैलोरी की आवश्यकता होगी। एक स्त्री को लगभग 2200 कैलोरी की आवश्यकता होगी।

किसी व्यक्ति को आहार मे कितनी कैलोरी मिलनी चाहिये वह निम्न बातो पर निर्भर करता है

1 *आयु (Age)* बच्चो को अपने वजन के अनुपात मे बडो की तुलना मे अधिक खाना चाहिये क्योकि उन्हें आहार सामान्य क्रियाओ के लिए ही नही, बल्कि वृद्धि के लिए भी आवश्यक होता है। शिशु को तो 50 कैलोरी प्रति पौंड (लगभग 455 ग्राम) वजन के हिसाब से आवश्यकता होती है। उनको ईंधन के रूप मे काम मे आने वाले भोज्य-पदार्थो की तुलना मे प्रोटीन की आवश्यकता अधिक होती है क्योकि वे तेजी मे बढते हैं।

2 *व्यायाम (Exercise)* व्यायाम के अनुपात मे आहार की आवश्यकता होती है।

3 *लिंग (Sex)* पुरुषो को स्त्रियो से अधिक आहार की आवश्यकता होती है, स्त्रियो को पुरुषो की तुलना मे 4/5 आहार की आवश्यकता होती है।

16 से 18 वर्ष की आयु के किशोरो को वयस्क पुरुषों से 1/5 भाग भोजन अधिक चाहिये । इसी आयु समूह की किशोरियो को भी किशोरो के बराबर ही भोजन की आवश्यकता होती है क्योकि इस अवस्था मे शारीरिक क्रियाओ मे खर्च होने वाली ऊर्जा के लिए आवश्यक भोजन के अतिरिक्त तेजी से होने वाली वृद्धि नया विकास के लिए भी भोजन आवश्यक होता है।

4 *भार तथा आकार (Weight and build)* · व्यक्ति का वजन जितना अधिक होगा उतना ही अधिक भोजन उसे चाहिये बशर्ते कि यह अधिक भार वसा के कारण न हो ।

5 *ऋतु और मौसम (Climate and weather)* · गर्म ऋतु मे या गर्म मौसम होने पर कम कैलोरी के आहार की आवश्यकता होती है।

6 *स्वभाव (Temperament)* शात व्यक्ति को उत्तेजनशील व्यक्ति की तुलना मे कम भोजन की आवश्यकता होती है।

20. अंतःस्रावी ग्रन्थियां
Endocrine Glands

अंत स्रावी ग्रन्थियाँ वे अग हैं जो *हॉर्मोन्स* नामक स्रावणो का निर्माण करते हैं, ये हॉर्मोन्स ग्रन्थिय कोशिकाओ से प्रत्यक्ष रूप से रक्तप्रवाह मे पहुँचाये जाते हैं। इसी कारण इन्हें *वाहिकाविहीन (Ductless)* ग्रन्थियाँ भी कहते हैं।

हॉर्मोन्स कार्बनिक यौगिक पदार्थ हैं जिनका निर्माण रक्त मे उपस्थित पदार्थों से ग्रन्थियो द्वारा होता है। ये मुख्यतया प्रोटीन यौगिक हैं, लेकिन कुछ स्टॅरॉइड्स भी होते हैं। ये बहुधा रक्त प्रवाह द्वारा शरीर के अन्य भागो मे ले जाये जाते हैं जहाँ ये अपना विशिष्ट प्रभाव पैदा करते हैं।

हालांकि अंत स्रावी ग्रन्थियो का परीक्षण एव वर्णन पृथक्-पृथक् रूप मे किया जाता है लेकिन वास्तव मे इनके कार्य एक दूसरे से नज़दीकी रूप से सम्बन्धित हैं। प्रारम्भ में हॉर्मोन्स के कार्यों का वर्णन बीमारी के प्रभावो, ग्रन्थियो के नष्ट होने या उनकी अतिवृद्धि के प्रभावो को देखकर किया जाता था। हाल ही के वर्षों मे हॉर्मोन्स को पृथक् किया जा चुका है, शुद्ध रूप मे प्राप्त किया गया है, विश्लेषण किया जा चुका है और कुछ मामलो मे सफलतापूर्वक सश्लेषित भी किया जा चुका है। ग्रन्थियाँ हॉर्मोन्स निरंतर रूप से स्रावित करती रहती हैं लेकिन शरीर की आवश्यकताओ के अनुसार स्रावण की मात्रा कम या ज्यादा हो सकती है। हॉर्मोन्स के स्रावण का नियत्रण विभिन्न प्रकारो से होता है

1. स्नायु कोशिकाएँ ऐसे रासायनिक पदार्थों का निर्माण करती हैं जो ग्रन्थि तक पहुँचकर स्रावण पैदा करते हैं।

2 ऑटोनॉमिक स्नायविक तत्र से आने वाले आवेगो के प्रति ग्रन्थि प्रतिक्रिया दर्शाती है।

3 एक ग्रन्थि हॉर्मोन पैदा करती है जो दूसरी ग्रन्थि को भी प्रभावित करता है। दूसरी ग्रन्थि अपना हॉर्मोन पैदा करती है जो पहली ग्रन्थि के स्रावण पर प्रभाव डालता है। इसे 'प्रतिपुष्टि' क्रियाविधि *(Feed-back mechanism)* कहते हैं।

4 हॉर्मोन्स के अलावा अन्य पदार्थों के रक्त स्तर के प्रति ग्रन्थि प्रतिक्रिया करती है।

हाइपोफिसिस (The Hypophysis)

हाइपोफिसिस, अर्थात् पिट्यूटरि (पीयूष) ग्रन्थि खोपड़ी के निचले भाग की स्फीनॉइड अस्थि के हाइपोफिसिअॅल गड्ढे मे स्थित रहती है यह मस्तिष्क के तल वाले भाग पर आप्टिक काएज़्मा मे न्यूरल स्टाक द्वारा जुड़ी रहती है।

यह ग्रन्थि *अगले खण्ड* (*Anterior lobe*), या एडीनोहाइपोफिसिस और *पिछले खण्ड* (*Posterior lobe*), या न्यूरल लोब् की बनी होती है। अगला खण्ड अपने वास्तविक अर्थ मे अन्त स्रावी ग्रन्थि है, जबकि पिछला खण्ड मस्तिष्क मे सम्बन्धित रहता है और स्नायविक ऊतक का बना होता है, यह प्रत्यक्ष रूप से हाइपोथैलेमस से जुड़ा रहता है। ये दानो खण्ड मुख्य रूप मे दो भिन्न-भिन्न अत स्रावी ग्रन्थियाँ है और इन्हें सामान्यतया अग्र एव पश्च पिट्यूटरि ग्रन्थियाँ भी कहते है।
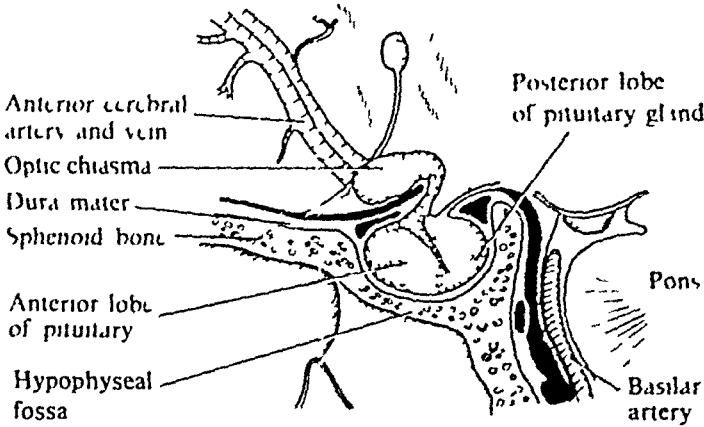
चित्र 150—काट मे दर्शाते हुए पिट्यूटरि ग्रन्थि जो सेला टर्सिका या हाइपोफिसिअॅल गड्ढे मे स्थित है। ध्यान दीजिये यह स्टाक द्वारा मस्तिष्क के तल वाले भाग से जुड़ी है।

हाइपोफिसिस के अग्र खण्ड को कभी-कभी अन्त स्रावी तत्र की 'स्वामी ग्रन्थि' (*Master gland*) के रूप मे माना जाता है क्योंकि अन्य ग्रन्थियो के कार्य को नियत्रित करने मे इसका महत्वपूर्ण प्रभाव है। तथापि, ये ग्रन्थियाँ वास्तव मे सगठित रूप मे कार्य करती है, यदि अन्य ग्रन्थियाँ पर्याप्त रूप से निर्माण कार्य नही कर रही है तो कोई एक ग्रन्थि सक्रिय हो जाती है और जब अन्य ग्रन्थियाँ सक्रिय हो जाती है तो हॉर्मोन्स का निर्माण कम हो जाता है।

अगला खण्ड कई हॉर्मोन्स का निर्माण करता है

1 *थाइरॉइड-उत्तेजक हॉर्मोन* (*Thyroid-Stimulating harmone-TSH* या *थाइरोट्रॉफिक हॉर्मोन*) थाइरॉइड ग्रन्थि के कार्य के सभी पहलुओ, जैसे आयोडीन को थाइरॉइड हॉर्मोन मे बदलने के लिए ग्रन्थि मे आयोडीन के सग्रह कार्य को उत्तेजित करने तथा हॉर्मोन के निर्माण और रक्तपरिसचरण मे उसके प्रवाह को प्रभावित

करता है। थाइरॉइड ग्रन्थि पर TSH की क्रिया के माध्यम से यह चयापचयी दर के नियत्रण, वसा के विभाजन और कुछ ऊतकों की पानी की मात्रा बढाने से सम्बन्धित रहता है।

2 एड्रीनोकॉर्टिकोट्रॉफिक हॉर्मोन (*Adrenocorticotrophic hormone ACTH*) सुप्रारीनल ग्रन्थियों के विकास, रक्त-स्राव एव स्रावण को नियत्रित करता है। इस हॉर्मोन के सामान्य चयापचयी प्रभावों के अन्तर्गत वसा का सघटन, हाईपोग्लाइसीमिआ का निर्माण और पेशीय ग्लाइकोजन मे वृद्धि सम्मिलित है।

3 सोमेटोट्रॉफिक (वृद्धि) हॉर्मोन (*Somatotrophic-growth-hormone*) मुख्यतया शरीर के ठोस ऊतकों पर प्रभाव डालता है, हालांकि मुलायम ऊतको पर भी कुछ प्रभाव होता है। यह हॉर्मोन वृद्धि की दर बढाता है और जब एक बार परिपक्वता की स्थिति निर्मित हो जाती है तो उसे बनाये रखता है। यह एपिफिसिस और अस्थि तत्र के अन्य अस्थि-विकास केन्द्रो पर वृद्धि दर को नियत्रित करता है। इस हॉर्मोन के अतिस्रावण (Oversecretion) से बालकों की लम्बी अस्थियो मे अत्यधिक वृद्धि (जाइगेन्टिज्म-Gigantism) और वयस्को मे एक्रोमेगॅलि (Acromegaly) नामक स्थितियाँ पैदा हो जाती है। एक्रोमेगॅलि मे अस्थियाँ लम्बाई मे नही बढ पाती है क्योंकि एपिफिसिॲल प्लेट्स जुडकर बद हो जाती है अत अस्थियाँ मोटी एव खुरदुरी हो जाती है, निचला जबडा, हाथ एव पॉव विशेष रूप से प्रभावित होते है। वृद्धि हॉर्मोन के अल्प-स्रावण (Undersecretion) मे ड्वार्फिज्म (Dwarfism) नामक स्थिति पैदा होती है। ऐसे व्यक्ति जो इस हॉर्मोन के अति-स्रावण या अल्प-स्रावण के कारण बहुत छोटे या बहुत लम्बे होते है वे प्राय सामान्य बुद्धि वाले रहते है, जबकि थाइरॉइड ग्रन्थि के अल्प-स्रावण से पीडित व्यक्तियों मे ऐसा नही रहता है। इस हॉर्मोन के चयापचयी प्रभावों के अन्तर्गत एमिनो एसिड्स मे कार्बोहाइड्रेट्स के परिवर्तन मे वृद्धि और कोशिकाओ द्वारा एमिनो एसिड्स के अन्तर्ग्रहण मे वृद्धि, सग्रह क्षेत्रो से वसा के सघटन, बढा हुआ वसा चयापचय एव रक्त शर्करा स्तर मे वृद्धि सम्मिलित है।

4 फॉलिकल-उत्तेजक हॉर्मोन (*Follicle-stimulating hormone-FSH*) स्त्रियो मे ओवॅरिॲन फॉलिकल्स की परिपक्वता और पुरुषों मे शुक्राणुओ (Sperms) के निर्माण को नियत्रित करता है।

5 ल्यूटीनाइजिंग हॉर्मोन (*Luteinizing hormone-LH*) महिलाओं मे परिवर्तन करता है जिससे कॉर्पस ल्यूटीअम का निर्माण होता है, यह स्तनो को दुग्ध-स्रावण के लिये तैयार करने मे भी सहायता करता है। पुरुषो मे इसी प्रकार के हॉर्मोन को इन्टरस्टिशिअॅल कोशिका उत्तेजक हॉर्मोन (Interstitial cell stimulating hormone ICSH) कहते हैं जो टेस्टीज (वृषण) पर क्रिया करता है और पुरुष सेक्स हॉर्मोन-टेस्टोस्टॅरॉन के स्रावण को नियत्रित करता है।

6 लेक्टोजेनिक हॉर्मोन (प्रोलैक्टिन) (*Lactogenic hormone-Prolactin*) स्तनो द्वारा दूध के निर्माण मे सलग्न कई हॉर्मोन्स मे से यह एक हॉर्मोन है, और इसका कार्य सिर्फ महिलाओ मे ही रहता है।

हाइपोफिसिस का पिछला खण्ड दो हॉर्मोन्स का स्रावण करता है, लेकिन यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि इनका निर्माण हाइपोथेलॅमस मे होता है और पिछले खण्ड मे सिर्फ इनका संग्रह और यहाँ मे प्रवाह होता है।
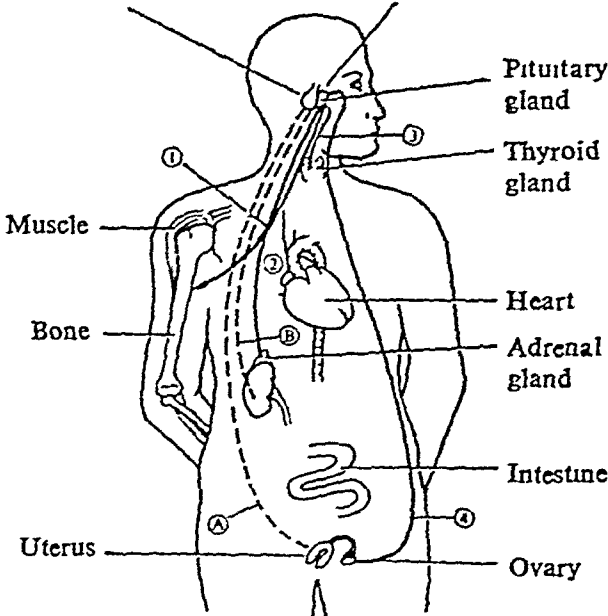
चित्र 151–पिट्यूइटरी हारमोन्स के प्रभाव दर्शाने वाला चित्र। चित्र के अक्षरो व अकों का सम्बन्ध पिट्यूइटरी ग्रन्थि की तालिका मे है।

1. ऑक्सिटोसिन (*Oxytocin*) अपना प्रभाव मुख्यतया गर्भस्थ गर्भाशय की अनस्ट्राइप्ड पेशी और स्तनों की वाहिकाओ के आसपास की कोशिकाओ पर डालता है, हालाकि यह सम्पूर्ण शरीर की अनस्ट्राइप्ड पेशी के व्यापक संकुचन को भी बढाता है।

2 एन्टिडायूरेटिक हॉर्मोन (वासोप्रेसिन) (*Antidiuretic hormone-vasopressin*) गुर्दीय नलिकाओ (Tubules) द्वारा पानी के पुन शोषण को बढाता है ताकि कम मूत्र उत्सर्जित हो। इस ADH के अल्प-स्रावण से पानी का पुन शोषण कम होता है और बहुत ही पतले मूत्र की अत्यधिक मात्रा उत्सर्जित होती है—इस स्थिति को डाइबीटीज़ इन्सिपिड्स (Diabetes insipidus) कहते हैं। यह हॉर्मोन कुछ मात्रा मे वाहिकासकुचन (vasoconstriction) भी पैदा करता है, फलस्वरूप रक्तचाप बढ जाता है, लेकिन मनुष्य मे यह वाहिकासकुचन मुख्यतया कॉरोनरी रक्तवाहिकाओ मे होता है।

तालिका 15

पिट्यूटरि हॉर्मोनस की क्रिया
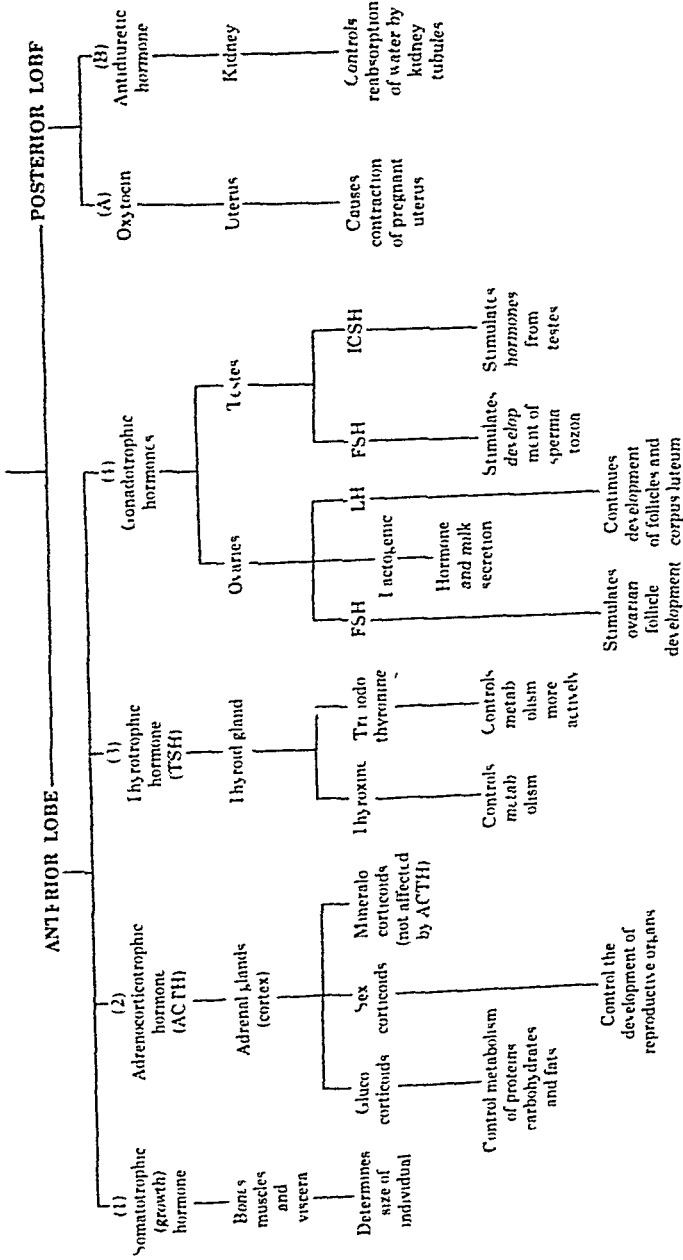
थाइरॉइड ग्रन्थि (Thyroid Gland)

थाइरॉइड ग्रन्थि गर्दन के सामने और आजू-बाजू निचले सरवाइकल एव पहले थॉरेमिक वर्टिब्रा के ठीक सामने स्थित रहती है। यह दो खण्डो की बनी होती है जो गर्दन के दोनो तरफ स्थित रहते है और सँकरे भाग द्वारा जुडे होते है, इसे इस्थमस (Isthmus) कहते है और यह लैरिन्क्स के ठीक नीचे ट्रेकिआ (श्वासनाल) के सामने क्रॉस होता है। यह ग्रन्थि कई बंद फॉलिकल्स (*Follicles*) की बनी होती है जिसमे पीला अर्द्ध-द्रव पदार्थ रहता है, इस पदार्थ को *कोलॉइड* (*Colloid*) कहते है।

इस ग्रन्थि की कोशिकाएँ *थाइरॉक्सिन* नामक हॉर्मोन स्रावित करती हैं जो यदि आवश्यकता हुई तो सीधे रक्त प्रवाह मे चला जाता है या प्रोटीन पदार्थ *थाइरो-ग्लॉब्यूलिन* से जुडकर कोलॉइड मे सग्रहित हो जाता है। टाइरोसिन नामक एमिनो एसिड और खनिज आयोडीन दोनो ही थाइरॉक्सिन निर्माण के लिए आवश्यक होते है।

थाइरॉक्सिन का कार्य ऊतको मे होने वाले चयापचय का नियत्रण करना है। वृद्धि-हॉर्मोन के साथ यह मस्तिष्क का उचित विकास करता है, मूत्र के निर्माण को बढाता है, प्रोटीन के विभाजन और कोशिकाओ के द्वारा ग्लूकोज के अन्तर्ग्रहण को बढाता है। इसका दूसरा हॉर्मोन ट्राइ-आयोडोथाइरोनिन हालाकि थाइरॉक्सिन के समान ही रहता है लेकिन इसका प्रभाव तुरत होता है।
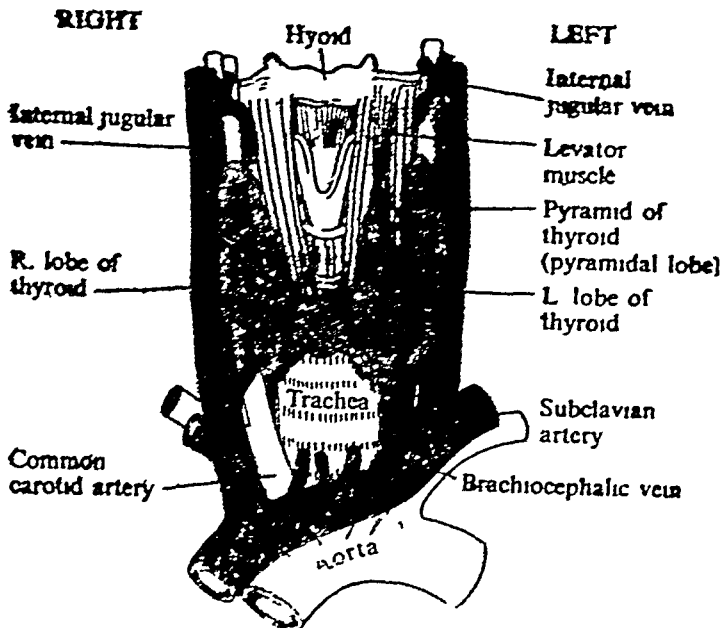
चित्र 152—थाइरॉइड ग्रन्थि।

बालकों मे थाइरॉइड हॉर्मोन्स के अल्प-स्रावण मे *थाइरॉइड क्रेटिनिज्म* (*Thyroid cretinism*) नामक स्थिति पैदा हो जाती है जिसका यदि उपचार नहीं किया गया तो मानसिक रूप से क्षीण ड्वार्फिज्म हो जाता है। वयस्कों मे अल्प-स्रावण से *मिक्सडीमा* नामक स्थिति पैदा होती है। इन दोनों ही स्थितियों मे त्वचा शुष्क एव रूक्ष तथा बाल शुष्क, खुरदुरे एव पतले हो जाते है। चयापचयी दर कम हो जाती है इसलिए रोगी मोटा दिखाई देता है और शरीर का तापक्रम कम हो जाता है तथा उसे ठड महसूस होती है। इस हार्मोन के अति-स्रावण मे *थाइरोटॉक्सिकोसिस* (*Thyrotoxicosis*) नामक स्थिति पैदा हो जाती है, यह वह स्थिति है जिसमे चयापचयी दर बढ जाती है। रोगी चिन्तित और बेचैन हो जाता है तथा नाडी की गति बढ जाती है। त्वचा मुलायम एव गीली रहती है तथा रोगी गरमी महसूस करता है और अच्छी भूख के बावजूद वजन कम होने लगता है। उसमे आँखें बाहर की ओर उभरी हुई (एक्ज़ॉफ्थैल्मॅस नामक स्थिति) दिखती या नहीं भी दिखती है।

इस ग्रन्थि मे हुई किसी भी वृद्धि को गॉइटर (*Goitre*) कहते है और यह हाइपरथाइरॉइडिज्म के बिना या सहित भी हो सकती है। गॉइटर की उपस्थिति से श्वासनाल या रीकॅरन्ट लैरिन्जिअल स्नायु पर दबाव पडने के कारण आवाज़ मे कर्कशता हो सकती है।
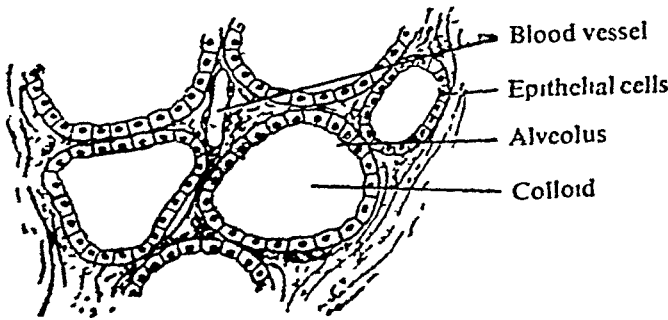
चित्र 153–थाइरॉइड फॉलिकल्स।

पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ (Parathyroid Glands)

पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ प्राय थाइराइड ग्रन्थि के दोनों खण्डों की पिछली किनारों और उसके कैप्स्यूल के बीच स्थित रहती है। ये मटर के दाने के आकार की होती है और सख्या मे प्राय चार रहती है—प्रत्येक खण्ड के पीछे दो। यह सख्या कभी-कभी भिन्न भी हो सकती है।

ये ग्रन्थियाँ पेराथॉर्मोन (*Parathormone*) नामक हॉर्मोन स्रावित करती है जो शरीर मे कैल्सिअम और फॉस्फोरस के वितरण एव चयापचय को नियन्त्रित करता है।

इस हार्मोन के अति-स्रावण से अस्थियो मे कैल्सिअम रक्त मे चला जाता है जहाँ से यह मूत्र मे उत्सर्जित हो जाता है। अस्थियाँ छिद्रमय एव भुरभुरी हो जाती है और रक्त कैल्सिअम के स्तर मे वृद्धि के कारण गुर्दो मे पथरियाँ (Renal calculi) बन सकती है। इस हार्मोन के अल्प-स्रावण से रक्त कैल्सिअम स्तर कम हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप पेशीय कडकपन और ऐंठन हो जाती है, यह स्थिति टेटॅनी (*Tetany*) नामक बीमारी मे दिखाई देती है। यह जटिलता थाइरॉइड ग्रन्थि की शल्य क्रिया के बाद भी दिखाई देती है, जिसके दौरान पेराथाइरॉइड ग्रन्थियाँ अनजाने मे या असावधानीवश निकल जाती हैं। इस स्थिति के उपचार हेतु कैल्सिअम दिया जाता है।

सुप्रारीनॅल ग्रन्थियां (Suprarenal Glands)

सुप्रारीनॅल (एड्रीनल) ग्रन्थियाँ प्रत्येक गुर्दे के ऊपरी एव सामने के भाग पर पेरिटोनिअम के पीछे स्थित रहती है। ये एरीओलर ऊतक से घिरी रहती है और इसमे वसा की पर्याप्त मात्रा होती है। प्रत्येक ग्रन्थि दो बिलकुल भिन्न अतस्रावी ग्रन्थियो की बनी होती है। बाह्य भाग कॉर्टेक्स और आन्तरिक भाग मेड्यूला कहलाता है।

कॉर्टेक्स (Cortex) :

कॉर्टेक्स तीन क्षेत्रो मे विभाजित रहता है बाहरी क्षेत्र (outer zone) मिनरलो-कॉर्टिकॉइड्स, मध्य क्षेत्र (Middle zone) ग्लूकोकॉर्टिकॉइड्स और आन्तरिक क्षेत्र (Inner zone) सेक्स हॉर्मोन का निर्माण करता है।

मिनरलोकॉर्टिकॉइड्स (Mineralocorticoides) स्टॅरॉइड्स है जो इलेक्ट्रोलाइट चयापचय को नियत्रित करते हैं। एल्डोस्टेरॉन एक महत्वपूर्ण मिनरलोकॉर्टिकॉइड है और शरीर-द्रवो मे खनिज पदार्थों विशेष रूप से सोडियम एव पोटेशिमय की अपेक्षाकृत सान्द्रताओ पर नियत्रक प्रभाव डालता है। इसलिए यह ऊतको की पानी की मात्रा भी प्रभावित करता है। जब तक हॉर्मोन की कमी रहती है तब सोडियम एव क्लोराइड आॅयन का उत्सर्जन बढ जाता है, मूत्र के रूप मे शरीर से पानी की अधिक मात्रा नष्ट होने लगती है और रक्त मे सोडियम, क्लोराइड एव बाइकार्बोनेट की सान्द्रता कम हो जाती है, फलस्वरूप pH भी कम हो जाता है (अर्थात् रक्त-अम्लता)।

ग्लूकोकॉर्टिकॉइड्स (Glucocorticoides) कार्बोहाइड्रेट चयापचय के लिए आवश्यक है। यह यकृत द्वारा सग्रह के लिए प्रोटीन को ग्लाइकोजन मे परिवर्तित करता है (ग्लूकोनिओजेनेसिस) और कोशिकाओ द्वारा ग्लूकोज़ के उपयोग को कम करता है, इस प्रकार रक्त शर्करा स्तर बढ़ जाता है। कॉर्टिसोन, कॉर्टिसॉल (हाइड्रो-कॉर्टिसोन) एव कॉर्टिकोस्टॅरॉन प्रारभिक ग्लूकोकॉर्टिकॉइड्स है और इन्हें उन रोगियो

को दिया जा सकता है जिन्हें दीर्घ प्रदाहात्मक एवं एलर्जिक बीमारियाँ हैं, जैसे रुमैटॉइड आर्थ्राइटिस में, क्योंकि स्टॅरॉइड्स शरीर की प्रदाह-विरोधी एवं सुधार की क्रिया-विधियों को उत्तेजित करते है। किसी भी प्रकार का दीर्घ तनाव ग्लूकोकॉर्टिकॉइड्स के निर्माण को बढाता है जो इस तनाव का प्रतिरोध करने मे शरीर की सहायता करता है; तथापि, ग्लूकोकॉर्टिकॉइड्स के निरंतर बढते हुए स्तर मे अल्सर बनने की संभावना बढती है, रक्तचाप बढता है और लिम्फेटिक ऊतक की क्षति के कारण संक्रमण के प्रति शरीर का प्रतिरोध भी कम हो जाता है।

सेक्स हॉर्मोन्स (*Sex hormones*) एन्ड्रोजेन्स (पुरुष सेक्स हॉर्मोन्स) एवं इस्ट्रोजेन्स (महिला सेक्स हॉर्मोन्स) हैं और इनका प्रभाव टेस्टीज़ (वृषण) एवं डिम्ब द्वारा स्रावित हॉर्मोन्स के समान ही होता है। सुप्रारीनल ग्रन्थियों मे बनने वाले एन्ड्रोजेन्स एवं इस्ट्रोजेन्स दोनो ही सेक्स मे बहुत अल्प मात्रा मे स्रावित होते हैं तथा ये पुरुष एवं महिलाओं के प्रजनन अंगों के कार्य और उनकी शारीरिक एवं स्वभावागत विशेषताओं को प्रभावित करते हैं। इनके प्रभाव तब स्पष्ट दिखाई देते हैं जब इनका अतिस्रावण होता है, उदाहरणार्थ, महिला मे होने वाला सुप्रारीनॅल ट्यूमॅर उसमे पुरुष से सम्बन्धित द्वितीयक विशेषताएँ जैसे चेहरे पर बालों की वृद्धि और आवाज मे भारीपन पैदा कर सकता है।

कॉर्टिकल हॉर्मोन्स के अल्प-स्रावण से एडिसॅन बीमारी नामक स्थिति पैदा हो जाती है जो एनीमिआ, पेशीय कमजोरी, कम रक्तचाप, कम रक्त शर्करा स्तर एवं त्वचा व श्लेष्मिक झिल्ली पर विशिष्ट प्रकार का पीलापन पैदा कर देती है।

कॉर्टिकल हॉर्मोन्स के अति-स्रावण से कई विकार पैदा होते हैं। कुशिंग बीमारी (Cushing's disease) ग्लूकोकॉर्टिकॉइड्स के अति-निर्माण से मुख्यतया होती है। धड और चेहरे पर अत्यधिक वसीय ऊतक जमा हो जाते हैं, हाथ-पैरों पर नहीं, तथा सोडियम अवधारित हो जाता है, इस कारण ईडीमा, बढा हुआ प्लाज्मा आयतन एवं pH मे वृद्धि (या एल्केलोसिस-रक्तक्षारता) हो जाती है।

मेड्यूला (Medulla)

सुप्रारीनल ग्रन्थियों का मेड्यूला भाग दो हॉर्मोन्स स्रावित करता है—*एड्रीनॅलिन* एवं *नॉर-एड्रीनॅलिन*, इनका प्रभाव सिम्पेथेटिक स्नायविक तंत्र के उत्तेजन से प्राप्त प्रभाव के समान होता है। चूंकि मेड्यूला का नियंत्रण बिना किसी बाधा के सिम्पेथेटिक स्नायविक तंत्र के प्रीगेन्ग्लिआनिक न्यूरॉन्स के माध्यम से होता है इसलिए किसी उत्तेजन से प्रतिक्रिया तुरंत होती है और कुछ स्थितियों का क्रम बन जाता है जिसमे शरीर 'लड़ो या भागो' के लिये तैयार हो जाता है। *एड्रीनॅलिन* हृदीय धड़कन की दर एवं शक्ति बढाती है, हृदय एवं स्कैलेटल पेशियों की रक्तपूर्ति करने वाली धमनियों का विस्फारण करती है लेकिन अन्य धमनियों मे संकुचन होता

है, श्वसन की दर एव गहराई बढाती है, यकृत मे उपस्थित ग्लाइकोजन का विभाजन बढाकर रक्त शर्करा स्तर बढाती है, और कोशिकाओं की सामान्य चयापचयी सक्रियता को उत्तेजित करती है।

थाइमस ग्रन्थि (The Thymus Gland)

थाइमस ग्रन्थि वह अग है जो गर्दन के निचले भाग और वक्ष-स्थल मे फुफ्फुसों के बीच हृदय के ऊपर स्थित रहती है। यह उम्र के अनुसार आकार मे भिन्न होती है और जब तक बालक की उम्र दो वर्ष नही हो जाती है तब तक बढती रहती है, इसके बाद यह सिकुडती है अत वयस्क मे यह मात्र तन्तुमय अवशेष की अवस्था मे पाई जाती है। जब यह पूर्ण रूप मे विकसित होती है तब भूरे गुलाबी रग की दो या तीन खण्डो वाली ग्रन्थि होती है। इसकी रचना लिम्फ नोड के समान रहती है और यह उसी प्रकार एन्टिबॉडी निर्माण से सम्बन्धित रहती है। अभी तक इससे कोई भी हॉर्मोन् पृथक् नही किया जा सका है, इस प्रकार यह अन्त स्रावी तत्र की अपेक्षा रक्त परिसचरण तत्र से ज्यादा सम्बन्धित रहती है।

पिनीअॅल बॉडी या ग्रन्थि (The Pineal Body)

पिनीअॅल बॉडी छोटी लाल रग की चेरी की गुठली के आकार की रचना है जो मस्तिष्क के तीसरे वेन्ट्रिकल के पीछे स्थित रहती है। इसका कार्य अज्ञात है। जीवन के अतिम वर्षो मे यह कैल्सिफाइड हो जाती है और खोपडी के एक्स-रे मे उपयोगी पहचान-चिन्ह का कार्य करती है।

21. मूत्रीय तन्त्र
The Urinary System

मूत्रीय तत्र निम्नलिखित अगो का वना होता है

1 गुर्दे

2 मूत्रवाहिकाएँ

3 मूत्राशय

4. मूत्रमार्ग

गुर्दे (The Kidneys)

गुर्दे सेम के आकार के दो अग हैं जो रीढ के दोनो तरफ पेरिटोनिअम के पीछे उदर के पिछले भाग मे स्थित रहते है। ये बारहवे थॉरेसिक वर्टिब्रा मे तीसरे लम्बर वर्टिब्रा के स्तर तक स्थित रहते है, हालाँकि दाहिना गुर्दा यकृत से सम्बन्धित होने के कारण बायें की अपेक्षा कुछ नीचे स्थित रहता है।

प्रत्येक गुर्दा करीब 11 से मी लम्बा, 6 से मी चौडा एव 3 मे मी मोटा होता है और यह पेरिरीनॅल वसा की गद्दीनुमा रचना मे अन्त स्थापित रहता है।

प्रत्येक गुर्दे का मीडिअल किनारा मध्य मे *अवतल (Concave)* रहता है। इस क्षेत्र को हाइलस *(Hilus)* कहते हैं और यही वह विन्दु है जहाँ रक्तवाहिकाएँ, स्नायु एव मूत्रवाहिकाएँ गुर्दे मे प्रविष्ट होती एव निकलती हैं।

गुर्दा तन्तुमय ऊतक के कैप्स्यूल से घिरा रहता है जिसे आसानी मे पृथक् किया जा सकता है। खडी काट मे गुर्दे के दो मुख्य भाग दिखाई देते है। गहरे रग के बाहरी भाग को कॉर्टेक्स कहते है और सफेद आन्तरिक भाग को मेड्यूला। यह भाग सचयक स्थान (Collecting space) मे खुलता है जिसे *गुर्दीय पेल्विस (Renal pelvis)* कहते हैं।

गुर्दे का मुख्य पदार्थ असख्य छोटी-छोटी मुडी हुई नलियो (या ट्यूब्यूल्स) का वना होता है जिन्हे नेफ्रॉन्स *(Nephrons)* कहते हैं, प्रत्येक गुर्दे मे इनकी सख्या करीब 10 लाख से अधिक रहती है। प्रत्येक नेफ्रॉन प्यालेनुमा रचना, जिसे *ग्लोमेरुलर कैप्स्यूल (Glomerular capsule)* कहते हैं, से आरभ होता है और इसमे नलिका या ट्यूब्यूल आगे खुलती है। प्रत्येक कैप्स्यूल की प्यालेनुमा रचना मे गुर्दीय धमनी को छोटी शाखा आकर इसकी आन्तरिक दीवार के नजदीकी सम्पर्क मे केशिकाओ

का गुच्छा बनाती है, केशिकाओ के इस गुच्छे को ग्लोमेरुलस (*Glomerulus*) कहते हैं। जो आर्टीरिओल् इस गुच्छे तक रक्त लाते है उन्हें ऐफॅरन्ट वाहिका (*Afferent vessel*) कहते है, और जो आर्टीरिओल् यहाँ से रक्त ले जाती है उन्हे इफॅरन्ट वाहिका (*Efferent vessel*) कहते है, यह ऐफॅरन्ट वाहिका से कुछ छोटी होती है। इस गुच्छे मे इस कारण और उदरीय महाधमनी की समीपता के कारण रक्त अधिक दवाव के अन्तर्गत रहता है।
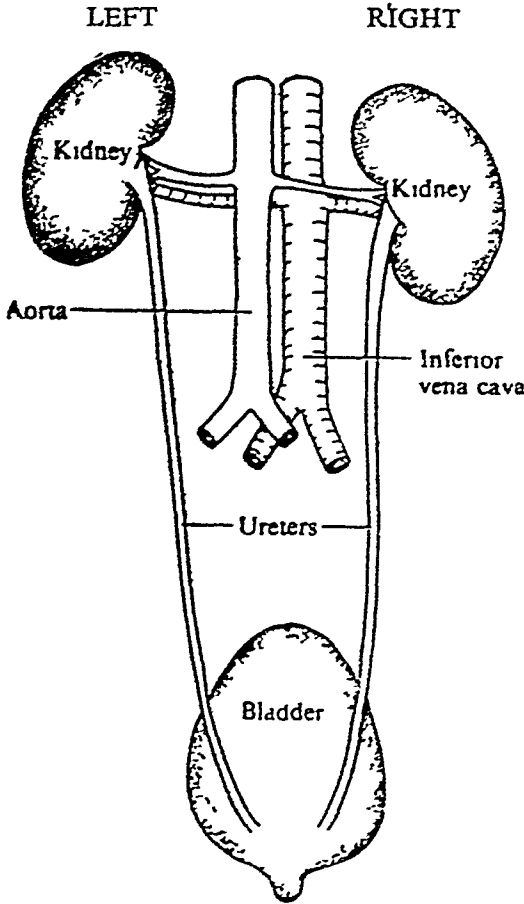
चित्र 154–मूत्रीय तन्त्र, पीछे से देखने पर।

कॉन्वोल्यूटेड ट्यूब्यूल कई मोडो की बनी होती है, कैप्स्यूल से निकलने के बाद समीपस्थ मोड (Proximal convolutions) लम्बी कुण्डलाकार रचना बनाती है जिसे 'लूप ऑव हेनले' कहते है, यह मेड्यूला से होकर पीछे की ओर कॉर्टेक्स मे जाती है। यह नलिका आगे चलकर दूरस्थ या दूसरा मोड (Distal convolutions) बनाती है और अतत. मेड्यूला मे सीधी सचयक नलिका मे खाली होती है।

इफॅरन्ट रक्तवाहिका जो केशिकीय गुच्छे या केप्स्यूल मे स्थित ग्लोमेरुलस से आती है वह कॉर्टेक्स मे कॉन्वोल्यूटेड ट्यूब्यूल्स की दीवारो के आसपास विभाजित होकर केशिकाओ का दूसरा जोड बनाती है। इस प्रकार रक्त एक अग मे केशिकाओ के दो जोडो मे गुजरता है, ऐसा शरीर के किसी अन्य अग मे नही होता है। केशिकाओ के दूसरे जोड से रक्त छोटी शिराओ द्वारा एकत्रित होना है, ये छोटी शिराएँ दूसरी छोटी शिराओ से जुडकर गुर्दीय शिरा मे रक्त ले जाती हैं।
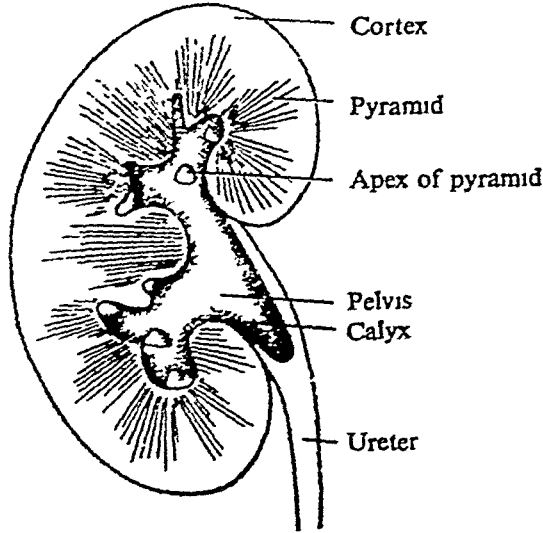
चित्र 155–गुर्दे की काट का रेखाचित्र ।
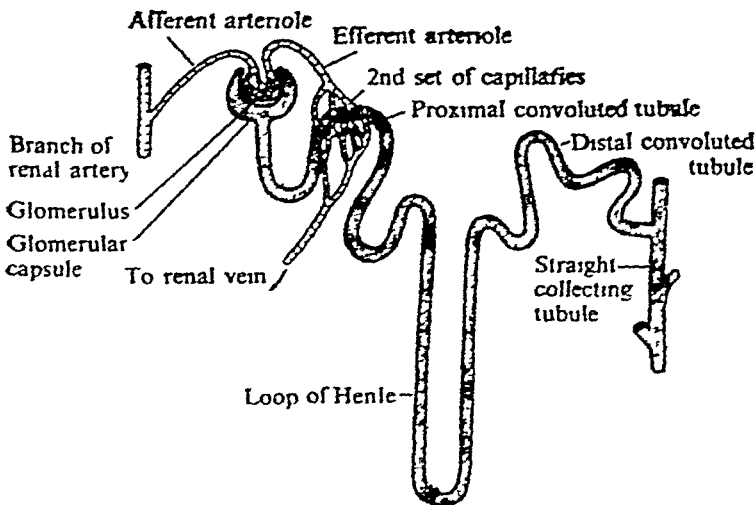
चित्र 156–एक नेफ्रॉन और इससे सम्बन्धित रक्त वाहिकाए।

मूत्र बनना (The production of urine) ·

गुर्दों का कार्य मूत्र का स्रावण एव उत्सर्जन है। यदि शरीर स्वस्थ बने रहना है तो रक्त की सरचना निश्चित सीमा से अधिक भिन्न नहीं होना चाहिये और यह सतुलन हानिकारक व्यर्थ-पदार्थों के निष्कासन और शरीर मे पानी एव इलेक्ट्रोलाइट्स के सग्रह पर निर्भर रहना है।
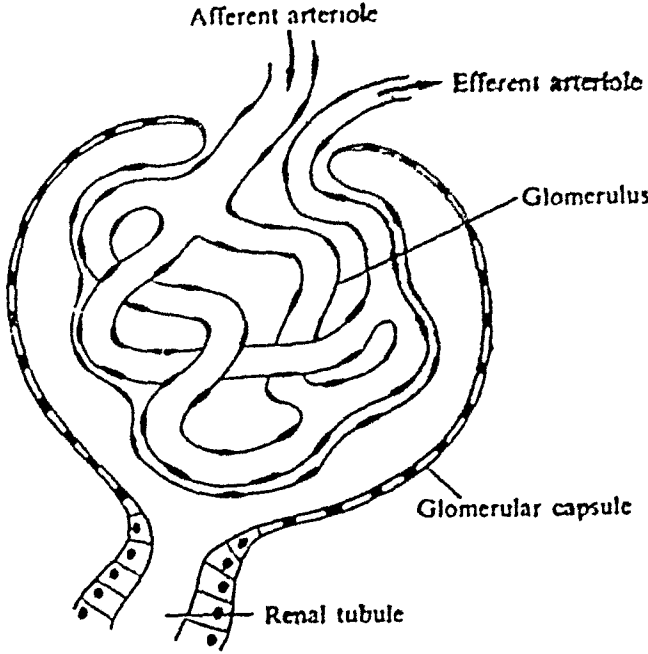
चित्र 157–ग्लोमेरुलस एव उसके कैप्सूल का रेखाचित्र।

मूत्र तीन प्रक्रियाओ द्वारा वनता है

1 ग्लोमेरुलस से दवाव के अन्तर्गत *फिल्ट्रेशन (छनना)* होता है जहाँ सिर्फ केशिकाओ और ग्लोमेरुलर कैप्स्यूल की पतली दीवारे रक्त को गुर्दीय नलियो से पृथक् करती है। ग्लोमेरुलस की दीवारें पानी और अन्य छोटे अणुओ के लिये पारगम्य होती है लेकिन ये रक्त कोशिकाओ और प्रोटीन के लिये पारगम्य नही होती है, चूकि ग्लोमेरुलस मे रक्त दवाव के अन्तर्गत रहना है इसलिए कुछ अवयव ग्लोमेरुलर कैप्स्यूल से गुजर सकते है। इस द्रव को *ग्लोमेरुलर फिल्ट्रेट* कहते हैं और इसकी सरचना प्लाजमा के समान होती है, इसमे ग्लूकोज, एमिनो एमिड्स, लवण, यूरीआ एव यूरिक एसिड समान अनुपात मे रहते है। रक्त कोशिकाएँ और प्रोटीन अणु सिर्फ तव ही छनेगें जव गुर्दे रोगग्रस्त हो। ग्लोमेरुलस से करीव 600 मि ली रक्त प्रति मिनट गुजरता है और इसमे से करीव 125 मि ली ग्लोमेरुलर फिल्ट्रेट वन जाता है। यदि यह सव उत्सर्जित हो जाये तो 150 से 180 लिटर्स

मूत्र प्रति दिन निष्कासित होगा। प्रति दिन मूत्र के निष्कासन की औसत मात्रा करीब 1 5 लिटर्स है इसलिये यह सुस्पष्ट है कि पुनर्शोषण अवश्य होना चाहिए।

2 चयनात्मक पुनर्शोषण (*Selective absorption*) होता है क्योंकि कॉन्वोल्यूटेड ट्यूब्यूल्स के अस्तर की कोशिकाएँ पानी, ग्लूकोज़, लवण और उनके ऑयन, जिनकी शरीर को आवश्यकता रहती है, का शोषण करने मे सक्षम होती हैं। सामान्य स्वास्थ्य मे सम्पूर्ण ग्लूकोज़ पुनर्शोषित हो जाता है और मूत्र मे बिलकुल उत्सर्जित नही होता है। अधिकाश पानी और लवण भी शोषित हो जाते हैं परिणामस्वरूप 1 5 लिटर्स द्रव, जो सचयक नलिकाओ मे चला जाता है, मे सामान्यतया करीब 2 प्रतिशत यूरीआ रहता है। मूत्र की अम्लता कुछ भिन्न होती है इस प्रकार रक्त की प्रतिक्रिया करीव 7 4 pH पर बनी रहती है।

3 सक्रिय स्रावण (*Active secretion*) होता है क्योंकि नलिकाओ के अस्तर की कोशिकाओ मे ट्यूब्यूल के ल्यूमेन मे स्थित दूसरे केशिकीय जाल के रक्त से कुछ पदार्थ स्रावित करने की क्षमता रहती है।

दूरस्थ कॉन्वोल्यूटेड ट्यूब्यूल मे पानी का पुनर्शोषण अनिश्चित रहता है और यह पिट्यूटरि ग्रन्थि के पिछले खण्ड से स्रावित एन्टि-डायूरेटिक हॉर्मोन द्वारा नियत्रित होता है। ADH के स्रावण मे कमी से दूरस्थ नलिका मे कम पानी पुनर्शोषित होता है, इसलिये मूत्र मे अधिक पानी उत्सर्जित होता है। लवणो का पुनर्शोषण एड्रीनल कॉर्टेक्स के हॉर्मोन्स विशेष रूप से एल्डोस्टॅरॉन द्वारा नियत्रित होता है। इन हार्मोन्स का निर्माण पानी या लवण एव इलेक्ट्रोलाइट्स के उपयोग की शरीर की आवश्यकता के अनुसार कम या ज्यादा होता है। एड्रीनॅलिन एव नॉरएड्रीनॅलिन हॉर्मोन स्नायविक नियत्रण के साथ केशिकीय गुच्छे मे फिल्ट्रेशॅन के लिये आवश्यक रक्त दबाव को उच्च स्तर पर बनाये रखता है।

मेड्यूला या गुर्दे का आन्तरिक भाग सीधी सचयक नलिकाओं का बना होता है जिसमे कॉर्टेक्स की मुडी हुई नलिकाए (कॉन्वोल्यूटेड ट्यूब्यूल्स) खाली होती है। यह कई शकु-आकार रचना बनाती है जो गुर्दे की पेल्विस मे उभरी हुई रहती हैं। इन्हें मेड्यूला के *पिरामिड्स* कहते है और इनकी सख्या 8 से 12 तक होती है।

पिरामिड्स के नुकीले भाग (शिखर) पेल्विस मे उभरे होते हैं और पतली सचयक नलिकाओ के छिद्रो से ढँकी रहती हैं जो गुर्दीय पेल्विस मे मूत्र पहुँचाती है। इसलिये मेड्यूला का कार्य कॉर्टेक्स मे स्रावित मूत्र को एकत्रित करके पेल्विस मे पहुँचाना है।

पेल्विस असमान शाखामय गुहिका है जो गुर्दे के मूल स्थान या हाइलम पर स्थित रहती है और मूत्रवाहिका मे कीप के समान खुलती है। इसकी शाखाएँ, जिन्हे केलिसेस (*Calyces*) कहते हैं, गुर्दीय पदार्थ मे प्रविष्ट होती हैं, और

प्रत्येक शाखा मे मेड्यूला के पिरामिड्स का एक शिखर मिलता हैं। ये पिरामिड्स मूत्र को पेल्विस मे पहुँचाते है जो इसे मूत्रवाहिकाओ मे ले जाती है।

मूत्र की सरचना (The Composition of the Urine)

इसलिये सामान्य मूत्र आशिक रूप मे कैप्सयूल के दवाव के अन्तर्गत फिल्ट्रेशॅन द्वारा एव अशत ट्यूब्यूल्स मे पुनर्शोपण एव स्रावण द्वारा बनता है। यह अम्बर रग का द्रव है जिसका रग मात्रा के अनुसार परिवर्तनशील है। यह अम्लीय प्रतिक्रिया वाला द्रव है और इसका विशिष्ट गुरुत्व 1015 से 1025 है। (विशिष्ट गुरुत्व वह वजन है जो पानी के समान आयतन के भार की तुलना के होता है, पानी का विशिष्ट गुरुत्व 1000 है)।

मूत्र पानी, लवण एव प्रोटीन व्यर्थ-पदार्थो जैसे यूरीआ, यूरिक एसिड एव क्रिएँटिनिन का बना होता है। औसत सरचना इस प्रकार है पानी 96 प्रतिशत, यूरीआ 2 प्रतिशत, यूरिक एसिड एव लवण 2 प्रतिशत।

रक्त प्लाज्मा मे यूरीआ का प्रतिशत 0 04 रहता है जबकि मूत्र मे 2 प्रतिशत होता है, इसलिये गुर्दे के कार्य द्वारा यह सान्द्रता पचास गुना वढ जाती है। लवण मुख्यतया सोडियम क्लोराइड, फास्फेट्स एव सल्फेट्स के बने होते हैं जो अशत प्रोटीनयुक्त भोज्य-पदार्थो मे उपस्थित फॉस्फोरस एव सल्फर के उपयोग से बनते हैं। इन लवणो का पुनर्शोपण होना आवश्यक है या रक्त की सामान्य प्रतिक्रिया बनाये रखने के लिये आवश्यक मात्रा और पानी एव इलेक्ट्रोलाइट सतुलन बनाये रखने की मात्रा उपस्थित होना चाहिये। चूकि यह प्रतिक्रिया और लवण की सान्द्रता रक्ताणुओ एव ऊतक कोशिकाओ दोनो के जीवन के लिये आवश्यक है इसलिये गुर्दे का यह कार्य वहुत महत्वपूर्ण है। स्रावित मूत्र की सामान्य मात्रा 24 घटे मे 1 5 लिटर्स है, लेकिन यह मात्रा पेय-पदार्थ पीने और ठडे मौसम के कारण वढ जाती है तथा कम द्रव अन्तर्ग्रहण, गरम मौसम, व्यायाम एव वुखार के कारण मात्रा कम हो जाती है क्योकि इनसे पसीने की मात्रा वढ जाती है। पोटेशियम लवण सामान्यतया फिल्टर होकर पुनर्शोपित हो जाते हैं या आवश्यकतानुसार उत्सजित हो जाते हैं ताकि शरीर द्रवो मे इनका उचित स्तर बना रहे। गुर्दीय विफलता मे, इनका उत्सर्जन अवरुद्ध हो जाता है इस प्रकार शरीर द्रवो एव ऊतको मे इनकी मात्रा वढ जाती है।

मूत्रवाहिकाएँ (The Ureters)

मूत्रवाहिकाएँ दो नलियाँ है जो गुर्दो से मूत्राशय तक मूत्र ले जाती है। प्रत्येक वाहिका करीव 25 से 30 से मी लम्बी और मोटी दीवार वाली सँकरी नली होती है जो गुर्दीय पेल्विस से आरभ होकर मूत्राशय के निचले भाग मे खुलती है। इसका डायमीटर करीव 3 मि मी होता है लेकिन तीन स्थानो पर यह मामूली सकुचित

रहती है (ए) गुर्दीय पेल्विस से जुडने के स्थान पर, (बी) जहाँ यह छोटी श्रोणि के आन्तरिक द्वार को क्रॉस करती है, और (सी) जैसे ही यह मूत्राशय की दीवार से गुजरती है उस स्थान पर। ये सकुचित स्थान मूत्रीय पथरियो (Ureteric stone) के रुकने के स्थान भी हो सकते हैं। मूत्र-वाहिकाएँ, गुर्दीय पेल्विस एव केलिसेस रेडियोअपारदर्शक पदार्थ का इन्ट्राविनस इन्जेक्शन लगाने के बाद रेडियोग्राफी द्वारा देखे जा सकते हैं।

मूत्रवाहिका मे बाह्य तन्तुमय तह होती है जो गुर्दे के तन्तुमय कैप्स्यूल के साथ निरतर रचना के रूप मे रहती है, एक पेशीय तह जिसमे बाह्य गोलाकार एव आन्तरिक लम्बवत तहें होती हैं, और श्लेष्मिक झिल्ली का अस्तर होता है जो मूत्राशय के अस्तर के साथ निरतर रहता है। मूत्रवाहिका की पेशीय तह मे प्राय एक मिनट मे करीब चार या पाँच बार पेरिस्टैल्टिक सकुचन होते है।

मूत्राशय (The Bladder)

मूत्राशय मूत्र के लिये सचयक है और इसमे उपस्थित द्रव की मात्रा के अनुसार इसकी आकृति, आकार एव स्थिति बदलती रहती है। जब यह खाली रहता है तब श्रोणि मे स्थित होता है, लेकिन जब यह मूत्र के कारण फूलता है तो यह उदरीय गुहा मे ऊपर एव आगे की ओर फैलता है।

दोनो मूत्रवाहिकाएँ और मूत्रमार्ग मूत्राशय के निचले भाग (*Base*) मे क्रमश प्रविष्ट होते और निकलते हैं। इन छिद्रो को जोडने वाली काल्पनिक रेखा खीचने से जो क्षेत्र बनता है उसे ट्राइगोन (*Trigone*) कहते हैं। मूत्राशय का सकरा भाग (*Neck*) सब से निचला एव स्थिर भाग है, यह सिम्फिसिस प्यूबिस के 3 से 4 से मी पीछे स्थित रहता है। मूत्राशय मे 500 मि ली से अधिक मूत्र समा सकता है, हालाँकि इतनी मात्रा से दर्द होने लगेगा, जब मूत्राशय मे करीब 250 से 350 मि ली मूत्र एकत्रित हो जाता है तब मूत्रत्याग की इच्छा होती है।

मूत्राशय मे तीन तहें होती हैं। बाहरी सीरम तह पेरिटोनिअम की रहती है लेकिन यह सिर्फ ऊपरी सतह पर पाई जाती है। पेशीय तह मे गोलाकार एव लम्बवत् दोनो ही प्रकार के पेशीय तन्तु रहते हैं, इसमे तिरछे पेशीय तन्तुओ की भी दो पट्टियाँ रहती हैं जो मूत्रवाहिकाओ के खुलने के स्थान के नजदीक स्थित होती है और मूत्र को पुन मूत्र वाहिकाओ मे बहने से रोकती है। आन्तरिक श्लेष्मिक तह (Mucous coat) ढीली होती है और जब मूत्राशय खाली होता है तब सिकुडकर झुर्रीनुमा दिखाई देती है।

मूत्रमार्ग (The Urethra)

मूत्र-मार्ग मूत्राशय मे स्थित आन्तरिक मूत्रमार्गीय छिद्र से लेकर बाह्य मूत्रमार्गीय छिद्र तक फैला रहता है।

पुरुष मे मूत्रमार्ग 18 से 20 से मी लम्बा रहता है और प्रजनन एव मूत्रीय तत्र दोनो के लिये उभय मार्ग का कार्य करता है। यह तीन भागो मे विभाजित रहता है।

1 *प्रोस्टैटिक भाग (The prostatic portion)* करीब 3 से मी लम्बा और प्रोस्टैट ग्रन्थि से घिरा रहता है। इसमे ट्रान्जिशनल एपिथिलिअम का अस्तर होता है और प्रोस्टैटिक एव इजेक्यूलेटॅरी (स्खलन) वाहिकाओ के छिद्र इसमे खुलते हैं।

2 *झिल्लीमय भाग (The membranous portion)* करीब 1 से 2 से मी लम्बा एव मूत्रमार्ग का सबसे सकरा भाग होता है। यह श्रोणि की निचली सतह से गुजरता है।

3 *स्पॉन्जि भाग (The spongy portion)* करीब 15 से मी लम्बा और शिश्न मे स्थित रहता है।

महिलाओं मे मूत्रमार्ग करीब 4 से मी लम्बा रहता है और सिर्फ मूत्रीय तत्र का कार्य करता है। यह मूत्राशय के आन्तरिक मूत्रमार्गीय छिद्र से आरम्भ होकर नीचे की ओर सिम्फिसिस प्यूबिस के पीछे योनिमार्ग की अग्र दीवार मे अन्त स्थापित रहता है।

मूत्रमार्ग मे वाह्य और आन्तरिक अवरोधिनी पेशी (Sphincters) रहती हैं, आन्तरिक अवरोधिनी पेशी अनैच्छिक एव वाह्य अवरोधिनी पेशी आरभिक शैशवावस्था और स्नायविक चोट या बीमारी को छोडकर सामान्यतया ऐच्छिक नियंत्रण मे होती है।

मूत्रत्याग (Micturition)

मूत्र के निष्कासन को मूत्रत्याग कहते हैं। मूत्र मूत्रवाहिकाओ से मूत्राशय मे निरन्तर आता रहता है, जब मूत्राशय मे 200 से 300 मि ली मूत्र जमा हो जाता है तब मूत्राशय मे बढे हुए तनाव के कारण सवेदी स्नायुओ के उत्तेजन से मूत्रत्याग की इच्छा होती है। जैसे ही सवेदी आवेगो की सख्या एव बारम्बारता बढती है, प्रेरक आवेग मूत्राशय का प्रत्यावर्ती सकुचन एव आतरिक अवरोधिनी पेशी का शिथिलन कर देते हैं। वाह्य अवरोधिनी पेशी प्यूडेन्डल स्नायु द्वारा नियन्त्रित रहती है। जब बालक स्पाइनल प्रतिवर्ती क्रियाओ (Spinal reflexes) का अवरोध करना सीख लेता है तब वह मूत्रत्याग को वाछित समय तक रोक सकता है या ऐच्छिक रूप से मूत्रत्याग कर सकता है।

बीमारी मे मूत्रत्याग विभिन्न प्रकारो से प्रभावित हो सकता है। अवरोधिनी पेशी का सकुचन की अवस्था मे अगाघात हो सकता है (ऐंठनयुक्त अगाघात-Spastic paraplegia), अत वह शिथिल नही हो पाती है। इससे मूत्र की रुकावट (*Retention*) हो जायेगी और मूत्राशय पूरा भर जायेगा। यदि इसे कैथिटराइजेशन

द्वारा खाली नही किया गया तो फुलाव बढता जायेगा और अवरोधिनी पेशी जिस छिद्र की सुरक्षा करती है वह भी फैल जायेगा, फलस्वरूप निरतर बूंद-बूंद के रूप मे मूत्रत्याग होता रहेगा, हालांकि मूत्राशय फिर भी भरा हुआ रहेगा। इस स्थिति को *अतिप्रवाह के साथ रुकावट (Retention with overflow)* कहते हैं। यह मूत्राशय एवं गुर्दे दोनो के लिए ही अनुचित है और इससे तने हुए मूत्राशय की प्रेशीय-शक्ति मे कमी और रक्तपूर्ति मे बाधा तथा गुर्दे पर पश्च दबाव होता है। इस स्थिति को कभी भी निर्मित नही होने देना चाहिये।

अवरोधिनी पेशी शिथिलन की अवस्था मे भी अगाघात-ग्रस्त हो सकती है। ऐसी स्थिति मे मूत्र खाली मूत्राशय से भी निरतर बूंद-बूंद आता रहेगा, क्योंकि मूत्राशय मूत्र को सचित नही कर पाता है। ऐसा विरले ही होता है।

स्नायविक बीमारी के अन्य मामलो और एनेस्थीज़िआ मे मूत्रत्याग पर मस्तिष्क का नियत्रण समाप्त हो सकता है, अत मूत्रत्याग की क्रिया पुन. प्रतिवर्ती हो जाती है, जैसा कि निचले वर्ग के प्राणियो मे रहता है, व्यक्ति को मूत्राशय के भरने के संवेदन की जानकारी के बिना या अवरोधिनी पेशी के शिथिलन के नियत्रण की क्षमता के बिना मूत्राशय प्रतिवर्ती रूप से भरता एवं खाली होता रहता है।

एक उभार निकलता है जो बाद मे दो शाखाओ मे विभाजित होता है, एक केन्द्रीय स्नायविक तत्र की ओर आवेग ले जाती है, जिसे एक्सॉन कहते हैं, और दूसरी अग
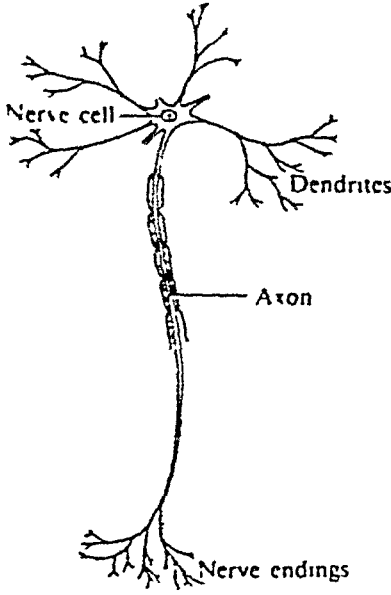
चित्र 158—एक विशिष्ट प्रकार का बहुखण्डीय न्यूरॉन।
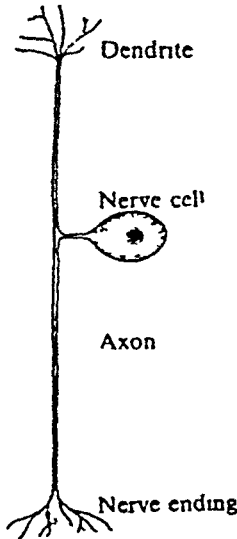
चित्र 159—एकखण्डीय न्यूरॉन।

से कोशिका तक आवेग ले जाती है, इन्हें *एकखण्डीय न्यूरॉन (Unipolar neurone)* कहते हैं। *द्विखण्डीय न्यूरॉन (Bipolar neurone)* मे दो शाखाएँ होती हैं, एक-एक

साइनैप्स (ततु-मिलन) (*Synapse*) एक न्यूरॉन और दूसरे न्यूरॉनके बीच सम्प्रेषण या सचार का स्थान है। एक्सॉन बनाने वाले फिब्रिल्स मे छोटे-छोटे फैले हुए सिरे होते हैं जिन्हें ऍन्डफ़ीट (समाप्ति सिरे) (*End feet*) कहते हैं, जो डेन्ड्राइट्स या अन्य न्यूरॉन्स की सेल-बॉडीज़ के नज़दीक रहते हैं, लेकिन स्पर्श नही करते हैं। ये स्नायु आवेग को सिर्फ एक ही दिशा मे जाने देते हैं।

स्नायु आवेग (*Nerve impulses*) सेल-बॉडी या डेन्ड्राइट्स के माध्यम से न्यूरॉन मे और एक्सॉन के द्वारा बाहर की ओर केवल एक ही दिशा मे भी सचारित हो सकते हैं। साइनैप्स के स्थान पर कुछ अतराल होता है ताकि दो न्यूरॉन्स के बीच के स्थान को भरने के लिये रासायनिक सदेशवाहक (Chemical messanger) स्रावित हो सके और आवेग दूसरे न्यूरॉन तक पहुँच सके। -

स्नायविक तत्र केन्द्रीय स्नायविक तत्र, जिसमे मस्तिष्क एव स्पाइनल कॉर्ड होते हैं, तथा परिधीय स्नायविक तत्र, जिसमे मस्तिष्कीय एव स्पाइनल स्नायु और ऑटोनॉमिक स्नायविक तत्र रहते हैं, का बना होता है।

केन्द्रीय स्नायविक तन्त्र (Central Nervous System)

मस्तिष्क (The Brain)

मस्तिष्क जब पूर्ण रूप से विकसित होता है तब वह बडा अग बन जाता है और मस्तिष्कीय गुहिका को पूर्णत भर देता है। विकास की आरभिक अवस्था मे मस्तिष्क को तीन भागो मे विभाजित किया जाता है, जिन्हें *अग्र-मस्तिष्क* (*Fore-brain*), *मध्य-मस्तिष्क* (*Mid-brain*) और *पश्च-मस्तिष्क* (*Hind-brain*) कहते है।

अग्र-मस्तिष्क सबसे बडा भाग है, इसे *प्रमस्तिष्क* (*Cerebrum*) कहते है, यह गहरी लम्बवत् दरार (Longitudinal fissure) के द्वारा दाहिने एव बायें अर्द्ध-गोलार्द्ध मे विभाजित रहता है। यह पृथक्करण आगे एव पीछे के भाग पर पूर्ण होता है लेकिन मध्य मे ये अर्द्धगोलार्द्ध स्नायु तन्तुओ की चौडी पट्टी के द्वारा जुडे
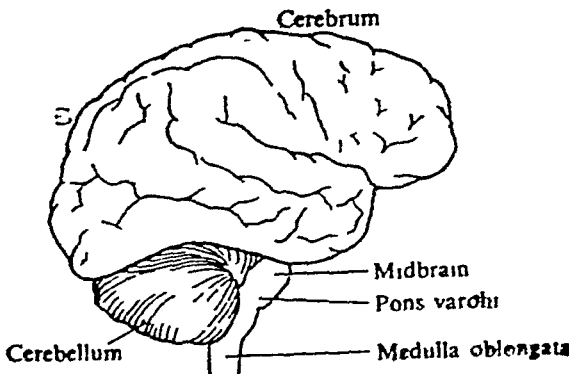
चित्र 161—मस्तिष्क, विभिन्न भाग दर्शाते हुए।

रहते हैं जिसे कॉर्पस कैलोसम (*Corpus callosum*) कहते हैं। प्रमस्तिष्क की बाहरी सतह को प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स (*Cerebral cortex*) कहते हैं और यह भूरे-पदार्थ (ग्रे-बॉडी) का बना होता है जो कई मोडो या कुण्डलियो (Folds) मे जमा रहता है जिन्हें उभार (*Gyri*) कहते हैं, और ये दरारो द्वारा पृथक् रहते हैं जिन्हें दरारें (*Sulci*) कहा जाता है। इससे मस्तिष्क का सतह क्षेत्र अधिक बढता है और ग्रे बॉडीज़ की सख्या इसीलिये ज्यादा रहती है। सभी मनुष्यो मे उभारो व दरारो की सामान्य रूपरेखा समान होती है तीन मुख्य दरारें प्रत्येक अर्द्धगोलार्द्ध को चार खडो (Lobes) मे विभाजित करती हैं, प्रत्येक का नाम खोपडी की जिस अस्थि के नीचे ये स्थित होते हैं उनके आधार पर दिया गया है। *मध्य-दरार* (*Central sulcus*) अर्द्धगोलार्द्ध के ऊपरी भाग मे नीचे एव आगे की ओर पार्श्वीय दरार के ठीक ऊपर तक फैली रहती है, *पार्श्वीय दरार* (*Lateral sulcus*) मस्तिष्क के सामने के निचले भाग मे पीछे की ओर फैली रहती है, तथा *पॅराइटो-ऑक्सिपिटल दरार* अर्द्धगोलार्द्ध के ऊपरी-पिछले भाग मे कुछ दूर तक नीचे एव आगे की ओर फैली रहती है। अर्द्धगोलार्द्ध के खण्ड हैं—*फ्रॅन्टल लोब्* (*Frontal lobe*) मध्य-दरार के सामने और पार्श्वीय-दरार के ऊपर स्थित रहता है; *पॅराइटल लोब्* (*Parietal lobe*) मध्य-दरार एव पॅराइटो-ऑक्सिपिटल दरार के बीच तथा पार्श्वीय-दरार के ऊपर स्थित रहता है, *ऑक्सिपिटल लोब्* (*Occipital lobe*), अर्द्धगोलार्द्ध का पिछला भाग बनाता है, और *टेम्पोरल लोब्* (*Temporal lobe*) पार्श्वीय-दरार के नीचे स्थित होता है और पीछे ऑक्सिपिटल लोब् तक फैला रहता है।
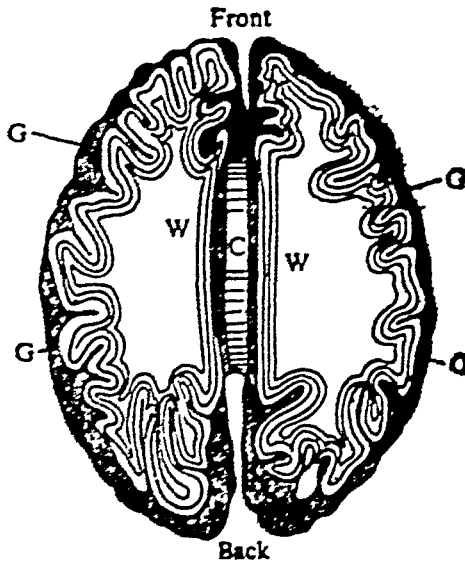
चित्र 162—प्रमस्तिष्क के स्थान की काट, ऊपर से देखते हुए G, कुण्डलाकार सतह का भूरा पदार्थ, W, मध्य भाग बनाने वाला सफेद पदार्थ, और C, कॉर्पस कैलोसम, प्रमस्तिष्क के दो अर्द्धगोलार्द्धों को जोडने वाले सफ़ेद पदार्थ का सेतु।

सेन्ट्रल सल्कस या मध्य-दरार के ठीक सामने स्थित क्षेत्र को *प्री-सेन्ट्रल जाइरस* (*Pre-central gyrus*) कहते है, यह प्रेरक-क्षेत्र (Motor area) है जहाँ से केन्द्रीय स्नायविक तत्र के कई प्रेरक ततु निकलते हैं। सेन्ट्रल सल्कस के ठीक पीछे सवेदी क्षेत्र (Sensory area) स्थित होता है जिसे पोस्ट-सेन्ट्रल जाइरस (Post-central gyrus) कहते हैं, इसकी कोशिकाओ मे कई प्रकार के संवेदनो का अर्थ समझा जाता है।
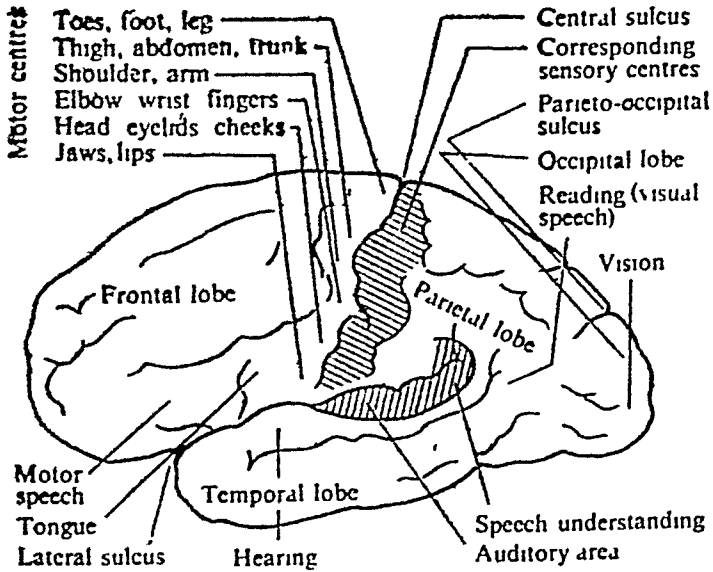
चित्र 163— प्रमस्तिष्क खण्ड और मुख्य स्नायु केन्द्र दर्शाते हुए।
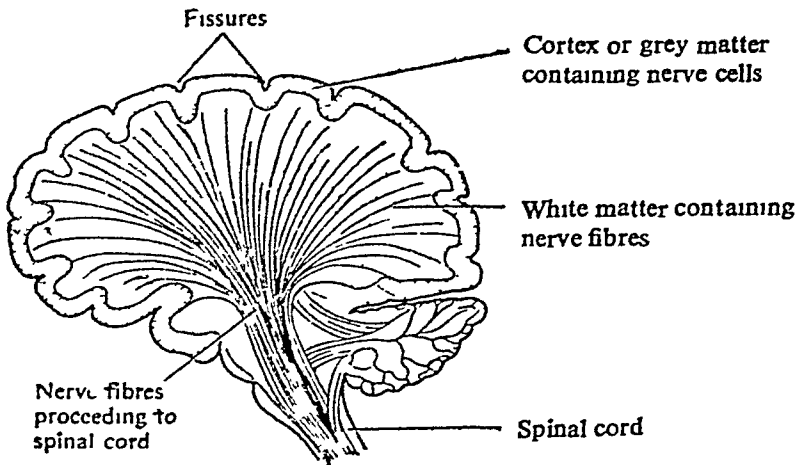
चित्र 164—मस्तिष्क की रेखाचित्र काट, सतह पर भूरा-पदार्थ और मध्य मे सफेद-पदार्थ दर्शाते हुए। प्रमस्तिष्क मे सम्बन्धित तन्तु नही दर्शाये गये हैं।

अर्द्धगोलार्द्ध या हेमीस्फेअँर की लम्बवत् काट बाहर की तरफ भूरा-पदार्थ (सेल-बॉडीज) दर्शाती है और सफेद-पदार्थ (स्नायु तंतु) अन्दरूनी भाग बनाता है। स्नायु तंतु मस्तिष्क के एक भाग को अन्य भागों और स्पाइनल कॉर्ड से जोड़ते हैं, लेकिन सफेद-पदार्थ मे स्नायु कोशिकाओं के समूह भूरे-पदार्थ के क्षेत्र बनाते हुए देखे जा सकते हैं। भूरे-पदार्थ के ये क्षेत्र *सेरिब्रल न्यूक्लिआइ (Cerebral nuclei)* कहलाते हैं। इन क्षेत्रों का मुख्य कार्य हलचल का समन्वय और शरीर की स्थिति बनाये रखना है इन क्षेत्रों को प्रभावित करने वाले विकारों में झटकेदार हलचल और अस्थिरता पैदा होती है।
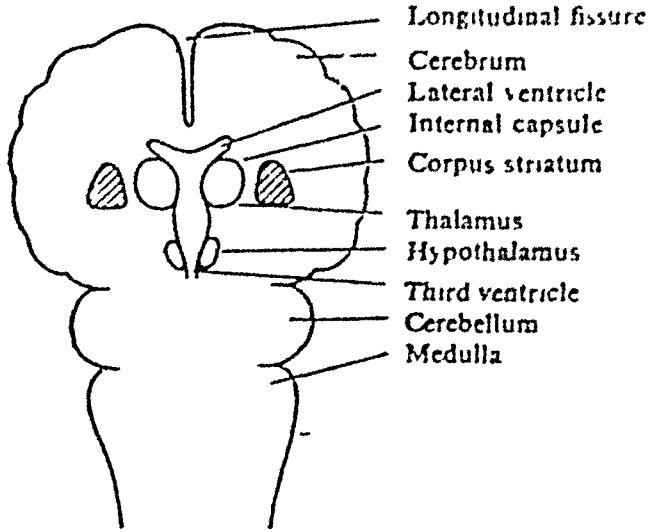
चित्र 165—सेरिब्रल न्यूक्लिआइ।

मस्तिष्क मे स्थित गुहिकाओं को *वेन्ट्रिकल्स (Ventricles)* कहते है। दो लेटरल वेन्ट्रिकल्स, बीच वाले को *तीसरा वेन्ट्रिकल्स* और सेरिबेलम एव पॉन्स के मध्य स्थित वेन्ट्रिकल्स को *चौथा वेन्ट्रिकल* कहते है। ये सभी वेन्ट्रिकल्स सेरिब्रोस्पाइनल द्रव से भरे रहते हैं।

मध्य-मस्तिष्क, अग्र-मस्तिष्क एव पश्च्-मस्तिष्क के बीच स्थित रहता है। यह करीब 2 से मी लम्बा और सफेद-पदार्थ की दो डंठलनुमा रचनाओं का बना होता है जिन्हें *सेरिब्रल पेडन्कल्स (Cerebral peduncles)* कहते है, जो मस्तिष्क और स्पाइनल कॉर्ड से आवेग लाती और ले जाती हैं, तथा चार छोटे उभार जिन्हें *क्वाड्रिजेमिनल बॉडीज (Qudrigeminal bodies)* कहते हैं, देखने एव सुनने की प्रतिवर्ती क्रियाओं से सम्बन्धित रहती हैं। *पिनीअॅल बॉडी (Pineal body)* दो ऊपरी क्वाड्रिजेमिनल बॉडीज़ के बीच स्थित रहती है।

पश्च-मस्तिष्क के तीन भाग होते हैं

1 पॉन्स (*The pons*), ऊपर की ओर मध्य-मस्तिष्क एव नीचे की ओर मेड्यूला ऑब्लॉन्गैटा के बीच स्थित रहता है। इसमे वे ततु रहते हैं जो ऊपर एव नीचे की ओर आवेग ले जाते हैं तथा कुछ वे ततु होते हैं जो सेरिबेलम से जुडते हैं।

2 मेड्यूला ऑब्लॉन्गैटा (*The medulla oblongata*), ऊपर की ओर पॉन्स एव नीचे की ओर स्पाइनल कॉर्ड के बीच स्थित रहता है। इसमे हृदीय एव श्वसनीय केन्द्र स्थित होते हैं जिन्हें महत्वपूर्ण केन्द्र भी कहा जाता है, ये हृदय एव श्वसन क्रिया को नियन्त्रित करते हैं।

3. सेरिबेलम (अनुमस्तिष्क) (*Cerebellum*) प्रमस्तिष्क के ऑक्सिपिटल लोब्स के नीचे पीछे की ओर उभरा रहता है। यह मध्य-मस्तिष्क, पॉन्स एव मेड्यूला ऑब्लॉन्गैटा से ऊपरी, *मध्य एव निचले सेरिबेलर पेडॅन्कल्स* (*Cerebellar peduncles*) नामक तन्तुओ की तीन पट्टियो के द्वारा जुडा रहता है। सेरिबेलम पेशीय हलचल के समन्वयन, पेशीय स्फूर्ति के नियत्रण एव सस्थिति वनाये रखने के लिए जिम्मेवार रहता है। यह पेशियो मे तनाव की श्रेणी, जोडो की स्थिति और प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स से आने वाली जानकारी से सम्बन्धित सवेदी आवेगो को निरतर प्राप्त करता रहता है। यह थैलॅमस एव प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स को भी जानकारी भेजता है।

मध्य-मस्तिष्क, पॉन्स एव मेड्यूला के एक साथ कई सामान्य कार्य हैं और इन्हें बहुधा सयुक्त रूप से *मस्तिष्क-स्तम्भ* (*Brain stem*) कहा जाता है। इस क्षेत्र मे न्यूक्लिआइ भी रहते हैं जहाँ से मस्तिष्कीय स्नायु निकलते हैं।

स्पाइनल कॉर्ड (सुषुम्ना) (Spinal cord)

स्पाइनल कॉर्ड ऊपर की ओर मेड्यूला ऑब्लॉन्गैटा के साथ निरतर रहती है तथा मस्तिष्क के नीचे केन्द्रीय स्नायविक तत्र का भाग बनाती है। यह फोरामॅन मैग्नम से आरम्भ होकर पहले लम्बर वर्टिब्रा के स्तर पर समाप्त होती है, यह करीब 45 से मी लम्बी रहती है। यह अपने निचले सिरे पर शकु-आकार आकृति के रूप मे सकरी हो जाती है, तव इसे कोनस मेड्यूलेरिस (*Conus medullaris*) कहते हैं, इसके सिरे से फाइलम टर्मिनेलं (*Filum terminale*) नीचे की ओर कॉक्सिक्स तक जाते हैं जो स्नायु-मूलो से घिरे रहते हैं, इन्हें कॉडा इक्विना (*Cauda equine*) कहते हैं। स्पाइनल कॉर्ड की पूरी लम्बाई से स्नायुओ के जोडे निकलते है। यह मोटाई मे कुछ विभिन्नता लिये रहती है, सर्वाइकल एव लम्बर क्षेत्रो पर यह कुछ मोटी होती है जहाँ से यह हाथ-पैरो को अत्यधिक स्नायु सपूर्ति करती है। स्पाइनल कॉर्ड मे पीछे एव सामने की ओर गहरी दरार रहती है जिससे यह प्रमस्तिष्क के समान दाहिने एव बायें भाग के रूप मे पूर्णत विभाजित रहती है।

मेड्यूला के समान स्पाइनल कॉर्ड भी सतह पर सफेद पदार्थ और मध्य मे भूरे-पदार्थ से बनी होती है। सफेद-पदार्थ स्पाइनल कॉर्ड एव मस्तिष्क के बीच फैले हुए

(शरीर के ऊतकों तक नहीं) तन्तुओं से बना होता है। इसमें निम्नलिखित तन्तु होते हैं :

1. प्रेरक तन्तु (*Motor fibres*) प्रमस्तिष्क एवं सेरिबेलम के प्रेरक केन्द्रों से नीचे की ओर स्पाइनल कॉर्ड की प्रेरक कोशिकाओं तक फैले रहते हैं।

2. संवेदी तन्तु (*Sensory fibres*) स्पाइनल कॉर्ड की संवेदी कोशिकाओं से कॉर्ड के ऊपर की ओर मस्तिष्क के संवेदी केन्द्रों तक फैले रहते हैं।
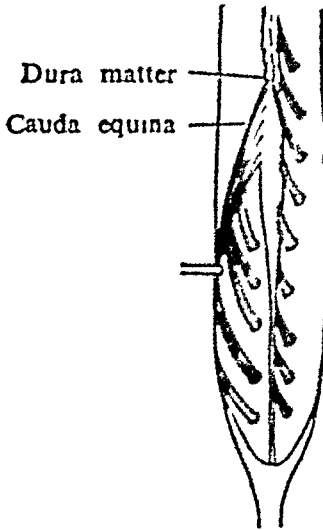
चित्र 166—कॉडा इक्विना।

स्पाइनल कॉर्ड को समतल में काटने पर इसका भूरा-पदार्थ अंग्रेजी के 'H' अक्षर की आकृति के समान जमा हुआ दिखाई देता है, इसके पहले दो भाग दोनों तरफ आगे की ओर उभरे हुए रहते हैं, जिन्हें एन्टिरिअॅर हॉर्न्स (*Anterior horns*) कहते हैं, तथा दूसरे दो भाग दोनों तरफ पीछे की ओर उभरे हुए रहते हैं, इन्हें पोस्टीरिअॅर हॉर्न्स (*Posterior horns*) कहते हैं।

मस्तिष्कीय स्नायु (*Cranial nerves*) स्नायुओं के बारह जोड़े हैं जो मस्तिष्क-स्तम्भ में स्थित न्यूक्लिआइ में उत्पन्न होते हैं। कुछ पूर्णतः संवेदी, कुछ पूर्णतः प्रेरक और कुछ मिश्रित, अर्थात् संवेदी एवं प्रेरक दोनों ही प्रकार के आवेग ले जाने वाले होते हैं।

स्पाइनल स्नायु (*Spinal nerves*) स्नायुओं के 31 जोड़े हैं जो स्पाइनल कॉर्ड से उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक में कॉर्ड के एन्टिरिअॅर एवं पोस्टीरिअॅर भाग में क्रमशः प्रेरक एवं संवेदी विभाग रहते हैं और कॉर्ड से निकलने के बाद दो तन्तु एक साथ जाते हैं।

ऑटोनौमिक स्नायविक तत्र आंतरिक अगो के नियत्रण से सम्बन्धित रहता है; इन अगो का कार्य इच्छा-शक्ति के नियंत्रण मे नहीं रहता है, हालाकि ये भावनाओ द्वारा प्रभावित होते हैं।

जैसा कि पहले बताया गया है, मस्तिष्कीय एव स्पाइनल स्नायु और ऑटोनॉमिक स्नायविक तत्र परिधीय स्नायविक तत्र बनाते हैं, इनका विस्तृत विवरण इसी अध्याय मे आगे मे किया गया है।
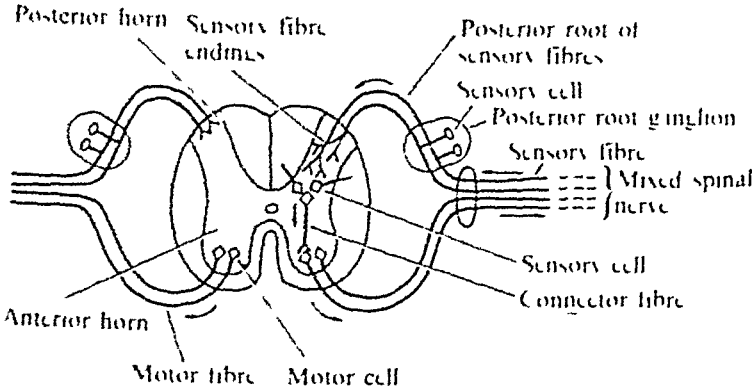
चित्र 167—स्पाइनल कॉर्ड की काट, मध्य में स्थित भूरा-पदार्थ और न्यूरॉन्स दर्शाते हुए। उष्मा एव दबाव के सवेदी तन्तु कॉर्ड को क्रॉस करते हैं।

प्रेरक तंत्र (Motor system) :

प्रेरक तत्र शरीर के विभिन्न भागो की हलचल से सम्बन्धित रहता है। जैसाकि पहले बताया जा चुका है कि प्रेरक क्षेत्र *(Motor area)* मध्य-दरार (सेन्ट्रल सल्कस) के सामने *प्री-सेन्ट्रल जाइरस* नामक क्षेत्र मे स्थित होता है। यहाँ शरीर उलटे अर्थात् सिर नीचे एव पैर ऊपर रूप मे प्रदर्शित होता है। इस जाइरस के निचले भाग पर सिर एव आँख के लिए बडा क्षेत्र रहता है, इसके ऊपर हाथ एव भुजा के लिए बडा क्षेत्र, इसके बाद धड के लिये छोटा क्षेत्र और इसके बाद पैर के लिए बडा क्षेत्र होता है जो प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध के ऊपरी भाग तक फैला रहता है (देखिये चित्र 162)। इन क्षेत्रों के बीच स्पष्टत अतिव्याप्ति रहती है। यह स्पष्ट दिखाई देगा कि जो क्षेत्र अत्यधिक सूक्ष्म हलचल कर सकता है जैसे हाथ एव भुजा, तो उसके लिये धड के क्षेत्र की अपेक्षा सेल-बॉडीज़ के व्यापक क्षेत्र की आवश्यकता होगी, हालाकि धड के क्षेत्र का फैलाव ज्यादा रहता है, लेकिन इसकी इतनी अधिक सूक्ष्म हलचल नही होती है। प्रेरक क्षेत्र के सामने *प्री-मोटर क्षेत्र (Pre-motor area)* रहता है जो हलचल की सम्पूर्ण रूप-रेखा से सम्बन्धित होता है।

प्रेरक क्षेत्र मे स्थित कोशिकाओ से आरम्भ होकर कॉर्टिकोस्पाइनल तन्तु पखे की आकृति (देखिये चित्र 163) मे नीचे की ओर जाकर इन्टूरनल कैप्स्यूल (*Internal capsule*) से गुजरते हैं, जो थैलॅमस एव वेसल गेन्गिलआ के वीच स्थित रहता है। शरीर के एक तरफ की सपूर्ति करने वाले सभी प्रेरक तन्तु इन्टरनल कैप्स्यूल मे एकत्रित होते है, अत इस स्थान पर कोई चोट होने से प्रभावित भाग मे अगाघात (Paralysis) (अर्द्धअगाघात) हो जाता है। इसके वाद ये तन्तु पॉन्स से गुजरकर मेड्यूला ऑब्लॉन्गैटा मे जाते है जहाँ ये लम्वा सँकरा उभार वनाते है जिसे *पिरामिड* (*Pyramid*) कहते है। पिरामिड्स मे अधिकाश तन्तु दूसरी तरफ क्रॉस हो जाते है, यह क्रॉस *डिकॅज़ेशॅन ऑव दी पिरामिड्स* (*Decussation of the pyramids*) के स्थान पर होता है, इस प्रकार जो तन्तु वाये प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध से उत्पन्न हुए थे अव मार्ग के दाहिनी तरफ हो जायेगे और शरीर की दाहिनी तरफ की सपूर्ति करेगे। इसके वाद ये तन्तु *लेटरल कॉर्टिकोस्पाइनल मार्ग* के रूप मे नीचे की ओर स्पाइनल कॉर्ड तक जाते है। जो तन्तु डिकॅज़ेशॅन ऑव दी परामिड्स के स्थान पर दूसरी तरफ क्रॉस नही होते है वे स्पाइनल कॉर्ड मे नीचे की ओर एन्टिरिअॅर कॉर्टिकोस्पाइनल मार्ग मे जाते है और अतत स्पाइनल कॉर्ड मे दूसरी तरफ क्रॉस हो जाते हैं।
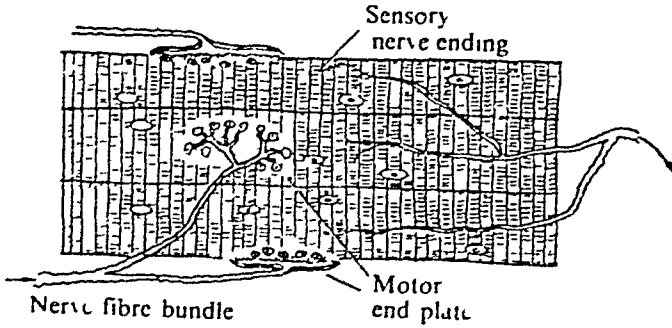
चित्र 168—मोटर एण्ड प्लेटस और सवेदी स्नायु अतसिरे दर्शाते हुए पेशी।

ये तन्तु स्पाइनल कॉर्ड के एन्टिरिअॅर हॉर्न से गुजरकर वहाँ स्थित सेल-बॉडीज के साथ साइनैप्स वनाते है। इसके वाद ये तन्तु स्पाइनल कॉर्ड के सामने के भाग से अग्र-मूल (Anterior root) के रूप मे निकलते है और इसी से सम्वन्धित सवेदी तन्तुओ के पश्च-मूल (Posterior root) से जुड कर *मिश्रित स्पाइनल स्नायु* (*Mixed spinal nerves*) वनाते है (देखिये चित्र 166)। परिधीय स्नायुओ के रूप मे ये विभिन्न क्षेत्रो, पेशियो सहित, की शाखाओ मे समाप्त हो जाते हैं। प्रेरक तन्तु शाखाओ मे विभाजित होते है और प्रत्येक शाखा मोटर एण्ड प्लेट (Motor end plate) मे समाप्त होती है जो अलग-अलग पेशीय तन्तु से जुडी रहती है। सवेदी तन्तु की कोशिकाएँ स्पाइनल स्नायुओ के पोस्टीरिअॅर रूट गेन्गिलआ स्थित होती है और पेशियो मे इनके अत-सिरे कई प्रकार के होते है।

प्रेरक क्षेत्र मस्तिष्क के कई अन्य भागो, सवेदी क्षेत्र सहित, से आवेग प्राप्त करता है। कॉर्टेक्स से आवेग स्पाइनल कॉर्ड, मस्तिष्क-स्तम्भ मे स्थित मोटर न्यूक्लिआइ, बेसल गेन्लिआ, सेरिबेलम एवं पॉन्स तक भेजे जाते है। विभिन्न स्नायु-मार्गों के माध्यम से उत्तेजन परिधीय स्नायुओ के द्वारा स्केलेटल पेशियो तक जाते हैं जो एक प्रकार की तनाव की अवस्था मे रहती हैं जिसे *पेशीय तनाव या स्फूर्ति (Muscle tone)* कहते हैं। प्रेरक तन्तुओ के विभिन्न जोडो के निरन्तर उपयोग के द्वारा पेशीय थकावट को रोका जाता है और पेशीय स्फूर्ति की श्रेणी किसी एक समय उपयोग मे आने वाले तन्तुओ की सख्या पर निर्भर रहती है।

ऊपरी प्रेरक न्यूरॉन (Upper motor neurone) शब्द का अर्थ केन्द्रीय स्नायविक तत्र मे स्थित प्रेरक तन्तु का एन्टिरिअर हॉर्न कोशिका के साथ इसका साइनैप्स बनना है। *निचले प्रेरक न्यूरॉन (Lower motor neurone)* का अर्थ एन्टिरिअर हॉर्न कोशिका और इसके तन्तु हैं।

कॉर्टिकोस्पाइनल मार्ग को पिरामिडल मार्ग भी कहा जाता है, इसलिये *एक्स्ट्रा पिरामिडल तत्र (Extra pyramidal system)* के अन्तर्गत कॉर्टिकोस्पाइनल एव कॉर्टिकोन्यूक्लिअर मार्गों के अलावा सभी प्रेरक तत्र सम्मिलित हैं। इस तत्र का मुख्य कार्य शरीर की सस्थिति बनाये रखने मे पेशीय हलचल का समन्वयन है ताकि वांछित सस्थिति बनाये रखते हुए भी हलचलें सही रूप से की जा सके।

सवेदी तंत्र (The Sensory System)

सवेदी तत्र इसको निरतर रूप मे उत्तेजित करने वाले आवेगो का अर्थ समझने से सम्बन्धित है। इनमे से कई आवेग सचेतनता के स्तर तक नही पहुँच पाते है क्योंकि स्नायविक तत्र स्वचलित रूप मे रक्तचाप की अधिकता, हृदीय धडकन की दर, पेशियो मे तनाव की श्रेणी और कई अन्य स्थितियो मे समायोजन करके इनसे निपट लेता है।

केन्द्रीय स्नायविक तत्र तक सवेदी आवेग विशिष्ट सवेदी अगो, त्वचा और शरीर के अन्दरुनी अगो से सचारित होते हैं।

विशिष्ट संवेदन (Special Senses)—दृष्टि के सवेदन आँख के रेटिना से *दृष्टि स्नायु* (द्वितीय मस्तिष्कीय स्नायु) के माध्यम से *ऑप्टिक काएँज्मा (Optic chiasma)* तक जाते है, यहाँ प्रत्येक दृष्टि स्नायु के मीडिअल तन्तु दूसरी तरफ क्रॉस होते हैं। इस आंशिक क्रॉसिग के कारण बायें प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्ध के दृष्टि-क्षेत्र मे बायी आँख के रेटिना के बाहरी (टेम्पोरल) तरफ की ओर दाहिनी आँख के रेटिना के अन्दरुनी (नेज़ल) तरफ की प्रतिच्छाया प्राप्त होती है। इसके बाद यह सवेदन ऑक्सिपिटल लोब्स मे स्थित *दृष्टि-क्षेत्रों (Visual areas)* तक ले जाया जाता है, जहाँ इसका अर्थ समझा जाता है। यह देखा जायेगा कि बायें दृष्टि स्नायु के विभाजन से उसी तरफ की आँख मे अधता होती है, लेकिन बायें दृष्टि-मार्ग

(Optic tract) के विभाजन से दृष्टि के सामान्य क्षेत्र का बाया आधा भाग देखने मे असमर्थता पैदा होगी।

सुनने के सवेदन वेस्टिब्यूलो-कॉक्लीअर स्नायु (आठवाँ मस्तिष्कीय स्नायु) के माध्यम से पॉन्स तक जाते हैं, जहाँ साइनैप्स होता है। तन्तुओ का दूसरा जोडा सवेदनो को मीडिअल जेनिक्यूलेट बॉडी (Medial geniculate body) तक और तीसरा जोडा टेम्पोरल लोब्स मे श्रवण क्षेत्रो (Auditory areas) तक अर्थ समझने के लिए ले जाता है।
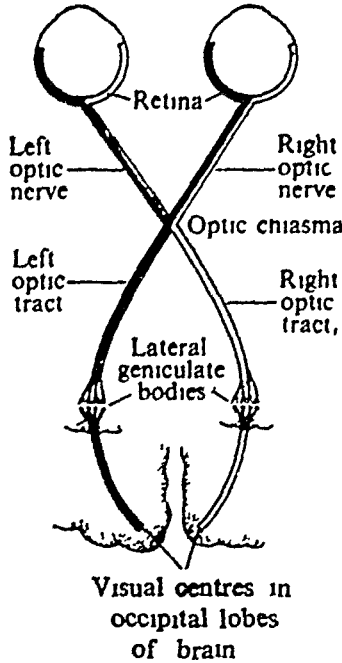
चित्र—169 आखो से दृष्टि-केन्द्रो तक दृष्टि-मार्ग ।

गध के सवेदन *गध-स्नायु* (*Olfactory nerve*) (पहला मस्तिष्कीय स्नायु) के माध्यम से *ऑलफेक्टॅरि वल्व* एव *ऑलफेक्टॅरि मार्ग* तक ले जाये जाते है जो फ्रॅन्टल लोव् के नीचे स्थित रहते हैं। विभिन्न प्रकार की गध का अर्थ टेम्पोरल लोव् के भिन्न-भिन्न भागो मे समझा जाता है। ऐसे कुछ *स्वाद* (*Tastes*) भी हैं जिन्हें बिना गध के सवेदन के पहचाना जा सकता है। स्वाद के सवेदन फैसिअल (सातवाँ मस्तिष्कीय स्नायु) एव ग्लॉसोफैरिन्जिअल (नवी मस्तिष्कीय स्नायु) के द्वारा ले जाये जाते हैं और सम्वन्धित गध के अनुसार टेम्पोरल लोव् मे इनका अर्थ समझा जाता है।

त्वचा एव पेशी से आने वाले सवेदन (Sensation from Skin and Muscle). सवेदी स्नायु अत सिरे त्वचा और अन्य ऊतको मे उपस्थित रहते हैं। विभिन्न प्रकार के सवेदन— तापक्रम, स्पर्श, दवाव एव तनाव की श्रेणी— के लिये उन्हे उत्तेजित करने हेतु भिन्न-भिन्न प्रकार के स्नायु-अंत सिरो की आवश्यकता होती है। त्वचा मे

संवेदी स्नायु तंतु (1) दर्द एव तापक्रम परिवर्तन को सचारित करने की क्षमता वाले स्नायु-अत सिरे, (2) हलके स्पर्श को संचारित करने वाले, या (3) ज्यादा दबाव सचारित करने वाले स्नायु-अत सिरे के रूप मे आरभ होते हैं। इसके अलावा पेशियो मे विशिष्ट रचनाएँ होती हैं जिन्हें *पेशी स्पिन्डल* कहते हैं, ये इन पर पड़ने वाले तनाव की श्रेणी के अनुसार प्रभावित होते हैं। इन सभी स्नायु अंत सिरो से सवेदी तन्तु स्पाइनल स्नायु के रूप मे स्पाइनल कॉर्ड मे स्थित पश्च स्नायु-मूलो तक फैले रहते हैं। पहले न्यूरॉन की स्नायु कोशिका पोस्टीरिअॅर रुट गेन्लिआॅन मे रहती है। सिर मे ये ट्राइजेमिनल स्नायु (पाँचवाँ मस्तिष्कीय स्नायु) एव अन्य मस्तिष्कीय स्नायु से होकर मस्तिष्क तक फैले रहते हैं।
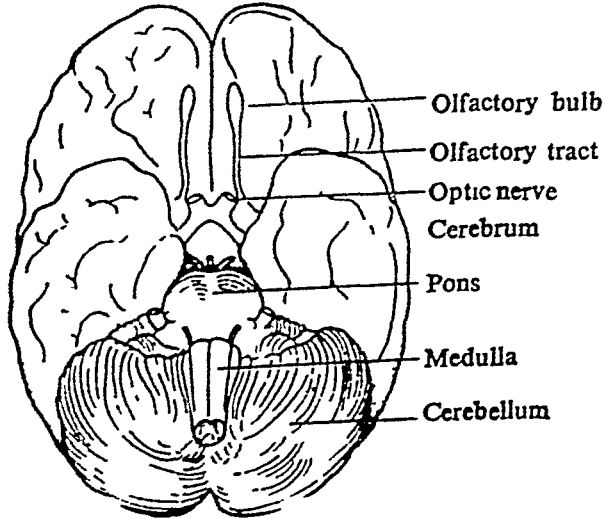
चित्र 170—मस्तिक, नीचे से देखने पर।

हलके स्पर्श एव पेशीय तनाव के संवेदन ले जाने वाले स्नायु ततु बाद मे एन्टिरिअॅर और पोस्टीरिअॅर हॉर्न कोशिकाओ को कई शाखाएँ प्रदान करते हैं ताकि स्पाइनल कॉर्ड का प्रत्येक खण्ड एक कार्यात्मक इकाई बन जाये। इसके बाद ये ऊपर की ओर सफेद-पदार्थ के पिछले भाग मे जाते हैं और मेड्यूला ऑब्लॉन्गैटा मे साइनैप्स के रूप मे समाप्त हो जाते हैं। दूसरा न्यूरॉन दूसरी तरफ क्रॉस होता है और थैलॅमस के स्थान पर समाप्त हो जाता है। तीसरा न्यूरॉन पॅराइटल लोब् मे स्थित संवेदी क्षेत्र तक आवेग ले जाता है।

दर्द एव तापक्रम के परिवर्तन वहन करने वाले ततु पोस्टीरिअॅर हॉर्न मे साइनैप्स बनाते है। दूसरा न्यूरॉन कॉर्ड की दूसरी तरफ तुरत क्रॉस हो जाता है और थैलॅमस मे साइनैप्स बनाने के लिये ऊपर की ओर जाता है। तीसरा न्यूरॉन सवेदी क्षेत्र तक जाता है।

ज्यादा दवाव के सवेदन ले जाने वाले ततु भी पोस्टीरिअॅर हॉर्न मे साइनैप्स वनाते हैं। दूसरा न्यूरॉन कॉर्ड की दूसरी तरफ क्रॉस होता है और कॉर्ड के विभिन्न भागो से होकर ऊपर की ओर थैलॅमम मे जाता है। तीमरा न्यूरॉन सवेदी क्षेत्र तक जाता है।

यह देखा जा सकता है कि सभी सवेदी ततु अतत. दूसरी तरफ क्रॉस होते है, इसलिये शरीर के वायी तरफ के सवेदन मस्तिष्क मे दाहिनी तरफ समझे जायेंगे। सभी सवेदी स्नायु भी थैलॅमस मे साइनैप्स वनाते हैं।

थलॅमस (Thalamus) शरीर को प्राप्त होने वाली संवेदी जानकारियो के समूह का वर्गीकरण करने और जव आवश्यक हो तव प्रमस्तिष्कीय कॉर्टेक्स या यथोचित रूप से मस्तिष्क के अन्य क्षेत्रो तक उन्हें भेजने के लिये जिम्मेदार रहता है। *हाइपो-थैलॅमम (Hypothalamus)* शरीर के अन्दरूनी अंगो की स्थिरता से सम्बन्धित रहता है। यह पानी के सतुलन को नियत्रित करता है और भूख, तापक्रम एव नीद को नियमित रखता है तथा भावना को नियत्रित करने मे भूमिका अदा करता है।

कॉर्टेक्स का सवेदी क्षेत्र सेन्ट्रल सल्कस के पीछे पॅराइटल लोव मे स्थित रहता है। प्रेरक क्षेत्र के समान शरीर उलटा प्रदर्शित होता है, निचले सिरे पर चेहरे, सिर एव हाथ के लिये वडे क्षेत्र और भुजा, धड एव पैर के लिए छोटे क्षेत्र रहते हैं जो तुलनात्मक रूप से कम सवेदनशील होते है।

मिनिन्जीस (मस्तिष्कावरण) (Meninges) :

मिनिन्जीस या मस्तिष्कावरण सुरक्षात्मक झिल्लियाँ है जो केन्द्रीय स्नायविक तत्र को ढॅकती हैं। इसकी तीन तहें होती हैं

वाह्य तह को *ड्यूरा मेंटर (Dura mater)* कहते है। यह सख्त तन्तुमय झिल्ली है जिसकी दो तहें होती हैं, वाह्य तह खोपटी की अन्दरूनी सतह का अस्तर है और पेरि-ऑस्टीअम वनाती है। फोरामॅन मैग्नम के स्थान पर यह तह खोपडी की वाहरी सतह पर पेरिऑस्टीअम के रूप मे निरतर रहती है। ड्यूरा की अन्दरूनी तह कुछ स्थानो पर अन्दर की ओर उभरी होती है और दोहरी तह वनाती है जो मस्तिष्क के भागो को पृथक करती है तथा उन्हें स्थिति मे वनाये रखने मे सहायता करती है। *फॉक्स सेरेब्राइ (Falx cerebri)* एक ऐसा मोड है जो दो प्रमस्तिष्कीय अर्द्धगोलार्द्धों के वीच रहता है, दूसरा मोट *टेन्टोरिअम सेरेवेलाइ (Tentorium cerebeli)* है जो प्रमस्तिष्क एव सेरिवेलम के वीच रहता है। ड्यूरा की दोनो तहें अधिकाश भाग तक एक-दूसरे के सम्पर्क मे रहती हैं, लेकिन जव ये शिरीय साइनस को घेरती है तव पृथक रहती हैं। ड्यूरामैटर की अन्दरूनी तह स्पाइनल कॉर्ड पर भी आवरण वनाती है और सैक्रम तक जारी रहती है।

सब-ड्यूरल स्थान (Sub-dural space) वास्तविक स्थान की अपेक्षा सभावित स्थान है जो ड्यूरामैटर एव ऍरैकनॉइड मैटर के बीच स्थित रहता है।

ऍरैकनॉइड मैटर (Arachnoid mater) नाजूक झिल्ली है जो ड्यूरा के ठीक नीचे स्थित रहती है और मस्तिष्क के मुख्य भागो के बीच धँसी रहती है।

सब-ऍरैकनॉइड स्थान (Sub-arachnoid space) ऍरैकनॉइड मैटर एव पीअॅमैटर के बीच रहता है और सेरिब्रोस्पाइनल द्रव से भरा रहता है। सेरिबेलम और मेड्यूला ऑब्लॉन्गैटा के बीच तुलनात्मक रूप से बडा स्थान है जिसे *सिस्टर्ना मैग्ना (Cisterna magna)* कहते हैं। छोटे बालको मे सेरिब्रोस्पाइनल द्रव का नमूना लेने के लिये इस स्थान का उपयोग किया जाता है। स्पाइनल कॉर्ड के आवरण के रूप मे ऍरैकनॉइड मैटर के साथ ड्यूरा साथ-साथ रहती है और सैक्रम तक फैली रहती है।

पीअॅमैटर (Pia mater) पतली रक्तसवहित झिल्ली है जो मस्तिष्क और स्पाइनल कॉर्ड की मतह के सम्पर्क मे रहती है और सभी मोडो (Convolutions) मे धँसी होती है।
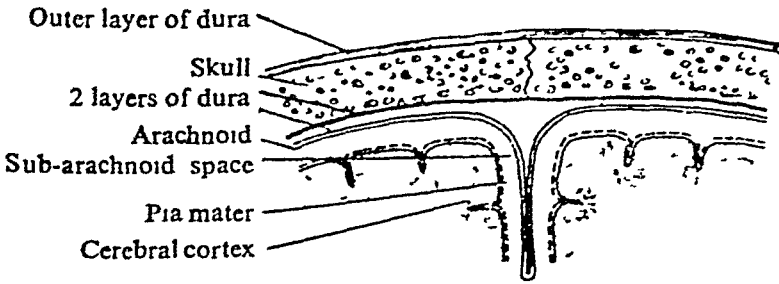
चित्र 171—मिनिन्जीज का रेखाचित्र

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव (The Cerebrospinal fluid) सेरिब्रोस्पाइनल द्रव स्वच्छ, रगहीन द्रव है जो, सब-ऍरैकनॉइड स्थान और मस्तिष्क के वेन्ट्रिकल्स मे भरा रहता है। यह वेन्ट्रिकल्स मे कोरॉइड प्लेक्सॅसेस *(Choroid plexuses)* द्वारा स्रावित होता है और दो पार्श्वीय वेन्ट्रिकल्स से, जो एक-दूसरे से एव इन्टरवेन्ट्रिक्यूलर फोरामॅन (छिद्र) के द्वारा तीसरे वेन्ट्रिकल्स मे जुडे रहते हैं, तीसरे वेन्ट्रिकल तक जाता है और इसके बाद एक्वीडॅक्ट (Aqueduct) नामक सँकरी नली के माध्यम से चौथे वेन्ट्रिकल मे जाता है। चौथे वेन्ट्रिकल के ऊपरी भाग (Roof) मे तीन छोटे छिद्र रहते है जिनके माध्यम से सेरिब्रोस्पाइनल द्रव सब-ऍरैकनॉइड स्थान मे जाता है जिसमे यह मस्तिष्क एव स्पाइनल कॉर्ड के बाहर की तरह आसपास परिसचरित होता रहता है। अतत यह ऍरैकनॉइड ग्रैन्यूलेशॅन्स *(Arachnoid granulations)* के माध्यम से शिरीय साइनसस मे शोषित हो जाता है, ये ग्रैन्यूलेशॅन्स ऍरैकनॉइड मैटर के छोटे उभार है।

सेरिब्रोस्पाइनल द्रव संरचना में रक्तप्लाजमा के समान होता है, हालांकि इसमें प्रोटीन की मात्रा बहुत कम रहती है। कुल मिलाकर इस द्रव की मात्रा 120 मि ली. और दबाव 60 से 150 मि मी (पानी के मान से) होता है। इसमें प्राय 20 से 30 मि ग्रा प्रोटीन प्रति 100 मि ली और 50 से 80 मि ग्रा. ग्लूकोज़ प्रति 100 मि ली. के मान से होता है। बीमारी में ये मात्राएँ परिवर्तित हो सकती हैं। सेरिब्रोस्पाइनल द्रव का मुख्य कार्य नाज़ुक स्नायु ऊतकों एव अस्थिमय गुहिकाओं की दीवारों के बीच पानी की गद्दीनुमा रचना बनाकर मस्तिष्क एव स्पाइनल कॉर्ड की सुरक्षा करना है। यह खोपडी मे दबाव को स्थिर रखता है और व्यर्थ एव विषाक्त पदार्थों को बाहर ले जाता है।

परिधीय स्नायविक तन्त्र (Peripheral Nervous System)

मस्तिष्कीय स्नायु (The Cranial nerves) :

मस्तिष्कीय स्नायु मस्तिष्क से आरम्भ या मस्तिष्क मे समाप्त होती है। कुछ प्रेरक स्नायु, कुछ संवेदी स्नायु, और कुछ मिश्रित स्नायु होते हैं (देखिये तालिका 16)।

स्पाइनल स्नायु (The Spinal nerves) :

स्पाइनल स्नायु स्पाइनल कॉर्ड के जिस क्षेत्र मे ये निकलते हैं उनके अनुसार इन्हें विभाजित किया जाता है। ये हैं.

1. *सर्वाइकल स्नायुओं (Cervical nerves)* के आठ जोडे, एक एटलस वर्टिब्रा के ऊपर और बाकी प्रत्येक सर्वाइकल वर्टिब्री के नीचे।
2. *थॉरेसिक स्नायुओं (Thoracic nerves)* के बारह जोडे, प्रत्येक थॉरेसिक वर्टिब्री के नीचे एक-एक।
3. *लॅम्बर स्नायुओं (Lumber nerves)* के पाँच जोडे
4. *सैक्रल स्नायुओं (Sacral nerves)* के पाँच जोडे
5. *कॉक्सिजिअॅल स्नायुओं (Coccygeal nerves)* का एक जोडा

} कॉडा इक्विना से निकलते हैं।
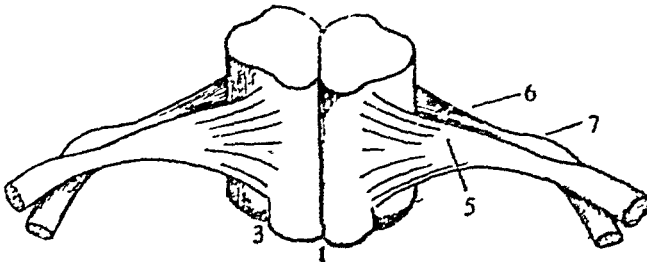
चित्र 172—स्पाइनल कॉर्ड से निकलते हुए स्पाइनल स्नायुओं के जोडे दर्शाते हुए स्पाइनल कॉर्ड की काट। 1 एव 2, कॉर्ड को दाहिने एव बायें भाग में विभाजित करने वाली दरार, 3 एव 4, बाहर की तरफ छोटी दरारें जहां से स्नायु निकलते हैं; 5 स्पाइनल स्नायु की अग्र प्रेरक मूल, 6, पिछली या संवेदी मूल जिस पर दोनों मूलों के जुडने के स्थान के समीप एक उभार के रूप में पोस्टीरिअर रूट गेन्ग्लिआन (7) स्थित हैं।

तालिका 16

मस्तिष्कीय स्नायु (Cranial Nerves)

	नाम	प्रकार	कार्य एवं वितरण
1.	ऑलफेक्टॅरि स्नायु	सवेदी	गंध की स्नायु। नाक से आरभ होती है और ऑलफेक्टॅरि वल्व तक जाती है।
2	ऑप्टिक स्नायु	संवेदी	दृष्टि की स्नायु। रेटिना से आरभ होती है और लेटरल जेनिक्यूलेट बॉडी तक जाती है।
3	ऑक्यूलोमोटर स्नायु	प्रेरक	मध्य-मस्तिष्क से निकलती है और आंखो को घुमाने वाली पेशियो मे समाप्त होती है।
4.	ट्रॉक्लीअर स्नायु	प्रेरक	तीसरी मस्तिष्कीय स्नायु के समान।
5	ट्राइजेमिनल स्नायु	प्रेरक एव सवेदी	चबाने की पेशियो की सपूर्ति करती है और इसकी तीन सवेदी शाखाएँ होती हैं—ऑफ्थेल्मिक, मेक्सिलॅरि और मेन्डिब्यूलर।
6	एब्ड्यूसॅन्ट स्नायु	प्रेरक	पॉन्स से आरभ होती है और आँख को घुमाने वाली पेशियो मे से एक मे समाप्त होती है।
7.	फेशिअॅल स्नायु	प्रेरक एव सवेदी	चेहरे के हाव-भाव वाली पेशियो की सपूर्ति करती है और जीभ के लिये सवेदी होती है।
8	वेस्टिब्यूलोकॉक्लीअर स्नायु	सवेदी	कान एव कॉक्लीआ से आने वाली शाखाएँ सुनने एव सतुलन का संवेदन देती है।
9	ग्लॉसोफैरिन्जिअॅल स्नायु	प्रेरक एव सवेदी	स्वाद की स्नायु। फैरिन्क्स तक प्रेरक तन्तु भी भेजती है।
10	वेगस स्नायु	प्रेरक एव सवेदी	पाचन मार्ग की सपूर्ति करती हैं और पाचक रसो का स्रावण एव हलचल नियत्रित करती है।
11.	ऍक्सेसॅरि स्नायु	प्रेरक	गर्दन की पेशियो, फैरिन्क्स एव नरम तालु के अधिकाश भाग की सपूर्ति करती है।
12	हाइपोग्लॉसल स्नायु	प्रेरक	जीभ की सपूर्ति करती है।

स्पाइनल स्नायु छोटी पिछली शाखाएँ प्रदान करती हैं जो गर्दन एवं धड के पिछले भाग की पेशियो की सपूर्ति करती है, तथा इसकी लम्बी अगली शाखाएँ हाथ-पैरो एव धड की बाजू व सामने के भाग की सपूर्ति करती हैं।

कुछ क्षेत्रो मे ये स्नायु स्पाइनल मार्ग से निकलने के तुरत बाद शाखा मे विभक्त हो जाती है, और ये शाखाएँ विभिन्न पेशियो एव अगो की सपूर्ति करने वाले स्नायुओ से जुड़ जाती हैं। इन अन्तर्शाखाओ के मिलन को प्लेक्सॅस कहते हैं। प्लेक्सॅसेस थॉरेसिक क्षेत्र के अलावा सभी स्थानो पर बनते हैं।

सर्वाइकल स्नायु दो प्लेक्सॅस बनाते हैं

1. *सर्वाइकल प्लेक्सॅस*, जो गर्दन एवं कंधो की पेशियो की स्नायु-सपूर्ति करता है, और डाइफ्राम की सपूर्ति करने वाले फ्रेनिक स्नायु भी प्रदान करता है।

2. *ब्रॅकिॲल प्लेक्सॅस*, जो ऊपरी भुजा की सपूर्ति करता है।

ब्रॅकिॲल प्लेक्सॅस तीन मुख्य स्नायु प्रदान करता है—रेडिॲल, मीडिॲन एवं अलनर स्नायु। *रेडिॲल स्नायु (Radial nerve)* ह्यूमरस के पिछले भाग से नीचे की ओर अग्र-भुजा के बाहरी भाग तक फैली रहती है। यह कोहनी, कलाई व हाथ की एक्सटेन्सॅर पेशियों की सपूर्ति करती है। यह दबाव के लिए बगल एव ह्यूमरस के स्थान पर ऊपरी तौर से रहती है तथा इस पर चोट लगने से 'कलाई-गिरने' (Wrist-drops) की स्थिति पैदा हो जाती है, इस स्थिति मे कलाई का जोड़ मुड़ा हुआ ही रहता है, इसे ताना नही जा सकता है। यह स्थिति बिना गद्दी लगी हुई, सस्ती और बिना हाथ के सहारे वाली बैसाखियो के उपयोग, बगल मे जोर से दबने या ऑपरेशन के दौरान यदि रोगी की भुजा लटकी रहती है तो टेबल की किनार से ह्यूमरस अस्थि पर दबाव गिरने मे हो सकती है।

ॲल्नर एव मीडिॲन स्नायु (Ulnar and Median nerves) क्रमश भुजा के अन्दर एवं बीच की तरफ फैली रहती है, और कलाई व हाथ की फ्लेक्सॅर पेशियो
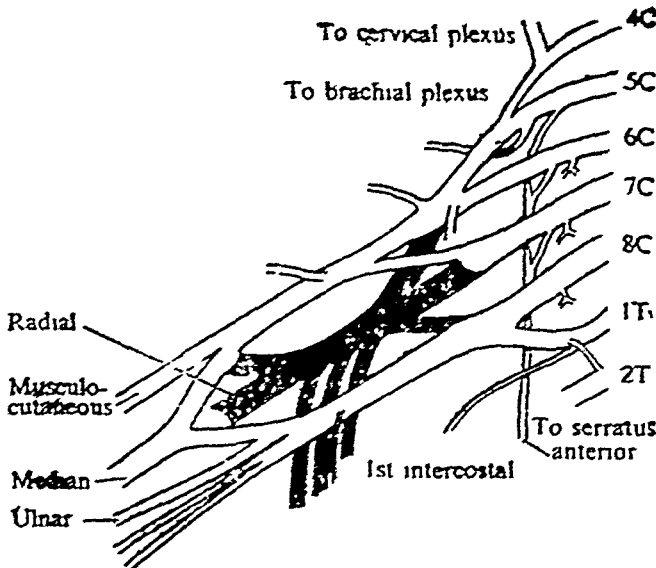
चित्र 173—ब्रॅकिॲल प्लेक्सॅस और इससे निकलने वाले मुख्य स्नायु।

की सपूर्ति करती है। इन पर चोट लगने से अति-प्रसरण (Hyperextension) की स्थिति पैदा हो जाती है जिससे हाथ 'पजे' के समान (Claw-like) दिखाई देता है, अविरोधी एक्सटेन्सॅर पेशियाँ उपयोग मे आती हैं। चौथी छोटी स्नायु, *मस्क्यूलो-कुटॅनीअॅस स्नायु* कोहनी की फ्लेक्सर्स पेशी, बाइसेप्स एव ब्रेकिऍलिस पेशियो की सपूर्ति करती है। वह अल्नर है जो ह्यूमरस के अन्दरुनी एपिकोन्डाइल की पिछली सतह और ऑलीक्रेनॅन के बीच के गड्ढे से क्रॉस होती है, तथा जब हम यह कहते है कि 'हमारी कोहनी की नस मे झटका लग गया है' तो इसका तात्पर्य यह है कि कोहनी के स्थान पर झटका या दबाव लगने से इस स्नायु के कारण झुनझुनी एव दर्द होता है जो नीचे की ओर हाथ तक पहुँचता है।

थॉरॅसिक स्नायु वक्ष-स्थल की पेशियो और उदरीय दीवार के मुख्य भागो की सपूर्ति करती है।
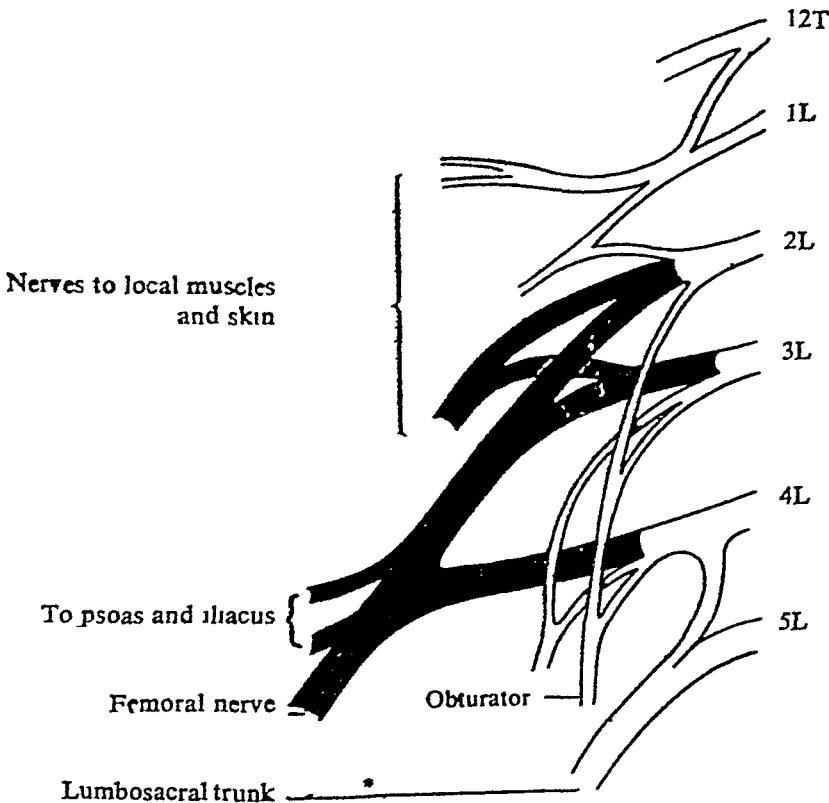
चित्र 174—लम्बर प्लेक्सॅस और इससे निकलने वाले मुख्य स्नायु। यह मुख्य भाग सैक्रल प्लेक्सॅस से जुड़ता है।

लम्बर स्नायु लम्बर प्लेक्सॅस बनाते हैं जो एक मुख्य स्नायु फीमोरल स्नायु (Femoral nerve) प्रदान करते हैं। यह स्नायु सोएॅस पेशी के बाजू से जाँघ के

सामने से इन्ग्वाइनल लिगॅमेन्ट के नीचे से गुजरता है और वहाँ पेशियो की संपूर्ति करता है। लम्बर प्लेक्सॅस निचली प्लेक्सॅस दीवार को भी शाखाएँ प्रदान करता है।

सॅक्रल स्नायु चौथे एव पाँचवें लम्बर स्नायुओ के साथ मिलकर सॅक्रल प्लेक्सॅस बनाते हैं जो एक वडा स्नायु साएँटिक स्नायु (Sciatic nerve) प्रदान करते हैं। यह स्नायु शरीर का सबसे बडा स्नायु है। साएँटिक नॉच (गड्ढे) के स्थान से यह श्रोणि के बाहर निकलता है, कूल्हे के जोड के पिछले भाग से गुजरकर नीचे की ओर जांघ के पिछले भाग तक जाता है और वहाँ पेशियो की संपूर्ति करता है। घुटने के ऊपर यह दो मुख्य शाखाओ मे विभाजित होता है

1. पेरोनीॲल स्नायु (*Paroneal nerve*), जो टाँग एव पाँव के अगले भाग की पेशियो की संपूर्ति करता है।
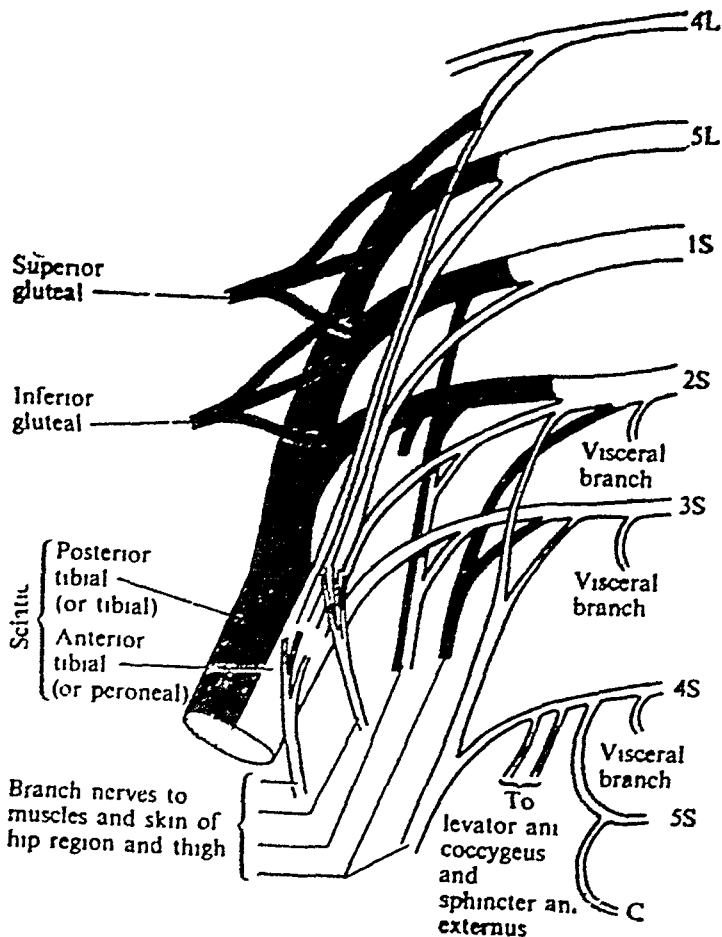
चित्र 175—सॅक्रल प्लेक्सॅस, इससे निकलने वाले मुख्य स्नायु दर्शाते हुए।

2 *टिबिअँल स्नायु (Tibial nerve)*, जो टाँग के पिछले भाग की पेशियो की संपूर्ति करता है।

इसलिये साएँटिक स्नायु फीमोरल स्नायु से आने वाली छोटी सवेदी शाखा को छोडकर घुटने के नीचे सम्पूर्ण टाँग की सपूर्ति करती है।

कॉक्सिजिअॅल स्नायु निचली सैक्रल स्नायुओ की शाखाओ के साथ मिलकर श्रोणिय गुहिका के पिछले भाग पर दूसरा छोटा प्लेक्सॅस बनाती हैं, जो उस क्षेत्र की पेशियो एव त्वचा की सपूर्ति करती हैं। उदाहरणार्थ पेरिनीअॅल बॉडी की पेशियाँ गुदा की बाह्य अवरोधिनी पेशी, त्वचा, तथा पेरिनीअॅम एव बाह्य जननागो के अन्य ऊतक आदि।

सैक्रल एव कॉक्सिजिअॅल स्नायु श्रोणिय क्षेत्र मे सिम्पॅथेटिक गेन्लिआ को भी शाखाएँ प्रदान करते हैं।

ऑटोनॉमिक स्नायविक तत्र (The Autonomic nervous system) •

ऑटोनॉमिक स्नायविक तत्र शरीर के सभी आतरिक अगो एव रक्त वाहिकाओ को स्नायु-सपूर्ति करता है। इसका यह नाम इसलिये है क्योकि ये अग स्व-नियत्रित (auto=स्व) रहते है तथा इच्छा शक्ति के नियत्रण मे नही होते हैं। आतरिक अंगो का कार्य सामान्यतया विना सचेतन ज्ञान के होता रहता है। इच्छा शक्ति सामान्यतया उन्हें प्रभावित नही करती, लेकिन भावनाएँ जरूर प्रभावित करती है। ये हाइपोथॅलॅमस से प्रभावित होते हैं।

ऑटोनॉमिक स्नायवकि तत्र का अधिकाश भाग इफॅरन्ट (Efferent) होता है। यह अधिकतर इफॅरन्ट न्यूरॉन्स का बना होता है, अर्थात् प्रेरक एव स्रावी दोनो ही, प्रेरक भाग आमाशय, आँत, मूत्राशय, हृदय एव रक्तवाहिकाओ जैसे अगो की दीवारो की अनैच्छिक पेशियो की सपूर्ति करता है तथा स्रावी भाग यकृत, अग्न्याशय एव गुर्दो की सपूर्ति करता है। कुछ ऍफॅरन्ट तन्तु (Afferent) भी होते हैं। लेकिन सख्या मे ये तुलनात्मक रूप से कम रहते हैं, क्योकि आतरिक अग करीब-करीब असवेदन-शील होते हैं। परिणामस्वरूप बीमारी इन्हें विना दर्द पैदा किये नष्ट कर सकती है और यदि दर्द होता भी है तो वह जिस गुहिका मे ये अग स्थित रहते हैं उसकी अस्तर बनाने वाली झिल्ली के प्रदाह से ही होता है, उदाहरणार्थ, क्षयरोग या न्यूमोनिया फुफ्फुस के ऊतक को विना किसी दर्द के प्रभावित कर सकते हैं। लेकिन जैसे ही प्लूरा प्रभावित होता है तो तेज दर्द महसूस होने लगता है। इसी प्रकार उदरीय दीवार को काटने मे दर्द होता है, लेकिन जब उदर के बाहर आँत निकाल कर उसका कोई टुकडा काटा जाता है तब रोगी को दर्द महसूस नही होता है, यह उदाहरण नर्स कोलोस्टॉमि के मामले मे देख सकती है।

आँटोनॉमिक स्नायविक तत्र दो भागो का बना होता है :

1 सिम्पेथेटिक स्नायविक तत्र
2 पेरासिम्पेथेटिक स्नायविक तत्र
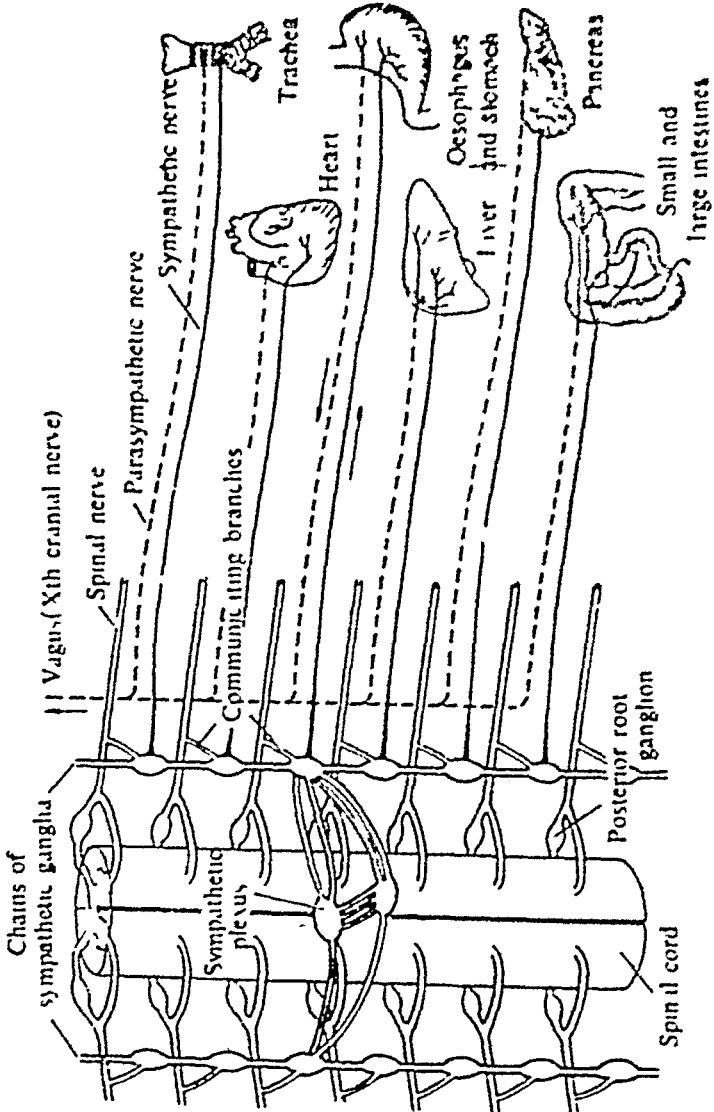
चित्र 176—आँटोनॉमिक स्नायविक तत्र के भागो का रेखाकित चित्राकन। सिम्पेथेटिक स्नायविक तत्र निरन्तर रेखा के द्वारा और पेरासिम्पेथेटिक तत्र बिन्दु-अकित रेखा के द्वारा दर्शाया गया है।

सिम्पेथेटिक (*Sympathetic*) स्नायविक तत्र गेन्ग्लिआ की दोहरी शृंखला का बना होता है जो सर्वाईकल, थॉरेसिक एव लम्बर क्षेत्रो मे वर्टिब्रल कॉलम के ठीक सामने नीचे की ओर धड मे फैला रहता है। ये गेन्ग्लिआ एक-दूसरे से स्नायुओ के द्वारा जुडे रहते हैं। इनमे स्पाइनल कॉर्ड के थॉरेसिक एव ऊपरी लम्बर क्षेत्रो

से आने वाली स्नायु मिलती हैं, ये आन्तरिक अंगो की सम्पूर्ति करने वाली स्नायु बिसरल शाखाएँ (*Visceral branches*), तथा पुन स्पाइनल स्नायुओ की ओर जाने वाली स्नायु, पॅराइटल शाखाएँ (*Parietal branches*) प्रदान करते हैं। ये स्नायु रक्त-वाहिकाओ, स्वेट एव सीबेशॅस ग्रन्थियो और त्वचा के बालो को खडा करने वाली पेशियो की संपूर्ति करते हैं। कुछ क्षेत्रो मे जहाँ कई अँगो को स्नायु-सपूर्ति की आवश्यकता होती है वहाँ दो शृखलाओ के बीच अतिरिक्त गेन्लिआ होते हैं जो स्नायुओ द्वारा शृखलाओ से व एक दूसरे से जुडे रहते हैं और नज़दीक के अगो को शाखाएँ प्रदान करते हैं, इन्हें प्लेक्सॅम कहते हैं, उदाहरणार्थ थॉरेमिक क्षेत्र मे हृदय के पीछे कार्डिअॅक प्लेक्सॅस स्थित रहता है, और सोलर प्लेक्सॅस डाइफ्राम के ठीक नीचे स्थित होता है जहाँ आमाशय, यकृत, गुर्दे, प्लीहा एवं अग्न्याशय पाये जाते हैं।

पेरासिम्पेथेटिक (*Perasympathetic*) स्नायविक तत्र मुख्यतया वैगस स्नायु से बना होता है, जो वक्ष-स्थल एव उदर के सभी अँगो को शाखाएँ प्रदान करता है लेकिन इसके अन्तर्गत अन्य मस्तिष्कीय स्नायुओ (तीसरा, सातवा एव नवा स्नायु)
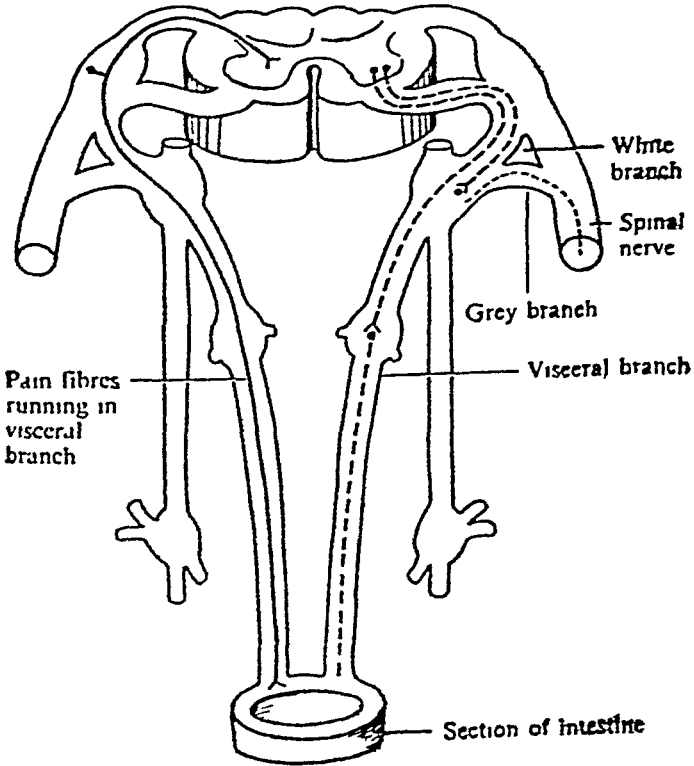
चित्र 177—स्पाइनल कॉर्ड की काट, सिम्पेथेटिक स्नायुओं के इफॅरन्ट एव एफॅरन्ट मार्ग और स्पाइनल स्नायुओं से सम्बन्ध दर्शाते हुए ।

की शाखाएँ और वर्टिब्रल कॉलम के सैक्रल क्षेत्र के गैन्ग्लिआ मे आने वाली स्नायु भी सम्मिलित है।

ऑटोनॉमिक तन्त्र के कार्य (The Functions of Autonomic System) : इस प्रकार सभी आन्तरिक अंगो मे दोहरी स्नायु-संपूर्ति सिम्पेथेटिक एव पेरासिम्पेथेटिक होती है, तथा स्नायुओ के दो जोडे रहते है, प्रत्येक मामले मे जिनकी विपरीत क्रियाएँ होती है, पहली उत्तेजक (*Stimulating*) और दूसरी अंग की गतिविधि को रोकना (*Checking*), यह व्यवस्था मोटरकार के समान रहती है जिसमे एक्सीलेरेटॅर-पेडल तेज गति करने के लिये और ब्रेक-पेडल उस गति को रोकने हेतु रहते है।

सिम्पेथेटिक स्नायुओ का हृदय एव श्वसनीय तन्त्र पर उत्तेजक और गतिवर्द्धक प्रभाव होता है, लेकिन पाचन पर अवरोधक प्रभाव। इन स्नायुओ मे रक्तपरिसचरण मे सुधार होता है और श्वासनलिकाओ का विस्तारण जिसने वायु का अन्तर्ग्रहण बढ जाता है, लेकिन लार ग्रन्थियो और सम्पूर्ण आहार मार्ग के पाचक रसो का स्रावण बद कर देते है और पेरिस्टैल्टिक क्रिया को उनकी दीवार मे ही अवरुद्ध कर देते है। ये स्नायु अत्यधिक भावुकता जैसे डर, क्रोध एव उत्तेजना के द्वारा उत्तेजित हो जाते हैं। (भावनाओ के इस प्रभाव के कारण इन्हे सिम्पेथेटिक कहा जाता है) इस प्रकार इनके कार्य एड्रीनेल मेड्यूला मे नजदीकी रूप मे जुडे रहते है, जिसे कि ये उत्तेजित करते है, ये शरीर को भावनाओ के प्रति प्रतिक्रिया के लिये सहायता करते हैं, क्योकि ये पेशियो को ऑक्सीजन मे परिपूरित रक्त की अच्छी पूर्ति करते है, इससे व्यक्ति को डर के समय भागने एव क्रोध के समय लडने मे सहायता होती है, अर्थात् इन भावनाओ के प्रति नैसर्गिक प्रतिक्रिया। इसके विपरीत, ये अत्यधिक भावावेश मे आहार के पाचन को रोक देते हैं और इस प्रकार उल्टियाँ या मलत्याग की स्थिति पैदा कर सकते हैं, अर्थात् आंत अपनी अन्तर्वस्तुओ मे छुटकारा पाना चाहती है जिन्हें वह कुछ क्षणो तक और रोक नही सकती है।

पेरासिम्पेथेटिक स्नायुओ का प्रभाव ठीक विपरीत होता है, ये पाचक तन्त्र को उत्तेजित करते है और पाचक रसो की ज्यादा मात्रा स्रावित करते है तथा पेरिस्टैल्टिक हलचल भी बढाते हैं। इसके विपरीत, वैगस स्नायु हृदय क्रिया को मद, रक्तपरिसचरण को कम, श्वसनीय तन्त्र पर अवरोधक प्रभाव व श्वास नलिकाओ का सकुचन करता है। ये स्नायु प्रसन्नचित्त भावनाओ मे उत्तेजित होते हैं। परिणामस्वरूप प्रसन्नता एव शात मस्तिष्क मे पाचन मे सुधार होता है। पॉवलॉव ने यह बात आमाशयिक छिद्र द्वारा कुत्ते मे दर्शाई थी। जब कुत्ते को हड्डी दिखाई तो वह खुश हुआ, तब वैगस स्नायु के माध्यम से प्रतिवर्ती क्रिया द्वारा आमाशय मे आमाशयिक रस प्रवाहित होना आरम्भ हो गया। उस कमरे मे बिल्ली को लाने से कुत्ता नाराज हुआ और रस का प्रवाह रुक गया, क्योकि सिम्पेथेटिक स्नायु उत्तेजित

हो गये थे । पॉवलॉव ने यह भी पाया था कि प्रतिदिन कुत्ते को खाना खिलाने के पूर्व यदि घटी बजाई जाये तो कुछ दिनो बाद कुत्ते को उसी समय बिना खाना खिलाये घटी बजाने मे भी आमाशयिक रस का स्रावण होगा। इसे *अनुबन्धित प्रतिवर्ती क्रिया (Conditioned reflex)* कहा जाता है। उस प्राणी ने दो बातो मे सम्बन्ध स्थापित करना सीख लिया था, इस प्रकार किसी भी एक बात मे उसमे समान प्रकार की प्रतिवर्ती प्रतिक्रिया होती थी। मानव शरीर मे भी यही बात होती है। शाम के खाने की घटी बजने से पाचक रसो का स्रावण आरम्भ हो जायेगा, उसी प्रकार जैसे कि अच्छी प्रकार परोसे गये खाने, उसकी मधुर गध और आकर्षक दिखावट से होता है। अत पाचन की गडबडी वाले रोगियो को क्षुधावर्द्धक ढँग मे भोजन परोसने का विशिष्ट महत्व है, तथा ऐसे व्यजनो का चयन करना चाहिये जिनमे रोगी को अधिक मे अधिक प्रसन्नता हो।

प्रतिवर्ती क्रियाए (Reflex Actions)

प्रतिवर्ती क्रिया ऊतको से ऍफरन्ट न्यूरॉन्स द्वारा लाये गये उत्तेजनो से प्रेरक कोशिकाओ के उत्तेजन के परिणामस्वरूप होती है। इसलिये आने वाले उत्तेजन सवेदन पैदा करने के अलावा क्रिया प्रदान करते है। ये सवेदन तब ही पैदा करेंगे जब ये मस्तिष्क के सवेदी क्षेत्रो मे पहुँचते हैं। इसके विपरीत, स्पाइनल कॉर्ड और मस्तिष्क मे ये प्रेरक कोशिकाओ को उत्तेजित कर सकते है और वह क्रिया प्रदान करते है जिसे *प्रतिवर्ती क्रिया* कहते है। हर समय ऊतको से स्पाइनल कॉर्ड और मस्तिष्क मे सवेदी उत्तेजन पहुँचते रहते हैं। यदि ये प्रमस्तिष्क के कॉर्टेक्स के सवेदी केन्द्रो तक पहुँच जाते है और उन्हें उत्तेजित करते है तो ये वह सवेदन पैदा करते है जिसके प्रति हम सचेत हो जाते है। यदि ये प्रेरक कोशिकाओ को उत्तेजित करते हैं तो ये प्रतिवर्ती क्रिया पैदा करते हैं, उदाहरणार्थ त्वचा पर कोई गरम चीज छू जाने पर तुरत उस अँग को हटा लेना, पटेला लिगॅमेन्ट पर हलकी थपकी देने मे क्वाड्रिसेप्स एक्सटेन्सॅर पेशी का सकुचन होता हे और 'नी-जर्क' होता है, पाँव के तलुए पर नुकीली वस्तु घुमाने से अँगूठा नीचे की ओर मुड जायेगा। पहली क्रिया के मामले मे यह माना जा सकता है कि चूँकि गरमी मे जलन होती है इसलिये हम अँग हटाना चाहते हें और यह क्रिया ऐच्छिक है। इसके विपरीत, जब किसी प्राणी मे गर्दन के स्थान से स्पाइनल कॉर्ड कट जाती है तब यह क्रिया होती है, इस प्रकार कोई भी सवेदन मस्तिष्क तक नही पहुँच सकता है और वास्तव मे यह क्रिया अचोटग्रस्त प्राणी की अपेक्षा इसमे ज्यादा स्पष्ट दिखाई देती है। स्पाइनल कॉर्ड मे सवेदी उत्तेजन सवेदी तन्तुओ द्वारा लाया जाता है, सयोजक तन्तुओ द्वारा एन्टिरिॲर हॉर्न की प्रेरक कोशिकाओ मे सचालित होता है, और प्रेरक तन्तुओ द्वारा पेशिओ तक बाहर जाता है। नी-जर्क के मामले मे ऍफरन्ट तन्तुओ द्वारा कॉर्ड के लम्बर क्षेत्र मे सवेद उत्तेजन ले जाये जाते है और ये प्रेरक कोशिकाओ को उत्तेजित करते हैं जो क्वाड्रिसेप्स को नियन्त्रित करती है।

प्रतिवर्ती क्रिया का कारण तब और अधिक स्पष्ट ज्ञात होगा जब कॉर्ट मस्तिष्क से अलग काट दी जाती है क्योंकि प्रतिवर्ती क्रिया पर प्रमस्तिष्कीय केन्द्रों का निरोधक प्रभाव (*Inhibiting effect*) होता है। प्रतिवर्ती क्रिया इच्छा शक्ति द्वारा निर्मित नही होती है, यह केवल वातावरण के प्रति प्रतिक्रिया है और यह मात्र एक ही प्रकार की क्रिया है जो प्राणियो के निचले वर्गों मे पाई जाती है। प्रमस्तिष्क के विकास के साथ, ऐच्छिक क्रिया के द्वारा प्रतिवर्ती क्रिया का नियत्रण और प्रतिवर्ती क्रिया का आशिक विस्थापन होता है। यदि हम कोई गरम वस्तु छूते है तो स्वाभाविक क्रिया वहाँ से अंग हटा लेने की है, जैसे कोई अबोध बालक सिगडी मे रखे अगारे को छूने पर हाथ हटा लेता है। इसके विपरीत यदि हम खाने की गरम प्लेट उठाते हैं तब खाने और प्लेट की उपयोगिता या महत्व का ध्यान रखते हुए हम उस गरम प्लेट को निरतर पकडे रहते हैं और सुरक्षित रूप मे नीचे रखते है, चाहे हमारी ऊँगलियाँ ही क्यो न जल रही हो, प्रतिवर्ती क्रिया अवरुद्ध हो जाती है। यदि हमें सचेत कर दिया गया है और यह मान लिया गया है कि प्लेट गरम है तो यह नियत्रण अधिक आसानी से स्थापित हो जायेगा। विशुद्ध प्रतिवर्ती क्रिया के मामले मे, जहाँ जो क्रिया होना है उसकी कोई उपयोगिता नही है, जैसे नी-जर्क और पाँव के तलुए को खरोंचने से अगूठे का नीचे की ओर मुडना, वहाँ मस्तिष्क से कुछ निरोधक प्रभाव फिर भी रहता है, और यदि मस्तिष्क से पेशी तक का स्नायु मार्ग एन्टिरिअर हॉर्न कोशिका के ऊपरी

चित्र 178—रिफ्लेक्स आर्क।
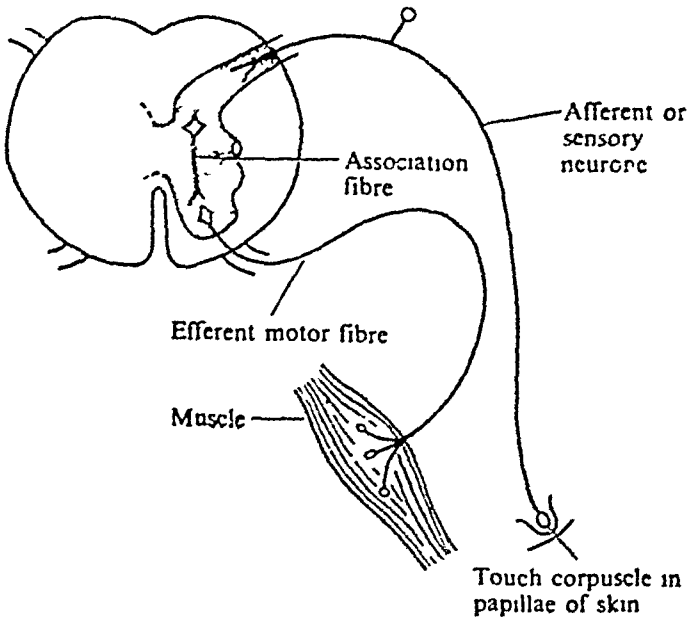
भाग पर चोट या बीमारी के द्वारा क्षतिग्रस्त हो गया है तो यह क्रिया और ज्यादा स्पष्ट होती है।

क्रियाएँ जो आरभ से ही ऐच्छिक होती हैं वे सवेदन अनुभूति के रूप मे बन जाती हैं, उदाहरणार्थ खडे रहना आरंभ मे ऐच्छिक क्रिया है जो ईच्छा-शक्ति के द्वारा होती है। जब हम हमारा सतुलन दो पाँवो पर रखना सीख लेते है तब यह क्रिया हम हमारे पाँवो की त्वचा, पेशियो एव जोडो तथा सवेदी अँगो के सतुलन द्वारा करते हैं, और जब तक सवेदी स्नायु किसी बीमारी के द्वारा प्रभावित नही होते है तब तक हम बिना किसी ऐच्छिक प्रयत्न के खडे रह सकते है। इसी प्रकार, जब हम बुनाई सीखते हैं तब आरभ मे यह ऐच्छिक क्रिया होती है। धीरे-धीरे हमारी ऊँगलिया और हाथ ऊन, सलाइयो और हलचलो का स्पर्श-बोध सीख लेते है और हम तब तक बिना ध्यान दिये आसानी से बुनाई कर सकते हैं जब तक कि या तो हाथो मे सवेदन क्षति नही हो जाती है या कोई नई कठिन डिज़ाइन सीखना होती है।

प्रतिवर्ती क्रिया स्नायविक तत्र मे तीन विभिन्न स्तरो पर हो सकती है

1 स्पाइनल प्रतिवर्ती क्रिया, उदाहरणार्थ नी-जर्क

2 मस्तिष्क के निचले भाग पर होने वाली प्रतिवर्ती प्रतिक्रिया, उदाहरणार्थ छीक आना, खाँसी, उल्टिया, चलना (सेरिबेलर)।

3 प्रमस्तिप्क मे होने वाली प्रतिवर्ती क्रियाएँ मस्तिष्क के सहयोगी तन्तुओ के उपयोग सहित।

23. कान

The Ear

कान सुनने का अंग है और शरीर का सतुलन बनाये रखने मे भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। बाह्य कान, मध्य कान और आन्तरिक कान का कॉक्लीआ सुनने मे सम्बन्धित है, जबकि आन्तरिक कान के ही सेमिसर्क्यूलर केनॅल्स, यूट्रिकल्स एव सैक्यूल सन्तुलन मे सम्बन्धित रहते हैं।

बाह्य कान (External Ear) मे दो भाग होते है, बाहरी कान या ऑरिकल और बाह्य श्रवण मार्ग (External acoustic meatus), *बाहरी कान (Auricle)* सिर के बाजू मे उभरा हुआ रहता है, यह लचीले फाइब्रो-कार्टिलेज के पतले टुकड़े का बना और त्वचा से ढंका रहता है। यह ध्वनि तरंगो को ग्रहण कर बाह्य श्रवण छिद्र की ओर भेजता है। *बाह्य श्रवण मार्ग* करीब 4 से. मी. लम्बा नली के आकार का मार्ग है जो टेम्पोरल अस्थि मे खुलता है। इसके बाहरी एक-तिहाई मार्ग मे कार्टिलेज की दीवारें और आन्तरिक दो-तिहाई भाग मे अस्थि की दीवारें
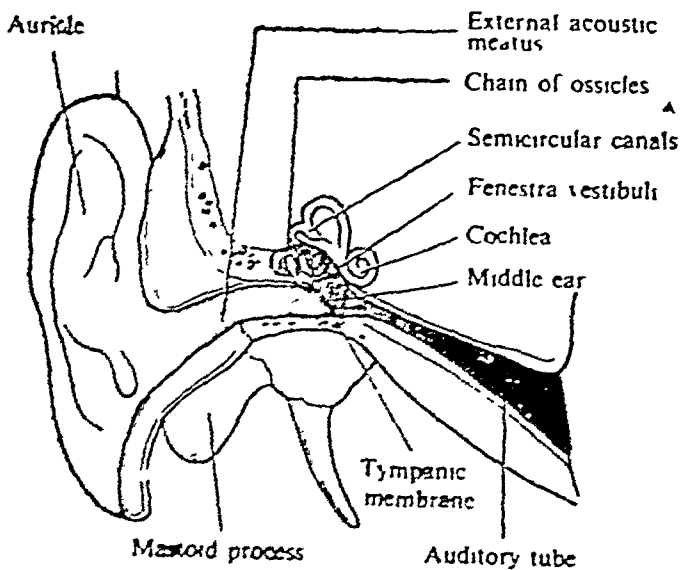
चित्र 179—कान।

रहती है; यह मार्ग मुड़ा हुआ रहता है जो पहले आगे एव ऊपर की ओर तथा बाद मे पीछे एव ऊपर की ओर तथा अत मे आगे एव सामने नीचे की ओर

जाता है। ये मोड बाहरी कान पर मद खिचाव द्वारा तने रहने है, वयस्को मे खिचाव ऊपर एव पीछे की ओर, वालको मे सिर्फ पीछे की ओर तथा शिशुओ मे नीचे एव पीछे की ओर रहता है। छिद्र का अन्दरुनी सिरा टिम्पेनिक झिल्ली (Tympanic membrane) मे वद रहता है। कार्टिलेजिनॅस मार्ग का अस्तर बनाने वाली त्वचा मे वालो के फॉलिकल्स और कई ग्रन्थियाँ होती हैं जो एक पदार्थ सेर्‌यूमेन (Cerumen) स्रावित करती हैं। ये धूल एव अन्य कणो से युक्त वाह्य-वस्तुओ से इम मार्ग की सुरक्षा करती हैं, लेकिन सेर्‌यूमेन एकत्रित हो गया तो यह स्वय भी मार्ग को अवरुद्ध कर देता है, और तव इमे सिरींजिग द्वारा निकालने की आवश्यकता होगी।

मध्य कान (The middle ear) टेम्पोरल अस्थि मे एक छोटा स्थान है। टिम्पेनिक झिल्ली इसे वाह्य कान मे पृथक करती है और इमके आगे की (मीडिअल) दीवार आन्तरिक कान के वाजू की दीवार से वनती है। इस गुहिका मे श्लेष्मिक झिल्ली का अस्तर रहता है और यह वायु से भरी होती हे जो श्रवण नली (Auditory tube) द्वारा फॅरिन्क्स (ग्रमनी) से प्रविष्ट होती है। यह टिम्पेनिक झिल्ली के दोनो तरफ वायु के दवाव को सतुलित रखती है। इममे तीन अत्यत छोटी अस्थियो की शृखला रहती हे जिन्हे ऑसिकल्स (Ossicles) कहते हैं, ये टिम्पेनिक झिल्ली के कम्पनो को आन्तरिक कान तक पहुचाते हे। टिम्पेनिक झिल्ली पतली एव अर्द्धपारदर्शक होती है और ऑसिकल्स की पहली छोटी अस्थि मैलीॲन (Malleus) का हेण्डल इसकी आन्तरिक सतह से मजवूती मे जुटा रहता है। इन्कस (Incus) नामक छोटी अस्थि मैलीॲम एव स्टैपीज (Stapes) से जुटती है जिसका निचला भाग (आधार) फेनेस्ट्रा वेस्टिव्यूलाइ मे जुडा रहता है, जो आन्तरिक कान मे खुलता है। मध्य कान की पिछली दीवार मे असमान आकार का एक छिद्र होता हे जो मैस्टॉइड एन्ट्रम मे खुलता है और यह फिर कई मैस्टॉइड वायु कोशिकाओ मे खुलता है। ये वायु कोशिकाएँ अस्थि मे वायु से भरी गुहिकाएँ हैं जो नाक के साइनसस के समान सक्रमित हो मकती है।

आन्तरिक कान (The internal ear) टेम्पोरल अस्थि के पीट्रिॲस भाग मे स्थित रहता है। यह दो भागो का वना होता है, अस्थिमय लैवॅरिथ और झिल्लीमय लैवॅरिथ, ।

अस्थिमय लैवॅरिन्थ (The bony labyrinth) को पुन तीन भागो मे विभाजित किया जाता है, वेस्टिव्यूल, कॉक्लीआ और सेमिमरक्यूलर केनॅल्न।

वेस्टिव्यूल (Vestibule) मध्य कान मे दो छिद्रो द्वारा सम्वन्धित रहता है, एक फेनेस्ट्रा वेस्टिव्यूलाइ (Fenestra vestibuli) जो स्टेपीज के निचले भाग (आधार) के द्वारा भरा रहता है, और दूसरा फेनेस्ट्रा कॉक्लीआ (Fenestra cochlea) जो तन्तुमय ऊतक के द्वारा भरा रहता है। पिछले भाग पर सेमिनर्क्यूलर

कैनॉल्स मे खुलने वाले छिद्र और सामने के भाग पर कॉक्लीआ मे खुलने वाला छिद्र रहता है।

चित्र 180—अस्थिमय लैबॅरिन्थ।
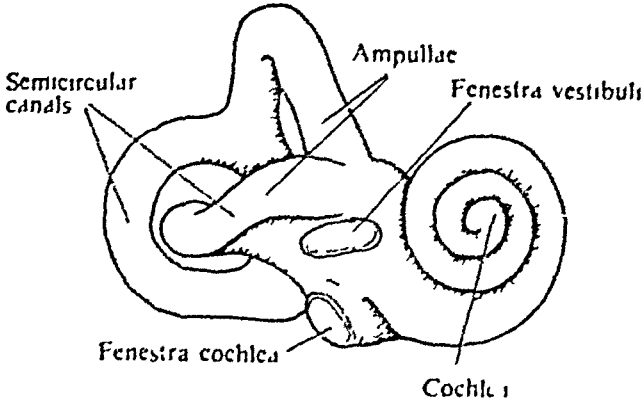
कॉक्लीआ (*Choclea*) सुनने मे सम्बन्धित रहता है। यह कुण्डली-आकार नली है जो *मॉडिओलस* (*Modiolus*) नामक अस्थि के मध्य स्तम्भ के आसपास दो और तीन चौथाई मोड बनाती है। दो झिल्लियों द्वारा यह नली लम्बवत् रूप मे तीन पृथक् सकरे मार्गो (Tunnels) मे विभाजित रहती है, ये दो झिल्लियाँ बेसिलर एव वेस्टिब्यूलर है जो मॉडिओलस मे बाह्य दीवार तक फैली रहती है। बाहरी सँकरा मार्ग (Outer tunnel) ऊपर की ओर स्कैला वेस्टिब्यूलाइ तथा नीचे के ओर स्कैला टिम्पेनाइ कहलाता है। ये सँकरे मार्ग पेरिलिम्फ से भरे रहते है और मॉडिओलस के ऊपरी भाग पर जुडते है। स्कैला टिम्पेनाइ का निचला सिरा तन्तुमय फेनेस्ट्रा कॉक्लीआ के द्वारा बन्द रहता है। मध्य सकरा मार्ग (Middle tunnel) कॉक्लीअर वाहिका कहलाता है और यह एन्डोलिम्फ से भरा रहता है। इसकी आकृति अस्थिमय लैबॅरिन्थ के समान होती है और इसे
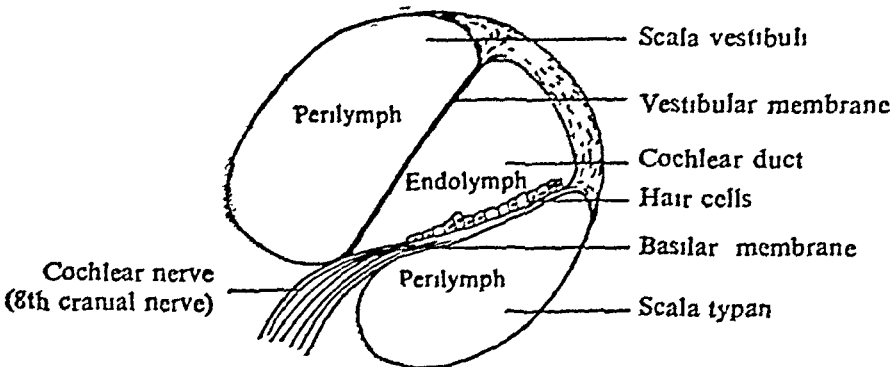
चित्र 181—कॉक्लीआ के स्थान मे काट।

झिल्लीमय लैबॅरिन्थ कहते है। कॉक्लीअर वाहिका मे ऑडिटॅरि स्नायु के विशिष्ट स्नायु अन्त सिरे रहते है जिन्हें रोम कोशिकाएँ (Hair cells) कहते हैं।

सेमिसरक्यूलर केनॅल्स (Semicircular Canals) तीन होती है और वेस्टिब्यूल के ऊपर एवं पीछे के स्थान को तीन विभिन्न सतहो—एक खडी, एक समतल एव एक आडी, पर स्थित रहती हैं। इनमे पेरिलिम्फ रहता है। जब सिर की स्थिति परिवर्तित होती है तब प्रत्येक सँकरे मार्ग के सिरे पर स्थित रोम जैसे उभारो वाली विशिष्ट कोशिकाओ को एन्डोलिम्फ की हलचल उत्तेजित करती है। यह जानकारी या सूचना सस्थिति बनाये रखने मे सहायता करती है, हालाकि दिन मे मुख्यतया यह आँखो की जिम्मेदारी रहती है कि वे सिर की स्थिति के बारे मे जानकारी प्रदान करें। सेमिसरक्यूलर केनॅल्स मे उपस्थित द्रव के अति-उत्तेजन से चक्कर आते है।

झिल्लीमय लैबॅरिन्थ (The membranous labyrinth) अस्थिमय लैबॅरिन्थ मे स्थित रहता है, हालाकि यह बहुत छोटा होता है। इसके अन्तर्गत यूट्रिकल, सैक्यूल, सेमिसरक्यूलर वाहिकाएँ एव कॉक्लीअर वाहिका सम्मिलित है।

यूट्रिकल एव सैक्यूल वेस्टिब्यूल मे स्थित दो छोटी थैलीनुमा रचनाएँ हैं जो एक सयोजक नली के द्वारा एक दूसरे से जुडी रहती है। उनमे सवेदी रोम कोशिकाओ के गुच्छे रहते है जो इनसे चिपके छोटे-छोटे दानो जैसी रचनाओ (ऑटोलिथ्स) पर गुरुत्वाकर्षण की क्रिया द्वारा उत्तेजित होते हैं।

सेमिसरक्यूलर वाहिकाएँ आकृति मे सेमिसरक्यूलर केनॅल्स के समान होती हैं और उन्ही मे स्थित रहती है लेकिन इनका डाइमीटर सिर्फ एकचौथाई होता है। इनमे एन्डोलिम्फ रहता है।

कॉक्लीअर वाहिका कॉक्लीआ के अस्थिमय मार्ग मे स्थित कुण्डली-आकार नली है जो इसकी बाहरी दीवार के सहारे स्थित रहती है। इसका ऊपरी भाग (Roof) वेस्टिब्यूलर झिल्ली द्वारा और निचला भाग (Floor) वेसिलर झिल्ली से तथा बाह्य दीवार कॉक्लीआ की अस्थिमय दीवार से बनती है।

सुनने की क्रिया विधि (The Mechanism of Hearing)

ध्वनि तरग किसी वस्तु के कम्पन के द्वारा उत्पन्न वायु के कम्पन (Vibration) की तरग है। उदाहरण के लिये वेला वाद्य यत्र के तार या स्वर-यत्र के सूत्र का कम्पन इनके सम्पर्क मे आई वायु मे कम्पन पैदा करती है और कम्पन की कई तरगें उठती है जो कई दिशाओ मे फैलती है, जैसे कि तालाब मे पत्थर फेकने पर छोटी-छोटी तरगे उठती है।

ध्वनि पैदा होने के लिये कम्पन निश्चित दर मे होना आवश्यक है। मनुष्य का कान 30 और 30,000 प्रति सेकण्ड की दर से हो रहे कम्पनो द्वारा ही उत्तेजित

होता है। मंद कम्पन कम स्वर पैदा करते हैं और तेज कम्पन तीव्र स्वर पैदा करते हैं। इसी कारण स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की आवाज मोटी होती है, क्योंकि पुरुष के स्वर-सूत्र (Vocal cords) लम्बे रहते हैं और बहुत धीरे कम्पित होते हैं जबकि स्त्रियों के छोटे रहते हैं और अधिक शीघ्रता से कम्पित होते हैं। यौवनारम्भ के समय स्वर-यंत्र (लैरिन्क्स) की तेज वृद्धि और स्वर-सूत्रों के लम्बे हो जाने के कारण आवाज कुछ मोटी होना शुरू हो जाती है।

ध्वनि तरंग 1090 फीट प्रति सेकण्ड की दर पर संचारित होती है। ये तरंगें प्रकाश की किरणों की अपेक्षा अधिक मंद रूप में संचारित होती हैं, इसीलिये बिजली की गर्जना सुनाई देने के पहले उसकी चमक दिखाई देती है और बादल जितनी दूर होंगे दोनों के बीच अंतराल भी उतना ही अधिक होगा।

ध्वनि तरंगें सामान्यतया वायु द्वारा संचारित होती हैं, लेकिन ये ठोस वस्तुओं में भी गुजरती हैं, यथार्थ में, वायु की अपेक्षा ठोस में ध्वनि अधिक आसानी से संचारित होती है। इस प्रकार जमीन पर कान लगाकर सुनने से खड़े रहकर सुनने की अपेक्षा कदमों की आहट ज्यादा दूरी से भी सुनाई देने लगती है, किन्तु, सामान्यतया कान वायु के सम्पर्क में ही रहते हैं।
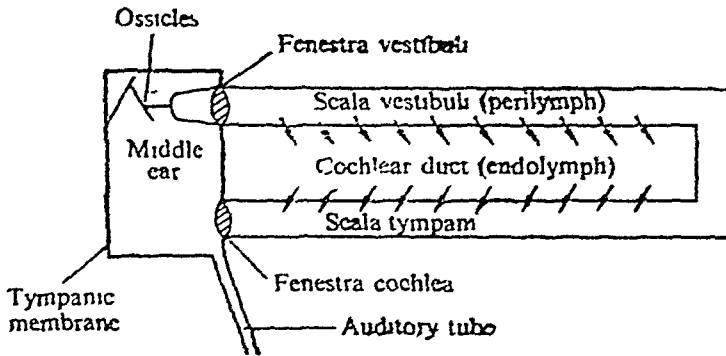
चित्र 182--कम्पन आन्तरिक कान में कैसे गुजरते हैं, यह दर्शाते हुए रेखाचित्र।

सुनने की प्रक्रिया टिम्पेनिक झिल्ली के कम्पन से ऑसिकल्स और फेनेस्ट्रा वेस्टिब्यूलाइ में कम्पन होने और इसके साथ ही पेरिलिम्फ में कम्पन होने के परिणामस्वरूप होती है। चूँकि द्रव दबता नहीं है अतः पेरिलिम्फ तब ही कम्पित हो सकेगा जब फेनेस्ट्रा कॉक्लीआ, जैसे ही फेनेस्ट्रा वेस्टिब्यूलाइ अन्दर की तरफ उभरता है, वैसे ही बाहर की ओर उभरने में सक्षम हो। इसलिये आन्तरिक कान में दो छिद्रों की आवश्यकता होती है। पेरिलिम्फ के कम्पन से एन्डोलिम्फ में कम्पन होता है जो ठीक इसमें उपस्थित छोटे-छोटे रोमों को उत्तेजित करता है और झिल्लीमय कॉक्लीआ में वेस्टिब्यूलो-कॉक्लीअर स्नायु के अन्त सिरों को भी उत्तेजित करता है। यह स्नायु इस उत्तेजन को मस्तिष्क के टेम्पोरल लोब (खण्ड) में स्थित सुनने के केन्द्र तक ले जाता है, जहाँ इसे पहचाना एवं समझा जाता है।

ध्वनि की पहचान तब ही होगी जब कोई उत्तेजन ऑडिटॅरि स्नायु द्वारा सुनने के केन्द्र तक ले जाया जाता है, लेकिन ध्वनि का अर्थ पूर्व अनुभव एवं तर्क शक्ति पर निर्भर रहेगा।

24. आँख

The Eye

आँख देखने का अग है और यह नेत्रगुहा मे स्थित रहती है जो इसे चोट से सुरक्षा प्रदान करती है।

आँख की रचना (The Structure of the Eye)

आख आकृति मे गोलाकार एव वसा मे अन्त स्थापित रहती है। इसमे तीन तहे होती है बाहरी तन्तुमय तह, रक्त-सवहनी तह, रजक तह और आन्तरिक स्नायविक तह।

बाहरी तन्तुमय तह (The Outer fibrous coat) मे दो भाग रहते है। पिछला भाग अपारदर्शी रहता है और इसे स्क्लीरा (*Sclera*) कहते है, यह एक मजबूत झिल्ली है जो नेत्र-गोलक की आकृति सुरक्षित रखती है। इसकी बाह्य सतह सफेद रहती है और आँख का सफेद भाग बनाती है। स्क्लीरा का अगला भाग कॅन्जक्टिवा से ढँका रहता है जो पलको की अन्दरूनी सतह से इस पर परावर्तित होता है और कॉर्निआ को ढँकने वाली कॉर्निअल एपिथीलिअम के साथ निरतर रहता है। कॉर्निआ (*Cornea*) तन्तुमय तह का अगला भाग है। यह आँख की सतह से कुछ उभरा हुआ रहता है और पारदर्शी होता है जो प्रकाश की किरणो को आँख मे प्रविष्ट होने देता है और रेटिना पर केन्द्रित होने के लिये उन्हे झुकने देता है (रिफ्रैक्शन)।
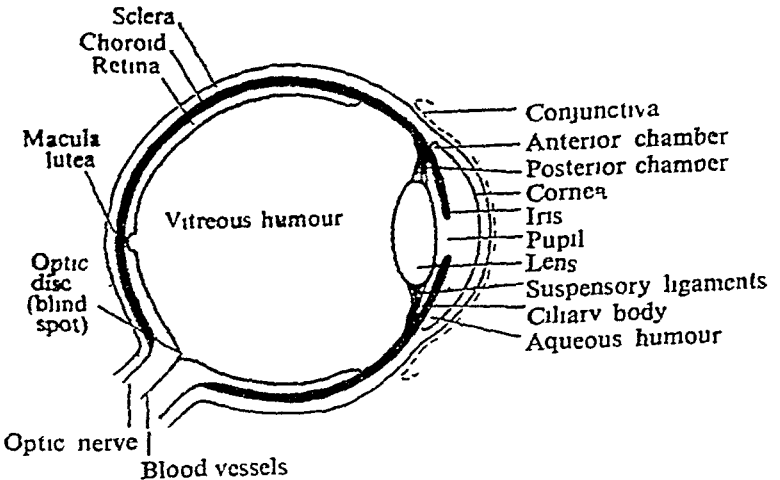
चित्र 183 आँख।

रक्त-सवहनी, रंजक तह (The Vascular pigmented coat) मे तीन भाग होते हैं। कोरॉइड (*Choroid*) आँख के सामने के भाग को छोडकर सम्पूर्ण भाग पर रहता है। यह गहरे-भूरे रग का होता है तथा आँख की अन्य तहो, विशेष रूप से रेटिना को रक्त पूर्ति करता है। *सिलिएँरि बॉडी (Ciliary body)* मध्य तह का मोटा भाग है जिसमे पेशीय एव ग्रन्थिय ऊतक रहते है। *सिलिएँरि पेशिया* लेन्स की आकृति नियत्रित करती है और आवश्यकतानुसार दूर या नजदीक की प्रकाश की किरणो को केन्द्रित करने मे सहायता करती हैं। इन्हे *समायोजन (Accommodation)* की पेशिया कहते है। *सिलिएँरि ग्रन्थिया* पानी जैसा द्रव बनाती हैं जिसे एक्वीअँस ह्यूमँर (*Aqueous humar*) कहते है, यह आँख मे लेन्स के सामने के भाग मे भरा रहता है और आइरिस एवं कॉर्निआ के बीच के कोण मे स्थित छोटे-छोटे छिद्रो के माध्यम में शिराओ मे जाता है । *आइरिस (Iris)* आँख का रगीन भाग है। यह कॉर्निआ और लेन्स के मध्य स्थित रहता है और इस स्थान को एन्टिरिअँर एव पोस्टीरिअँर चेम्बर्स मे विभाजित करता है, आइरिस मे गोलाकार एव फैले हुए तन्तुओ के रूप मे जमे हुए पेशीय ऊतक रहते हैं, गोलाकार तन्तु (Circular fibres) प्यूपिल (पुतली) को सकुचित करते हैं और फैले हुए तन्तु (Radiating fibres) इसे विस्तारित करते है। मध्य मे एक गोलाकार छिद्र रहता है जिसे प्यूपिल (Pupil) कहते हैं जो तेज रोशनी को आँख मे प्रविष्ट होने से रोकने के लिये तेज रोशनी के प्रभाव से सकुचित हो जाता है और कम रोशनी मे फैल जाता है ताकि अधिक से अधिक रोशनी रेटिना तक पहुच सके।
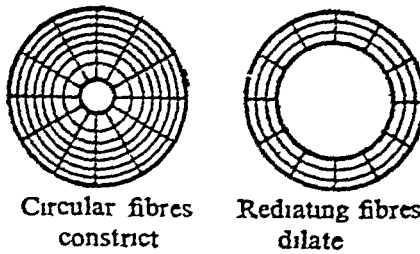
चित्र 184—प्युपिल (आँखों की पुतली)।

आँख की आन्तरिक तह (Inner coat) को रेटिना कहते है। यह बहुत ही नाजुक झिल्ली है जो प्रकाश की किरणो को ग्रहण करने के अनुकूल रहती है और इसमे कई स्नायु कोशिकाएँ एव तन्तु रहते हैं। यह रॉड्स (Rods) एव कोन्स (Cones) की बनी होती है जिनके अलग-अलग कार्य होते हैं। कोन्स आँख के मध्य भाग मे अधिक रहते हैं और ये विस्तृत दृष्टि एवं रग बोध के लिये जिम्मेवार होते हैं, रॉड्स रेटिना के बाहरी किनारे के आसपास अधिक सख्या में रहते हैं और दृष्टि के क्षेत्र के अन्दर वस्तुओ की हलचल के प्रति सवेदनशील होते हैं।

इनमे विजूअल परपल (Visual purple) नामक एक रजक पदार्थ होता है जो विटामिन A के सश्लेषण के लिये आवश्यक है, आहार मे विटामिन A की कमी
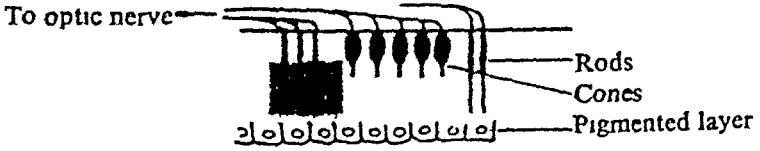
चित्र 185–रेटिना के बाहर रॉड्स एव कोन्स की सतहें ।

से रतौंध या रात्रि-अधता (Night blindness) हो जाती है । रेटिना के पिछले मध्य भाग के नजदीक एक अण्डाकार पीला क्षेत्र रहता है जिसे *मेक्यूला ल्यूटीआ* (*Macula lutea*) कहते हैं, यहाँ सिर्फ कोन्स ही उपस्थित रहते हैं और इस क्षेत्र पर दृष्टि अधिक पूर्ण होती है । मेक्यूला ल्यूटीआ के नाक वाले भाग की तरफ करीब 3 मि मी दूर ऑप्टिक स्नायु आँख से गुजरता है, इस क्षेत्र को *ऑप्टिक डिस्क* (*Optic disc*) कहते है और चूकि यह रोशनी के प्रति असवेदनशील होता है इसलिये इसे अन्ध-विन्दु (Blind spot) भी कहते है । कोई वस्तु एक आँख मे एक समय ही अन्ध-बिन्दु के सामने हो सकती है। अन्ध-विन्दु को चिन्हित करने के लिये नीचे दर्शाये अनुसार कागज पर चिन्ह लगाइये

X ●

अब बायी आँख बन्द कीजिये और दाहिनी आँख धीरे-धीरे क्रॉस चिन्ह पर केन्द्रित कीजिये तथा कागज को आँख के स्तर पर ही धीरे-धीरे आगे एव पीछे की ओर घुमाइये। किसी निश्चित बिन्दु पर डॉट का चिन्ह दिखाई नही देगा क्योंकि यह अन्ध बिन्दु के ठीक सामने रहता है ।

आँख मे निम्नलिखित रचनाएँ रहती हैं

1 एक्वीअॅस ह्यूमॅर 2 विट्रीअॅस ह्यूमॅर 3 लेन्स

एक्वीअॅस ह्यूमॅर (*Aqueous humour*) का वर्णन पिछले पृष्ठ पर किया जा चुका है ।

विट्रीअॅस ह्यूमर (*Vitreous humour*) रगहीन, पारदर्शी जेली के समान पदार्थ है जो नेत्रगोलक की आकृति बनाये रखता है।

लेन्स (*Lens*) आइरिस के एकदम पीछे स्थित रहता है। यह पारदर्शी, बाइ-कॉनवेक्स रचना है जो पारदर्शक, लचीले कैप्स्यूल मे बन्द रहता है, इस कैप्स्यूल से सिलिऐरि बॉडी तक लिगॅमेन्ट्स जुडे रहते हैं। ये *ससपेन्सॅरि लिगॅमेन्ट्स* लेन्स को स्थिति मे बनाये रखते है और इन्ही के माध्यम से सिलिऐरि पेशिया लेन्स पर खिचाव डालती हैं और दूर या नजदीक देखने के लिये लेन्स की आकृति परिवर्तित करती हैं ।

दृष्टि की क्रिया विधि (The Mechanism of Sight)

जैसे ही प्रकाश की किरणें पारदर्शी कॉर्निआ, एक्वीअस ह्यूमर एव लेन्स मे गुजरती है वे झुक जाती है, इस प्रक्रिया को रिफ्रेक्शन (*Refraction*) कहते है। इस प्रक्रिया मे रोशनी के बडे क्षेत्र से आने वाली किरणों को रेटिना के छोटे क्षेत्र पर केन्द्रित किया जाता है। प्रकाश की समानान्तर किरणें जब कॉनवेक्स लेन्स से टकराती हैं तो रेटिना पर केन्द्र बिन्दु की तरफ झुकती है, यदि वस्तु मात मीटर से कम दूरी पर है तो लेन्स की गोलाई बढना आवश्यक है ताकि रेटिना पर उसकी प्रतिच्छाया केन्द्रित हो सके। इसे समायोजन कहते हैं। दूर दृष्टि लेन्स की सामान्य आराम की अवस्था मे सभव हो सकती है।
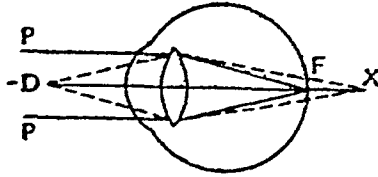
चित्र 186–आराम के समय सामान्य आंख, P=दृश्य वस्तु से आने वाली समानान्तर किरणें लेंस के द्वारा रेटिना (F) पर केन्द्रीत है। बिन्दु अकित रेखाएँ समीपस्थ वस्तु (D) से आने वाली डाइवर्जिंग किरणें दर्शाते हुए, जो रेटिना के पीछे X पर केन्द्रीत होती है।
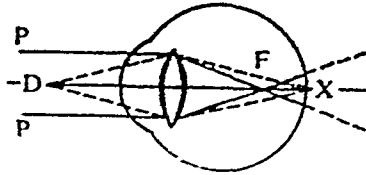
चित्र 187–समायोजन के दौरान सामान्य आँख समीपस्थ वस्तु (D) से आने वाली बिन्दु अकित रेखाए अधिक मुडे हुए लेन्स के द्वारा X बिन्दु पर रेटिना पर केन्द्रित होती है। P=दूरस्थ वस्तु से आने वाली समानान्तर किरणें अब रेटिना के सामने (F) केन्द्रित होती हैं।

कुछ व्यक्ति सामान्यतया निकट दृष्टि-दोष (Short-sighted) से प्रभावित रहते है। यह इस तथ्य के कारण होता है कि उनकी आखे ज्यादा लम्बी रहती है, इस प्रकार लेन्स सामान्य की अपेक्षा रेटिना से अधिक दूर रहता है और केन्द्र-बिन्दु इसके सामने स्थित होता है। इस मामले मे समीपस्थ वस्तु आराम की अवस्था मे आँख के चपटे लेन्स द्वारा देखी जा सकती है (सामान्यतया जिसका उपयोग दूर देखने के लिये किया जाता है), लेकिन दूर देखने के लिये कॉनकेव लेन्स आवश्यक होते है ताकि केन्द्र-बिन्दु को पीछे की ओर बढाया जा सके।
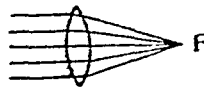
चित्र 188–कॉनवेक्स लेन्स, प्रकाश की समानान्तर किरणे केन्द्र F पर कैसे लाई जाती है यह दर्शाते हुए।

कुछ व्यक्ति सामान्यतया दूरदृष्टि दोष (Long sighted) से प्रभावित रहते है। यह इस तथ्य के कारण होता है कि उनकी आँखे बहुत छोटी रहती हैं, अत रेटिना लेन्स के समीप और केन्द्र-बिन्दु रेटिना के पीछे स्थित रहता है। इस मामले मे दूर की वस्तुएँ मोटे, अधिक मुडे हुए लेन्स, जिसका उपयोग सामान्य व्यक्ति निकट दृष्टि के लिये करता है, के द्वारा देखी जा सकती है, क्योंकि यह लेन्स प्रकाश की किरणो को अधिक झुका देगा और केन्द्र-बिन्दु को आगे ले आयेगा, पास की वस्तुएँ देखने के लिये, चूकि ये पहले से ही अधिक मुडे हुए लेन्स का उपयोग कर रहे है इसीलिये पास की वस्तु से आने वाली प्रकाश की किरणो को और अधिक झुकाने के लिये इन्हे कॉनवेक्स लेन्स लगाना आवश्यक होता है।

नेत्रगुहा मे आंख छ ऑर्बिटल पेशियो द्वारा घुमती है, ये पेशिया छोटे रिबॅन जैसी होती है और स्क्लीरा से जुडी रहती है। ये पेशियाँ आँखो पर खिचाव डालती हैं और उनकी हलचल को समन्वित करती हैं, इस प्रकार दोनो आँखें एक वस्तु पर केन्द्रित होती है। एक या एक से अधिक पेशियो मे कमजोरी होने से आँख घूम जायेगी, ऐसी स्थिति को सामान्यतया स्क्विन्ट (भेंगापन) कहते है।
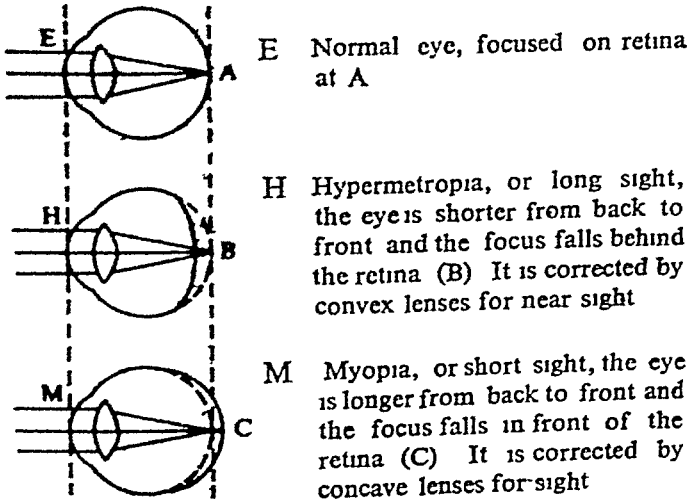
चित्र–189 सामान्य आंख (E), हाइपरमेट्रोपिआ (H) एव मायोपिआ (M)।

आँखो की सुरक्षा (Protection of Eyes)

आँखे बहुत नाजुक अग है तथा भौहो, पलको, लेक्रिमल अग और नेत्रगुहिकाओ, जिनमे ये वसीय ऊतक मे अन्त स्थापित रहती है, के द्वारा सुरक्षित रहती है।

ऊपर की ओर स्थित भौंहे (*Brows*) चोट और अत्यधिक रोशनी से आँखो की सुरक्षा करती हैं जबकि भौहो के बाल पसीने को आँखो की ओर बहने से रोकने है।

पलकें (*Eyelids*) त्वचा से ढँकी एव श्लेष्मिक झिल्ली के अस्तर वाली तन्तुमय ऊतक की प्लेट की वनी होती हैं। पलको की किनारो पर वाल होते हैं जिन्हें पलकों के वाल (*Eyelashes*) कहते है, ये वाल धूल, कीडे-मकोडो एव अधिक रोशनी से आँखो की सुरक्षा करते है। पारदर्शी श्लेष्मिक झिल्ली जो पलको का अस्तर वनाती है, सामने की ओर नेत्रगोलक परावर्तित होती है, तव इसे कन्जन्क्टिवा (*Conjunctiva*) कहते है। इस परावर्तन के फलस्वरूप ऊपर एव निचले पलक के नीचे ऊपरी एव निचले कॅन्जन्क्टिवल स्थान वनते है। धूल और वेक्टीरिआ इस झिल्ली की चिकनी सतह पर चिपक जाते है, और लेक्रिमल अग द्वारा यह निरतर साफ होती रहती है।

लेक्रिमल अग–निम्नलिखित भागो का वना होता है

1 लेक्रिमल ग्रन्थि (*Lacrimal gland*)–आँख के ऊपर वाहर की ओर स्थित रहती है और कॅन्जन्क्टिवल स्थान मे लेक्रिमल द्रव स्रावित करती है।

2 दो पतली नलिकाएँ, जिन्हें लेक्रिमल केनालिक्यूलाइ (*Lacrimal canaliculi*) कहते है, पलको के आन्तरिक कोण से लेक्रिमल थैली तक फैली रहती है।

3 लेक्रिमल थैली (*Lacrimal sac*) लेक्रिमल अस्थि के गड्ढे मे पलको के आन्तरिक कोण के स्थान पर स्थित रहती है।

4 नेज़ो-लेक्रिमल वाहिका (*Naso-Lacrimal duct*)–लेक्रिमल थैली से नीचे की ओर नाक तक जाती है।

केनालिक्यूलाइ के छिद्र पलको के आन्तरिक कोण पर देखे जा सकते हैं, इन्हें पन्क्टम (*Punctum*) कहते हैं।
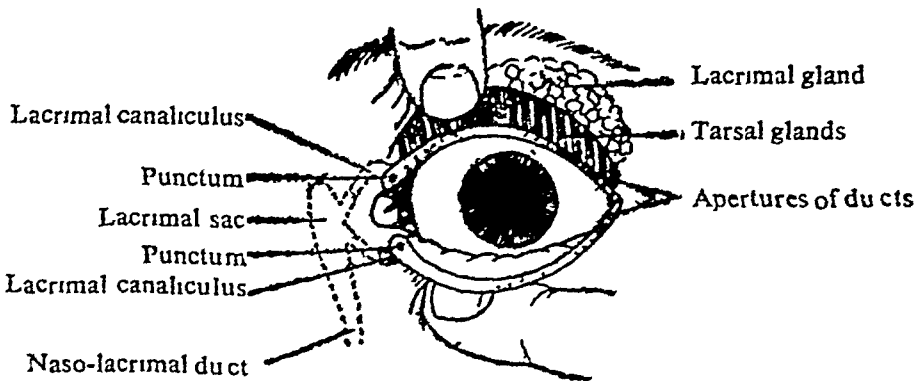
चित्र–190 लेक्रिमल अग।

लेक्रिमल ग्रन्थियो द्वारा स्रावित द्रव नेत्रगोलक को साफ रखता है और पलको के वार-वार वन्द होने की क्रिया द्वारा यह द्रव वहाँ से हटता रहता है। जो पेशिया

पलको को बार-बार बद करती एव खोलती है वे लेक्रिमल थैली पर दवाव डालती हैं और उसे सकुचित करती है, इस प्रकार जव ये पेशिया शिथिल होती है तव लेक्रिमल थैली फैलती है और पतली केनॅल्स के द्वारा पलको की किनारो मे द्रव थैली मे चूषित करती है, यहाँ से यह द्रव नीचे की ओर नाक मे गुरुत्वाकर्षण द्वारा जाता है। इस प्रकार जो अग आँख मे रोशनी प्रविष्ट होने देता है वह द्रव के मद प्रवाह द्वारा निरतर साफ होता रहता है, इस तरह आँख साफ रहती है और कीटाणु एव हानिकारक पदार्थ भी साफ होते रहते हैं। यह द्रव पानी, लवण और बेक्टीरिआ विरोधी पदार्थ लाइसोजाइम का वना होता है।

25. त्वचा
The Skin

त्वचा शरीर को ढँकती है और अन्दरूनी ऊतकों की सुरक्षा करती है। इसमे कई सवेदी स्नायुओ के अत सिरे रहते है और यह शरीर का तापक्रम नियत्रित करने मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

त्वचा की रचना (Structure of the Skin)

त्वचा मे दो तहे होती हैं

1 एपिडर्मिस, या बाहरी तह 2 कोरिअम।

एपिडर्मिस (Epidermis) अ-रक्तसवहनी तह है और स्ट्रेटिफाइड एपिथीलिअम की बनी होती है। यह कुछ क्षेत्रो जैसे हथेली, तलुए आदि पर बहुत मोटी, कडक एव सख्त रहती है, और धड तथा हाथ-पैरो की अन्दरूनी सतहो पर बहुत पतली एव नरम रहती है। एपिडर्मिस मे दो सतहें या क्षेत्र होते हैं, बाहरी क्षेत्र को हॉर्नि क्षेत्र और अन्दरूनी क्षेत्र को जर्मिनेटिव क्षेत्र कहते है।

हार्नि क्षेत्र (Horny zone) मे तीन परतें होती है

1 हार्नि परत (स्ट्रेटम कॉर्नीअम–Stratum corneum) सबसे ऊपरी परत है, इसकी कोशिकाएँ चपटी होती हैं और इनमे न्यूक्लिआइ नही रहते हैं और प्रोटोप्लाज्म केरेटिन (Keratin) नामक ठोस पदार्थ मे परिवर्तित हो जाता है जो पानीरोधक होता है।

2 स्वच्छ परत (स्ट्रेटम ल्यूसिडम–Stratum lucidum) स्वच्छ प्रोटोप्लाज्म युक्त कोशिकाओ की बनी होती है और इनमे से कुछ मे चपटे न्यूक्लिआइ रहते है।

3 ग्रैन्यूलर (दानेदार) परत (स्ट्रेटम ग्रैन्यूलोजम–Stratum granulosum) सबसे अन्दरूनी परत है। यह दानेदार प्रोटोप्लाजम और स्पष्ट दिखने वाले न्यूक्लिआइ से युक्त कोशिकाओ की कई परतो की बनी होती है।

जर्मिनेटिव क्षेत्र (Germinative zone) जो कि अन्दरूनी क्षेत्र है, दो परतो का बना होता है :

1 *कांटेदार कोशिकाओं की परत (Prickle cell layer)* मे विभिन्न आकारो वाली कोशिकाएँ रहती है, जिनमे प्रत्येक मे कांटे जैसे छोटे-छोटे उभार होते है जो एक दूसरे से जुडे रहते है। न्यूक्लिआइ स्पष्ट दिखाई देते हैं।

2 *आधारीय कोशिका परत (Basal layer)* आधारीय झिल्ली पर जमी हुई कॉलम्नर कोशिकाओ की बनी होती है।
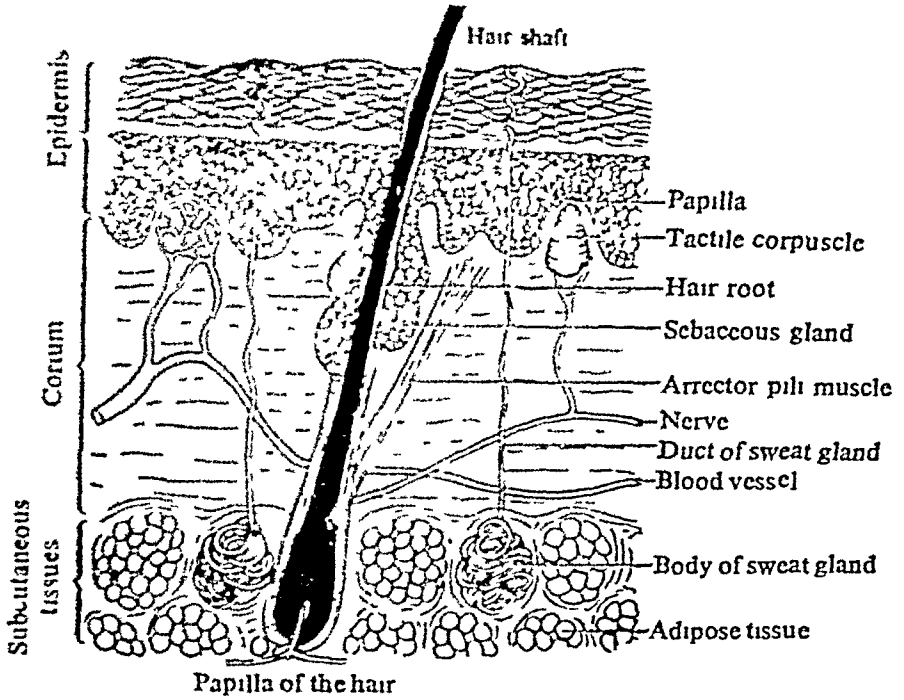
चित्र 191—त्वचा की काट का रेखा चित्र ।

त्वचा की बाहरी सतह में शल्क (Scales) घर्षण के द्वारा निरंतर निकलते रहते हैं और अन्दरुनी कोशिकाएँ वृद्धि करके सतह पर आकर नई शल्क के रूप में निरंतर विकसित होती रहती हैं। एपिडर्मिस में न तो रक्तपूर्ति और न ही स्नायु सप्लाई होती है। इसका पोषण अधोनम्य कोरिअम में उपस्थित रक्तवाहिकाओं से आने वाले लिम्फ के द्वारा होता है। जब फफोला बनता है तब एपिडर्मिस ही फूलती है, इसलिये फफोले को बिना दर्द के कैंची से काटा जा सकता है ताकि उसमें उपस्थित लिम्फ बाहर निकल आये तो ऊतकों में संक्रमण पहुँच जाता है और सेपसिस हो जायेगा।

कोरिअम के सम्पर्क में रहने वाली कोशिकाओं की आधारीय तह में रजक पदार्थ होते हैं जो त्वचा को उसका रंग प्रदान करते है पीला, लाल या काला। ये रजक पदार्थ सूर्य की किरणों के हानिकारक प्रभावों से शरीर की सुरक्षा करते हैं, क्योंकि काला रंग रेडिएशन को सोख लेता है। सतह की शल्कें ऊतकों में बेक्टीरिआ के प्रवेश को रोकती है, क्योंकि ये शुष्क कोशिकाओं को नहीं पचा पाते हैं और वे अपना रास्ता उनमें से नहीं निकाल पाते हैं। एक बार जब एपिडर्मिस कटने या चुभने के द्वारा टूट जाती है। तो ऊतकों में संक्रमण पहुँच जायेगा और सेपसिस हो जायेगा।
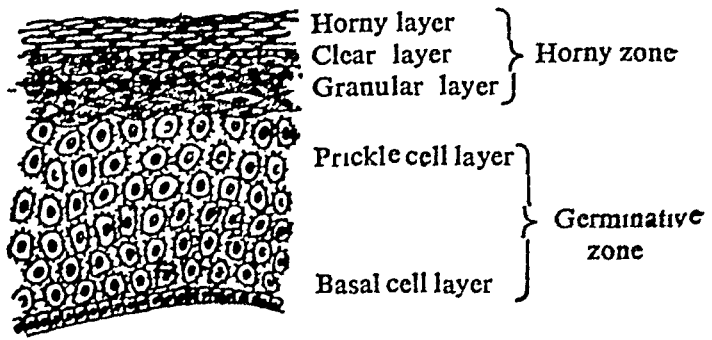
चित्र 129—एपिडर्मिस।

कोरिअम (Corium) मजबूत लचीली परत है जो हथेली और तलुओ मे मोटी तथा पलको मे बहुत पतली रहती है। यह लचीले तन्तुओ, रक्त एव लिम्फ वाहिकाओ और स्नायुओ सहित सयोजी ऊतक की बनी होती है। पैपिली (Papillae) नामक कई शकु-आकार उभार कोरिअम की सतह से निकलकर एपिडर्मिस मे उभरे रहते है। जहाँ त्वचा अधिक सवेदनशील रहती है वहाँ ये अधिक होते है और ऐसे क्षेत्रो मे ये समानान्तर किनारो मे जमे रहते हैं और प्रत्येक व्यक्ति मे भिन्न होते है, जो फिगर प्रिन्टस् के लिये उपयोगी है।

त्वचा मे स्थित *स्नायु अन्त सिरों (Nerve endings)* का अधिकाश भाग सवेदी और विभिन्न प्रकार का होता हे जिससे विभिन्न प्रकार के सवेदन होते हे जिन्हे त्वचा सहन करने मे सक्षम होती है, उदाहरणार्थ स्पर्श, उष्मा, ठड एव दर्द। गोलाकार रचनाओ मे स्थित स्पर्श सिरे के स्नायु, जिन्हे स्पर्श या टैक्टाइल कॉर्पसल्स (Tactile corpuscles) कहते है, दवाव द्वारा उत्तेजित किये जा सकते है, तथा उष्मा, ठड एव दर्द के स्नायु नाजुक रहते है और शाखाओ के समान फैले रहते हे। इन स्नायु अत सिरो की कुछ शाखाएँ एपिडर्मिस मे जाती है। गर्मी तब ही महसूस होगी जब उष्मा द्वारा प्रभावित विशिष्ट स्नायु अत सिरे की समाप्ति के स्थान पर त्वचा पर गरम वस्तु छूती है। कुछ भागो मे स्नायु अत सिरे इतने नजदीक रहते हे कि इन्हें पहचाना नही जा सकता है, लेकिन जहाँ स्नायु अत सिरे सख्या मे कम होते हैं, जैसे हाथ के पिछले भाग पर, वहाँ ऐसे क्षेत्र ज्ञात करना सभव है जहाँ गरमी महसूस की जा सकती है (गरम स्थान) और अन्य क्षेत्र जहाँ ठड महसूस की जाती है (ठडा स्थान)।

त्वचा की रक्तपूर्ति करने वाली धमनियाँ अवत्वचीय ऊतक मे जाल वनाती हैं और इसकी शाखाएँ स्वेद ग्रन्थियो और हेअर फॉलिकल्स की रक्तपूर्ति करती है। पतली-पतली केशिकाएँ भी पैपिली मे जाती है।

त्वचा के सहायक अंग (Appendages of the Skin)

त्वचा मे निम्नलिखित सहायक अग होते हैं

1. स्वेद ग्रन्थियाँ
2. केश अर्थात बाल
3 नाखून
4. सीबैशॅस ग्रन्थियाँ

स्वेद ग्रन्थियाँ (Sweat glands) मुडी हुई, नली-आकार ग्रन्थियाँ हैं जो वास्तविक त्वचा की गहराई मे स्थित रहती है । इनकी वाहिकाएँ एपिडर्मिस के छिद्रो मे खुलती हैं, और नली त्वचा मे गहराई से मुडकर छोटी गोल गेंदनुमा रचना बनाती है, इसे ग्रन्थि का मुख्य भाग कहते है। स्वेद ग्रन्थियाँ स्वेद अर्थात पसीना स्रावित करती हैं जो पानी, लवण एव अन्य अल्प व्यर्थ पदार्थों का वना होता है। पसीने का अधिकाश भाग त्वचा की सतह पर पहुँचकर तुरत वाष्पित हो जाता है, और इसे *अतिसूक्ष्म (Insensible)* पसीना कहते हैं। जव पसीना अत्यधिक होता है तब कुछ पसीना त्वचा पर जमा हो जाता है और त्वचा पसीने से गीली हो जाती है, इसे *पर्याप्त (Sensible) पसीना* कहते है, तथा इसका वाष्पीकरण सम्पूर्ण सतह से होता है। यदि पसीना अत्यधिक है और शरीर पर से वह जाता है तो इसके ठडे होने वाला प्रभाव ममाप्त हो जाता है। पसीने का स्रावण व्यर्थ-पदार्थों के उत्मर्जन का भी माध्यम है, और कुछ विषाक्त पदार्थ एव दवाइयाँ इसी माध्यम से उत्मर्जित भी होती हैं, किन्तु इसका खाम महत्व इस तथ्य मे निहित है कि पसीने के वाष्पीकरण मे शरीर की उष्मा का उपयोग होता है, क्योंकि पानी को पानी की वाष्प बनाने मे उष्मा की आवश्यकता होती है। इमलिये स्रावित पसीने की मात्रा उष्मा की उस मात्रा पर निर्भर रहती है जितनी उष्मा शरीर को कम करना जरूरी है। 24 घटे मे उत्मर्जित औसतन मात्रा 500 से 600 मिली है। गरम मौमम और अधिक परिश्रम के दौरान पसीना काफी आता है, इस प्रकार पसीने के वाष्पीकरण द्वारा अधिक उष्मा नष्ट होती है। ऐसे समय कम मूत्र निष्कासित होता है, इसलिये द्रव की अत्यधिक क्षति भी नही होती है । ठडे मौसम या आराम के समय कम पसीना स्रावित होना है, इस प्रकार वाष्पीकरण द्वारा उष्मा कम नष्ट होती है, ऐसे समय गुर्दों से अधिक मूत्र स्रावित होता है, अत पानी की क्षति का मतुलन वना रहता है।

स्वेद ग्रन्थिया सम्पूर्ण शरीर मे उपस्थित रहती हैं, लेकिन कुछ स्थानो पर ये बडी एव अधिक मात्रा मे होती है, जैसे हथेली, तलुए, वगल, जाँघो का ऊपरी भाग एव कपाल ।

केश या बाल परिवर्तित (Modified) एपियीलिअम के वने होते है। ये त्वचा मे स्थित छोटे गड्ढे से विकसित होते है जिसे हेअर फॉलिकल्स कहते है । प्रत्येक

फॉलिकल के निचले भाग पर एपिथीलिअल कोशिकाओं का समूह रहता है जो बालों की जड़ बनाता है और इसी से बालों का विकास होता है। बाल की जड़ फॉलिकल में स्थित बाल का ही भाग है जो कोरिअम एवं एपिडर्मिस तक फैला रहता है। बाल का मुख्य भाग (Hair shaft) एपिडर्मिस से बाहर उभरा होता है। हेअर बल्ब फॉलिकल में स्थित बाल का फूला हुआ भाग है। इसके निचले भाग पर छोटा शंकु-आकार उभार रहता है जिसे पैपिला कहते हैं, इसमें बालों के लिये रक्तवाहिकाएँ एवं स्नायु रहती हैं। बाल त्वचा में सदैव तिरछे जमे रहते हैं। ऐरेक्टर्स पाइलोरम (Arrectors pilorum) छोटी अनैच्छिक पेशियाँ हैं जो हेअर फॉलिकल्स से जुड़ी रहती हैं। ये हमेशा उसी तरफ रहती हैं जिधर बाल झुका हुआ रहता है ताकि जब ये संकुचित हों तब बाल सीधा खड़ा रह सके। उसी समय बाल के आसपास की त्वचा भी उठ जाती है जो एक प्रकार का प्रभाव पैदा करती है, जिसे रोमांचित (Goose-flesh) होना कहते हैं। बाल निरंतर रूप से गिरते एवं नये आते रहते हैं। जब तक बाल की जड़ स्वस्थ रहती है तब तक उससे नया बाल विकसित होता रहेगा, लेकिन यदि जड़ नष्ट हो गई या उसकी रक्तपूर्ति गड़बड़ा गई तो बाल की वृद्धि रुक जायेगी। खोपड़ी पर गंजापन हो जायेगा। अच्छी तरह ब्रश करने, जिससे रक्तपूर्ति बढ़ती है, और खोपड़ी पर मालिश करने से सिर में बाल स्वस्थ रहते हैं तथा अच्छी प्रकार बढ़ते हैं। हथेली और तलुओं को छोड़कर बाकी सम्पूर्ण शरीर पर बाल रहते हैं, लेकिन ये इतने पतले और कम रहते हैं कि दिखाई नहीं देते हैं, इस महत्वपूर्ण बात का ध्यान ऑपरेशन के लिये त्वचा की तैयारी करते समय रखना चाहिये। भौंहों, बगल और जाँघ के ऊपरी भाग पर बाल ज्यादा एवं लम्बे रहते हैं इससे पसीना बहने में रुकना है और इसके वाष्पीकरण में सहायता होती है।

नाखून (*Nails*) परिवर्तित एपिथीलिअम की हॉर्नी प्लेट्स हैं जो ऊँगलियों के सिरों की सुरक्षा करती हैं। ये नाखून के निचले भाग (आधार) पर स्थित विशिष्ट नरम एपिथीलिअल कोशिकाओं के मूल से विकसित होते हैं। यह मूल (Root) एपिडर्मिस के मोड़ या तह में अन्तःस्थापित रहती हैं। इस स्थान पर नाखून एपिडर्मिस का स्थान ले लेते हैं, लेकिन इसके साथ जुड़े रहते हैं ताकि बेक्टीरिआ को बाहर रोकने के लिये निरन्तर अवरोध बना रहे। किन्तु, यदि नाखूनों का सावधानी पूर्वक ध्यान नहीं रखा गया तो इस निरन्तरता में टूटन हो सकती है तथा यह विशेष रूप से नर्सों के लिये खतरनाक है क्योंकि वे अपने कार्य के दौरान संक्रमण के सम्पर्क में ज्यादा रहती हैं। जीवजन्तुओं में नाखूनों का कार्य सुरक्षात्मक ज्यादा होता है, लेकिन मनुष्य ने चूँकि अपने उपयोग के लिये तरह-तरह के औजारों का निर्माण कर लिया है इसलिये उसके नाखून इतने ज्यादा नहीं घिसते हैं जितने कि जानवरों के, अतः उन्हें नियमित रूप से काटना आवश्यक होता है।

सीबैशॅस (वसामय) ग्रन्थिया (*Sebaceous glands*) छोटी थैलीनुमा ग्रन्थिया हैं जो तेल जैसा पदार्थ स्रावित करती है, इसे सीवम (*Sebum*) कहते हैं। ये हेअर फॉलिकल और एरेक्टॅर पिलाइ पेशी के बीच के कोण पर स्थित रहती हैं ताकि पेशी के सकुचन से ग्रन्थि पर सीवम को दवाकर निकालने का प्रभाव रहे। यह त्वचा एव वालो को चिकना रखता है, और उन्हे नरम एव चमकीला वनाये रखता है ताकि वे आसानी से टूटे नही। किन्तु, सीवम धूल और बैक्टीरिआ को अपने मे चिपका लेता हैं जो तैलयुक्त सतह पर जमा हो जाते हैं। फलस्वरूप हमे निरतर सावुन एवं पानी मे धोकर इसे साफ करते रहना चाहिये। यदि कोई विस्थापक पदार्थ नही लगाया गया तो त्वचा मे जल्दी ही फटन हो जायेगी, इस प्रकार त्वचा आसानी से फट जाती है और उसमे बैक्टीरिआ प्रविष्ट हो जाते हैं। नर्स, जिसके हाथ बहुधा लोशन और सावुन के पानी मे रहते हैं जिससे सीवम निकल जाता है, को इस वात का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

त्वचा के कार्य (Functions of the Skin)

1 यह शरीर का तापक्रम नियन्त्रित करती है एव 2 व्यर्थ-पदार्थों को उत्सर्जित करती है।
3 यह स्पर्श एव अन्य सवेदनो का अग है जिसके द्वारा हम वातावरण के प्रति सचेत रहते है।
4 यह अपनी शुष्क, शल्कमय बाहरी सतह के द्वारा बैक्टीरिआ को दूर रखती है।
5 यह सीवम स्रावित करती है।
6 यह अपने रजक पदार्थ के द्वारा सूर्य की किरणो के हानिकारक प्रभाव से शरीर की सुरक्षा करती है।
7 इसमे उपस्थित एरगोस्टॅरॉल पर अल्ट्रावॉइलेट किरणो की क्रिया द्वारा विटामिन D का निर्माण होता है।

शरीर के तापक्रम का नियत्रण (Regulation of body temperature)

शरीर का तापक्रम प्राप्त हुई एव नष्ट हुई उष्मा के वीच सतुलन है। मनुष्य उष्ण-रक्त वाला प्राणी है और उसका तापक्रम 37°C के लगभग वना रहना चाहिये। एक डिग्री कम या ज्यादा होने से स्नायविक तत्र एव एन्ज़ाइम्स के सामान्य कार्य प्रभावित होते हैं।

तापक्रम नियन्त्रित करने की मुख्य प्रणाली या केन्द्र हाइपोथैलॅमस मे स्थित रहता है। यह 'निगेटिव फीडवेक' (Negative feedback) प्रणाली पर कार्य करता है, यदि शरीर का तापक्रम वढ जाता हे तो प्रणाली क्रियान्वित होती है ताकि शरीर से उष्मा की क्षति हो, यदि शरीर का तापक्रम कम हो जाता है तो जव तक तापक्रम सामान्य नही हो जाता हे तव तक उष्मा सचित होती हे।

उष्मा का उत्पादन (Heat production) —मुख्यतया चयापचयी क्रिया द्वारा होता है। अतिरिक्त उष्मा की उत्पत्ति व्यायाम, कार्य, वढे हुए पेशीय तनाव, कपकपी आने, अत स्रावी विकारो, सक्रमण, चोट एव भावना द्वारा भी होती है।

नीद के दौरान उष्मा का उत्पादन सबसे कम और पेशीय सक्रियता के दौरान सबसे अधिक होता है।

उष्मा की क्षति (*Heat loss*) निम्न माध्यमो मे होती है

1 त्वचा से उष्मा के विकिरण, सचालन और सवहन द्वारा
2 पसीने के वाष्पीकरण द्वारा
3 श्वसन द्वारा
4 मूत्र एव मल के उत्सर्जन द्वारा

विकिरण (*Radiation*) एक वस्तु से दूसरी वस्तु तक बिना किसी प्रत्यक्ष सम्पर्क के उष्मा का सचारण है। शरीर अपने नजदीक की सभी वस्तुओ तक उष्मा का विकिरण करता है, और उष्मा की क्षति सतह क्षेत्र के समानुपाती होती है, बडे क्षेत्र मे ज्यादा उष्मा की क्षति होती है लेकिन सतह क्षेत्र को कम करके उष्मा की हानि को रोका जा सकता है। उदाहरण के लिये तनी हुई स्थिति की अपेक्षा मुडी हुई स्थिति मे शरीर से उष्मा की क्षति कम होती है।

सचालन (*Conduction*) एक अणु से दूसरे अणु तक उष्मा का सचारण है। यदि धातु की छड का एक सिरा आग मे रखा गया तो जब तक पूरी छड गरम नही हो जाती है तब तक उसमे उष्मा का सचारण होता रहेगा। जो वस्तु शरीर की अपेक्षा ज्यादा ठडी है उसका यदि शरीर से प्रत्यक्ष सम्पर्क होगा तो उष्मा की क्षति होगी।

सवहन (*Convection*) शरीर से वायु मे उष्मा का सचारण है, गरम वायु बाद मे ऊपर उठ जाती है और उसके स्थान पर ठडी वायु आ जाती है जो पुन गरम होने लगती है। सवहन द्वारा होने वाली उष्मा की क्षति को उचित कपडे पहनकर कम किया जा सकता है।

त्वचा की सतह से पसीने का वाष्पीकरण (*Evaporation of sweat*) निरतर होता रहता है और इससे शरीर पर ठडा प्रभाव होता है। यह शुष्क वातावरण मे ज्यादा प्रभावी होता है, क्योकि जब वायु नम होगी और पानी की वाष्प से पूर्व मे ही सतृप्त हो चुकी होगी तब और अधिक वाष्पीकरण नही हो सकेगा।

प्रत्येक बार वायु के नि श्वसन (Exhalation) के साथ भी उष्मा की क्षति होती है, क्योकि नि श्वसित वायु मे पानी की वाष्प रहती है और वह वाष्पीकृत होती है। मूत्र एव मल के निष्कासन के साथ बहुत कम मात्रा मे शरीर से उष्मा की क्षति होती है।

गरम मौसम मे तापक्रम सामान्य बनाये रखने के लिये

1 उष्मा का उत्पादन कम हो, थाइरॉइड एव सुप्रारीनल ग्रन्थियो द्वारा ऊतक की गतिविधि अधिक उत्तेजित नही होना चाहिये।

2 उष्मा की क्षति या हानि त्वचा मे उपस्थित रक्तवाहिकाओ के विस्तारण द्वारा बढती है, इस प्रकार विकिरण, सचालन एव सवहन बढ जाते है और पसीना अधिक आने लगता है, अत वाष्पीकरण द्वारा उष्मा की अधिक क्षति होती है।

26. प्रजनन तंत्र
The Reproductive System

पुरुष प्रजनन अंग (The Male reproductive organs)

पुरुष प्रजनन अग निम्नलिखित हैं

1 टेस्टीज (वृषण) एव एपिडिडाइमिड्स

2 डेफॅरेन्ट वाहिकाएँ

3 सेमिनल वेसिकल्स

4 इजेक्यूलेटॅरि (स्खलन) वाहिकाएँ एव शिश्न

5 प्रोस्टैट

6. बल्बो-यूरेथ्रल ग्रन्थिया
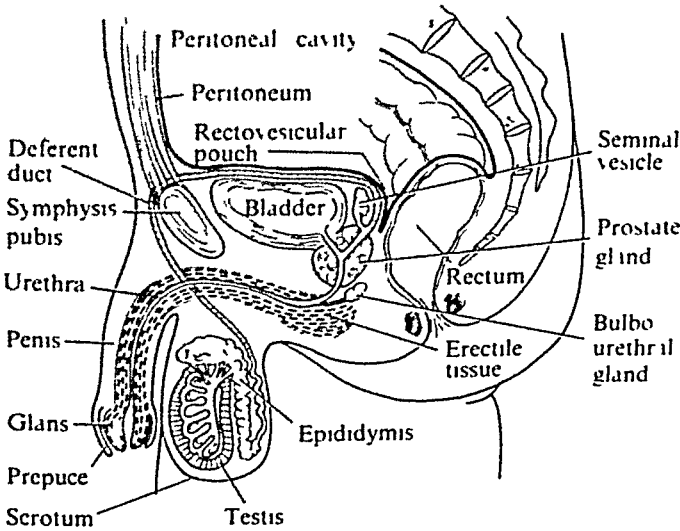
चित्र 193–पुरुष प्रजनन अग।

टेस्टीज (वृषण) (Tastes)—पुरुष की प्रजनन ग्रन्थिया है। ये स्पर्मेटिक कॉर्ड्स द्वारा वृषण-कोश (Scrotum) मे लटके रहते है लेकिन ये उदर मे गुर्दे के पास से विकसित होते हैं और जन्म के ठीक पहले इन्ग्वाइनल केनॅल के माध्यम से धीरे-धीरे नीचे की ओर वृषण-कोष मे आते हैं। कभी-कभी एक या दोनो ही ग्रन्थिया नीचे आने मे विफल हो जाती हैं और उदर या इन्ग्वाइनल केनॅल मे-

ही रह जाती है, तब इन्हे पुनर्स्थापित करने के लिये शल्य-चिकित्सा की आवश्यकता होती है।

जैसे ही टेस्टिज नीचे आता है इसके साथ पेरिटोनिअम की एक थैलीनुमा रचना भी आती है जिसे ट्यूनिका वैजाइनेलिस (*Tunica vaginalis*) कहते हैं। यह टेस्टिज का सीरस आवरण बनाती है लेकिन बाद में यह थैली समाप्त हो जाना चाहिये। यदि यह समाप्त नहीं हुई तो यह हर्निआ के लिये सम्भावित स्थान हो सकता है। इसमें इनडाइरेक्ट हर्निया हो जाता है, आँत की कोई कुण्डली या कोई अन्य अंग इस थैली में आ जाता है और यह हर्निअल थैली बन जाती है। प्रत्येक टेस्टिज 200 से 300 लोब्यूल्स का बना होता है और इन प्रत्येक लोब्यूल्स में तीन छोटी मुड़ी हुई नलिका रहती हैं जिन्हे कॉन्वोल्यूटेड सेमिनिफेरस ट्यूब्यूल्स (Convoluted seminiferous tubules) कहते हैं। इनकी दीवारों के एपिथीलिअल अस्तर में वे कोशिकाएँ रहती हैं जो कोशिका विभाजन की प्रक्रिया द्वारा स्पर्मेटोजोआ में विकसित होती हैं। इन ट्यूब्यूल्स को ढीले संयोजी ऊतक का सहारा रहता है जिनमें इन्टेस्टिशिअल कोशिकाओं के समूह रहते हैं, ये कोशिकाएँ पुरुष हार्मोन टेस्टोस्टेरोन (*Testosteron*) स्रावित करती हैं।
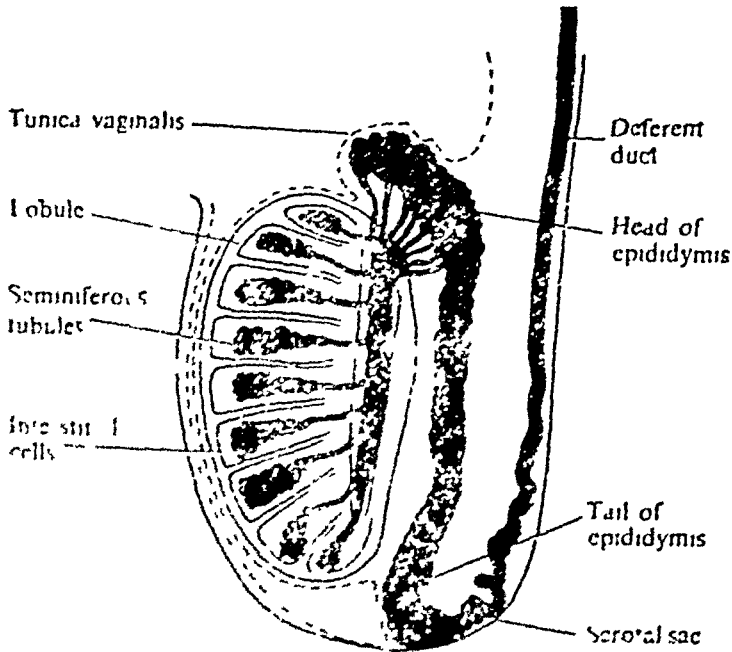
चित्र 191—टेस्टिज का भाग।

एपिडिडाइमिस (Epididymis) पतली, तंग रूप में मुड़ी हुई कुण्डलाकार नली [illegible] लम्बी सँकरी रचना के रूप में बन्द रहती है और यह टेस्टिज के पिछले

भाग मे जुडी रहती है। टेस्टिज़ की सेमिनिफेरॅस ट्यूब्यूल्स इसमे खुलती है और ये डेफॅरेन्ट वाहिका मे जाती है।

डेफॅरेन्ट वाहिका (Deferent duct) एपिडिडाउमिस की वाहिका की निरतरता है। यह इन्वाइनल केनल मे गुजरकर मूत्राशय एव मलाशय के निचले भाग (आधार) के मध्य से होती हुई प्रोस्टॅट ग्रन्थि के निचले भाग तक जाती है जहाँ यह सेमिनल वेसिकल की वाहिका मे जुडती है।

सेमिनल वेसिकल्स (Seminal vesicles)—दो थैलिया है जो मूत्राशय एव मलाशय के निचले भाग के बीच स्थित रहती हैं। ये क्षारीय द्रव स्रावित करती है जिसमे पोषक पदार्थ होते हैं और यह द्रव सेमिनल द्रव का अधिकाश भाग बनाता है।

इजेक्यूलेटॅरि वाहिकाएँ (Ejaculatory ducts)—सेमिनल वेसिकल्स की वाहिकाओ और डेफॅरेन्ट वाहिकाओ के मिलने से बनती हैं। ये प्रोस्टॅट के निचले भाग से आरम्भ होती है और मूत्रमार्ग मे स्थित प्रोस्टॅटिक यूट्रिकल के छिद्र पर समाप्त होती है।
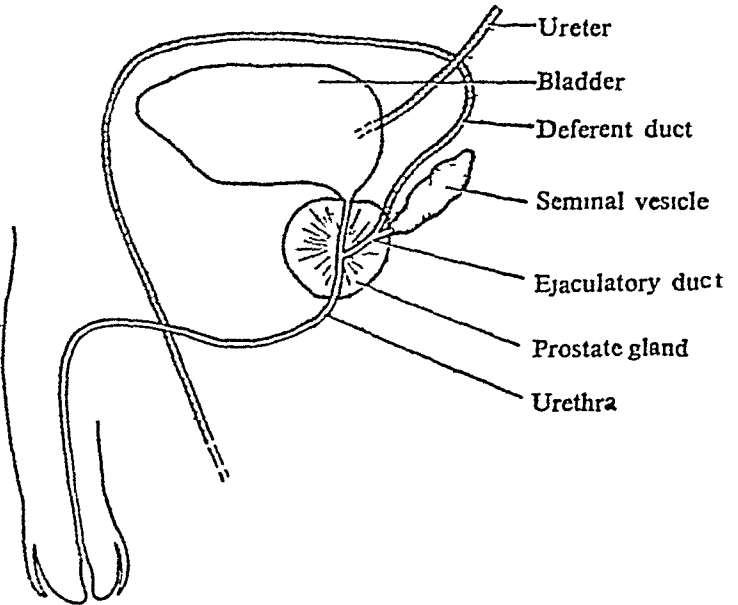
चित्र 195—सेमिनल वेसिकल्स के सम्बन्ध।

शिश्न (Penis) एक नलाकार अग है जो बडे शिरीय साइनसस से अत्यधिक परिपूरित रहता है। ये साइनसस रक्त से भर सकते है और ऐसी स्थिति मे यह अग कडक हो जाता है। इसमे मूत्रमार्ग रहता है जो पुरुषो मे मूत्रीय एव प्रजनन तत्र दोनो का ही कार्य करता है। शिश्न के सिरे पर एक गोलाकार वृद्धि रहती है जिसे

ग्लान्स पीनिस (*Glans penis*) कहते हैं, इसके मध्य में मूत्रीय द्वार रहता है. ग्लान्स सामान्य रूप से त्वचा के दोहरे ढीले मोड में ढँका रहता है, इसे प्रीप्यूस (Prepuce) या अग्र-त्वचा कहते हैं इस अग्र-त्वचा को ग्लान्स पीनिस पर पीछे खिसकाना संभव रहता है, लेकिन कभी-कभी यह छिद्र बहुत छोटा रहता है, इसे फाइमोसिस (Phimosis) कहते हैं, और इसका उपचार या तो अग्र-त्वचा को फैलाकर या सरकमसिजन (Circumcision) शल्य-चिकित्सा द्वारा किया जाता है, अर्थात् गंभीर मामलों में अग्र-त्वचा को काट दिया जाता है।

प्रोस्टेट (Prostate) ग्रन्थि पुरुष में मूत्रमार्ग के आरम्भिक स्थान को घेरे रहती है। यह अखरोट के आकार की होती है और इसमें मूत्रमार्ग एवं इजेक्यूलेटॅरि वाहिकाएँ रहती हैं। यह अंशतः ग्रन्थिय ऊतक और अंशतः अनैच्छिक पेशी की बनी होती है और एक प्रकार का स्रावण पैदा करती है (वीर्य-Semen) जो क्षारीय प्रतिक्रिया वाला होता है तथा शुक्राणुओं (Sperms) के लिये पोषण प्रदान करता है।

बल्बो-यूरेथ्रल ग्रन्थियाँ (Bulbo-urethral glands) मूत्रमार्ग के झिल्लीमय भाग के दोनों तरफ स्थित रहती हैं। वाहिकाएँ मूत्रमार्ग के स्पॉन्जि भाग में खुलती हैं और ग्रन्थियाँ वह पदार्थ स्रावित करती हैं जो सेमिनल द्रव का कुछ भाग बनाती है।

सेमिनल द्रव (Seminal Fluid) टेस्टीज, सेमिनल वेसिकल्स एवं प्रोस्टेट द्वारा स्रावित पदार्थों का बना होता है, इसमें शुक्राणु रहते हैं।
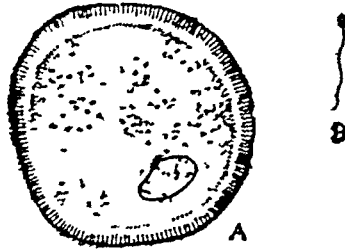
चित्र 196–डिम्ब और शुक्राणु। (A) परिपक्व डिम्ब, (B) समान स्केल के अनुसार बनाया गया शुक्राणु।

शुक्राणु (Spermatozoa) छोटी-छोटी कोशिकाएँ हैं जिनमें प्रत्येक में छोटा पूँछ के समान उभार रहता है जो मुख्य कोशिका से गर्दन नामक सकरे भाग के द्वारा जुड़ा होता है। पूँछ की फटकार जैसी हलचल होती है जिससे पुरुष प्रजनन मार्ग में वीर्य के निकलने के बाद कोशिका की हलचल में आसानी होती है। जब शुक्राणु योनिमार्ग में जमा हो जाते हैं तब इसी हलचल के फलस्वरूप वे डिम्ब की खोज में गर्भाशय और गर्भाशयिक नलियों तक जाते हैं। ये शुक्राणु असंख्य होते हैं और यह अनुमान लगाया गया है कि योनिमार्ग में एक समय में औसत 300,000,000 शुक्राणु जमा होते हैं, हालाँकि डिम्ब को निषेचित करने के लिये मात्र एक आवश्यक होता है।

महिला प्रजनन अंग (The Female genital organs)

महिला प्रजनन अग आन्तरिक एव वाह्य दो समूहो मे विभाजित रहते हैं

आन्तरिक अंग (Internal organs) ·

आन्तरिक अग छोटी श्रोणि मे स्थित रहते है, ये है.

1 डिम्व ग्रन्थियाँ

2 गर्भाशयिक नलियाँ

3 गर्भाशय

4. योनिमार्ग
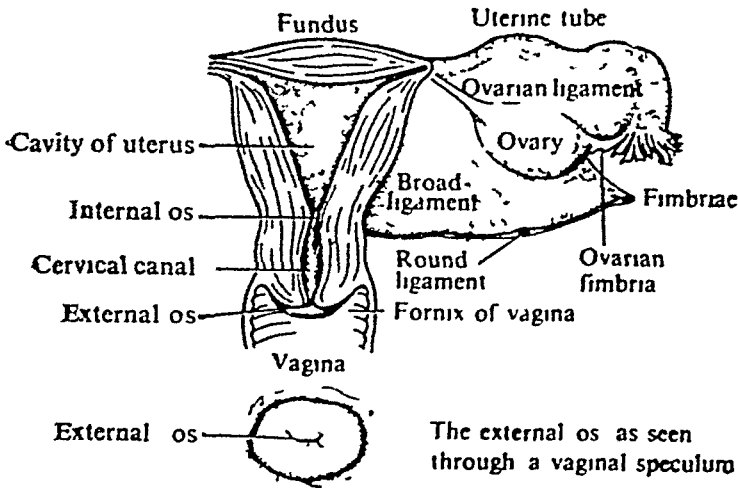
चित्र 197–पीछे से देखने पर महिला प्रजनन अग।

डिम्ब ग्रन्थियाँ (The ovaries) बादाम के आकार की दो छोटी, ग्रन्थियाँ हैं, जो गर्भाशय के दोनो तरफ गर्भाशयिक नलियो के पीछे एव नीचे छोटी श्रोणि मे स्थित रहती हैं। प्रत्येक डिम्व ग्रन्थि मीजोवैरिअम (Mesovarium) नामक चौडे लिगॅमेन्ट मे जुडी रहती है। गर्भाशयिक नलियो के ऊँगली-आकार सिरे और ससपेन्सॅरि लिगॅमेन्ट भी डिम्ब ग्रन्थि से जुडे रहते है।

यौवनारम्भ के वाद डिम्वग्रन्थि मे अत्यधिक रक्तसवहनी मेड्यूला के आस-पास मोटा कॉर्टेक्स रहता है। जन्म के समय कॉर्टेक्स मे कई प्राइमरी ओवॅरियन फॉलिकल्स (Primary ovarian follicles) रहते ह। यौवनारम्भ के वाद कुछ फॉलिकल्स प्रतिमाह विकसित होकर वेसिक्यूलर ओवॅरियन फॉलिकल्स (ग्राफिअन फॉलिकल्स- Graafian follicles) वनाते हैं जिनमे से प्राय एक परिपक्व होकर एव फटकर डिम्ब (Ovum) निकालता है। इस प्रक्रिया को डिम्बक्षरण कहते हैं। यह डिम्ब गर्भाशयिक नली मे इसके ऊँगली-आकार सिरे के सहारे गुजरता है और

पुरुष के शुक्राणु द्वारा निषेचित हो सकता है। यदि निषेचन होता है तो यह प्राय गर्भाशयिक नली के बाजू के तिहाई भाग मे होता है।

डिम्बक्षरण के बाद वेसिक्यूलर ऑवॅरियन फॉलिकल विशिष्ट ऊतक के पिण्ड के रूप मे परिवर्तित हो जाता है जिसे कॉर्पस ल्यूटीअम (Corpus luteum) कहते हैं। यदि निषेचन होता है तो गर्भावस्था के अन्तिम समय तक कॉर्पस ल्यूटीअम सक्रिय रहता है, यदि निषेचन नही होता है तो करीब 11 दिन बाद कॉर्पस ल्यूटीअम नष्ट होने लगता है। कॉर्पस ल्यूटीअम प्रोजेस्टेरॉन एव इस्ट्रोजेन हॉर्मोन्स का निर्माण करता है, इन हॉर्मोन्स से गर्भाशय का अस्तर एन्डोमीट्रिअम मोटा हो जाता है और निषेचित डिम्ब को प्राप्त करने के लिये तैयार रहता है। किन्तु, यदि निषेचन नही होता है तो चूँकि कॉर्पस ल्यूटीअम नष्ट होने लगता है इसलिये हॉर्मोन्स का निर्माण भी नही होता है और एन्डोमीट्रिअम टूटने लगता है, इस प्रक्रिया को रजोधर्म (Mestruation) कहते हैं (देखिये पृष्ठ 308)
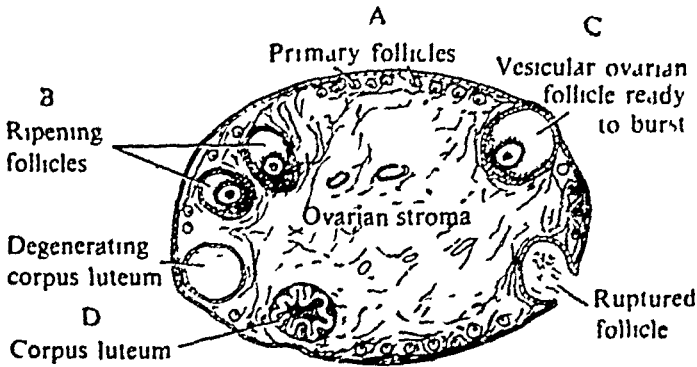
चित्र 198–डिम्ब-ग्रंथि (A) प्राइमरी फॉलिकल्स, (B) एव (C) परिपक्व फॉलिकल्स, और (D) कॉर्पस ल्यूटिअम।

हाइपोफिसिस से निकलने वाले हॉर्मोन्स—फॉलिकल-उत्तेजक हॉर्मोन एव ल्यूटीनाइजिंग हॉर्मोन—के द्वारा डिम्ब ग्रन्थि के कार्य नियन्त्रित होते है।

डिम्ब ग्रन्थि का कार्य यौवनारभ के समय शुरू होता है और करीब 13 वर्ष की उम्र से लेकर 45 वर्ष की उम्र, जो रजोनिवृत्ति (Menopause) का सामान्य समय है, तक एक-एक महीने के अतराल से डिम्ब का निष्कासन करती है। बाल्यावस्था मे डिम्बग्रन्थियाँ चिकनी रहती है लेकिन फालिकल के फटने से जो क्षति-चिन्ह बनता है उससे सतह पर गड्ढा बन जाता है, इस प्रकार वे अन्त मे अत्यधिक असमान आकृति वाली तथा कुछ-कुछ बादाम के आकार की दिखाई देती है।

डिम्ब ग्रन्थियो से निकलने वाले हॉर्मोन्स प्रजनन तत्र के विकास और महिलाओ मे करीब 13 वर्ष की उम्र मे और यौवनारम्भ के समय होने वाले सामान्य विकास के लिये जिम्मेवार रहते हैं। बाह्य जननाग, गर्भाशय एव स्तनो का अत्यधिक विकास

होता है। जननाग और बगल मे बालो का विकास दिखाई देना है, शारीरिक रचना मे सामान्य गोलाई दिखने लगती ह और स्त्रीयोचित व्यक्तित्व की विशिष्ट मनोवृत्ति का धीरे-धीरे विकास होता है, और जैसे ही प्रजनन अग परिपक्व होते हैं यह विकास भी धीरे-धीरे परिपक्व होने लगता है।

गर्भाशयिक नलियाँ (Uterine tubes) गर्भाशय के चौड़े लिगॅमेन्ट्स ऊपरी भाग मे स्थित रहते है। ये करीब 10 से मी लम्बी रहती ह और डिम्ब ग्रन्थियो से डिम्ब को गर्भाशयिक गुहिका मे पहुँचाती हैं। प्रत्येक नली के चार भाग होते ह

1. इनफन्डिव्यूलम (*Infundibulum*) कीपनुमा चौडा भाग ह जो डिम्ब-ग्रन्थि के समीप उदरीय गुहा मे खुलता है और इनमे कई उभार रहते ह जिन्हे फिम्ब्री (Fimbriae) कहते हैं।

2. *एम्प्यूला* (*Ampulla*) पतली दीवार वाला कुण्डलाकार भाग है जो इस नली का आधे से अधिक भाग बनाता है।

3. *इस्थ्मस* (*Isthmus*) गोल भाग है जो इस नली का करीब एक-तिहाई भाग बनाता है।

4. *गर्भाशयिक भाग* (*Uterine parts*) गर्भाशय की दीवार मे गुजरता है और करीब 1 से मी लम्बा होता है।

गर्भाशयिक नलियो मे तीन तहे होती हैं पेरिटोनिअम का वाह्य सीरस आवरण, पेशीय तह और रोमयुक्त एपिथीलिअम का अस्तर। पेशीय तह की पेरिसटैल्टिक क्रिया और सिलिया (रोम) की हलचल के द्वारा डिम्ब नली से गुजरता है।

गर्भाशय (*Uterus*) खोखला, मोटी दीवार वाला पेशीय अग है जो मलाशय एव मूत्राशय के बीच छोटी श्रोणि मे स्थित रहता है। यह करीव 7 5 से मी लम्बा, 5 से मी चौडा और 2·5 से मी मोटा होता है तथा इसका वजन करीब 30 ग्राम रहता है। यह गर्भाशयिक नलियो से, जो गर्भाशय के ऊपरी भाग मे खुलती ह, और योनिमार्ग से, जो इसके निचले भाग मे शुरु होती ह, जुड़ा रहता है। गर्भाशय करीब-करीब योनिमार्ग के समकोण पर रहता है, योनिमार्ग मे गर्भाशय की सर्विक्स निकली रहती है। गर्भाशय का ऊपरी भाग चौडा होता है तथा इसे गर्भाशय का मुख्य भाग (*Body*) कहते हैं। गर्भाशय के मुख्य भाग का वह हिस्सा जो गर्भाशयिक नलियो के प्रवेश-स्थान से ऊपर रहता है, फन्डस (*Fundus*) कहलाता है। *सर्विक्स* (*गर्भाशयिक ग्रीवा–Cervix*) मुख्य भाग की अपेक्षा अधिक बेलनाकार होती है और योनिमार्ग की अग्र-दीवार के स्थान पर उभरी रहती है। इसके ऊपरी सिरे पर स्थित सँकरे छिद्र को *आन्तरिक ऑस* (*Internal Os*) कहते ह जबकि निचले छिद्र को *बाह्य आस* (*External Os*) कहते हैं।

गर्भाशय मे तीन तहें होती हैं वाहरी सीरम तह पेरिटोनिअम से बनती है, पेशीय तह अनैच्छिक पेशी की बनी होती है जिसके तन्तु लम्बवत्, तिरछे, आडे और गोलाकार रूप मे जमे रहते हैं तथा श्लेष्मिक झिल्ली और कॉलूमनर एपिथीलिअम के अस्तर को *एन्डोमीट्रिअम (Endometrium)* कहते हैं। **ब्रॉड** लिगॅमेन्ट्स गर्भाशय से श्रोणि की वाजू की दीवारो तक जाते है। रॉउन्ड लिगॅमेन्ट्स (Round ligments) नीचे की ओर ब्रॉड लिगॅमेन्ट्स के मोड और गर्भाशयिक नलियो के वीच स्थित रहते हैं गर्भाशय सामान्यतया एन्टिवर्टेड स्थिति मे रहता है जिसका फन्ड्स उदरीय दीवार के सामने और सर्विक्स सैक्रम की ओर होती है। गर्भाशय कुछ एन्टिफ्लेक्शन (Anteflexion) की स्थिति मे रहता है, इसका मुख्य भाग आगे की ओर सर्विक्स पर झुका रहता है। इस स्थिति मे गर्भाशय *ट्रान्सवर्स लिगॅमेन्ट्स (Transverse Ligaments)* जो सर्विक्स से श्रोणि की वाजू की दीवारो तक फैले रहते हैं तथा *यूटेरो-सेक्रल लिगॅमेन्ट्स (Utero-Secral Ligments)* जो सर्विक्स से सैक्रम तक फैले रहते हैं, के द्वारा बना रहता है। गर्भाशय को अप्रत्यक्ष रूप से श्रोणि की निचली सतह (Pelvic floor) द्वारा भी सहारा मिलता है।
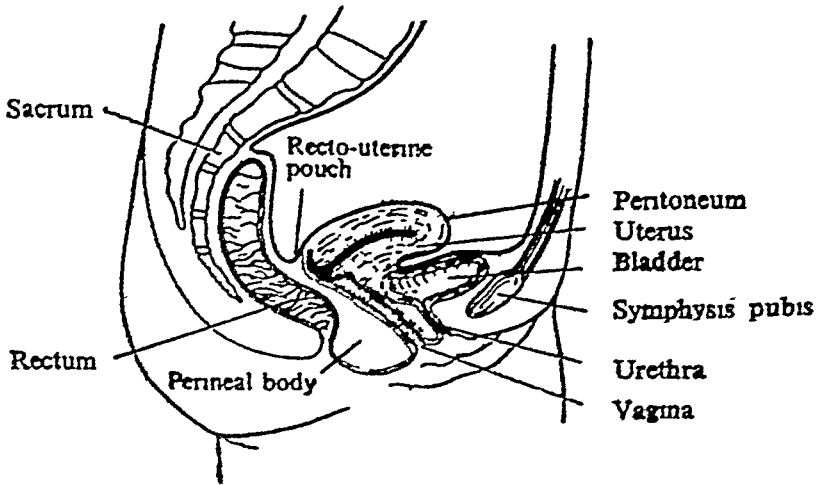
चित्र 199—महिला की श्रोणी की मध्य काट, गर्भाशय की स्थिति दर्शाते हुए।

यदि डिम्ब गर्भाशयिक नली मे निषेचित हो गया है तो यह मोटा, रक्तसंवहित एन्डोमीट्रिअम मे अन्त स्थापित हो जाता है जो हॉर्मोन्स की क्रिया द्वारा इसे प्राप्त करने के लिये तैयार हो चुकी होती है। यह निषेचित डिम्ब यही रहता है और आकार में तब तक बढता है जब तक कि यह गर्भाशय को पूर्णत. नही भर देता है, इसके बाद गर्भाशय इसी के साथ गर्भावस्था के अन्तिम समय तक बढ़ता रहता है। अन्त.स्थापन के स्थान पर प्लेसेन्टा विकसित होता है, प्लेसेन्टा वह अंग है जिसके

द्वारा अन्तर्गर्भाशयिक जीवन के दौरान मातृक रक्त से गर्भस्थ शिशु पोषण एवं ऑक्सीजन प्राप्त करता है।
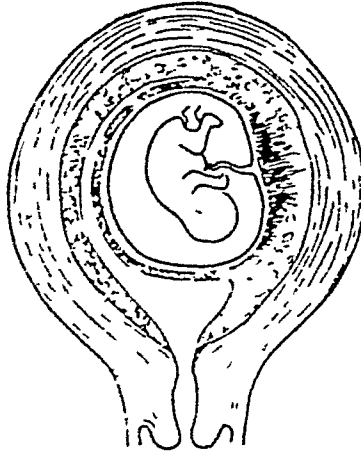
चित्र 200—गर्भावस्था के दसवें सप्ताह मे गर्भाशय, प्लेसेंटा और विकसित होता हुआ गर्भस्थ शिशु दिखाई दे रहा है।

रजोधर्म (*Menstruation*) कुछ रक्तस्राव के साथ मोटी एन्डोमीट्रिअम के टूटने की प्रक्रिया है जो यौवनारभ के बाद रजोनिवृत्ति तक हर माह मे होती है।

हाइपोफिसिस का अग्र-खण्ड फॉलिकल-उत्तेजक हॉर्मोन (FSH) स्रावित करता है जो डिम्ब ग्रन्थि मे फॉलिकल के विकास को आरभ करता है। जैसे ही डिम्ब परिपक्व हो जाता है फॉलिकल इस्ट्रोजेन स्रावित करता है जो एन्डोमीट्रिअम के विकास और निषेचित डिम्ब को प्राप्त करने के लिये इसकी तैयारी के हेतु आवश्यक होता है। युवा लडकी मे द्वितीय सेक्स विशिष्टताओ के विकास के लिये भी इस्ट्रोजेन जिम्मेवार है। जब रक्त मे इस्ट्रोजेन की मात्रा उच्च स्तर पर पहुँचती है तब FSH का और अधिक स्रावण रुक जाता है लेकिन हाइपोफिसिस का अग्र-खण्ड ल्यूटीनाइजिंग हॉर्मोन का स्रावण आरभ कर देता है। डिम्बक्षरण के बाद (फॉलिकल से डिम्ब का निकलना) ल्यूटीनाइजिग हॉर्मोन फटे हुए फॉलिकल को कॉर्पस ल्यूटीअम मे परिवर्तित कर देता है जो प्रोजेस्टेरॉन नामक हॉर्मोन स्रावित करता है। यह हॉर्मोन एन्डोमीट्रिअम का विकास पूर्ण करता है। यदि डिम्ब निषेचित नही हुआ तो कॉर्पस ल्यूटीअम नष्ट होने लगता है, प्रोजेस्टेरॉन का स्तर कम हो जाता है और एन्डोमीट्रिअम टूटने लगती है। कम प्रोजेस्टेरॉन स्तर हाइपोफिसिस को अधिक FSH स्रावित करने के लिये भी उत्तेजित करता है और यही चक्र पुन आरभ हो जाता है। वर्णन की सुविधा के मान से रजोधर्म स्राव का पहला दिन रजोधर्म चक्र का पहला दिन कहलाता है। डिम्बक्षरण प्राय करीब 14 वे दिन होता है।
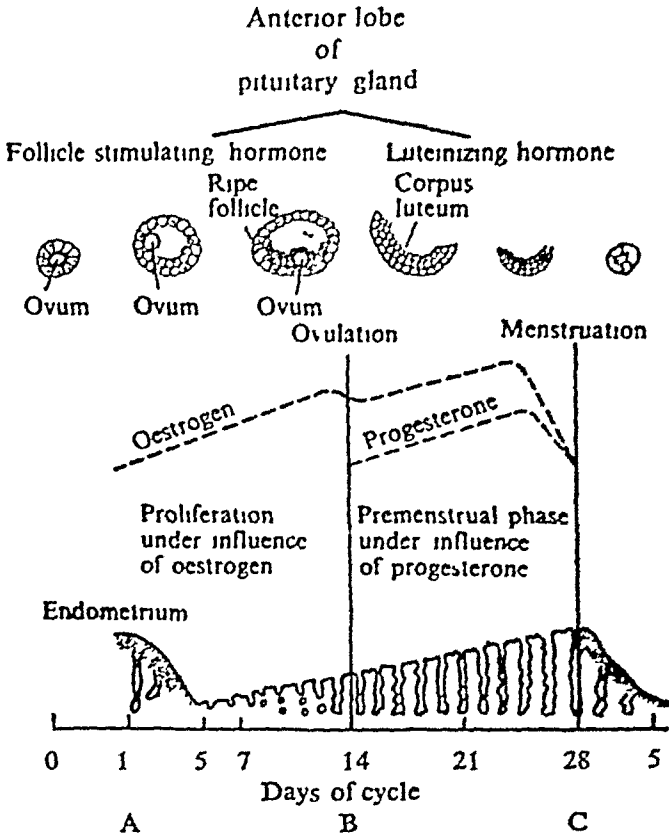
चित्र 201–रजोधर्म चक्र में एन्डोमिट्रिअस में होने वाले परिवर्तनो का रेखांकित चित्रांकन।

योनिमार्ग (Vagina) गर्भाशय से लेबिआ तक फैला रहता है; यह मूत्राशय एव मूत्रमार्ग के पीछे और मलाशय एव गुदा मार्ग के सामने स्थित रहता है। सर्विक्स योनिमार्ग की अग्र-दीवार मे समकोण पर प्रविष्ट होती है, अत योनिमार्ग की पिछली दीवार अगली दीवार की अपेक्षा लम्बी होती है। योनिमार्ग मे सर्विक्स के उभर आने से जो स्थान बनते है उन्हें फॉर्निसेस (*Fornices*) कहते हैं। योनिमार्ग की दीवारें सामान्यतया एक दूसरे के सम्पर्क मे रहती हैं। योनिमार्ग मे दो तहें होती है पेशीय तह जिसमे लम्बवत् एव गोलाकार तन्तु रहते हैं, और श्लेष्मिक झिल्ली का आन्तरिक अस्तर जो मोडो या झुर्रियो के रूप मे होता है। यौवनारम्भ के बाद यह अस्तर मोटा हो जाता है और ग्लाइकोजन से परिपूरित रहता है, ग्लाइकोजन पर कुछ बेक्टीरिआ (डॉडरलीन बेसिलाइ) की क्रिया से योनिमार्ग के स्रावण की प्रतिक्रिया अम्लीय रहती है। पेरिटोनिअम गर्भाशय के मुख्य भाग के ऊपर से सर्विक्स के पिछले भाग पर से होती हुई योनिमार्ग के पिछले फॉर्निक्स के स्थान से पुन मलाशय के सामने परावर्तित होती है। इस मोड को रेक्टो-यूटेराइन पाउच (Recto-uterine pouch) कहते है।

बाह्य जननांग (External organs) :

स्त्री के वाह्य जननागो को एक रूप मे योनि (*Vulva*) कहते हैं। ये निम्नलिखित भागो के वने होते है

1. मॉन्स प्यूविस
2. लेविआ मेज़ोरा एव माइनोरा
3. क्लिटोरिस
4. योनिमार्ग का वेस्टिब्यूल
5. ग्रेटर वेस्टिब्यूलर ग्रन्थिया

मॉन्स प्यूबिस (Mons pubis) सिम्फिसिस प्यूविस के ऊपर स्थित व त्वचा से ढँकी वसा की गद्दी हे। यौवनारम्भ के वाद इस पर बाल दिखाई देने लगते हैं।

लेविआ मेज़ोरा (Labia majora) त्वचा से ढँके हुए वसीय ऊतक की दो मुडी हुई रचनाएँ है जो योनि के दोनो तरफ मॉन्स से पीछे की ओर फैले रहते हें तथा पीछे पेरिनीअम मे समाप्त हो जाते हे। ये यौवनारम्भ के समय विकसित होते है और इस अवस्था के वाद वाहरी सतह पर वालो मे ढँके होते हे। रजोनिवृत्ति के वाद ये क्षीण होने लगते हैं।

लेविआ माइनोरा (Labia minora) लेविआ मेज़ोरा के समीप स्थित दो छोटी मॉसल तहे हैं। सामने की ओर ये दोनो मिलकर एक टोपीनुमा रचना वनाती हैं जिसे *प्रीप्यूस* कहते ह, यह क्लिटोरिस को घेरे रहता है और उसकी सुरक्षा करता है। लेविआ माइनोरा के फ्रेन्यूलम (फॉरशेट) के रूप मे पिछे की ओर जुडते हैं। यह मात्र त्वचा का एक मोड है जो प्रथम प्रसव के अवसर पर वहुधा फट जाता है। लेविआ माइनोरा परिवर्तित त्वचा से ढँके रहते है जो स्वेद एव सीवेशॅस ग्रन्थियो से परिपूरित होती है, इन ग्रन्थियो से इसकी सतहें चिकनी वनी रहती हैं।

क्लिटोरिस (Clitoris) छोटा सवेदनशील अग है जिसमे पुरुष के शिश्न के समान उत्तेजनशील ऊतक रहते है। यह मॉन्स प्यूविस के ठीक नीचे योनि के सामने के भाग पर स्थित होता है और प्रीप्यूस द्वारा सुरक्षित रहता है।

वेस्टिब्यूल (Vestibule) लेविआ माइनोरा के मध्य एक स्थान है इसमे योनिमार्ग एव मूत्रमार्ग के द्वार खुलते हैं।

मूत्रमार्ग का द्वार (The orifice of the urethra) वेस्टिब्यूल के पीछे स्थित रहता है जो सामान्य सतह स्तर से कुछ ऊपर की ओर उभरा होता है। इसके प्रवेश-स्थान पर दो छोटी पतली ट्यूवॅलर ग्रन्थियाँ होती हैं जिन्हें यूरेथ्रल ग्रन्थियाँ कहते हे, ये चिकना द्रव स्रावित करती हैं और अधिक महत्वपूर्ण होती हैं क्योकि गॉनॅरीआ नामक वीमारी मे ये सक्रमण को स्वय मे सीमित कर लेती हैं।

योनिमार्ग का द्वार (The orifice of the vagina) वेस्टिब्यूल के पीछे लेबिआ माइनोरा के बीच के स्थान को घेरे रहता है। सामान्यतया यह सामने से पीछे तक एक दरार के रूप मे होता है और योनिमार्ग की बाजू की दीवारें सम्पर्क मे रहती हैं। कुआरी बालिकाओ मे यह छिद्र हाइमॅन (*Hymen*) द्वारा बंद रहता है। यह श्लेष्मिक झिल्ली की दोहरी तह है जो प्राय अर्द्धचद्राकार होता है और रजोधर्म स्राव को निकलने के लिये सामने के भाग पर खुला होता है। कभी-कभी इसमे छोटे-छोटे कई छिद्र रहते हैं, तब इसे फेनेस्ट्रेटेड हाइमॅन (Fenestrated hymen) कहते हैं। कभी-कभी कोई छिद्र नही होता है, लेकिन ऐसा प्राय योनिमार्ग के पूर्णत. विकसित नही होने के कारण होता है। हाइमॅन योनिमार्ग के द्वार के कुछ अन्दर स्थित रहता है, अत लेबिआ के फ्रेन्यूलम और हाइमॅन के बीच मामूली गड्ढा रहता है।
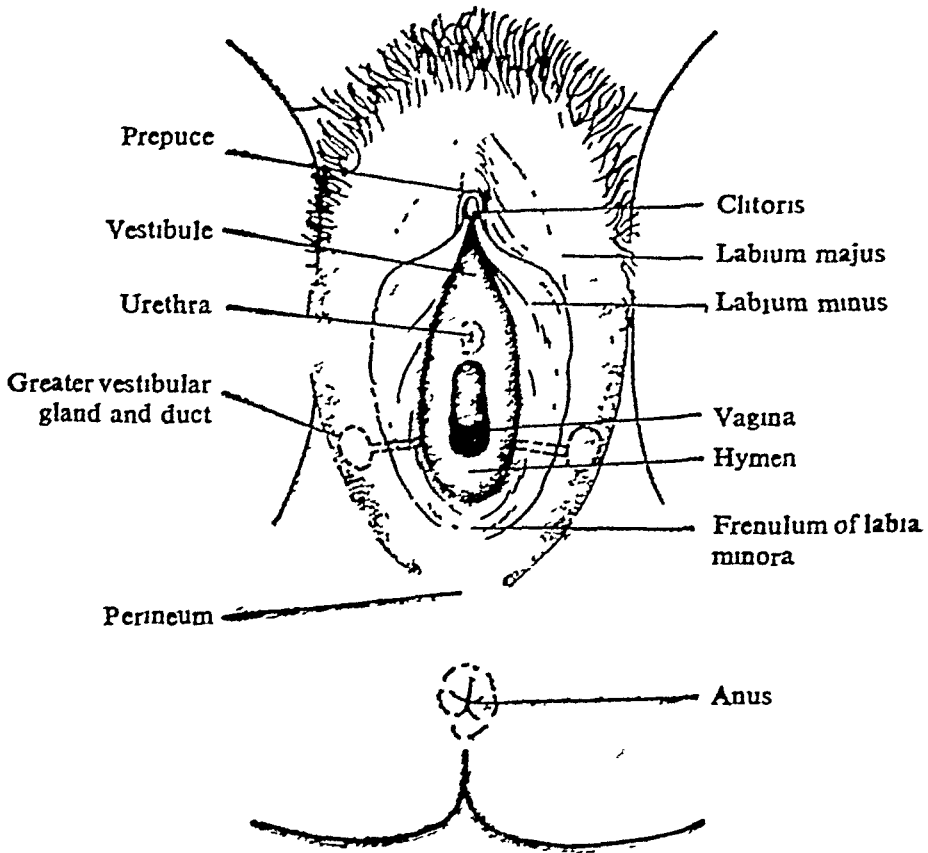
चित्र 202–महिला के बाह्य जननाग।

ग्रेटर वेस्टिब्यूलर ग्रन्थियां (The greater vestibular glands) योनिमार्ग के द्वार के दोनो तरफ प्रत्येक लेबिअम मेजस के नीचे स्थित दो छोटी ग्रन्थियां हैं।

इनकी वाहिकाएँ हाइमॅन के बाजू मे खुलती हैं। योनि की सतह को चिकना व नम बनाये रखने और सभोग को घर्षण रहित बनाने के लिये ये चिकनाई युक्त द्रव स्रावित करती हैं।

योनि की सम्पूर्ण सतह परिवर्तित त्वचा, अर्थात् स्ट्रैटिफाइड एपिथीलिअम से ढँकी रहती है। इसकी सिर्फ बाहरी सतह पर ही बाल होते है, लेकिन आन्तरिक सतहें सीबेशॅस एव स्वेद ग्रन्थियो से अत्यधिक परिपूरित रहती हें, ताकि सतहें नम रहें और चलने के दौरान घर्षण न हो।

पेरिनीअम (*Perineum*) योनिमार्ग के द्वार से गुदा तक त्वचा का फैलाव है। यह करीब 5 से मी लम्बी होती है और इस पर बाल रहते हैं। यह पेरिनीअल बॉडी पर स्थित रहती है, यह पेरिनीअल बॉडी पेशी एव तन्तुमय ऊतक का पिण्ड है जो योनिमार्ग को मलाशय से पृथक रखता हे। पेरिनीअल बॉडी की पेशी मुख्य रूप से लीवेटॅर एनि है जो श्रोणि को निचली सतह की मुख्य पेशी भी है।

स्तन (Breasts)

स्तन दो ग्रन्थियाँ हैं जो दूध स्रावित करती हैं और महिला प्रजनन तत्र के सहायक अग है। पुरुषो मे ये अविकसित अवस्था मे रहती हैं। ये वक्ष-स्थल के सामने के भाग पर स्थित होते हैं और आकार मे भिन्न रहते हैं। ये रूपरेखा मे गोलाकार होते है तथा सामने की ओर उभरे हुए रहते हैं। इनकी सतह के मध्य मे स्तनाग्र (Nipple) होता है जो त्वचा के स्तर से सामान्यतया बाहर उभरा रहता है तथा कुआरी महिला मे गुलाबी रग का होता है, लेकिन प्रथम गर्भावस्था के बाद रगमय हो जाता है।
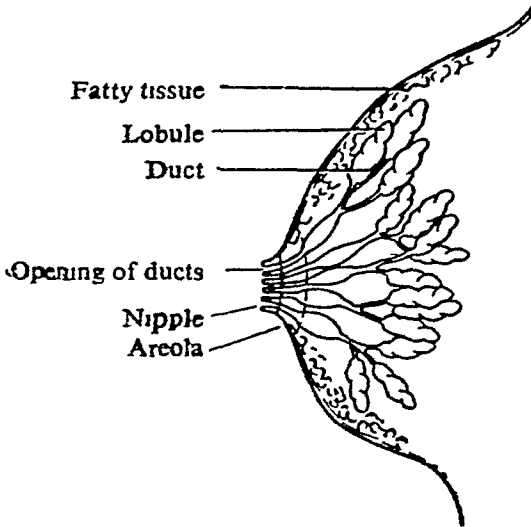
चित्र 203—स्तन

स्तन एक जटिल कोशिकीय ग्रन्थि है जिसकी वाहिकाएँ स्तनाग्र की ओर जाकर मिलती हैं और इसकी सतह पर अत्यधिक मात्रा मे खुलती है। इस ग्रन्थि का ऊतक सीबेशॅस ग्रन्थि के समान होता है, लेकिन यह अधिक विकसित रहता है और सीबम के बजाय दूध स्रावित करता है। तन्तुमय ऊतक के विभाजनो द्वारा यह ग्रन्थि कई खण्डो मे विभाजित रहती है—यही तथ्य स्तन मे हुए फोडे का निकास करने मे कठिनाई पैदा करता है। ये खण्ड छोटे-छोटे लोब्यूल्स मे उपविभाजित रहते है।

यौवनारंभ के समय स्तन हॉर्मोन्स के प्रभाव के अन्तर्गत विकसित होते है तथा गर्भावस्था के दौरान पिट्यूटरि ग्रन्थि एव डिम्ब ग्रन्थियो से निकलने वाले हॉर्मोन्स के परिणामस्वरूप और अधिक विकसित होते है। गर्भावस्था के दौरान और शिशु जन्म के समय इस ग्रन्थि द्वारा बहुत कम मात्रा मे एक द्रव स्रावित होता है जिसे नवदुग्ध (Colostrum) कहते हैं, लेकिन सूतिकावस्था या शिशु जन्म के बाद करीब तीसरे दिन तक वास्तविक दूध स्रावित नही होता है।